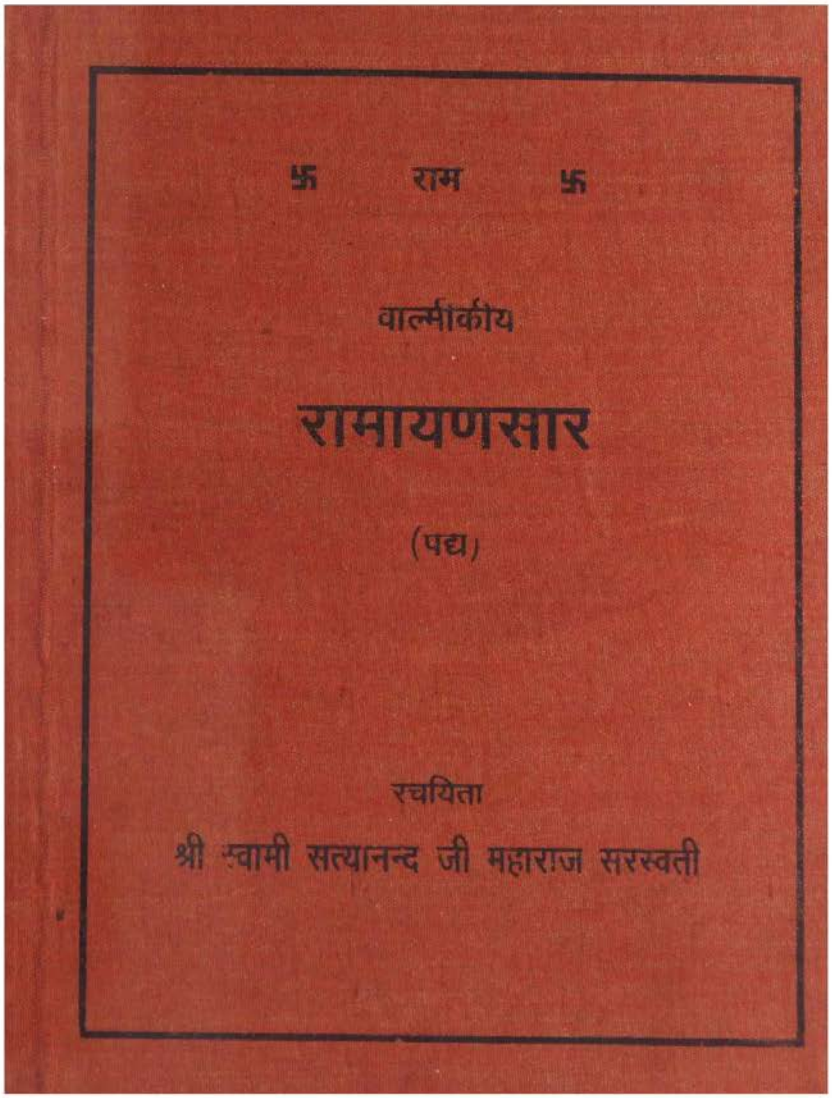
卐 राम 卐
वाल्मीकीय
रामायणसार
(पद्य)
रचयिता
श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज सरस्वती

अपनी संस्कृति से गाढ़ प्रेम होना चाहिए।

सत्यानन्द

卐 ॐ 卐

वाल्मीकीय

रामायणसार

(पद्य)

रचयिता

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज सरस्वती

पुस्तक मिलने का पता :

श्री रामशरणम्, ८ए, रिंग रोड, लाजपत नगर

नई दिल्ली-२४

*प्रकाशक :-
श्री स्वामी सत्यानन्द धर्मार्थ ट्रस्ट,
८ए, रिंग रोड, लाजपत नगर–४
नई दिल्ली –११००२४

web.site-shreeramsharnam.org
E-mail address: shreeramsharnam@hotmail.com

© सर्वाधिकार सुरक्षित न. एल.–१४१७६/६४

प्रथम संस्करण से छब्बीसवां पुनर्मुद्रण २,२६,४००
(सम्वत् १६६४/सन् १६३७) (सम्वत् २०६७/सन् २०१०)
सत्ताइसवां पुनर्मुद्रण १०,०००
(सम्वत् २०६८/सन् २०११)
योग २,३६,४००

*मूल्यः ६० रूपये

---

* मुद्रक :
अनुभा प्रिंटर्ज़
बी–४८, सैक्टर ७,
नोएडा, उ.प्र.

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
रामायण माहात्म्य	१
अवतरणिका	४
मंगलाचरण	१३
बालकाण्ड	**१७**
श्री वाल्मीकि जी का वर्णन	२१
श्री वाल्मीकि जी का आश्रम	२७
श्रीनारद-वाल्मीकि मिलाप	२८
वाल्मीकि के पूछने पर नारद जी ने श्रीराम-चरित्र संक्षेप से वर्णन किया...	२६
स्वशिष्य भरद्वाज के साथ श्री वाल्मीकि जी का स्नानार्थ तमसा नदी पर जाना	३२
क्रौंच-वध देखते ही कविता कला का अनुभव होना	३३
राम-चरित रचने के लिए श्री ब्रह्मा जी की प्रेरणा	३३
श्री वाल्मीकि जी का रामचरित्र वर्णन करना	३३
राजा दशरथ का राज्य	३८
राजा दशरथ का पुत्रेष्टि-यज्ञ	३६
श्री रामचन्द्र जी का जन्म	४३
बाल-काल	४६
विद्या ग्रहण करना	४७
श्री रामचन्द्र की यौवनावस्था	५०
विश्वामित्र जी का आगमन	५१
विश्वामित्र जी का स्वसंग श्रीराम लक्ष्मण को ले जाना	५५
ताटिका वर्णन और हनन	५८
श्रीरामजी का सिद्धाश्रम में जाना	६२
विश्वामित्र जी का यज्ञ, मौन और श्रीराम लक्ष्मण का स्वयं सेवकपन	६५
मारीचादि असुरों का दमन	६६
श्रीराम की विनीतता	६७
श्रीरामचन्द्र जी सहित मुनि संघ का सीता स्वयम्वर के लिए प्रस्थान	७०
अहिल्या शाप-मोचन	७७
मिथिला में शुभागमन	७६
जनक जी का विश्वामित्र जी के दर्शनार्थ आना	८१
स्वयम्वर मंडप में श्रीरामचन्द्र जी का धनुष उठाना	८३
श्रीरामचन्द्र जी का विवाह	६५
राम-बरात की विदाई	६७
मार्ग में परशुराम जी का अड़ना	६८
श्रीरामचन्द्र जी का जन-मनोरंजन	१०४
अयोध्याकाण्ड	**१०६**
श्रीरामचन्द्र जी को सर्वगुणसम्पन्न जानकर दशरथ का उनको यौवराज्य पद देने का निश्चय करना	११०
प्रतिनिधि सभा में बैठक और सब सदस्यों का एकमत होना	११४
मन्थरा का कोप और कैकेयी को भड़काना	१२६
अन्त में कैकेयी में वैमनस्य उत्पन्न हो जाना और उस का क्रोधागार में जा पड़ना	१३६

विषय	पृष्ठ
राजा दशरथ का हर्ष से राज-भवन में प्रवेश और कैकेयी को कुपित जान कर चिन्ता करना	१३८
उस को मनाने का प्रयत्न	१३६
राणी के दुराग्रह से दुःखी होकर राजा का सुमंत्र को भेजकर श्री रामचन्द्र जी को बुलवाना	१५१
श्रीरामचन्द्र जी का सुमंत्र सहित मध्यमा मां के मन्दिर में आना	१६०
रामचन्द्र जी को सम्मुख खड़ा देख कर राजा का चेतना शून्य हो जाना	१६१
दशरथ जी अचेत थे उस समय कैकेयी ने उनको चौदह वर्ष का वनवास का आदेश सुनाया और प्रेरणा दी कि तुरन्त ही जाइए	१६३
राजचिन्ह त्याग कर श्रीरामचन्द्र जी का कौशल्या जी के गृह में जाना और उन्हें वनवास की बात सुनाना	१६८
राम-माता का महारोदन। राम जी का उनको समझा कर शान्त करना, उन से विदाई लेना	१७०
श्रीरामचन्द्र जी का सीता-सदन में प्रवेश, सीता की व्याकुलता	१७६
श्रीरामचन्द्र जी का सीता जी को घर पर रहने का उपदेश, सीता जी का वन को साथ चलने का आग्रह	१८२
सीता जी के अत्याग्रह पर श्रीराम जी को उनको साथ ले जाना स्वीकार करना	१६१
श्री लक्ष्मण जी का सेवाव्रत	१६४
श्रीराम, सीता, लक्ष्मण का दशरथ जी के पास आना, उनकी व्याकुलता	१६८
कैकेयी का श्रीराम, लक्ष्मण को पहरान देना	२०३
सुमित्रा जी का लक्ष्मण जी को उपदेश	२०६
नागर जन की दशा	२११
नगर के वृद्ध ब्राह्मण	२१२
तमसा तट पर प्रथम रात्रि	२१५
श्रीराम की मातृ-भूमि को वन्दना	२२०
श्रीराम का गंगा तीर पर जाना निषादराज का मिलना और सर्वस्व समर्पण करना	२२२
भरद्वाज का मिलाप	२२८
भरद्वाज के पथ-प्रदर्शन पर यमुना पार करना	२२६
चित्रकूट पर वाल्मीकि के आश्रम में निवास	२३२
राजा दशरथ का कौशल्या को स्वकर्म फल और श्रवण-वध की घटना सुनाना	२४०
राम-वियोग-वेदनावश राजा दशरथ का प्राणान्त	२४५
मंत्रि-मंडल ने शासन सम्भाल कर भरत जी को बुलवाया	२४७
भरत जी का आना और सीधे निज माता के पास जाना	२५२
माता मुख से राम-निर्वासन सुन कर भरत का दुःखित होना	२५३
श्री भरत जी की शपथें	२५५

विषय	पृष्ठ
राजा की देह दहन करने के अनन्तर, भरत का राज्य अस्वीकार कर श्री राम जी को पीछे लाने के लिए प्रस्ताव और यान	२५६
निषाद राजा की सावधानता	२६०
भरद्वाज का आतिथ्य	२६४
भरत-संघ का चित्रकूट पर जाना भरत जी का राम-चरणों पर पड़ कर रोदन और पिता का मरण सुनाना	२७०
भरत जी को रामोपदेश	२७४
भरत जी का राम जी को लौटाने के लिए विनय करना, उनका न मानना	२७७
जाबालि का उपयोगी वाद	२७६
अन्त में रामपादुकें सिर पर धर कर भरत जी का लौट आना	२८५
नन्दि ग्राम में जाकर सिंहासन पर रामपादुकें स्थापित करके उनकी ओर से भरत जी का शासन करना	२८६
आरण्यकाण्ड	**२८८**
भरत जी के चले जाने पर श्री राम का अत्रि के आश्रम पर जाना	२८६
सीता जी को अनसूया का उपदेश	२६०
श्रीरामजी शरभंगाश्रम में और मुनि-मंडल का अभिनन्दन	२६७
श्रीराम, सुतीक्ष्ण मिलाप	३०१
श्रीराम, लक्ष्मण के हाथों में नंगी कृपाणें देख कर सीता जी का कथन और राम-समाधान	३०२
श्री अगस्त्याश्रम में राम का पधारना	३०७
ऋषि अगस्त्य ने उनको पंचवटी स्थान उत्तम बताया	३०८
पंचवटी में कुटी-निर्माण कर श्रीराम का रहना	३१०
एकदा शूर्पणखा का आना	३११
शूर्पणखा का सीता जी को नोच खाने को लपकना, कृपाण से लक्ष्मण जी का उसे हटाना इससे उसकी नाक कट जाना	३१७
शूर्पणखा का जन-स्थान में जाकर खर आदि को भड़काना, उनका श्रीराम से युद्ध	३१८
खरादि का हनन, राम-विजय	३२४
जन स्थान के सर्वनाश के पश्चात् शूर्पणखा ने लंका में जाकर सीता के हरण करने को रावण को उद्यत किया	३२६
रावण का समुद्र पार करना महा मायावी मारीच को माया-मृग बनना मनवाना	३३०
माया-मृग का सीता कुटी के समीप उछल-कूद करना	३३८
माया से सीता का मोहित होना लक्ष्मण के वर्जने पर भी श्रीराम मृग पकड़ने को गए	३४०
सीता अपहरण	३४६
जटायुजी का रावण के साथ युद्ध	३४७
रोदन करती हुई सीता ने ऋष्यमूक पर्वत पर आभूषण फैंके	३४६
रावण ने अशोक-वाटिका में सीता जी को बन्दी बनाया	३५०
आश्रम में आकर सीता वियोग से श्रीराम जी की व्याकुलता	३५२

विषय	पृष्ठ
श्रीराम जी ने जटायु की अन्त्येष्टि की	३६०
किष्किन्धाकाण्ड	**३६२**
शबरी जी का आतिथ्य करना	३६३
हनुमान जी की विनीतता	३६७
सुग्रीव जी सन्धि-सम्बन्ध में जुड़े	३७३
सीता जी के भूषणों की पहचान	३७६
बाली-वध	३८७
तारा का रोदन और रामोपदेश	३८८
गिरि प्रस्रवण पर श्रीराम का चतुर्मास	४००
शरदागमन	४०५
सीता के वियोग की वेदना	४०६
लक्ष्मण का सुग्रीव को मिलना	४११
प्रस्रवण गिरि पर सुग्रीव के वीर दलों का एकत्रित होना	४१७
सीता की खोज में चारों ओर वीर दलों का जाना। जो वीर दक्षिण को गए उनमें अंगद हनुमान जी भी थे	४१८
दक्षिण वीरदल को जटायु के भाई संपाति का मिलना और लंका में सीता है, बताना	४२२
सुन्दरकाण्ड	**४२८**
श्री हनुमान का समुद्र को पार करना	४२६
असुर वेश में, रात में, हनुमान जी का सीता जी को खोजना	४३१
हनुमान जी का अशोक वाटिका में प्रवेश	४३६
सीता जी को देख कर, वृक्ष पर छुप घटनाओं को देखना	४३६
अनुकूल अवसर पर, हनुमान जी ने सीता जी को स्वपरिचय और राम सन्देश दिया	४५६
सीता-सन्देश लेकर हनुमान जी का इस पार आ स्वसंघ को मिलना	४७४
सफल अंगद दल का किष्किन्धा को प्रस्थान करना	४७६
श्रीराम जी को हनुमान जी ने सीता का समाचार सन्देश सुनाया	४७७
श्रीराम जी ने अत्यन्त आभार प्रकट कर, हनुमान जी को गले लगाया	४७६
लंकाकाण्ड	**४८१**
सुग्रीव सेना की लंका पर चढ़ाई रामयान	४८४
क्रमशः चलता दलबल सागर तीर जा पहुँचा	४८८
राम-सेना का स्थल बहुत ही सुरक्षित किया गया	४८६
उधर, रामयान सुन कर रावण की परामर्श सभा में परस्पर कलह	४६४
रावण ने चिढ़ कर विभीषण को लंका देश से बाहर कर दिया	५००
इधर आ कर, विभीषण ने राम की शरण लेने की याचना की	५०३
श्रीराम ने विभीषण को शरण दी	५०६
नल का समुद्र पर पुल बांधना	५०६
सुग्रीव का स्वसेना पार ले जाना और व्यूह रचना करना	५११
श्रीरामचन्द्र जी ने अंगद को दूत बना कर रावण के पास भेजा	५१६

विषय	पृष्ठ
रावण ने अंगद को अपमान पूर्वक लौटा दिया	५२२
वानर-असुर समर	५२२
प्रथम दिन के संग्राम में असुर हत-प्रतिहत होकर दुर्ग में चले गये	५२६
रावण-सेना का अंधेरी रात में छापा मारना	५२६
मेघनाद का राम लक्ष्मण को नाग पाश से बांधना	५२६
ज्ञानी गरुड़ का उनके पाश तोड़ना	५३१
कुम्भकर्ण का भीषण युद्ध और राम द्वारा उसका हनन	५३८
लक्ष्मण-इन्द्रजित्-समर और लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् का पतन	५४७
रावण का समर में आना, राम का सामना करना और उसका लक्ष्मण को मूर्छित कर भाग जाना	५४६
सुषेण वैद्य का लक्ष्मण जी को सचेत करना	५५२
अन्तिम दिन राम-रावण का द्वन्द्व युद्ध	५५४
रावण का राम-अस्त्र से धराशायी होना	५५६
भरत-मिलाप-काण्ड	**५५८**
रावण को मरा देख कर विभीषण-विषाद	५५८
राम का आश्वासन देना	५५६
मन्दोदरी-रोदन और राम का धैर्य देना	५६१
विभीषण को राज्यतिलक देना	५६४
राम-आज्ञा से हनुमान जी का जाकर सीता जी को विजय समाचार सुनाना	५६५
विभीषण का श्रीराम समीप सीता को लाना	५६७
सीता जी का अग्नि-परीक्षण	५७०
शिविर से ही सीता सहित पुष्पक विमान द्वारा, राम-प्रस्थान	५७६
श्री भरत-मिलाप	५८०
श्रीराम जी ने अयोध्या पहुँच कर पुष्पक विमान भी लौटा दिया	५८१
श्रीराम-राज्याभिषेक	५८३
श्री भरत जी को युवराज पद	५८५
श्रीराम-राज्य और उसका महत्त्व	५८६
(परिशिष्ट)	
नाम-महिमा	५६२
भक्ति-महत्त्व	५६४
रामकृपा	५६७
रामोपदेशषट्क	५६८

स्वामी सत्यानन्द जी के अन्य ग्रन्थ

एकादशोपनिषद् संग्रह

(भाषा टीकासहित)

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर-ग्यारह उपनिषदों का हिन्दी अर्थ और व्याख्यान। प्रत्येक शब्द के अर्थ को जानने के लिए अंक दिए गये हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा भाष्य

आप यदि, आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी के उपदेशों के सार मर्म का महा मधुर स्वाद लेना चाहते हैं, तो स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा किया गया गीता का सरल और सरस भाषानुवाद पढ़िए।

भक्ति-प्रकाश (पद्य, गद्य)

जो भावनावान् भावुक जन, भागवती भक्ति-भागीरथी में स्नान करने के इच्छुक हैं, जो भक्ति धर्म के मर्म को जानना चाहते हैं, और जो भक्ति योग के सच्चे, सरल, सुपथ पर चलने के अभिलाषी हैं उनको स्वामी सत्यानन्द-रचित, भक्ति-प्रकाश ग्रन्थ सुमननपूर्वक पढ़ना चाहिए।

स्थित प्रज्ञ के लक्षण

श्रीमदभगवद्गीता के दूसरे अध्याय के अन्तिम २१ श्लोक तथा उनका शब्दार्थ और व्याख्या। स्थिरबुद्धि के क्या लक्षण हैं। यह इसमें बताया गया है।

रामायण - माहात्म्य

पुण्य-पाठ रामायणी, पूर्ण पावन रूप ।
पूरे प्रेम से जो पढ़े, सो हो पुण्य सुरूप ।।१।।

*शुभ शान्ति बसे तन में मन में, मुद मंगल मोद मनोगम आवे ।
समुज्ज्वल जीवन जोत जगे, जगजातिकजीवनभीजगजावे ।।
सुख सम्पत् ज्ञान विज्ञान बढ़े, सुविवेक विचार खिले विकसावे ।
वर बोध विलास करे चित्त में, जब राघव-गीत गुणीवर गावे ।।२।।

चित्त चाँद चढ़े चमके नवता, शुचिचारितचारुपढ़ेजबहीजो ।
मतिमान् बने गुणवान् बने, मन से जन पाठ करे तब ही तो ।।
हरि प्रेम भक्ति विलसे मन में, पर पावन रूप बने सब ही सो ।
गुण-गान करे कर भाव सदा, सुरसम्पद् लाभ मिले शुभ ही हो ।।३।।

बलवान् बने वरवीर बने, जन धीर बने सब दोष निवारे ।
उर में अति तेज उत्साह सदा, शुभ साहस-भाव बड़ा विस्तारे ।।
जय लाभ करे जग जीत जिये, करके बढ़ती न कदाचित् हारे ।
पहले पद डाल फिरे न उससे, जब राघव-गीत सुने उच्चारे ।।४।।

उपकार करे परहेतु जिये, जन दीनन के दुःख दूर नसावे ।
पर कारण क्लेश कठोर सहे, परहेतु दुष्कर कर्म कमावे ।
हितकार रहे पर पीड़ित का, पर त्रास हरे भय भार भगावे ।।
दुःख दारुण में न टले शुभ से, जिसमें शुचि चारित सार बसावे ।।५।।

सद्काम करे सद्वाक् कहे, कथनी करनी सद्रूप निभाये ।
जन में जग में सद्भाव भरे, निज जीवन से सद्जोत जगाये ।।

---

* सवैया सुन्दरी।

जिस देश बसे उसके हित ही, तन धन सभी बलिदान बनाये ।
अति पावन पाठ पढ़े जब जो, मन भीतर राघव-प्रेम रमाये ।।६।।

*भावुकता उपजे उछले जब, जो जन हो इसका अनुरागी ।
प्रेम-पगा परमेश-परायण, हो परिवार-रमा बड़भागी ।।
बन्धु विनीत बने सिर देकर, मात-पिता-हित स्व सब त्यागी ।
राघव-जीवन जोत जगे जब, जाय जन्म जड़ता जड़ भागी ।।७।।

सेवक भाव बढ़े दिन ही दिन, दीन दशा पर की जब पावे ।
भीतर से पिघले दुखिया लख, दूषण दोष तुरन्त नसावे ।।
आप तपे पर-ताप लखे जब, हीन हतों हित हाथ बढ़ावे ।
कारुणभाव बसे उसमें अति, राघव-जीवन जो जन ध्यावे ।।८।।

राघव-जीवन, जीवन में जब, जो जन धार रहे दिन-राती ।
साख जमे जनता जन में तस, प्रीति परा उसमें जग जाती ।।
आपस में मिल प्रेम करे बहु, न्याय करे न बने पक्षपाती ।
राघव का अनुकार रहे वह, एक करे पर स्व जन नाती ।।९।।

मंगल-मूल मनोहर मोहक, मोदक जीवन जो मन धारे ।
मान महामति माधुरता शुभ, मेल मिले, कर भाव विचारे ।।
चार मिलें फल सुन्दरता सुख, ओज सुतेज सुरूप पसारे ।
कोमल काम करे कटुता तज, हो वह राघव राज सहारे ।।१०।।

काम करे निष्काम सदा वह, स्व परता उसमें न समाये ।
योग कर्मयुत राधन भी कर, संगति संहति मेल बढ़ाये ।।
संमिलना जनता मन में भर, भेदक भाव-कुभीत गिराये ।
भ्रामक भूत भगें उससे सब, राघव चारित चांद चढ़ाये ।।११।।

---
* मत्तगयन्द।

मानव मेल रमे मन में तस, मेल-मिलाप जपे मधु-माला ।
मानुष मंगल काज करे वह, धार धर्म न टले वह टाला ।।
धृति धुरा पर धीर बना रह, शोभन सुन्दर हो शुभ शाला ।
वैर विरोध विशेष विघ्न हर, दास पने पर दे जड़ ताला ।।१२।।

दीख पड़े दमशील सदा वह, दुःख हरे पर, होकर दानी ।
हो दक्ष दीक्षित दीन-दयायुत, दे दिल देह उदार अमानी ।।
साधु सखा सुखकार रहे सम, शोभित शान्त सुशील विज्ञानी ।
राघव-राज बसे जिस भीतर, जाय नहीं उसकी गति जानी ।।१३।।

मोक्ष मिले मन मैल मिटे, मति, हो विमला सरला शुचि सारी ।
चेतन ज्योति जगे चमके अति, भासित भानु-विभूतिक भारी ।।
भाव भले भरपूर भरे मन, आभ विभूषित हो सुखकारी ।
राघव-जीवन हो जब भीतर, प्रीति परा, विकसे फुलवारी ।।१४।।

राम रमे मन राम मिले मन, राघव राज जनों पर राजे ।
राम सिया जय-नाद गर्ज कर, भू नभ में सब ओर विराजे ।।
हो जन में मन में जग में जय, ध्वनि दशों दिश में जय गाजे ।
पातक-पावन पाठ पढ़े जब, सूचक जीत बजें जय बाजे ।।१५।।

अवतरणिका

* महापुरुष आदर्श की, समझो यह पहचान ।
नियम मर्यादावान् हो, गुण-गण में असमान ।।१।।
सब जन में जो उच्चतम, ओज तेज भण्डार ।
जनता का नेता निपुण, नीति न्याय-अवतार ।।२।।
जो हो अपने काल में, शुभ में उत्तम एक ।
बली वक्ता प्रेरक बड़ा, क्रान्ति-कर्ता स-विवेक ।।३।।
तप त्याग में अतुल्य जो, अभय सिंह उपमान ।
युग-परिवर्तन जो करे, सो आदर्श निधान ।।४।।

† हो कर्तव्य-कर्मरत पूरा, वीर धीर शुभ मतियुत शूरा ।
पूर्ण पुरुष परम प्रतापी, पावन यश से दशदिश व्यापी ।।५।।
आत्म-बल से बहुत विराजे, बुद्धि-वैभव विविध से राजे ।
महामना मन तन बलधारी, महा मति मृदु जन-मन हारी ।।६।।
ध्येय-धुरा धर धरणी-सा जो, धृतिधर भी धराधर-सा हो ।
धर्म-धुरीण सुधी सुज्ञानी, सदय हृदय उदार सुदानी ।।७।।
वाणी बन कर विद्युत् धारा, जिसकी व्यापे जनपद सारा ।
कर्म करे उत्तेजना कारी, जो हो सदा समयानुसारी ।।८।।
रामचन्द्र पुरुष थे ऐसे, पूर्णचन्द्र शुचितम जैसे ।
दिव्यादर्श सब शुभ गुण के ही, पुरुषोत्तम प्रभु परम स्नेही ।।९।।
तुलनातीत तपोधन त्यागी, निरुपम प्रण प्रेम अनुरागी ।
धर्म कर्म में पूर्ण योगी, पूर्ण पुरुष परम पद-भोगी ।।१०।।

---

* दोहा। † चौपाई।

पुण्य रूप पावन थे प्यारे, शुभ सुन्दर शिव शुचितम सारे ।
नीति न्याय में निपुण निराले, क्रियाशील दिव्य बल वाले ।।११।।

✱राघव जी के व्रत कर्म, हैं सब उपमातीत ।
वहां पर सादृश्यता, गई सर्वथा बीत ।।१२।।
गुण गौरव सब ज्ञान के, रघुपति थे शुभ ठौर ।
सर्वांग पूर्ण मनुज का, चित्र न मिलता और ।।१३।।
जो गुण मिले न राम में, वह न है अन्य स्थान ।
उन में वे गुण बहुत हैं, अन्य में न हों भान ।।१४।।
ज्ञानशक्ति गुण-गण सर्व, हो कर मूर्तिमान् ।
शोभे रघुपति-देह में, उत्तम पाकर स्थान ।।१५।।
सृष्टि का सौन्दर्य सब, शुभतम शुचि रस सार ।
रघुपति तन में आ बसा, ले पूर्ण अवतार ।।१६।।
तीन लोक त्रिकाल की, शोभा शुभा अनन्त ।
राघव में उतरी यथा, मास मधु में वसन्त ।।१७।।

†रघुपति थे सब गुण-गण गेही, जग-गुरु गौरव गरिमा-देही ।
दिव्य दैव भावों की काया, उनमें था सब सार समाया ।।१८।।
कर्म कथन में थे वे पूरे, प्रण-पालन में अतुल शूरे ।
उसने सब स्व प्रण निभाये, गुरु जन के भी सत्य बनाये ।।१६।।
प्राण-पण कर पर-प्रण पाले, प्रेमी प्रिय तजे सुखवाले ।
परम कर्म कर साख जमाई, आज भी देते जन दुहाई ।।२०।।
+जन जीवन में जन के मन में, जगमेंशुभजोशुचिजोजनजाना ।
रघुराज सर्व शुभ स्थान बने, उनमें सब शोभित अंकित माना ।।

✱ दोहा। † चौपाई। + सवैया सुन्दरी।

चरित्र पवित्र सुचित्र उनका, शुचि चारु बढ़ा शुभ धाम बखाना ।
गुण ज्ञान निधान हुए जग में, उनसे जन का न हुआ जग आना ।।२१।।
उनके सब काम बने उपमा, वर नेम बने मन मोहन कारी ।
सद् व्रत कहे अतुल्य सब ही, तप त्याग रहे उनके अति भारी ।।
कथनी करनी सुशुभा सब थी, उनकी चर्या शुचि सुन्दर सारी ।
जनता जग में वर ज्योति जगे, रघुनाथ-कथा कलि कालिख हारी ।।२२।।

✱ मनुष्याहारी अति कारी, देश पर के असुर आ ।
हनन करते बाल तक को, उन्हें जाते काट खा ।।
गंग यमुना तटों पर भी, होते ये उत्पात थे ।
ऋषि मुनि भी हनन होते, घोर घात विघात थे ।।२३।।
ऋषि विश्वामित्र ले गये, साथ अपने राम को ।
लखन वीर सुधीर वर को, साधने निज काम को ।।
प्रथम यान राघवी था, पर जनों के दमन को ।
दल विदेशी दलन को ही, भ्रूण-हत्या सुशमन को ।।२४।।
ताटिका को दण्ड देकर, ऋषि-मुनि निर्भय किये ।
जो सताये नित्य जाते, उन्हें उस ने सुख दिये ।
आदि विजय विदेश पर थी, ताटिका दल नाश की ।।
म्लेच्छ मद को मथन की थी, असुर-मान विनाश की ।।२५।।
स्वयं सेवक बन निरुपम, छः रात-दिन सजग बने ।
पहरा देते रहे राम, सच्चे कर्मी महामने ।।
खान पान विश्राम तज कर, नींद तक को छोड़ के ।
सिद्धाश्रम को सिद्ध किया, असुर ऐंठन तोड़ के ।।२६।।

✱ गीतिका।

वीर पुरुष महाबली ने, असुर मद मर्दन किया ।
विजय लाभ की कीर्ति पर, ध्यान कान तो न दिया ।।
विनीत बन्धु हाथ बाँधे, बोले गुरु वर महामुने ।
करो आज्ञा और सेवा, शिष्य तव हैं दो जने ।।२७।।
की अहिल्या शाप-मुक्ता, पति-त्यक्ता दुःखभरी ।
विरह-वेदना में ग्रस्ता, वियोग व्याधि तस हरी ।।
राम ने कर मेल उनका, बुद्धिमत्ता प्रकट की ।
मेल-जोल दोष-क्षमा की, जगत् जनको साख दी ।।२८।।
सत्य पर दृढ़ थे इतने, निज वचन नहीं टालते ।
जो कहते सो ही करते, कथन पूर्ण पालते ।।
राम ने विमात को कहा, राम वचन से न फिरे ।
बोल कर बदले न वाणी, यथा कहे तथा करे ।।२६।।
वचन जाबाली को कहे, सत्य ईश सुधर्म है ।
लोक इस परलोक का भी, सत्य ही शुभ कर्म है ।।
सत्य का कर लोप जग में, साख सब जन से टले ।
हो भय कर असत्यवादी, साँप सम जन में चले ।।३०।।
किया सच्चा पितृ-प्रण को, त्याग कर घर-बार को ।
सखा धन निज सुजनवर को, प्राण सम परिवार को ।।
सुख स्वाद रस रमण उसने, तजा नगर निवास को ।
गये वे मुनि-वेश-धर कर, विजनतर वनवास को ।।३१।।
उसने सब कुछ वार दिया, प्रिय पितृ-सुचरण में ।
बनकर तितिक्षु मुनि तापस, भय न माना मरण में ।।
हर्ष से सभी शीत उष्ण, सहे शम दम धारते ।
निराहार निरन्न रातों, रहे विमल विचारते ।।३२।।

थे मधुर तम मीत मोहक, बड़े आदर मान से ।
मित्र मीठे को मिले वे, कह प्रिय हो प्राण से ।।
गले लगा कर गुह को तब, वचन बोले रस भरे ।
प्रिय! आत्मा सम सखा हो, चित्त मिले सच्चे खरे ।।३३।।
बने जब सुग्रीव के सखा, किये अग्नि-परिक्रमा ।
कर-पीड़न कर आलिंगन, वाक् बोले मधुसमा ।।
आज हुए हम पांच बन्धु, सखे! पहले चार थे ।
मिष्ट मित्र थे वे ऐसे, महामना उदार थे ।।३४।।
सुत तो उत्तम थे रघुपति, परम सेवक भी कहे ।
मुनि जन की सेवा में वे, रात दिन तत्पर रहे ।
क्लेश कष्ट कठोर कटु से, विकट संकट घोर से ।।
रक्षा करते मुनिजनों की, घूम फिर सब ओर से ।।३५।।
फिरते रहे वर्ष चौदह, वनी मुनि जन पालते ।
दुष्ट दल को दूर करके, विघ्न बाधा टालते ।।
आश्रमों में जा जा कर, ऋषि-सेवा साधते ।
आप करते काम उनके, संग शुभ आराधते ।।३६।।
राम थे आदर्श बन्धु, बड़े वत्सल भाव से ।
उन्होंने सर्वस्व त्यागा, भरत-हित अति चाव से ।।
देश जाति राज-भक्त थे, वचन कर्म विचार से ।
कहा बाली को उन्होंने, सच्चे भाव उदार से ।।३७।।
भरत-आज्ञा पालता हूं, मैं वनों में रह सदा ।
जल स्थल वनजीवजनका, भूप है वह सर्वदा ।।
विश्वासकरनापरजन पर, वे तथा थे जानते ।
जो कहे-"मैं आपका हूं", उसे अपना मानते ।।३८।।

हुआ शरणागत विभीषण, तभी अपना कर लिया ।
चिर परिचित विश्वस्त जनवत्, दे दिया उसको हिया ।।
बना वह सुविनीत ऐसा, भक्त अनुगत प्रेम से ।
करता प्रिय प्राण अर्पण, प्रभु पर वर नेम से ।।३६।।
हरिण-छाला ओढ़ तन पर, कटी वल्कल से कसे ।
पैर सिर से नग्न फिरते, विषम वन में वे बसे ।।
घोर घनतर विकट जंगल, विविध वनचर से भरे ।
थे विषैले बहुत विषधर, वे नहीं उनसे डरे ।।४०।।
निर्दोष निरे निरीह निर्मल, निर्भय नर निर्लेप थे ।
अतुल त्यागी तरुण तापस, रहित सभी विक्षेप थे ।।
कन्द मूल जो वनज वस्तु, मिले नीरस भी तथा ।
पाँच यजन करके खाते, ऋषिजन करते यथा ।।४१।।
कर्मयोग की मूर्ति बन, विचरते वन देश में ।
सम स्थिति में राम रहते, सुख वा कष्ट क्लेश में ।।
काँटों कंकड़ पर सोते, सम विषम कर एक ही ।
निजानन्द-निमग्न रहते, दुविधा तज अनेक ही ।।४२।।
दूर द्वीप विदेश के जन, हबशी जन समान जो ।
राज्य लंका में करते, रहित धर्म विधान सो ।।
हीन थे आचार पथ से, सभ्य शीलाचार से ।
मनुष्य-मांस रक्त भोगी, रहित शौच विचार से ।।४३।।
अकरुण क्रूर कठोर कर्मी, कुटिल कामी कटु कड़े ।
काल रूप कुकर्मी काले, बल छल में बढ़े चढ़े ।।
भारत भूमि पर विदेशी, नित्य छापे मारते ।
आते दल पर दल बाँधे, काटते हुँकारते ।।४४।।

उनके कपट कर्म की तो, देश भर पर त्रास थी ।
दैत्य-दल-कुदशन की तब, जाति बनती ग्रास थी ।।
निरे निर्दय निठुर दुर्दम, असुर आते दूर से ।
आर्यों पर डाके डाले, बढ़े पानी पूर से ।।४५।।
दबी जाती आर्य जाति, भूमि भारी भार से ।
भय भीषण से मुनि जन, हनन होते मार से ।।
बस्तियां परदेशियों की, बस रही थीं बल लिये ।
बाल-बाला हरण होते, मोह माया छल किये ।।४६।।
भारत-नभ में दुःख बादल, भय-भरे थे छा रहे ।
भाग्य-भानु जाति के पर, घटा बना कर आ रहे ।।
उस समय रघुनाथ जी ने, हाथ में कृपाण ले ।
स्व-देश स्वतन्त्र किया, धनुष वरतर वाण ले ।।४७।।
शूरवीर सुधीर नर ने, समर-रचना कर बड़ी ।
असुर-तन भू पर लगाई, वाण वर्षण की झड़ी ।।
बाहर किये आततताई, देश सेवा साध ली ।
मुनिजन का करके पालन, जाति निज आराध ली ।।४८।।
पितृ-भूमि पूज्य भूतल, करी पावन वीर ने ।
असुर पाप उत्ताप परिहर, विजय पाई धीर ने ।।
शुभ प्रांत दक्षिण का सुरक्षण, किया श्री रघुनाथ ने ।
दुखी दीन के साथ ने, बल, शक्ति सज्जित हाथ ने ।।४६।।
एक पत्नी-व्रत धर्म में, थे जगत्-जाने हुए ।
मन में पर पत्नी न लाते, पक्के पति माने हुए ।।
पत्नी-विरह में अति व्याकुल, बहुत वे रोते फिरे ।
राम थे आदर्श पन में, शोक घन वन से घिरे ।।५०।।

जगत्-पट पर चरित चित्रण, उच्चतम है राम का ।
चमके चारु चित्र शुचितम, महा मंगल नाम का ।।
थे सर्व सम्बन्ध उनके, सीम ऊँची पर चढ़े ।
चरित-चोटी परम ऊँची, राम उस पर हैं खड़े ।।५१।।
थे ऐसे संग्रह-शील, सुग्रीव को किया सखा ।
अपर पक्ष भी तुष्ट करके, नीति समता को लखा ।।
लोक एकीकरण की विधि, पक्ष उभय शम कारिणी ।
थी न्याय नीति रघुपति की, सुमधुर मनोहारिणी ।।५२।।
मान ममता मधुरता से, जाति वानर खींच ली ।
स्नेह-सुधा से श्रीपति ने, सर्व जनता सींच ली ।।
सब पिरोये अपनेपन में, अपर पराये पक्ष भी ।
प्रेम-पाश में यों जो बाँधे, मिले न उनसा दक्ष भी ।।५३।।
दृढ़ संगठन कर ऐसा, वीर लाखों साथ थे ।
अरि पर जब हुई चढ़ाई, अग्रसर रघुनाथ थे ।।
मेल शक्ति की थी महिमा, अपर अपनाये तथा ।
सच्चे संग से रघुपति ने, सगे बांधव हों यथा ।।५४।।
जीत जाते रहे बहुते, वीरपन में बेसुरे ।
हनन हिंसा हत्या बल से, क्रोध कर वैरी बुरे ।
जभी रण में गिरा रावण, निर्वैर राम थे तभी ।।
यथा उन में न रोष द्वेष, क्रोध आया था कभी ।।५५।।
कहा विभीषण को उन्होंने, महा पुरुष कहा बड़ा ।
तेरा बन्धु जगत्-जेता, वीर वर तो था कड़ा ।।
करो उत्तर कर्म इसके, यथा तेरा है सगा ।
त्यों ही मेरा है यह अब, विरोध गया है भगा ।।५६।।

लूट मार होती कैसे, शिविर से सैनिक कहीं ।
बिना आज्ञा बाहर जाय, कभी कोई भी नहीं ।।
आज्ञा थी यह रघुपति की, सभी ने पाला इसे ।
नहीं सताया न चिड़ाया, किसी सैनिक ने किसे ।।५७।।
पग धरा न लंकापुर में, विजय दिखावा न रचा ।
सजे सैनिक दल घुमाना, उन को यह शुभ न जचा ।।
लौटे पीछे सिया सहित, शिविर से रघुनाथ तो ।
पर पुर की कौड़ी तक भी, वे न लाये साथ तो ।।५८।।

*जीते जन जग में बहुतेरे, पर देशों पर डाले डेरे ।
विजित जनों को दास बनाते, धर्म दया का नाद बजाते ।।५९।।
लोभ द्वेष की रच कर माया, काम क्रोध की बन कर काया ।
धन जन हरते छल बल कारी, अपमानित करते नर नारी ।।६०।।
बहुविध के वे ढोंग रचाते, तन धन शोषण करते जाते ।
उनकी काली कर्म कहानी, कह न सके सुर मानव बानी ।।६१।।
रघुपति में थी बहुत बड़ाई, जिस ने हरी न वस्तु पराई ।
वे थे विलग पाप से ऐसे, पद्म पत्र हो जल से जैसे ।।६२।।

† जगत् जन में जीवनी यह, ज्योति स्तम्भ बनी हुई ।
ओज तेज देने वाली, सुधा सरस छनी हुई ।।
पुण्य पावन पाठ इसका, देता नव शक्ति बड़ी ।
चरित-चन्द्र चढ़ता चारु, देश भक्ति बसे बड़ी ।।६३।।

---

* चौपाई। † गीतिका।

मंगलाचरण

परम पुरुष परमात्मा, एक प्रभु सुख धाम ।
परम गुरु सिमरूं प्रथम, राम राम कह नाम ।।१।।
सर्व ऋषि मुनि सन्त का, ध्येय इष्ट गुरु एक ।
भाव भावना भक्ति से, सिमरूँ मैं सिर टेक ।।२।।
परम सत्य प्रकाश है, वह सर्व शक्तिमान् ।
परम ज्ञान आनन्दमय, प्रिय रूप भगवान् ।।३।।
सकल विश्व की चेतना, अन्तर्यामी ईश ।
सिमरूँ मैं सुख शान्ति कर, देव-देव जगदीश ।।४।।
सदा एक रस सर्वदा, विद्यमान सब स्थान ।
नारायण सिमरन करूँ, सब सुख सिद्धि निधान ।।५।।
शिव शुभ शांत अद्वैत शुचि, मंगल रूप महान् ।
महिमामय महेश प्रभु, सिमरूँ मैं कर ध्यान ।।६।।
नत शिर दो कर जोड़कर, माँगूं मैं वरदान ।
चारु चरित रघुराज का, सब का करे कल्याण ।।७।।

दशरथ सुत श्री जानकी, शुभ सुन्दर अभिराम ।
चारु चरित आदर्श दो, सिमरूँ सीताराम ।।१।।
उच्च चरित के चारुतम, चित्र परम अभिराम ।
चमके चम चम चाँद ज्यों, सुन्दर सीताराम ।।२।।
मानव जीवन विमल के, थे दोनों दृष्टान्त ।
सीताराम अतुल युगल, गुणगण-निधि शुचि शान्त ।।३।।।

अनुपम उपमा प्रेम की, सुप्रण की रमणीक ।
थे शुभ धर्म सुज्ञान की, पावन परम प्रतीक ।।४।।
यद्यपि देह से दो वे, जन-नयनों को भान ।
होते पर तो एक थे, शक्ति श्री शक्तिमान् ।।५।।
भावों से गुण गुणी वत्, सत्ता द्रव्य समान ।
शब्दार्थ यथा एक थे, भगवती श्री भगवान् ।।६।।
रवि रश्मि, शशि ज्योत्स्ना, ज्यों रखते हैं योग ।
ऐसा सीताराम का, माना मधुर सुयोग ।।७।।
वन्दन करता हूँ उन्हें, मैं नत-शिर बहुबार ।
जग में सीताराम का, होवे जय जयकार ।।८।।

आदि कवि वागीश ऋषि, विद्या ज्ञान भण्डार ।
वाल्मीकि ऋषिवर हुआ, कविता का अवतार ।।१।।
ओज तेजयुत वचन में, वर्णन कर गुण-ग्राम ।
मूर्तिमान किये मधुर, उसने सीताराम ।।२।।
वरतर वर्णन विशद कर, विविध सुविधि के साथ ।
बनी विमल वाणी वरा, उसकी गा रघुनाथ ।।३।।
कवि-कोकिल-कूजन कला, कोमल काव्य महान् ।
ऋषि-ग्रन्थ सुर तरु से, सुनिए धर कर कान ।।४।।
चरित-प्रतिमा अप्रतिम, पूर्ण पावन रूप ।
कवि-कविता कुटी में शुचि, लखिए प्रिय सुरूप ।।५।।
मन्दिर मान रामायण, मन मोहक सह आभ ।
दर्शन कर श्रीराम के, अलभ्य लो मिल लाभ ।।६।।

सिया राम की जीवनी, जीवन-जड़ी निधान ।
हिन्दू-संस्कृति जाति का, है जो जीवन प्राण ।।७।।
रची सुरचना रुचिकरी, मुनि ने कर उपकार ।
हो मम उसके चरण पर, नमस्कार बहु बार ।।८।।

ऋषि मुनि सिद्ध महात्मा, सज्जन सन्त सुजान ।
सुगुण-सुमन-शोभित सदा, सब में रहें समान ।।१।।
सदय हृदय शम दम शुचि, धृति धारणा धार ।
धरा-धर धरणी पर बने, बरसें सार विचार ।।२।।
गुण-गण आगर धर्म-धर, सागर ज्ञान विज्ञान ।
वे सब मैं वन्दन करूँ, आगम निगम-निधान ।।३।।
सुर-सम्पद्-सम्पन्न जो, देव शक्ति के स्थान ।
उनको मैं बहु भाव से, देता हूँ सम्मान ।।४।।
आत्मदर्शी अनुभवी, वीत-राग गत-दोष ।
राम नाम में मग्न मन, जिनमें शील सन्तोष ।।५।।
परा प्रीति के पूर जो, जिनका विमल विवेक ।
करता हूँ प्रणाम मैं, उनको मस्तक टेक ।।६।।
भक्ति भाव भरपूर जो, भावुक भक्त अशेष ।
प्रभु परायण भागवत, वन्दूँ मैं सुविशेष ।।७।।
सर्व देश जन जाति के, पक्षपात से पार ।
सम-दृष्टि हैं शान्त जो, हो उन्हें नमस्कार ।।८।।

वर्तमान व्यतीत के, गुणी ज्ञानी विद्वान् ।
वन्दे शब्द विनीत से, हो उन्हें आदर-दान ।।९।।

यति सती सच्चे सूरमे, सेवक साधु समाज ।
उन्हें विनय से मैं नमूँ, मंगल आशिष काज ।।१०।।

राम-भक्त सेवक चतुर, महा बली गुणवान् ।
सदा सहायक कर्म में, रहा वीर हनुमान् ।।१।।

पवन-पुत्र वरतर पुरुष, अंजना-सुत वज्रांग ।
सुन्दर गठित सुडौल तन, कुन्दन कंचन रंग ।।२।।

विद्युत् वायु-सुवेगवत्, गमनागम गति-धार ।
विस्मयकर करता कर्म, कर्म-कुशल सुखकार ।।३।।

दलपति शुभमति सूरमा, स्थिर बुद्धि नरराज ।
सच्चा सेवक स्वार्थ तज, विचरा रघुपति-काज ।।४।।

नीति-निपुण नेता निडर, जी जीवन कर एक ।
करता सीता राम-हित, अद्भुत कर्म अनेक ।।५।।

परा भक्ति अनुरक्ति से, सेवे सीता राम ।
उसने विरक्ति शक्ति से, किये प्रभु के काम ।।६।।

सेवा पथ में उच्चतर, पूर्ण वह प्रमाण ।
अनुपम पर उपमा बना, अर्पण कर स्व प्राण ।।७।।

ऐसे अन्य अनेक जन, सेवक वीर सुधीर ।
राम काम में मग्न मन, अर्पण किये शरीर ।।८।।

कर्मयोग को राधते, उपमा करके राम ।
बार बार मेरा उन्हें, होवे बहु प्रणाम ।।९।।

श्री परमात्मने नमः

वाल्मीकीय रामायणसार

बाल काण्ड

पहला सर्ग

*मंगलमय जगदीश है, सत् चित् सुख बल धाम ।
भक्ति भाव से हो उसे, मेरा बहु प्रणाम ।।१।।
रामचन्द्र सुपुरुष का, जीवन सुगुण निधान ।
शिक्षाप्रद वर्णन करूँ, मैं शिव स्वस्ति मान ।।२।।
†उत्तम गाथा राघव जी की, गुण गौरव गरिमायुत नीकी ।
सब शुभ सब सुन्दर शुचि सारी, सुमति सत्य सुमन की क्यारी ।।३।।
संघ-शक्ति संहतिकर मानी, सबल सतेज करी जग जानी ।
सुलभा सुखदा सरसा भारी, राम कथा चांद समा प्यारी ।।४।।
सुधा सरित् सुर सरित् समाना, सुकृत शील सलिल शुचि जाना ।
कर्मयोग की लहरें लेती, शोभित नीति न्याय तट सेती ।।५।।
राम कथा अघ हरणी गंगा, ज्ञान कर्म जल सबल तरंगा ।
विमल सुखद शीतल शुभ धारा, स्व-धर्म पुण्य पूर अपारा ।।६।।
राम कथा तीर्थ त्रिवेणी, शांति शरण मुद मंगल देनी ।
पतित पावनी पाप हारिणी, ताप शाप हरी जगत् तारिणी ।।७।।
जीवन जड़ी सजीव कारिणी, अवगुण आलस दोष निवारिणी ।
संगम स्थान स्नान का भारी, ज्ञान सुकर्म भक्ति संचारी ।।८।।

---

* दोहा † चौपाई।

चारु चरित सब चिन्ता चूरे, चिन्तामणि चित् चिन्तन पूरे ।
चरित चित्र चमके शुचि ऐसा, अतुल अमल नवतर हो जैसा ।।६।।
मान सरोवर रघुपति गाथा, हो हर्षित सुन हिया मन माथा ।
अमल कमल के कुंज सुहाने, गुण गण ज्ञान सुगन्धि बहाने ।।१०।।
कलि कलाप कोमल विमला सा, सुकृत कर्म सजा कमला सा ।
कृति केसरा प्रेम परागा, भक्त भ्रमर भूरि बड़भागा ।।११।।
भक्ति भाव भरे भी सुहाते, गुण गण गायन धुनि गुंजाते ।
राजहंस सज्जन सत् संगी, सन्त साधु शुचि सरल उमंगी ।।१२।।
मधुर चरित मोती मन भाते, मान अमृत सुभोग लगाते ।
यमी योगी यति युक्ति वाले, संयम नियम यजन को पाले ।।१३।।
रहते सुर सर सलिल समाये, गाथा गान समाधि लगाये ।
स्वर संगीत सुधारस भीने, करते सफल जन्म जग जीने ।।१४।।
परम हंस मानस सर वासी, साधन राधन नाम विलासी ।
साधक सिद्ध सभी सुविचारी, स्नान संगति सत्य के धारी ।।१५।।
पूर्ण पुण्य पुरुष अनुरागी, प्रीति परायण प्रेमी त्यागी ।
प्रेम पूर पुलकित हो गाते, पढ़ सुन पाठ मग्न हो जाते ।।१६।।
चारु चरित चन्दन सुख देना, चर्चित, चित् चिन्ता हर लेना ।
दोष-दाह दुरित-दुःख हारी, शीतल शान्त सदा सुखकारी ।।१७।।
शुष्मा शुभा सीढ़ी स्वर्ग की, सोपान सुगम वर अपवर्ग की ।
राम कथा पर प्रेम भरी है, उभय लोक आलोक करी है ।।१८।।
कल्पतरु जो काव्य कला के, केली-कमल-कुंज कमला के ।
कवि कवित्त कर कोमल नीके, कहते गुण श्री राघव जी के ।।१६।।
धी धेनू जिनकी कपिला सी, चमक चातुरी चल चपला सी ।
चुन चुन वच शुचि चोखे चोखे, रचते रोचक छन्द अनोखे ।।२०।।

उन सम्मुख यह रचना मेरी, रुचिकर हो कथं एक बेरी ।
तदपि रघुपति प्रेम से प्रेरा, पड़ा पांव पर-पथ पर मेरा ।।२१।।
कुसुमित राम-कथा कलि पा के, मन अलि मुदित बना गूंजा के ।
गुण घन धुन सुन एकाएकी, बोल उठा मैं बन कर केकी ।।२२।।
मृदु मंजरी जब ही पिक खाती, मुदित महा मुखरी बन जाती ।
मंजुल मधुर चरित से तैसे, मुखर बना मेरा मन ऐसे ।।२३।।
भुज पसार शिशु सागर ज्यों ही, कथा अपार कथन है त्यों ही ।
चातक घन लख बोले यथा ही, प्रीति परवश मैं भी तथा ही ।।२४।।
रचना रुचती रस सरसानी, स्वादु सरस रस सार समानी ।
सुन रसिया रस-रास रसीले, सराहें सभी सुर साज सजीले ।।२५।।
उन समीप यह ऐसी सूखी, सोहे कैसे नीरस रूखी ।
पर रवि कुल रवि रश्मि सेती, चित्त-चर्या मम चमकी एती ।।२६।।
करे क्षमा कवि-कोविद मोहे, यदि उनको शुभ सरस न सोहे ।
बाल अबुध की बिखरी बाहें, समझ सिन्धु सर तरना चाहें ।।२७।।
तुतली बोली बालक बोले, बुध बन्धु सुन हर्षित होले ।
बहुत बड़ों की बड़ी बड़ाई, सदा सराहें रची पराई ।।२८।।
कथा कला के कविकुल केतू, स्वादु सुरस सागर के सेतू ।
रघुपति यश रस से अति भीने, समझें सरस पद सुरस हीने ।।२६।।
जो जन जरा अजीर्ण सताये, उनको मोहन भोग न भाये ।
अपाचन व्याधि जिन्हें न सताती, उनको रुचते चने चपाती ।।३०।।
राम राग के जो अनुरागी, जगी लगन के जन बड़भागी ।
राम-कथा फीकी हो कैसी, लगे उन्हें सरस सुधा जैसी ।।३१।।
हो सुगन्धि पर अलि मतवाला, परखे पुष्प न पीला काला ।
मधुर मधुकरी रस पहचाने, तथा भक्त यह रचना माने ।।३२।।

चमका चारु चरित शुचि चंगा, चित्त चौंक कर बना पतंगा ।
वचन पक्ष को लगा हिलाने, चला चपल हो लय हो जाने ।।३३।।
गुण आदर्श पुरुष के गाना, परम पुण्य पावन कर माना ।
उससे निसरी सहसा बानी, यथा झरे झरने से पानी ।।३४।।

*मर्यादा व्रत नेम में, प्रण वचन में शूर ।
आदर्श अनुपम रघुपति, थे शुभ से भरपूर ।।३५।।
धरती पर थे धर्मधुर, धरणी धर समधीर ।
निरुपम धैर्य में हुए, बल अतुल्य से वीर ।।३६।।
पुत्र परमादर्श प्रभु, प्रेम-पुंज सुविनीत ।
पारिवारिक सम्बन्ध में, पालक पूरी प्रीत ।।३७।।
आदर्श पति बन्धु बड़े, मोहक मीठे मीत ।
मेल मधुर संलाप से, जाते जन-मन जीत ।।३८।।
दीन दुखी अनाथ के, नाथ सहायक साथ ।
हुए बल शक्ति हीन के, पूरे पालक हाथ ।।३६।।
सखा स्नेह रस से सने, हित कर सम्मति संग ।
स्नेही संगी सुजन में, भरते सरस उमंग ।।४०।।
जी जीवन जन जाति के, जगती जोत समान ।
आर्य जन के शिरोमणि, थे वे पुरुष निधान ।।४१।।
मुनि मंडल को सुख दिया, परदेशी बल तोड़ ।
उसने सेना आसुरी, दी पीछे को मोड़ ।।४२।।
स्वतंत्र स्वदेश को, कर उसने उस काल ।
सभी विदेशी बस्तियां, देश से दीं निकाल ।।४३।।

---

* दोहा।

तपस्वी त्याग की मूर्ति, सहित दान बलिदान ।
कर्म योग स्व-धर्म में, रघुपति हुए महान् ।।४४।।
वन वन में बहु विचर कर, वन जन दिये सुधार ।
धर्म, नीति, शुभ न्याय का, किया उसने विस्तार ।।४५।।
पछड़े आर्य वंश का, पुनरपि हुआ उत्थान ।
जांगल जन में राम से, फैला वैध विधान ।।४६।।
रघुपति के सत्संग से, असभ्य कुकर्मी लोग ।
बने सभ्य सुर साधु सम, साध सुसंगति योग ।।४७।।
ऐसे उत्तम पुरुष का, चारु चरित गुण खान ।
वाल्मीकि ऋषि ने रचा, अखिल भेद को जान ।।४८।।
भक्ति भाव भागीरथी, भरी भाग वर भाव ।
ऋषि हिमाचल से चली, बहती विविध बहाव ।।४६।।
उसका मैं संक्षेप से, कथन करूँ शुभ सार ।
आदिम कवि के चरण पर, अर्पण कर नमस्कार ।।५०।।

दूसरा सर्ग

*वंश अंगिरा में हुआ, रत्नाकर प्रिय नाम ।
पराक्रम बल वीरता, उद्यम साहस धाम ।।१।।
चमका बालक काल में, बुद्धि विद्या का कोष ।
धृति धर्म से युक्त था, और सत्य सन्तोष ।।२।।
†भूरि भाग्य जगें जब ही से, भगवद् भक्त मिले तब ही से ।
साधु सन्त शिरोमणि सेती, सफल हो सिद्धि साधन खेती ।।३।।

* दोहा। † चौपाई।

सुजन श्रेष्ठ जगत् में माना, उससे वर तर साधु सुजाना ।
सर्व श्रेष्ठ सन्त शम धारी, शान्ति शील शुचि सम शुभकारी ।।४।।
होते जहाँ सन्त समदृष्टि, वहाँ हो सुमति संहति-वृष्टि ।
सुख सम्पत् संगठन विधाना, संगति सम्मति शोभा नाना ।।५।।
सच्चे सज्जन सुसन्त सहारे, सभा समाज सजें सुखियारे ।
जाति जनों में जमे भलाई, नीति न्याय होवें सुखदाई ।।६।।
सब शुभ सुकृत सुन्दर जो भी, सन्त संग में फैले सो भी ।
उत्तम सन्त राम अनुरागी, मिले उसे जो जन बड़भागी ।।७।।
रत्नाकर की पूर्व कमाई, सुकृत रूप उदय हो आई ।
जगी जन्म की उज्ज्वल रेखा, उसने सम्मुख नारद देखा ।।८।।
होनहार सुपुण्य के प्रेरे, देवर्षि दिव्य दैव के डेरे ।
भगवद् भक्त भागवत भारे, भक्ति भाव पूरित भण्डारे ।।९।।
थे मुनि मोहक मूर्ति मीठे, रंगे भक्ति रंग मंजीठे ।
शान्ति-शील शुभ शोभित ऐसे, शुचि शीतल शशि शारद जैसे ।।१०।।
वीणा हस्त कमण्डल धारे, प्रिय रूप, हो पुण्य पधारे ।
नाव रूप जन तारन हारे, पावन परम पुरुष के प्यारे ।।११।।
सोम रूप सुन्दर सुख देने, साधु स्मित से मन हर लेने ।
स्नेह सरस सह सजे सुहाते, राम नाम रस रसिक लुभाते ।।१२।।
उसने मुनि चलते को टोका, ठहरो कह कर पथ में रोका ।
कहा बजा कर गीत सुनाओ, व्याकुल मन मम शान्त बनाओ ।।१३।।
स्वर सुगीत सुधा बरसाना, सरस स्वादु सुख रस सरसाना ।
गाया मुनि ने सरल सुहाना, दोष-दाह दुख दूर भगाना ।।१४।।
प्रभु-प्रेम में पगा रसीला, राम-राग से अति रंगीला ।
महा मधुर मुद मंगल माला, राम नाम की धुन मधुशाला ।।१५।।

रोमाँचित हो मोर समाना, उसका तन मन हिया हर्षाना ।
उससे उसकी पलटी काया, भक्ति भाव उसमें जग आया ।।१६।।
गीत ने उसकी गति सिधाई, सुप्त चेतना सर्व जगाई ।
बिखरी बिगड़ी सब बन आई, मानो विधि ने बात बनाई ।।१७।।
देव-दया जब होनी चाहे, सहज से सब सुयोग बनाये ।
सन्त सुघड़ जिसको मिल जाते, पुण्य उदय उसके हो आते ।।१८।।
रत्नाकर का समय शुभ आया, दिव्य दान मुनिवर से पाया ।
राम नाम मन बीच रमाया, भव भय भ्रम सब दूर भगाया ।।१६।।
साध साधना उसने सारी, मैल चित्त की सर्व उतारी ।
मल विक्षेप आवर्ण निवारे, अन्तराय हन नाम सहारे ।।२०।।
ब्राह्मी अवस्था उसने पाई, स्व सत्ता शुद्ध रूप जगाई ।
चित्त चन्द्र चढ़ा चमकीला, उसमें रचता रोचक लीला ।।२१।।
भक्ति भाव में भारे भीने, भाग्य भवन किये मुनि जी ने ।
राम राम जप जपने वाले, प्रभु-प्रेम के पूर्ण प्याले ।।२२।।

*सेवा साधन संग, सन्त साधु सत्संग में ।
रखते भाव अभंग, वे सौम्य सदय हृदय ।।२३।।
पर्णकुटी में वास, शान्त एकान्त स्थान में ।
करते सुगुण निवास, योग साधना में रमे ।।२४।।
शम दम उपरति धार, यम नियम सब साध कर ।
तज आहार विहार, वे तप तपते रात दिन ।।२५।।
राम नाम में लीन, महामना मुनि मग्न मन ।
जल तल में ज्यों मीन, अचल हुए तज एषणा ।।२६।।

---

* सोरठा।

कुटी-कलेवर स्थान, कटुतर वल्मीक कीट ने ।
घटा टोप उपमान, सब दिश से उसका किया ।।२७।।
हुए न डाँवाँ डोल, बहु विध बाधा विघ्न से ।
मुनि पा ज्ञान अमोल, रवि सम चमके लोक में ।।२८।।
धार धारणा ध्यान, धर्म-धुरा, ध्रुव सुधृति ।
सुमती सुधी निधान, पहुँचे पूरे पद पर ।।२९।।
†सिद्ध समाहित आत्मज्ञानी, योगयुक्त हो पूर्ण ध्यानी ।
मुनि ने अपने अंग निहारे, उठ आसन से पैर पसारे ।।३०।।
कीट घर से घिरा घर पाया, दीमक ने घट टोप बनाया ।
धीरे धीरे निज भुज फेरी, विषमा बिम्बी तोड़ बिखेरी ।।३१।।
निकले उससे सुन्दर ऐसे, चारु चाँद घन घट से जैसे ।
कहे गये वाल्मीकि इसी से, रहे न ऊने सुगुण किसी से ।।३२।।
चमक चतुर्दिश निज प्रतिभा से, सम्मानित हो सभ्य सभा से ।
सन्त संघ में सोहे त्यों ही, ग्रह गणों में शशि शुचि ज्यों हि ।।३३।।
विशद विचार विवेक विभूषा, बुद्धि बोध-वैभव बन पूषा ।
विस्तृत बुध अबुध जनों में, हुए बहुत ही सुजन मनों में ।।३४।।
शुभ आश्रम मुनि ने चलाये, विद्यापीठ सुविख्यात रचाये ।
छात्र दूर दूर से आते, पढ़ पण्डित हो घर को जाते ।।३५।।
साधक साधन साध सुहाने, योग यत्न करते मन माने ।
संत मिले सत्संग लगाते, ज्ञान-सरित शुचि सलिल बहाते ।।३६।।
प्रभु-प्रेम के पावन गाने, परा प्रीति का रंग चढ़ाने ।
शुभ आवेश विशेष बसाते, होते पुलकित अंग बनाते ।।३७।।

---

† चौपाई।

धर्मनाद अहर्निश शुभ होता, श्रुति श्रवण अशुचि को धोता ।
पुण्य पाठ प्रवचन विचारा, ज्ञान सरित् की बहती धारा ।।३८।।
तर्क की चर्चा चतुर चलाते, विचक्षण विलक्षण वाद बनाते ।
निश्चय निर्णय नैतिक न्यायी, करते नियम न्याय समझाई ।।३६।।
भेद-भाव के भारे भेदी, भूल भ्रान्ति भव भय के छेदी ।
भक्ति शक्ति बहु भान्ति जगाते, रहस्यवाद जिसे सिखलाते ।।४०।।
ऐसे सुख-रस-सागर सातों, उमड़े रहते सब दिन-रातों ।
वहां ऋषि मुनि थे सब योगी, कर्म-धर्म-रत स्व सुख भोगी ।।४१।।
जप तप संयमयुत सब वे ही, थे वाल्मीकि ऋषि के स्नेही ।
ऋषि विमल यश दश दिश राजा, गुण गौरव का बजता बाजा ।।४२।।
ऐसे शोभन श्री मुनि जी ने, रघुपति-गुण गाये रस भीने ।
कला कुसुम से शोभा शाली, महा मधुर माला रच डाली ।।४३।।
सुधा सिंधु सब रस सरसाना, भक्ति भाव शुभ गाढ़ बसाना ।
कर्म योग अनुराग बढ़ाना, बड़ा बहुत सुवीरता लाना ।।४४।।
ऋषि-रचा जीवन जन-जाना, नव जीवन की जोत जगाना ।
जाति देश का भक्त बनाना, बलिदान तप त्याग सिखाना ।।४५।।
कविता कोमल पद मधुरों से, कूजन कवि कोकिल अधरों से ।
निसरे सुर पद सरस रसीले, चारु चरण रोचक चमकीले ।।४६।।
कोमल कवित्त कमल कुंजों में, पुष्पित वाक्य पद्म-पुंजों में ।
उपमा सुमन की सुगन्धों में, कलि-कलाप की मकरन्दों में ।।४७।।
छने छन्दों की छवि छाया में, रस मधुर की महा माया में ।
कौन कवि-मन नहीं सरसावे, रसिक अलि बन नहीं विलसावे ।।४८।।
विविध सुवर्णन वर बानी में, चरित्र सुरसरी के पानी में ।
एक बार भी जन जो न्हावे, महा मग्न मोहित हो जावे ।।४६।।

शीतल शान्त बने सुख पावे, वीर धीर पद पैर जमावे ।
पाप ताप उस पास न आवे, पौरुष पाय नहीं अलसावे ।।५०।।
कवि की शुचि शोभन शैली में, रस-रत्नों से भरी थैली में ।
अतिशय सुन्दर भाव अनोखे, चम चम चमकें सुचारु चोखे ।।५१।।
जीवन-जड़ी जग-ज्योति देनी, अभिमान मद मोह मथ लेनी ।
साहस उत्साह सार भरी है, कविता काया कल्प करी है ।।५२।।
जिसमुनि-मनशशि शीतलसेती, चमकी कला चारुतम ऐती ।
सो शुचि शान्त अमल थे ऐसे, शरत्-शशि हिम शैल पै जैसे ।।५३।।
पाठक गण को पाठ पढ़ाते, शिक्षा दीक्षा दे दक्ष बनाते ।
परहित सुख सेवा में राते, रहते अहर्निश सुगुण सिखाते ।।५४।।
विद्या उनकी बढ़ी चढ़ी थी, धर्म धृति की धाक बड़ी थी ।
चार कूंट दश दिश में जाने, योगीवर वे गये बखाने ।।५५।।
मुनिजन सन्तों की आ टोली, भाव भक्ति से भरती झोली ।
साधुवर बहु देश से आते, भजन यजन के रंग बसाते ।।५६।।
दर्शक दर्शन अमृत पाके, पाते तृप्ति प्यास बुझाके ।
चित्रकूट की चमकी चोटी, सब दिशि यों सह मुनिजन कोटी ।।५७।।
ऐसे शोभन कर्म कमाते, वाल्मीकि मुनि दिन थे बिताते ।
निगमागम के पाठ पढ़ाते, पावन परम पुरुष-गुण गाते ।।५८।।
तमसा तट के पास किनारे, बसते कभी गुण कुसुम क्यारे ।
अन्य स्थान भी आते जाते, जनता जगत् सजीव बनाते ।।५९।।
मुख्य स्थान पर था मुनि जी का, चित्रकूट शुचि सुन्दर नीका ।
कन्द मूल फल फूलों वाला, शान्त रम्य शोभा की शाला ।।६०।।

तीसरा सर्ग

*स्वच्छ शुचि आश्रम शुभ, शोभित था अभिराम ।
उसमें मुनि आराधते, राम नाम सुख धाम ।।१।।
शुक मैना के मधुरतर, होते सुन्दर बोल ।
राजहंस बक काक पिक, करते मोर किलोल ।।२।।
चंचल चिड़ियां चटकर्ती, चह चह कर उड़ पास ।
नाना रंग सुरूप से, रचर्ती रोचक रास ।।३।।
बारासिंगे हरिण पशु, चर्वण करते घास ।
बैठ जुगाली कर रहे, जहां था मुनि निवास ।।४।।
शुभ धेनू वर अवि अजा, चरती थीं सब ओर ।
मुनि जन उनको पालते, रखते कर शुचि ठौर ।।५।।
विकसित कुसुमित वाटिका, विविध वर्ण वर देश ।
धर कर वर तर राजर्ती, जहां था मुनि निवेश ।।६।।
बेलें बूटे बहुत ही, घन वन वृक्षों साथ ।
पत्रित पुष्पित फलित थे, रहे जहां मुनि नाथ ।।७।।
वाल्मीकि ऋषि के निकट, बसते सज्जन लोग ।
ज्ञान ध्यान उपदेश से, हरते मानस रोग ।।८।।
मधुरतर मेल मिलाप से, कर मोहक संलाप ।
संगति सत् सम्वाद से, रस भरते मुनि आप ।।९।।
†एक काल कलि कालख हारी, कमल काय करमंडल धारी ।
वल्कल कसे कटी पर छाला, शुचि तन सुन्दर शोभा-शाला ।।१०।।
वीणा कर में लिये सुहानी, आये वहां नारद वरदानी ।
वाल्मीकि ऋषि कर अगुआई, सह स्वागत दे बहुत बड़ाई ।।११।।

* दोहा। † चौपाई।

नमस्कार वर आदर देते, मिले उन्हें शुभ आशिष लेते ।
प्रति ग्रहण किये ले आये, शुभ शुचि आसन पर बिठलाये ।।१२।।
कुशल क्षेम पूछे मन भाते, मीठे कथन हुए चित्त लुभाते ।
मिष्ट मिलन में मोद मनाते, गुरु शिष्य मन मिले मधुराते ।।१३।।
शशि सूर्य सम दो संयोगी, सोहे परस्पर स्व सुख भोगी ।
सुवर्ण सुगन्धि सम मन मेला, मिले चतुरतर गुरु वर चेला ।।१४।।
विनोद वार्ता के तब होते, ज्ञान-गोष्ठी के बहे सोते ।
इतिहास की चर्चा चलाते, चले प्रसंग सब सुख दाते ।।१५।।
वाल्मीकि ने प्रश्न सुहाना, अन्जलि बाँध किया शुभ लाना ।
मुने! कौन उत्तम गुण गेही?, दीप्त दिव्य देव है देही ।।१६।।
है सब, कौन, कला में पूरा?, गुण गण गरिमा-आगर शूरा ।
सब शुभ-धाम कौन है जाना?, पूर्ण पुरुष कौन है माना? ।।१७।।
सर्व सार सृष्टि का सारा, सुर-सम्पत्ति सम्पन्न प्यारा? ।
कौन ज्ञान विज्ञान-भण्डारा?, है सब सज्जन सन्त सहारा? ।।१८।।
किस में सब शुभ शोभा सोहे?, सर्व उच्च जन-मन को मोहे? ।
कौन एक अद्वितीय ऐसा, जग में पुरुष न है जिस जैसा ।।१९।।
मन्द स्मित मुख की मधुराई, मुनि मुख मण्डल पर विलसाई ।
विकसित नयन कमल विलसाते, शिष्य प्रवर का मन हर्षाते ।।२०।।
बोले नारद मुनिवर प्यारे, एक में दुर्लभ सुगुण न्यारे ।
तदपि रामचन्द्र जन-जाने, सब गुण-ग्राम गये हैं माने ।।२१।।
उन में सब शुभ रहें समाये, शोभा कीर्ति बन वे आये ।
सर्व सार सृष्टि का गाये, सर्व-श्रेष्ठ वही बतलाये ।।२२।।
पावन पुरुष प्रभु प्रतापी, महिमा उसकी दश दिश व्यापी ।
पुण्य रूप सब परम कहानी, कह न सके सुर मानव बानी ।।२३।।

तदपि वर्णन करूँ सुखदाई, गुण-गाथा गुणि-गण-गुरु-गाई ।
एक मना बन सुनिए सोही, कथा कर्ण को कोमल जो ही ।।२४।।

*रामचन्द्र अभिराम है, शांति शुभ सुख धाम है ।
मृदु मूर्ति मनो मोहक, मधुर मधुतम नाम है ।।२५।।
नीति नय में निपुण है निज, जनता का विश्राम है ।
चतुर चारु चरित्र शुचिवर, कर्म में निष्काम है ।।२६।।
सर्व सुन्दर रूप में है, एक वह असमान ही ।
वीर धीर गम्भीर है, विज्ञान-घर महान् ही ।।२७।।
बृहस्पति कहा बुद्धि में, उच्च बहुत विचार में ।
शील शांति में है वरतम, सुसभ्य शिष्टाचार में ।।२८।।
तेज पुंज सूर्य सम है, अति प्रिय आकार में ।
सुमधुर है मोहन रघुपति, चाँद सम है प्यार में ।।२९।।
प्रताप-पूर्ण पुरुष है, विद्वान् विद्यानिधि वही ।
महामना मतिमान् माना, महिमा जावे न कही ।।३०।।
प्रजा-पालक भूपति, जन, मनोरंजन जानता ।
देश-वासी जनों को वह, बन्धु सदृश मानता ।।३१।।
गात गठित सुडोल उसके, कमल-कोमल अंग हैं ।
सरल सबल मृदुल सब शुभ, भले भव्य अभंग हैं ।।३२।।
विशाल भाल कलश मस्तक, नाक शुक सम सोहनी ।
मधुर मुखड़ा सोम सम शुचि, कम्बु ग्रीवा मोहिनी ।।३३।।
दीर्घ बाहू वक्ष चौड़ी, कटि केसरी सी सही ।
जंघा कदली स्तम्भ उपम, पुष्ट पीठ सुरम रही ।।३४।।

* गीतिका।

अधर अरुण नवीन पल्लव, मधुर मन्द स्मित सजे ।
फबें, दो घन-घटा को ज्यों, दामिनी रह रह भजे ।।३५।।
कण्ठ स्वर केकी पिकसुर, मधुर भेरी सा भला ।
मेघवत् गम्भीर गर्जन, कही कथनी की कला ।।३६।।
दाँत पाँति दाड़िम दानों, सी सजी सोहे भली ।
श्वेत चम्पा कुन्द कलिका, यथा होवें झलमली ।।३७।।
लाल गोल कपोल कोमल, सेब सम शुभ हो रहे ।
नयन निर्मल कमल नर्गस, हरिणोपम मोह रहे ।।३८।।
खचित श्यामल लाल रेखा, लज्जा लीला को लिये ।
ललित नील रसील लोचन, चमक लहकें दो दिये ।।३६।।
प्रेम शक्ति सुवीरता दृढ़, दया विलसे नयन में ।
अतुलाकर्षण है मोहन, संकेत साधु सैन में ।।४०।।
भ्रू-भाग भव्य धनुष उपम, मुख छटा मन को हरे ।
पूर्ण शशि सम अमल कमल, स्नेह रस जन में भरे ।।४१।।
घने कोमल केश काले, सजें सिर पर लह लहें ।
हस्त लम्बे लाल राजें, भाग्य सिद्धि को कहें ।।४२।।
ललित लाली लिये चौड़ी, शुचि शोभें हथेलियां ।
बाँस पोरी तरुण सदृश, अंगुलियाँ विधि मेलियाँ ।।४३।।
अर्ध चन्द्राकार सुन्दर, अरुण नख की रेख है ।
रेखा राजी चक्र चारु, मानों सब सुलेख है ।।४४।।
अरुण चारु चरण जनों के, चित्त से चर्चित भले ।
मृदुल कमल समान विमल, सुवर्ण वर्ण सम तले ।।४५।।
सम विभक्त अवयव उनके, सभी अंग सुढंग में ।
पूरे कौशल से विधि ने, रचे उच्च उमंग में ।।४६।।

कल्याण-करण सुवर्ण वर्ण, शरण-जन मन हरण है ।
अकारण करुणा-करण है, जग तरण भय जरण है ।।४७।।
दिव्य दैवी देह दीपे, आभ दीप्ति रंग से ।
कल्प तरु सम कही काया, भरी तेज तरंग से ।।४८।।
शोभा सह सौन्दर्य सभी, तन अतुल में आ गई ।
शक्ति प्रीति, सदेह होकर, रघुपति में समा गई ।।४६।।
विद्या सब में निपुण है वह, वचन बल में एक है ।
जैसा कहे करे वैसा, सच्ची उसकी टेक है ।।५०।।
सत्यवादी परम है वह, सर्व जाने वेद को ।
कुशल नेता है जगत् में, समझे नीति भेद को ।।५१।।
उस ने आज्ञा की पालन, सुखी सब मुनिजन किए ।
दुष्ट जन को दमन करके, पाल आर्य दल लिए ।।५२।।
विजय कर जनस्थान को फिर, जीत लंका को लिया ।
अभय असुर से कर मुनि सुर, पद विभीषण को दिया ।।५३।।
अवध-पुर में आ विराजे, भरत को मिल प्रेम से ।
राज्य करते हैं रघुपति, न्याय गौरव नेम से ।।५४।।
उनकी शासन शैली में, न्याय शोभा सर्व है ।
शुचि शोभन राज्य शुभ पर, सभ्य सब को गर्व है ।।५५।।
उनके शासन में कहीं न, कोई दस्यु चोर हैं ।
द्रोह मिथ्या कुकर्म भारे, नहीं पातक घोर हैं ।।५६।।
शान्ति सब सुख भोगते हैं, सर्व सभ्य समाज में ।
है समुन्नत देश सारा, रघुपति के राज्य में ।।५७।।
कह सब संक्षिप्त ऐसे, चरित श्री रघुराज का ।
कहा उसने सुन कथन कर, श्रेय संघ समाज का ।।५८।।

होवे, विप्र ज्ञान गुणधर, वेद आगम कुशल हो ।
क्षत्रियवर समर्थ योद्धा, वीर रण में सफल हो ।।५९।।
स्व-कर्म में वणिक् पटु हो, श्रमी कर्मी हो बड़ा ।
सुन कथ कर जीवनी यह, जन अति हो बढ़ा चढ़ा ।।६०।।
नारी नर पुरुषार्थी हों, अभय बुद्धिमान हों ।
चरित अमृत पान कर यह, अजय देव समान हों ।।६१।।

चौथा सर्ग

*नारद से सुन कर सरस, राघव जीवन सार ।
वाल्मीकि गद्‌गद् हुए, महिमा जान अपार ।।१।।
तमसा नद पर एकदा, करने को शुभ स्नान ।
भारद्वाज सुशिष्य संग, गये ऋषि गुणवान ।।२।।
जोड़ी पंछी क्रौंच की, क्रीड़ा रत अवलोक ।
नदी तट पर थे फिर रहे, मन से शान्त अशोक ।।३।।
एक व्याध ने उस समय, मारा तीक्ष्ण बाण ।
हनन किया नर पक्षी को, हत कर उसके प्राण ।।४।।
पति-पतन पर पक्षिणी, पाकर अति संताप ।
तड़पती विरह वियोग में, रोई सहित विलाप ।।५।।
उसका दुखड़ा देख कर, करुणा-वश अकस्मात् ।
मुनि-मुख से निसरी तभी, नियम बद्ध यह बात ।।६।।
हे व्याध! तुझे सर्वदा, मिले न शान्ति सुतोष ।
मारा पंछी मोद रत, तूने कर अति रोष ।।७।।

* दोहा।

चिन्तित बोले शिष्य को, निकला देख निषाद ।
यह वीणा-सुर ताल युत, सुन्दर श्लोक सपाद ।।८।।
खिली मृदुल कविता कलि, सहसा यों चुपचाप ।
श्यामल घन दल में यथा, चमके बिजली आप ।।९।।
स्नान ध्यान कर आ गये, निज आसन के स्थान ।
पर रही वही गूँजती, स्वर माधुरी तान ।।१०।।
अंतर्मुख उसने सुने, ब्रह्मा के उपदेश ।
रचो, कहा उसने मुने!, रघुपति चरित विशेष ।।११।।
तव कविता कोमल कला, चमके चाँद समान ।
भूतल पर हो अमर वह, जब तक भानु-विमान ।।१२।।
सुधा-समा शुचि रसवती, सत्य सबलता संग ।
जन-मन तन में यह भरे, गुण बल तेज उमंग ।।१३।।
प्रोत्साहन पाकर ऋषि, वर वाणी भण्डार ।
रामायण रचने लगा, सहित ऐसे विस्तार ।।१४।।
*विमल सलिल शीतल सुखदाई, शोभित सरयू सरिता पाई ।
स्वच्छ सबल शुभ सरती धारा, वेगवती बन बहुत अपारा ।।१५।।
लीला करती लहरें लेती, लचक उचक कर शोभा देती ।
निर्मल नीर तीर टकराता, ऊर्मि-माला नाच नचाता ।।१६।।
नक्र मच्छ मकर मण्डलाते, मीन-मण्डल कछुए सुहाते ।
मींडक मुखरे मोद मनाते, उछल पछल करके टर्राते ।।१७।।
जलचर जीव विचर सुख पाते, गमनागमन से जन बहलाते ।
जल कुर्कट बक काक शिकारी, बल छल करते मारा मारी ।।१८।।

* चौपाई।

पुष्पित पत्रित उपवन राजी, थी शुभ सरित समीप विराजी ।
ललित लीला ले लहलहाती, लचक लचक कर लोक लुभाती ।।१६।।
विविध वर्ण से वर तरु माला, वरा बनी यथा वरा बाला ।
पत्रित शाखा सहित सजीली, कुसुम कलि से बहुत रंगीली ।।२०।।
हरित भरित उद्यान भी नाना, स्वच्छ सुन्दर धर वेश सुहाना ।
कुसुम-सजे सोहे मुस्काते, चारों ओर सुगन्धि बहाते ।।२१।।
नाना रंग पुष्प दल धारे, लगते मोहक मनहर प्यारे ।
अमल कमल पर अलिदलआते, मुंह माँगी मधुकरी मधु पाते ।।२२।।
पंछी गण बहु रंग विरंगे, वेश वर्ण से सजे सुढंगे ।
उड़ उड़ान से तरुवर श्रेणी, शोभित करते मनहर लेनी ।।२३।।
हंस मोर सारस शुक मैना, पिक प्रवर बोलें मधु बैना ।
वन उपवन सुर वनों सरीखे, विविध बहुत सुरम्य ही दीखे ।।२४।।
घाट बाट सोपान सुहाते, स्वच्छ शुचि सब सुगम दिखाते ।
सरयू सरिता पर नर नारी, स्नान ध्यान करते सुखकारी ।।२५।।
अवध पुरी पूर्ण धन धाना, शोभा साज लिये विधि नाना ।
सरित समीप सजे सब ऐसे, पूर्ण शशि सागर पर जैसे ।।२६।।
धन सम्पत् का पार न वारा, बसा वहाँ सुख साधन सारा ।
सज धज शोभा धार अपारा, श्री यथा अवतार हो धारा ।।२७।।
शुचि स्वच्छ पथ सरल सुहाने, सम सिंचित जन चित्त लुभाने ।
गलियां कूचे सुथरे भारे, चौड़े चौक लगें अति प्यारे ।।२८।।
पुष्प वाटिका सुन्दर सोहें, हरित घास बेलें जन मोहें ।
क्रीड़ा स्थान रम्य वर शाला, जिनमें खेलें बालक बाला ।।२६।।
ऐसे स्थान वहां बहु दीखें, अस्त्र शस्त्र सुजन जहां सीखें ।
शिक्षण शाला वहाँ की भारी, जिनमें पढ़ते बहु नर-नारी ।।३०।।

भव्य भवन भूपति के भारे, भूषित सजें सरयू किनारे ।
शुचि शोभित शुभ सहित विधाना, सर्व सुखद सुर-सदन समाना ।।३१।।
रत्न जड़ित मणि मण्डित राजें, झालर मूंगा मुक्ता विराजें ।
हेम रजतमय चित्रित चोखे, रवि बिम्ब सम चमकें अनोखे ।।३२।।
ध्वजा शोभित तोरण सुहाने, कलश सहित कैलाश समाने ।
चमक दमक सब ओर बहाने, जग मग से रवि-रश्मि लजाने ।।३३।।
राज-सभा शोभा की रासी, शोभे जैसे पूर्ण मासी ।
धनिक जनों के निवास न्यारे, सजें शुचि ग्रह-गण ज्यों तारे ।।३४।।
कुसुम कलश से सोहें सारे, घर आँगन ज्यों केसर क्यारे ।
झालर माला मण्डित नीके, मणि मोती से अति रमणीके ।।३५।।
नागर जन के घर सुख देते, सजे सभी जन-मन हर लेते ।
बड़े भवन अट्टालिका मानो, नभतल चुम्बन करती जानो ।।३६।।
सदन सभी के ऐसे भाते, कमल केसरा सहित सुहाते ।
ध्वज सजे सब पर लहराती, भानु-चिन्ह से शोभा पाती ।।३७।।
धर्म-मन्दिर सुमहिमा वाले, माला-मण्डित जडित निराले ।
धूप दीप युत शान्ति निधाना, दीप्त कलश ज्यों रवि विमाना ।।३८।।
यजन यूप की वेदी राजे, रहें वेदवित् वहाँ विराजे ।
पाठन पठन विधि से कराते, सब को धर्म कर्म सिखलाते ।।३६।।
स्तुति भजन का होता गाना, भक्ति-सुधा रस का बरसाना ।
चिन्तन ध्यान आरती होती, धर्म-कथा मन-मल को धोती ।।४०।।
सोहें पण-पथ वस्तु लगाए, नाना विध का माल सजाए ।
हाटें फबें बन वस्तु भण्डारा, हो रहा क्रय विक्रय भारा ।।४१।।
सब की साख सत्य भी ऐसा, न्यूनाधिक न एक लें पैसा ।
सह विश्वास भरोसे सभी के, काम परस्पर होते नीके ।।४२।।

*वीर जन सब बसें पुर में, धैर्य बुद्धि के धनी ।
कला-कौशल में कुशल जन, कर्म कुल के भी गणी ।।४३।।
राजते ज्यों रजनी-राज, रवि-वंशज सभी सजे ।
ओज तेज प्रताप लिये, वीरता उनको भजे ।।४४।।
शूरवीर सुधीर योद्धा, समर-कार्य में कड़े ।
अरिदल के दलन दमन में, नीति-निपुण निडर बड़े ।।४५।।
ऐसे वीरों के बल पर, देश सुखिया था बड़ा ।
निभता उत्तम नियम न्याय, शुभ शासन बढ़ा चढ़ा ।।४६।।
कुशल क्षात्र ज्ञान में थे, देश-हित में दिल दिए ।
प्राण तक बलिदान करते, जाति जनपद के लिए ।।४७।।
सच्चे सेवक जाति जन के, रहित स्वार्थ थे सभी ।
क्षात्र धर्मी निपुण नेता, भय खाते नहीं कभी ।।४८।।
वहां बसते सुजन जन सब, सभ्य सज्जन लोग ही ।
निज धर्म में रत सदा, दें, शुभ कर्म में योग ही ।।४९।।
वेद-पाठी कर्म-काण्डी, सब पुरोहित गण वहां ।
ज्ञान रत थे अवधवासी, पठित बसते जन वहां ।।५०।।
मिले दीन अनाथ न वहां, भूख पीड़ित जन कहीं ।
कर्ण-कुण्डल मुकुट मस्तक, बिना भूषण तन वहीं ।।५१।।
गले माला हस्त कंकण, सर्व के शुभ राजते ।
रीति नीति प्रीति सभी गुण, शुचि सोहें विराजते ।।५२।।
दलित मलिन मनुष्य न वहां, आततायी पातकी ।
देशद्रोही जन न कोई, मित्र-वंचक घातकी ।।५३।।

---

* गीतिका।

मधुर भाषी शिष्टाचारी, वेश-भूषित लोग थे ।
चोर तस्कर दुष्ट दस्यु, ठग रूपी न रोग थे ।।५४।।
सुडौल देह रूप सुन्दर, सहित सब बल वीरता ।
सभी दक्ष उदार दानी, शोभते धर धीरता ।।५५।।
परस्पर हित प्रेम से जन, वहां रहते मन मिले ।
यथा सरोवर में सोहें, अमल कमल भले खिले ।।५६।।
न्याय निर्मल था वहां तो, गठित जन का राज था ।
थी सब ही जनता निर्भय, चतुर सभ्य समाज था ।।५७।।
रूप-सुन्दर हरिण-नयना, गौर वर्णा नारियाँ ।
कर्म-निरता पाप-विरता, चारु-चरणा नारियाँ ।।५८।।
थीं सभी कुल लाज पालक, शुचि सुवसना नारियाँ ।
सतवन्तियां गुण-वन्तियां, मधुर रसना नारियाँ ।।५९।।
शुभ हर्ष हास विलास सह, स्व पति-रक्ता देवियाँ ।
धैर्य विद्या विनय शीला, ब्रह्म भक्ता देवियाँ ।।६०।।
भरण भूषित वेश शोभित, गीत कुशला निर्भया ।
जननियाँ सुवीर प्रसवा, सतियाँ सब थीं अजया ।।६१।।
कुमार कोमल कुसुम काय, शुचि कुण्डल केश से ।
चाल चंचल वेग बल से, शोभते शुभ वेश से ।।६२।।
उत्ताल तेज तरंग लिये, तरुण उत्तम थे बली ।
हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ शिष्ट, संघ-शक्ति भरे भली ।।६३।।
प्रेम प्रीति पूर्ण प्यारे, पुष्प पावन से खिले ।
मधुर मन्द स्मित सजी शुभ, उनकी मुँह माला मिले ।।६४।।
पक्के कट्टर प्रेमी भक्त, जाति अपने देश के ।
संस्कृति के पक्षपाती, सत्य धर्म विशेष के ।।६५।।

राज्य-रक्षा के लिये वे, प्राण तक थे वारते ।
जहां जाते विजय पाते, अरि दल से न हारते ।।६६।।
साहसी उत्साही सब ही, युवक जन थे मनचले ।
हर्ष आश आवेश सजे, कमल खिलतों सम भले ।।६७।।
प्रौढ़ जन बलवान् सुन्दर, सुगठित सह विवेक थे ।
बुद्धि विद्या में प्रबलतर, जाति हित में एक थे ।।६८।।
उद्योग उद्यम कर्म योग, वाद आशा राधते ।
ईश-भक्ति अनन्यता से, धर्म-रत जन साधते ।।६६।।
ऐसे अच्छे देश जन को, भूप दशरथ पालते ।
अपने बुद्धि बाहुबल से, कष्ट सबके टालते ।।७०।।

पांचवाँ सर्ग

*राजा दशरथ सोम सम, सर्व प्रिय था आप ।
न्यायशील निष्पक्ष था, ज्ञानी धर्मी अपाप ।।१।।
क्षत्रिय सूर्य वंश के, रहते सब सज साज ।
ओज तेज से राजता, उनका सभ्य समाज ।।२।।
दल-बल से बहु सबलतर, उनका राजा राज ।
दश दिश मानव लोक में, उत्तम रहा विराज ।।३।।
सेना सबला शक्ति से, अस्त्र शस्त्र से भूप ।
पूर्ण निधि धन धान से, राजता रवि सुरूप ।।४।।
महामना मतिमान् वर, मंत्री-गण गुणवान् ।
पक्षपात से रहित था, सब में एक समान ।।५।।

* दोहा।

पर को जिस अपराध में, देते दण्ड महान् ।
स्व-सुत में भी सचिव वे, करते वही विधान ।।६।।
राज हंस जैसे करे, क्षीर नीर का भेद ।
सत्य मिथ्या त्यों भिन्न कर, देते संशय छेद ।।७।।
नीति चर शुचि चक्षु से, कुशल चतुर चलचाल ।
स्व पर शासन कर्म का, लेते भेद निकाल ।।८।।
सदा चेतन सचेत रह, चित्त चक्षु से देख ।
लेते परजन भेद को, यथा मीन हो मेख ।।९।।
सुराष्ट्र जयन्त विजय, राष्ट्र वर्द्धन वीर ।
धर्मपाल अकोप सचिव, सुमंत्र धृष्टि धीर ।।१०।।
ग्रह नक्षत्रों से यथा, शोभे चाँद विमान ।
तथा अष्ट प्रधान से, दशरथ शक्र समान ।।११।।
*ऋषि वशिष्ठ वेद का वेत्ता, वामदेव गुणि-गण का नेता ।
थे पुरोहित धर्म में पूरे, शम दम सत्य शील में शूरे ।।१२।।
निगमागम के जानन हारे, विकसित बौद्धिक बल के क्यारे ।
ज्ञान विज्ञान भरे भण्डारे, कर्म काण्ड के ज्ञाता भारे ।।१३।।
उनके यत्न कर्म से भारा, धर्म कर्म का हुआ विस्तारा ।
याजन यजन देश में होते, भक्ति प्रेम में बहते सोते ।।१४।।
सन्त ऋषि महर्षि मुनि आते, अवधपुरी में धर्म सुनाते ।
सुजन भक्त त्यागी वर ज्ञानी, सब जन पढ़ते वैदिक वानी ।।१५।।
पुण्य कर्म घर घर में होता, कोई व्यर्थ अर्थ न खोता ।
नगर देश के सब नर नारी, दशरथ के थे आज्ञाकारी ।।१६।।

---
* चौपाई।

करते प्रेम भूप से ऐसे, प्रिय प्राण अपनों से जैसे ।
देश-भक्त थे जनपद वासी, सच्चे वीर थे अवध निवासी ।।१७।।
ऐसे ही सब सुख के होते, चिन्तित थे नृप जगते-सोते ।
है न सुत जो देश सँभाले, न्याय प्रेम से जनपद पाले ।।१८।।
वृद्ध अवस्था में दुःख दूना, था देख उसे घर सुत-सूना ।
उसने सोच धारणा धारी, करिये यज्ञ धर्म अनुसारी ।।१६।।
पुत्रेष्टि यज्ञ यजन रचायें, अश्वमेघ कर सुत सुख पायें ।
नृप निश्चय करके हर्षाया, उसने सचिव सुमन्त बुलाया ।।२०।।
इष्ट लाभ को मन में धारे, इष्ट यजन होते तब सारे ।
मंत्र-पाठ किये शुभ जाते, वांछित पूर्ण जो करवाते ।।२१।।
सहित प्रार्थना रीति सारी, करते मानस बल के धारी ।
बाधा व्याधि विघ्न हटवाते, संकट कटते इच्छित आते ।।२२।।
शक्ति धनी ब्रह्मादि कहाते, वेदि-स्थान में चक्र बनाते ।
सबल संकल्प वेग बहाते, पूर्ण मनोरथ मन्त्र कराते ।।२३।।
{इष्ट कर्म की वेद-प्रणाली, विज्ञान मूल है युक्ति वाली ।
युग-युग में है चलती आई, अनुभवि-जन से जाय बताई} ।।२४।।
उसे कहा उसने जन जायें, सभी पुरोहित लेकर आयें ।
वे सुमन्त्र कथन से आये, वामदेव शुभ शोभा लाये ।।२५।।
विप्र जाबालि सुयज्ञ पधारे, काश्यप रीति जानन हारे ।
मधुर मनोरथ कह कर सारा, उसने उनका लिया सहारा ।।२६।।
सहित अनुमोदन वे हर्षाये, यज्ञ विधान उन्होंने बताये ।
अनुमति पाकर नरपति जी ने, ये आदेश सचिव को कीने ।।२७।।
सरयू-उत्तर तट पर जाओ, शुचि समतल भू भाग बनाओ ।
रचिए मण्डप शोभा शाली, हो शुभ रचना रम्य निराली ।।२८।।

राज-वचन से यज्ञ रचाया, कुशल सचिव ने बहुत सजाया ।
महा मनोहर मण्डप ऐसा, सज्जित सोहे सूर्य जैसा ।।२६।।
वशिष्ठ मुनि ने यूप बनाया, वेदी का था रंग सवाया ।
पुष्प माल कदली शुभ धाना, धूप स्त्राव चित्रित विधि नाना ।।३०।।
अद्‌भुत रचना देख सभी ही, हुए हर्षित गण लोग तभी ही ।
सनृप राणियां सब हर्षाईं, यजन-स्थान में सव्रत आईं ।।३१।।
गुणि-गण सुजन सुहाते राजे, सज कर मण्डप बीच विराजे ।
वेश सभी शुचि शुभतर धारे, शोभें सब नभ में ज्यों तारे ।।३२।।
ब्रह्मा बने मुनि महा भागी, ऋष्यश्रृंग यजन अनुरागी ।
वशिष्ठ मुनि ने कर्म कराये, शुभ मंगल उपचार रचाये ।।३३।।
रीति सहित यथा क्रम जो ही, विधि विधान किया गया सो ही ।
समय सरस शुभ शान्त सुहाना, था मधुरतर साम का गाना ।।३४।।
श्रुति-सलिल की बहती गंगा, करती जन मन तन को चंगा ।
नागर जनपद के जन जो भी, दर्शक सब हर्षित थे सो भी ।।३५।।
दान दक्षिणा नरपति देते, दीन जनों के दुःख हर लेते ।
धन-कुबेर बने नृप दानी, देते दान सहित मधु बानी ।।३६।।
भोजन नाना सब जन पाते, वर्ण चार मिले वहां खाते ।
सब ही स्वादु अधिक रसवाले, पकते षड् रस सहित मसाले ।।३७।।
जब समाप्ति अवसर आया, मुख मांगा वर भूपति पाया ।
आशिष सहित शेष सुखदाई, दिया ऋषि ने साथ बधाई ।।३८।।
सब ने शुभ जय नाद उच्चारा, पुष्पों से कर मंगल सारा ।
पायस सिद्ध शेष को पाके, हुईं हर्षित राणियाँ खा के ।।३६।।
लिया अर्द्ध बड़ी महाराणी, अर्द्धार्द्ध भी मझली सियानी ।
आध का आध सुमित्रा खाया, दो भागों में भोग लगाया ।।४०।।

अमृत सम पायस था ऊँचा, फलदायक शुभ रूप समूचा ।
सन्तति बाधक कारण भारा, उस पायस ने सर्व निवारा ।।४१।।
हर्षित शोभी तीनों राणी, कमलिनियाँ ज्यों पाकर पानी ।
आशा-उषा सब पर तब आई, सुत सूर्योदय का वर लाई ।।४२।।
नाना मंगल मोद मनातीं, कल्प लता सम शोभा पातीं ।
सीप खान में मोती हीरे, गर्भ पलें उनमें त्यों धीरे ।।४३।।
सुन कर वर्णन वीर जनों के, बलयुत कर्म सुधीर गणों के ।
हर्षावेश में वे आ जातीं, शक्तिमयी ज्योति हो दिखातीं ।।४४।।
सुनतीं धर्म-कथन शुभकारी, विघ्न विनाशक बाधा हारी ।
खान पान का संयम धारे, रहतीं खेद विषाद निवारे ।।४५।।
दोहद वीर कर्म के लातीं, वाण खड्ग के हाथ चलातीं ।
चिन्तन सिंह हनन के आते, रण-रमण के कर्म मन भाते ।।४६।।
हस्ति अश्व की किये सवारी, वन में फिरतीं निर्भय भारी ।
दीन-दया दिल में ले आतीं, जब दुःखी जन देख वे पातीं ।।४७।।
दैवी दिव्य स्वप्न मनमाने, वाटिका वन उद्यान लुभाने ।
देखतीं ऋषि मुनिवर योगी, सुन्दर सिद्ध शरीर अरोगी ।।४८।।
भानु चाँद ग्रह और तारे, ज्योति छा रही तेज पसारे ।
यान विमान मनोहर प्यारे, मणि मोती सज्जित सिंगारे ।।४६।।
भक्ति भाव हरि नाम रमा के, पूजन अर्चन ध्यान लगा के ।
दान पुण्य शुभ कर्म निभाते, दिन उनके सुकृत में जाते ।।५०।।
उत्सुक रहतीं वे दिन राती, सुत-दर्शन अवसर को ध्याती ।
कमल-केसरा अंकुर ज्यों ही, गर्भ पेट में पलते त्यों ही ।।५१।।

छठा सर्ग

*आशा से दिन देखते, आया वह शुभ काल ।
शुचि कौशल्या कूख से, उपजा सुन्दर बाल ।।१।।
पूर्ण मास में कर उदय, पूर्णमासी मात ।
हर्षी देख सुत षोडशी, निरख गात नवजात ।।२।।
पूर्व से हो रवि उदय, लिये सुनहला रुप ।
उदित हुए रघुपति तथा, शोभन सर्व सुरुप ।।३।।
कौशल्या की गोद में, शोभा सुत सुकुमाल ।
ज्यों पार्श्व कैलाश पै, शोभता अंशुमाल ।।४।।
कोना गौरी शिखर का, शशि शारद कर लाभ ।
चम चम चमके चौगुना, त्यों थी मां की आभ ।।५।।
{ललित सिन्धु उल्लास में, रोचक रच ज्यों रास ।
बाल रवि राजे, तथा, शिशु श्री माता पास ।।६।।
विश्व शक्ति शोभा शुभ, मानो हो साकार ।
शुभा कौशल्या गोद में, रमे धार अवतार ।।७।।
††मंगल मूल अमंगल हारी, सब शुभ विलसे हो तन धारी ।
जन पद जन गण मन मुदकारी, पावन पुरुष हुए अवतारी} ।।८।।
† भारत भाग जगे जग में जब, राघवराज हुए अवतारी ।
सार सभी शुभ शोभित थे तब, दैवत संपद् आप पधारी ।।
धार धर्म अवतार यथावत्, हो उतरा सबका सुखकारी ।
पावन रूप पुण्य परता सब, प्रकट रूप हुई परसारी ।।६।।
भारत भानु जन्म लिया जब, ज्योति जगी जग में जन जानी ।
जाग गई जनता शुभ में तब, जीवन में सुखता सब मानी ।।

* दोहा †† चौपाई † सवैया

नूतनता युग अन्तरता नव, जीवनता जन बीच समानी ।
मातपितामनमोदबढ़ा सब, बन्धु बने सुखिया वर दानी ।।१०।।
* पुत्र जन्म को जान कर, हुआ सुखी तब तात ।
उमड़े उसके चित्त में, हर्ष के सिन्धु सात ।।११।।
शुक्ला नवमी चैत्र की, पुनर्वसु का सुयोग ।
कर्क लग्न था उस समय, शशि गुरु का संयोग ।।१२।।
सूर्य मंगल तथा शनि, शुक्र गुरु ग्रह यान ।
थे उत्तम वर राशि में, समय सूचनावान् ।।१३।।
ईति उपद्रव मिट गये, विघ्न बने सब शान्त ।
हरा भरा था देश सब, सुख मंगल एकान्त ।।१४।।
सुखकर शुचि बहती पवन, दश दिश शान्त विशेष ।
सब जन, जनपद नगर के, रहित थे कष्ट क्लेश ।।१५।।
ऐसे शिव शुभ सम समय, जन्म लिया रघुराज ।
बाल-काल तत्काल उदित, रवि सम रहे विराज ।।१६।।
कैकेयी की कूख से, उपजे भरत कुमार ।
शत्रुघ्न लक्ष्मण हुए, सुमित्रा से सुखकार ।।१७।।
पाकर वर्षा अकाल में, ज्यों विकसे वनराज ।
ऐसे हर्षित सब हुए, जनपद सर्व समाज ।।१८।।
बाजे बजे सुहर्ष के, गूँजे मंगल गीत ।
दें बधाई सभी सुजन, गहरी करके प्रीत ।।१६।।
चतुर भूप-सुचारु चित्त, पुत्र लाभ कर चार ।
चम चम चमका चाव में, बना चाँद अवतार ।।२०।।

---

* दोहा।

*बजे आनन्द के बाजे, हुए मंगल सभी जन में ।
हर्ष के पूर अति उमड़े, उठी उमंग सभी मन में ।।२१।।
बधाई दी जनों ने जा, लिये शुभ भेंट हाथों में ।
कहा है आज सुख राजन्, हमारे संघ साथों में ।।२२।।
हुआ यह देश अब अपना, सर्व सुख सिद्धि से पूर्ण ।
हुए दिन दूर दुखड़ों के, बनेंगे दुष्ट दल चूर्ण ।।२३।।
दिखेंगे दूर देशों में, सुनहले झंडे लहराते ।
फिरेंगे वीर रवि कुल के, अरिदल दिल को दहलाते ।।२४।।
रवि सम चमक यही ऊँचा, सजेगा वंश वर सारा ।
असुर तम नाश करके ही, हरेगा भार भी भारा ।।२५।।
करोगे चाँदना, राजन्!, सबल सुत वीर चारों से ।
भरोगे भूमि भारत को, भले भावी विचारों से ।।२६।।
जनता अवध पुरी वर की, हर्ष उत्कर्ष में आकर ।
मिली मंगल मनाती थी, सभा दरबार में जाकर ।।२७।।
जय जय घोष वहां होते, घर-घर हाटों घाटों में ।
सभा सब जन समाजों में, गलियों चौकों बाटों में ।।२८।।
गुणी वशिष्ठ तभी आये, हर्ष अपार चित्त धारे ।
सजे शुचि श्वेत वेशों से, लगे कच श्वेत से प्यारे ।।२६।।
कराये जात के उसने, कर्म मंगल सभी ऐसे ।
विधि रीति को चित्त धरकर, करने योग्य जो जैसे ।।३०।।
दशत्रय दिवस पर गुरु ने, धरे शुभ नाम गुणकारी ।
रमते सर्व जपी योगी, जिसमें ध्यान व्रतधारी ।।३१।।

* विधाता।

उपासक सन्त साधक सब, मुनि ऋषि साधु जन जो ही ।
पदार्थ रम रहे जिस में, कहा श्री राम है सो ही ।।३२।।
उसी का चाँद जो चमका, कहा श्री रामचन्द्र है ।
सर्व गुण सहित नर उत्तम, जन आर्य का इन्द्र है ।।३३।।
समय पर दैव लीला से, उन्हीं में दिव्य गुण आये ।
कर्म से लोक भाषा में, गये श्रीराम वे गाये ।।३४।।

सातवाँ सर्ग

*नामकरण कर सर्व के, गुरु ने आशिष साथ ।
उन के सिर पर सहज से, धरा मृदुतर हाथ ।।१।।
विप्र, अधन जन में बटे, धन मणि रत्न सुभोज ।
विकसे जन मन तन यथा, वृष्टि हुए सरोज ।।२।।
†लाड़ प्यार से पलते प्यारे, जैसे सुन्दर केसर क्यारे ।
भाई चारों बढ़ते ऐसे, शुक्ल पक्ष का शशि भी जैसे ।।३।।
ललित लता सम कोमल काया, लीला का ले रंग सवाया ।
कमल अमल मृदुल मृणाली, मंजुल मोहक शोभाशाली ।।४।।
देह दिव्य दैवत बल वाली, दश दिश दीपे बहुत निराली ।
जन को राघवराज रिझाते, मधुर स्मित से अधिक लुभाते ।।५।।
विचरते बन्धु रमण विहारी, बालक पन में शुभ संचारी ।
सोहे बाल काल की बोली, सरला स्वादु सुधारस घोली ।।६।।
खेल खेलते बाल खिलाड़ी, घर आँगन पाकर फुलवाड़ी ।
चंचल अतुल चपल जहां जाते, रमण हसन के रस बरसाते ।।७।।

* दोहा। † चौपाई।

मात पिता सह मोद मनाते, बाल-सुलभ लीला दिखलाते ।
चलते लचक उचक मचलाते, राणी राजा अति मुद पाते ।।८।।
*आंगन बीच रजो रमणे रत, धूल सुधूलित अंग बनाये ।
गाम गली घर घाट किले रच, सैनिक साज समेत सुहाये ।।
बाण धनु तिनके कर धारण, कंकड़ सैन सजे चढ़ आये ।
तोरण तोड़ दुर्ग गढ़ भंजन, मात पिता मन को बहु भाये ।।६।।
दण्ड दिवाल सुखासन रोहण, मान अश्व गज राज सवारी ।
सिंह करी बन रीछ वस्तु कर, दौड़ पड़ें बन वीर शिकारी ।।
तोड़ गिरा कुछ क्रीड़न साधन, घोषित नाद करें जयकारी ।
मात पिता मन मोहित हो तब, देख पुत्र वर वीर खिलाड़ी ।।१०।।
चंचल चाल चलें चपला सम, चपल चारु रचें चतुराई ।
कोमल गात पद्म सम सुन्दर, मोद विनोद भरे सुखदाई ।।
हास विलास सुरास रमें शुभ, सोम सुरूप सजे सब भाई ।
मात पिता मन मोहन मानद, मेल मिलाप मिले मधुराई ।।११।।
मांग मिष्ट मधु मोदक आदिक, मांग मिले मुखड़ा तब मोड़ें ।
आंचल खींच कहें जननी अब, दो मनवांछित तो हम छोड़ें ।।
अंगुल हाथ गहें मचला कर, भाल भवें वर नाक सिकोड़ें ।
बालक काल सुक्रीड़न कौतुक, देख सभी मन मोदक फोड़ें ।।१२।।
† छठे वर्ष में वे जब आये, गुरु ने तब उपवीत पहराये ।
विनय सहित बने व्रतचारी, सीखते गुरु से विद्या सारी ।।१३।।
पढ़ते पाठ जो गुरु सिखाते, समझते सब जो मुनि बताते ।
स्मृति शक्ति अतुला से वे ही, स्नेह-स्थान बने ऋषि के ही ।।१४।।

---

* सवैया मालती। † चौपाई।

तैल बिन्दु समा बुद्धि वाले, कुशा-अग्र मतिमन्त निराले ।
विशद विचारक बड़े विवेकी, जाते जान जन के हिये की ।।१५।।
पर चेष्टा से पर पहचानें, चिन्ह चक्र से जन-मन जानें ।
अल्प से बहु जान वे जाते, पहुँच तुरन्त तह में पाते ।।१६।।
शीघ्र सार समझते सारा, भेद छुपा हो जो भी भारा ।
अंश से अंशी के अनुमाता, अल्प से सर्व के थे ज्ञाता ।।१७।।
एक बार जितना सुन आते, स्मृति से नहीं उसे भुलाते ।
मेधामन्त महामति पूरे, शक्तिमन्त शुभ शोभित शूरे ।।१८।।
परम प्रतिभा से चमकीले, सभ्य शिष्ट शुचि रसिक रसीले ।
युक्ति वाद में वे जब होते, युक्ति उक्ति की लड़ी पिरोते ।।१६।।
वेद ग्रन्थ पढ़ते सब ऐसे, स्मरण विस्मृत होवे जैसे ।
अस्त्र अधिक गुरु ने सिखलाये, शस्त्र विद्या में निपुण बनाये ।।२०।।
कुशल किए सब कर्म कला में, चमके अतुल सुमति अमला में ।
निपुण कला कौशल में जाने, क्षत्र विद्या में वरतर माने ।।२१।।
हसन रमण में धनुष उठाते, लक्ष्य में सर अचूक लगाते ।
अस्त्र-शस्त्र जभी वे चलाते, सहज सुगम से ठीक बिठाते ।।२२।।
हस्ति अश्व की किये सवारी, वायु-वेगवत् विचर विहारी ।
विविध विधि के बाण बहा के, विद्युत् वत् बहु खड्ग घुमा के ।।२३।।
बहुविध से बहु वेध दिखाते, बिजली सम फिरते चमकाते ।
चतुर-चित्त भी चकित कराते, चपल चारु जब चाल चलाते ।।२४।।
तथा पूर्ण हो गुण-गणों में, प्रिय बने स्वदेश जनों में ।
जाति जनों के थे जी जीने, स्नेह सने सब सुख रस भीने ।।२५।।
विद्या व्रत स्नातक सुख देने, हुए सभी जन मन हर लेने ।
राज समाज में तथा सुहाये, ज्यों रवि नभ में शोभा पाये ।।२६।।

लक्ष्मण साथी था मन भाता, रहे राम सह सदा सुहाता ।
मीठा मेल विधि ने बनाया, रहता साथ यथा तन-छाया ।।२७।।
मन से एक देह से दो ही, मीत मिले मन मधुतम सो ही ।
महा मधुर मोहक थे भ्राता, जी जीवन से रखते नाता ।।२८।।
भरत शत्रुघ्न की थी जोड़ी, जिस में प्रीति नहीं थी थोड़ी ।
बन्धु विनीत बड़े थे प्रेमी, कुल मर्यादा शुभव्रत नेमी ।।२९।।
गुण गण में पूर्ण सब दीखे, सुन्दर सब शशि शरत् सरीखे ।
पर सब से थे राम निराले, ओज तेज अतिशय बल वाले ।।३०।।
ज्ञान गुणों में सब से ऊँचे, सर्व विश्व के सार समूचे ।
बड़े विनय वय नय में माने, विचार बुद्धि में उच्च बखाने ।।३१।।
भाई विनीत अनुचर संगी, सब थे अंग राम थे अंगी ।
प्रेम पगे सगे सभी वे ही, देह चार दिल एक सुदेही ।।३२।।
रामचन्द्र शुचि चाँद सुहाते, जन-मन नयन चकोर बनाते ।
राम कमल के दर्शन से ही, बनते जन-मन भ्रमर स्नेही ।।३३।।
राम श्याम घन गर्जन पाते, जन-मन मोर महा हर्षाते ।
राम मधुर मुख के मधु बैना, सिमर, मुदित होती जन सेना ।।३४।।
राघव पिक के कूजन होते, सुरस सरस के सरते सोते ।
राम संग शुभ सुधा समाना, पाप ताप पर शाप बहाना ।।३५।।
निर्मल नयन निरख जब लेते, जन मन दिल दोनों दे देते ।
राम वचन जो जन सुन पाता, मंत्र-मुग्ध तभी बन जाता ।।३६।।
मिलन मूल मंत्र मन धारे, मोहे मानव उसने सारे ।
राम-चरित जन-चित्त लुभाते, देश जनों में प्रेम बसाते ।।३७।।
नव-युग नव जीवन के कारी, युवक जनों के नेता भारी ।
भरते साहस उत्साह ऐसे, विद्युत् बल व्यापे भी जैसे ।।३८।।

देश काल न्याय नीति वेत्ता, निपुण, सबल सेना के नेता ।
पर-भय भेद कुटिल के भेत्ता, अरिजन जाल जटिल के जेता ।।३९।।
राघवराज जनों में राजे, शक्ति कलाधर बहुत विराजे ।
पूर्ण शारद शशि सम सोहे, मोहन ने सब जन मन मोहे ।।४०।।

आठवाँ सर्ग

*चारों राज-कुमार, गुरु से विद्या ग्रहण कर ।
रक्षण धर्म को धार, क्षत्रिय कर्म में लग गये ।।१।।
जन-मन रंजन काम, करते कोमल कर्म से ।
बने बहुत अभिराम, जनहित पालन धर्म से ।।२।।
रूप लावण्य संग, सुन्दर शोभा से सजे ।
तरुणता सह तरंग, ले लीला उनमें बसी ।।३।।
सुर-तरु कुसुमित रूप, तरुण पुरुष सोहे सभी ।
सजे वसन्त सुरूप, अतिशय प्रिय वे थे सब ।।४।।
†यौवन-युग में वे सब आये, भरे वसन्त समान सुहाये ।
रंग रूप रस राग लुभाना, अंग-अंग मधुमास बसाना ।।५।।
नयन बैन शुभ सैन रसीले, हाव भाव सुर शब्द सुरीले ।
यौवन व्यंजक व्यंजन धारे, व्यंग भंग से लगते प्यारे ।।६।।
सचिव पुरोहित तब बुलवा के, बोले भूप हर्ष उर ला के ।
ज्ञान शक्ति बल पूर्ण पा के, विद्याव्रत में अधिक नहा के ।।७।।
मेरे सुत सुयोग्य सभी हैं, न्याय नीति में निपुण अभी हैं ।
यौवन युग अब उन पर आया, भर वसन्तवत् शोभा लाया ।।८।।

* सोरठा। † चौपाई।

उत्तम कुल घर वंश विचारो, विवाह संबन्ध शुभ निर्धारो ।
देख कर्म गुण करिये नाता, धन जन बन्धु पिता वय माता ।।६।।
परामर्श हो रहा जभी ही, द्वारपाल की विनय तभी ही ।
भूप! ऋषि जन के रखवारे, द्वार पर विश्वामित्र पधारे ।।१०।।
नृपति को मुनि मिलना चाहें, हो आज्ञा तो वे आ जायें ।
बात बड़ी जब होने आती, विधि विचित्र स्वयं मिल जाती ।।११।।
उषा आगमन रवि का आना, पूर्व पवन मेघ मँडलाना ।
मुनि आगम यों बना बहाना, था रवि-वंश-भानु चमकाना ।।१२।।
द्वारपाल की सुन शुभ वाणी, सुकृत सूचक चित्त हर्षाणी ।
अभ्यागमन स्वागत को धाये, गुरु सहित नृप लेने आये ।।१३।।
विनय सहित दे आदर भारा, कुशल प्रश्न उस ने उच्चारा ।
सभा-स्थान में मुनि को लाये, आसन पर दे मान बिठाये ।।१४।।
कर आतिथ्य अर्घ्य दे राजा, सहित विनय मुनि निकट विराजा ।
योग क्षेम उसने हित वाले, पूछे शैली शिष्ट सँभाले ।।१५।।
हाथ जोड़ बोला वह ज्ञानी, धन्य घड़ी मैंने यह मानी ।
मंगल रूप मुने! तव आना, सुधा पान है दर्शन पाना ।।१६।।
पुण्य खेत हरा हुआ मेरा, मंगल-मेघ मेल मिल तेरा ।
करना कहिए, मुनि! जो हो भी, सेवा चाहो मुझसे जो भी ।।१७।।
तपभूमि तज नगर में आना, है कोई शुभ कर्म निभाना ।
करूँ, कहो जो भी मन आवे, करते देर न होने पावे ।।१८।।
*दशरथ के सुन कर वचन, पाकर हर्ष अपार ।
बोले मुनि नरसिंह तुम, हो सुकृत सुखकार ।।१६।।

---

* दोहा।

शुभ शुचि सूर्य वंश में, है वह आदर मान ।
किया आज जो आपने, मेरा अधिक महान् ।।२०।।
सिद्धाश्रम में मौन रह, करना चाहूँ याज ।
अरि सुबाहु मारीच मिल, बाधक हैं, नरराज ।।२१।।
घोर उद्दण्ड घमण्ड घर, निर्दय क्रूर कुचाल ।
कपट कलेवर कुटिल काय, काले काल कराल ।।२२।।
हिंसक टोला असुर का, धर्म-हीन तज लाज ।
वैदिक धर्म विरोध रत, करे पाप के काज ।।२३।।
सत्य सनातन कर्म से, करते असुर विद्वेष ।
पर देशी असभ्य अधम, मलिन करें यह देश ।।२४।।
जब रचूँ दश रात्र में, यजन बार ही बार ।
तब वहां आ अधर्मधर, देते कर्म बिगाड़ ।।२५।।
रक्त मांस जन अस्थियां, फैंक कुण्ड के बीच ।
कर्म करें सब भंग वे, पापी कुकर्मी नीच ।।२६।।
लोलुप मानव मांस के, खाते बाला बाल ।
फिरते आर्य भूमि पर, भीम काय विकराल ।।२७।।
रावण के हैं दूत सब, दल बल छल के काम ।
करते हैं अति क्रूर वे, सब दिन आठों याम ।।२८।।
ताडन तर्जन त्याग कर, तज कर देना शाप ।
करना मुझे सुयजन है, प्रभु! नरपति! निष्पाप ।।२६।।
शान्ति उद्देश्य विशेष है, वन पर्वत हों शान्त ।
देश असुर बल से बचे, मुक्त हो दक्षिण प्रान्त ।।३०।।
जगे ज्योति जन जाति में, नव जीवन जग जाय ।
असुर विदेशी यहां पर, कहीं न रहने पाय ।।३१।।

आर्य जन बल में बढ़े, ज्यों सागर की बेल ।
मण्डल मलिन म्लेच्छ का, बाहर करें धकेल ।।३२।।
सत्य सनातन धर्म शुभ, बहुत पावे विस्तार ।
मेरा उत्तम यजन सब, देवे दुःख निवार ।।३३।।
रखने को निर्विघ्नता, भेजो राम कुमार ।
महाबली नरकेसरी, अतुल शक्ति भण्डार ।।३४।।
*मुनि वचन सुन नृप घबराया, हो मन मूर्च्छित कम्पित काया ।
बोला बात सुनो मुनि ज्ञानी, राम बिना माँगो मनमानी ।।३५।।
सेनानी सह सज्जित सेना, कहूँ अभी तव सह कर देना ।
शूर वीर सैनिक ले जाओ, सिद्ध सफल स्व यजन बनाओ ।।३६।।
बोले मुनि, निज वचन निभाना, राजन्! कहना सत्य बनाना ।
प्रण पाल कर पुरुष पुराने, गये आपके जग में जाने ।।३७।।
{पुरुष वह जो प्रण को पाले, प्राण जाय पर प्रण न टाले ।
पर हित परता पुण्य विचारे, सत्य धर्म है निश्चय धारे} ।।३८।।
पुत्र-स्नेहवश सत्य न छोड़ो, क्षात्र धर्म से मुख न मोड़ो ।
देख हठी मुनि, नृप थर्राया, सुत-स्नेह ने अचेत गिराया ।।३६।।
बोला हो न राम का जाना, उचित नहीं हठ बहुत बढ़ाना ।
चित्त-चाँद नयनों का तारा, वह है मेरा प्राण सहारा ।।४०।।
उस बिन मेरा दुष्कर जीना, होवे मीन यथा जल-हीना ।
सूना है सब तन मन मेरा, बिना राम दश दिश अन्धेरा ।।४१।।
प्राण बिना ज्यों जिये न प्राणी, सूखे कमल, बिना ज्यों पानी ।
ऐसे राम बिना सब मेरी, सूखे काया किये न देरी ।।४२।।

---
* चौपाई।

पुष्प पंखड़ी सम तस काया, अति मृदु तन विधि ने बनाया ।
लालन पालन सुख में पाके, रहे वनों में कैसे जाके ।।४३।।
आँखों काटे फिरते रातें, असुर जनों की सुनते बातें ।
सेवा कठिन न उससे होवे, सुख से जागे जो भी सोवे ।।४४।।
क्षमा करो तज खींचा-तानी, मोहे राम दान दो दानी ।
कर करुणा, मुनि! मुझ पर ऐसी, जप तप रत यति करते जैसी ।।४५।।
मुनि आवेश विशेष बढ़ाया, नयन तिरेरे नाक चढ़ाया ।
बोला, राजन्! धर्म न त्यागो, पालन सत्य से न अब भागो ।।४६।।
कर्म अधम है कायर होना, भय से सत्य वचन को खोना ।
जो कहा सत्य करना होगा, न तो यहां मम धरना होगा ।।४७।।
अब तो मैं भी टलूँ न टाले, अथवा तू निज वचन निभा ले ।
इस पर राजा अधिक डुलाये, किं कर्तव्य विमूढ़ दिखाये ।।४८।।
बीच वशिष्ठ ऋषि तब आये, उसने दोनों शान्त बनाये ।
कहा गुरु ने शुभ वचन प्यारा, अतुल बली है पुत्र तुम्हारा ।।४६।।
निर्भय वीर उसे जन जानें, नेता जेता जग का मानें ।
जगत् जनों का सार बताया, दिव्य तेज से जग में आया ।।५०।।
{बहु कारण मिल कार्य ज्यों ही, बने निमित्त काम हो त्यों ही ।
सबल सर्ववित् ब्रह्म जो हो, सुकृत यजन सफल तब हो सो} ।।५१।।
मुनि का राघव लेने आना, है तो विधि की बात बनाना ।
राघव-राज सबलतम दीखे, वीर मिलें न उन के सरीखे ।।५२।।
मुनि कौशिक आये हैं जो ही, सबल समर्थ सिद्ध हैं सो ही ।
राघव से निज रक्षा कराना, वीर-धर्म है बली बनाना ।।५३।।
राम-गमन मुद मंगल कारी, सब शुभ होगा, अरिजन हारी ।
ऋषि साथ रह राम हमारे, ऊँचे चमकेंगे ज्यों तारे ।।५४।।

पावेंगे यश कीर्ति भारी, जानेगी जनता भी सारी ।
करिये विदा सुत को हर्षाते, स्वस्ति मंगल शकुन मनाते ।।५५।।

नौवाँ सर्ग

* गुरु आज्ञा को मान कर, बुलवाये श्रीराम ।
लक्ष्मण आये साथ मिल, महावीर बलधाम ।।१।।
बोला नृप जाओ तुम, करिये मुनि का काम ।
उद्यम साहस धार कर, निश दिन बिना विराम ।।२।।
सेवा करना कर विनय, धृति शक्ति के संग ।
असुर-क्रमण से न कभी, यजन धर्म हो भंग ।।३।।
सत्य धर्म को पालना, करना सुरक्षित देश ।
उत्तम क्षत्रिय कर्म है, हरना जन के क्लेश ।।४।।
सिर चूमा अति प्रेम से, नृप ने दक्षिण हाथ ।
उनकी पीठों पर धरा, अतुल प्रेम के साथ ।।५।।
हाथ जोड़ दोनों झुके, पकड़ पिता के पाद ।
शशि सम चमके हर्ष से, वर्जित मेघ विषाद ।।६।।
स्वस्ति मंगल कर शकुन, मस्तक तिलक लगाय ।
शुभ मना सभी मात ने, निज सुत दिये सजाय ।।७।।
राज भवन से हो विदा, सहित अनुज श्री राम ।
उदय काल के भानु सम, सोहे अति अभिराम ।।८।।
कुसुम वर्षा सब ओर से, हुई उन पर उस काल ।
बाजे शंख बजे, हुए, शुभ जयनाद विशाल ।।९।।

* दोहा।

बहती मन्द सुगन्ध थी, अनुकूला शुभ वात ।
जिस पथ निकले सह ऋषि, वे दो सुन्दर गात ।।१०।।
जनता उमड़ी हर्ष में, करती जय जय घोष ।
जन सब दर्शन राम के, कर पाते संतोष ।।११।।
*राम-यान रवि-यान सरीखा, असुर-तिमिर नाशक हो दीखा ।
सुजन नयन का बना उजाला, पाप पेड़ पर पूरा पाला ।।१२।।
नीति न्याय सुनियम के नेता, सैनिक निपुण निशाचर जेता ।
चले राम सानुज मुनि संगी, शस्त्र-सज्जा करके चंगी ।।१३।।
कौशिक मुनि आगे थे जाते, पीछे दोनों बन्धु सुहाते ।
शस्त्र सजे सुन्दर दो भाई, पथ में पाते बहुत बड़ाई ।।१४।।
ग्रामों के जन मिलकर आते, कर वन्दन थे पुष्प चढ़ाते ।
जय जय नाद से नभ गुंजाते, गुण यश वर्णन मन भर गाते ।।१५।।
क्रमशः चलते सायं आई, सरयू तट पाकर सुखदाई ।
ठहरे तीनों रात बिताने, त्रय विद्या सम अधिक सुहाने ।।१६।।
उसी समय आचमन करा के, ऋषि ने राम को पास बिठा के ।
विद्या बला अतिबला सुनामी, राम को दीं जान जग-स्वामी ।।१७।।
कहा, प्रिय! यह निश्चितजानो, शक्तिमयी विद्या इन्हें मानो ।
इन से अतुल तेज बल तेरा, जग में चमके आशिष मेरा ।।१८।।
असुर शमन सुख सदन सहाई, सफल विजय करी विद्या गाई ।
मुनि-चरणों पर सीस नवाये, चाँद-कला सम राम सुहाये ।।१६।।
बातें करते मन बहलाते, मुनिवर रूचिकर कथन सुनाते ।
तृण-शय्या पर रात्रि सारी, सुख से सोये सुव्रत धारी ।।२०।।

* चौपाई।

मुनि ने प्रातः जाग पुकारे, कौशल्या के सुपुत्र दुलारे ।
निर्भय वीर उठो अब जागो, शुचि कर्म करो आलस त्यागो ।।२१।।
सुन मुनि-वचन हर्ष उर लाये, शौच शुद्ध हो जल में न्हाये ।
पावन जप कर मुनि पै आये, नमस्कार कर मोद मनाये ।।२२।।
सहित विनय बोले रघुराजा, सूर्योदय है बहुत विराजा ।
चलें अभी जिस दिश हो जाना, समय सुखद है शान्त लुभाना ।।२३।।
बहुत अच्छा कहकर मुनि ज्ञानी, बोले मधुर मृदु वर बानी ।
चलिए चलें सुचतुर सियाने, सुन्दर! सोम! सुरस सरसाने ।।२४।।
चले तभी मन हर्षित साथी, देखते वन पशु पक्षी हाथी ।
पन्थ विषम सम पर से होते, प्रेम-बीज जन-मन में बोते ।।२५।।
नर नारी के संघ रिझाते, तरुणों में अति हर्ष बढ़ाते ।
हँसते मिलते वे लुभाते, कुशल-क्षेम भी पूछे जाते ।।२६।।
संध्या ने जब राग रचाया, गंगा-सरयू संगम आया ।
मिष्ट मिलन मिलती दो धारा, रचतीं चारु दृश्य अपारा ।।२७।।
साथ सरस सुर सरिता पाके, सरयू सोही सर्व समा के ।
उसी समय सविता को ध्या के, स्थिर हुए तीनों चित्त टिका के ।।२८।।
आये राघव मुनि रखवारे, सुन, ऋषि मुनि तुरन्त पधारे ।
नारी नर दर्शन को धाये, पुष्पों फलों की भेंटें लाये ।।२९।।
रामागम की धाक पड़ी थी, दर्शक जन की भीड़ बड़ी थी ।
शुभ मंगल की पुण्य घड़ी थी, प्रिय-प्रेम अपूर्व लड़ी थी ।।३०।।
कुसुम बिखेर कर जय उच्चारें, जय राम की ध्वनि विस्तारें ।
राम-वचन की गंगा पाये, सरयू सब मन सर्व समाये ।।३१।।
रसमय शुचि संगम था भारा, सुलाप मिलाप विमल सुधारा ।
संगति सत्य उपदेश स्नाना, परम पुण्य प्रभु-प्रीति पाना ।।३२।।

सोम वदन शुभ सदन निहारे, शत-शत जन-मन जाते वारे ।
विकसित नयन निरखते स्नेही, नर नारी निर्मल मन देही ।।३३।।
लोक अलभ्य लाभ के लोभी, थे वे गये वहां तब जो भी ।
दुर्लभ दर्शन इकटक पाते, विधु वदन से न नयन उठाते ।।३४।।
अतृप्त सभी घर फिर आये, मन में मूर्ति मधुर रमाये ।
राम रंग में गहरे रंगे, चमके चोखे सुचारु चंगे ।।३५।।
अनुज ऋषि सह भोजन खाया, राम ने श्रम जनवाद भुलाया ।
गाढ़ नींद में होकर लीना, स्वस्थ हुए मन तन से अदीना ।।३६।।

दसवाँ सर्ग

*मुनि-वचन से वे जगे, प्रात समय गुणवान् ।
शुचितर संगम सलिल में, किया उन्होंने स्नान ।।१।।
शीतल मन्द सुगन्ध शुभ, सुख कर बहे समीर ।
शोभन समय सबेर में, रमे ध्यान में धीर ।।२।।
जप पूजन कर पाठ वे, आये मुनि के पास ।
हाथ बांध वन्दन किया, उन्होंने वह सुख रास ।।३।।
पूर्ण शशि सम सोम मुख, देख ऋषि सुखकार ।
चक्षु चित्त चकोर किये, इक टक रहे निहार ।।४।।
बोले, सोम! तयार हो, करें नदी जल पार ।
सघन वन में आज तुम, करिये शुभ संचार ।।५।।
मंडल मुनि जन के,मिले, और वहां के लोक ।
कर दर्शन श्रीराम के, हुये सुशान्त अशोक ।।६।।

* दोहा।

*दल पर दल जन दौड़े आते, तृषित नयन तृषा बुझाते ।
रघुपति-दर्शन अमृत पाते, मिलन मधुर में मोद मनाते ।।७।।
कोमल कर वर वाणी से ही, मिलकर सब को वश करके ही ।
राघव ने जन-संगम खींचा, स्नेह-सुधा शुभ रस से सींचा ।।८।।
मधुर स्मित से मिल सब को ही, साथ मुनि-मन ले चले सो ही ।
विदा किये सब ने गुण गाते, जय मंगल के नाद सुनाते ।।६।।
समुनि नाव में राम पधारे, साथ अनुज ले वीर करारे ।
सुरपति सम शुभ सुन्दर राजे, सजी नाव में सबल विराजे ।।१०।।
गर गर करती गर्जती गंगा, अभंग तरंग निर्मल अंगा ।
अमल सलिल शुचि नीली धारा, बल से तर्जन करे किनारा ।।११।।
लहरी लीला लिये लुभाती, उछल लचक कर शोभा पाती ।
मानव मंडल-मन मुद देनी, देव नदी दुर्मल हर लेनी ।।१२।।
बहती वेगवती सबला हो, चाल चपल से शुचि अमला सो ।
दूध फेन सम झाग सुहाती, भँवर भारी से बल खाती ।।१३।।
उस में जलचर चक्र लगाते, उछल पछल करते मन भाते ।
मीन मत्स्य बहु रंग बिरंगे, करते किलोल लगते चंगे ।।१४।।
उस पर वायु वेग से जाती, राम-नाव रवि-रथवत् भाती ।
राम छवि शुचि जल में दिखाती, रवि छवि को थी मन्द बनाती ।।१५।।
निपुण जनों ने नाव चलाई, बहुत तुरत उस पार लगाई ।
उतर चले वे बन में ऐसे, निर्भय फिरें केसरी जैसे ।।१६।।
निर्जन घोर घना वन सो ही, पगडण्डी पथ मिले न कोई ।
हिंस्र पशु बहु फिरते दौड़े, हस्ति नाग भी लम्बे चौड़े ।।१७।।

---
* चौपाई।

भयजन जंगल जटिल निहारा, सविनय राघव वचन उच्चारा ।
कहो, मुने! वन उजड़ा कैसे?, बना भयंकर क्यों यह ऐसे? ।।१८।।
बोले मुनि, सुन सोम! सियाने, ताटिका को सभी जग जाने ।
क्रूर कर्मिणी असुरी पापा, बल घमण्ड अति उसमें व्यापा ।।१६।।
मार काट मुनि उसने खाये, आर्य अबला बाल चबाये ।
मायावी मारीच हठीला, है तस सुत अति बली गठीला ।।२०।।
दल बल सह कर मारा मारी, कपट चाल चले अत्याचारी ।
मानव मांस रक्त के भोगी, मुनि मारण से आत्म रोगी ।।२१।।
धर्म-द्वेषी आर्य-विरोधी, काले काम करें कटु क्रोधी ।
आर्ष संस्कृति के विनाशी, हैं असुर परदेश के वासी ।।२२।।
हत्या काण्ड उत्पात मचाते, फिरें मुनि जन मारते खाते ।
जन हन कर वन विजन बनाये, ऋषि उन्होंने सर्व भगाये ।।२३।।
यह भू-भाग उजाड़ा सारा, काट पीट मुनि-मण्डल मारा ।
महा मोह की रच कर माया, हरते प्राण धन जन भी पराया ।।२४।।
उत्सुक हो बोले रघुराजा, देखें वह रहे वहीं जा ।
हंस हर्ष में कौशिक बोले, तुम हो वीर अतुल अनमोले ।।२५।।
जाना है उस पथ से हो के, जहाँ रहे, वह मार्ग रोके ।
देखोगे अब उसको प्यारे, पड़ेगी वह पथ में तुम्हारे ।।२६।।
सुन हो उत्सुक हर्षित भारी, चले वेग से वे पदचारी ।
करते चिन्तन बड़ी हत्यारी, देखेंगे वह असुरी नारी ।।२७।।
पहुंचे बातों में वहां ही, असुरी रहती थी जहाँ ही ।
राघव देखी सम्मुख आती, पकड़े खड्ग वह लप लपाती ।।२८।।
लपक राम को हनने धाई, बिजली बन वह क्रोध भराई ।
मानव-मांस मिलेगा खाना, युवक-रक्त से प्यास बुझाना ।।२६।।

बोली, तीनों को अब खा के, रहूं दल को तृप्त बना के ।
असुराधीन देश में आना, है अभी तुम सबको बताना ।।३०।।
सावधान वे दोनों भाई, देखें विधि की बात बनाई ।
धनुष तान सर सीध जमाये, असुरी सिर को लक्ष बनाये ।।३१।।
बोले, मुने! कर्म है कैसा?, नारी वध जो करिए ऐसा ।
वीर-वचन सुन ऋषि हर्षाया, धर्म मर्म उसने समझाया ।।३२।।
राघव! वचन सुनो मन धारो, जाति देश हित असुरी मारो ।
गो ब्राह्मण रक्षा को धारे, विहित कर्म विध वेद उचारे ।।३३।।
रक्षा का व्रत जो जन लेवे, क्षत्र-धर्म को जो जन सेवे ।
आततायी असुर जो मारे, पाप लेश न उस में विचारे ।।३४।।
विष-धरी विषवल्ली सम नारी, क्रूरा कुटिल कटु कर्म क्यारी ।
नखशिखतकबहुविषमविषैली, मुनि-मारण से मन की मैली ।।३५।।
चरित धर्म से बहुत विहीना, पाप-रता का निष्फल जीना ।
दंडित आज इसे कर देना, जन-रक्षण कर पुण्य है लेना ।।३६।।
थी मंथरा शक्र ने मारी, जन-निद्रा की नाशिका भारी ।
भृगु-भार्या भयकरी गाई, विष्णु ने पर लोक पहुँचाई ।।३७।।
रक्षण कर्म परम धर्म तेरा, वेद-विहित है कहना मेरा ।
पालो धर्म न देर लगाओ, जाति जनों के कष्ट मिटाओ ।।३८।।
'बहुतअच्छा'कह,राघवजीने, सर सीधे सभी किये पैने ।
कहा, भानु-कुल सैनिक सेती, करे कलह किस बल पर ऐती ।।३९।।
बाल अबाल अबल बहुतेरे, साधू सन्त जन ऋषि घनेरे ।
तरुण वृद्ध हने जो तू ने, किये गांव वन जन से सूने ।।४०।।
आर्य जन से वैर बढ़ाया, भय भीत कर त्रास फैलाया ।
सो अब तुम सब का फल पाओ, निज बोया अब काटो खाओ ।।४१।।

{जो करते हैं बहुत बुराई, विषम वैर-विष बेल बनाई ।
बड़ी बुरी विपदा के भोगी, बनते बहु संकट-संयोगी} ।।४२।।
उस के पापों के फल दाता, मिले उसे राघव मुनि-त्राता ।
राम-वाण तब सर सर धाया, असुरी को उस बींध सुलाया ।।४३।।
पुष्प-माल मुनि ने पहराई, जय जय राम कह दी बधाई ।
डाकिन हनन जान जन देशी, महर्षि गण मुनि जगत् हितैषी ।।४४।।
हर्ष पूर में उमड़े आये, कुसुम उन्होंने बहु बरसाये ।
बोले वे, मुनिजन रखवारे!, जाति देश के परम सहारे ।।४५।।
पाल लिये तू ने वनवासी, करी शारदी पूर्णमासी ।
आर्य जन की लाज रखाई, असुर जनों से भूमि बचाई ।।४६।।
यों मिल सब ने भोजन पाये, फिर सब निज निज स्थान सिधाये ।
वहीं राम ने रात बिताई, तृण भूमि की सेज सजाई ।।४७।।

ग्यारहवाँ सर्ग

*प्रातः उठ, कर कर्म सब, बैठे ऋषि समीप ।
अमल मधुर मुख तेज से, ज्यों दीप्त दो दीप ।।१।।
बाल काल का लाल शुभ, लख सूर्य सुखकार ।
वन-जन से होकर विदा, रघुपति हुए तयार ।।२।।
क्रमशः चलते तीन वे, पाते पुष्प उपहार ।
बसी बस्तियां देखते, ऋषिजन का विस्तार ।।३।।
मोद मेल से मिल सभी, मानव, मुनिवर लोक ।
दुर्लभ दर्शन देव के, करते पथ को रोक ।।४।।

* दोहा।

अभिनन्दन वन्दन बहुत, रघुनन्दन सुख-कन्द ।
पाते जन मुनि संघ से, जहाँ जनों के वृन्द ।।५।।
चलते पहुंचे वे सब, पुष्पित भाग अपार ।
लहलहाती जहां लता, सज सुन्दर सिंगार ।।६।।
तरु वर नाना भांति के, चूम रहे आकाश ।
लदे फूल फल पत्र से, श्रम करें सब नाश ।।७।।
कूजे कोमल कण्ठ से, कोयल किये अलाप ।
मुखरी मैना मोहिनी, बोले मधु मुख आप ।।८।।
नाच मोर का मधुरतम, सुमृदु मोहक नाद ।
सरस रास-रस रसिक में, भरता रहित विवाद ।।६।।
रघुपति बोले, हे मुने!, कहो कौन है स्थान? ।
सृष्टि सब सिंगार सज, रही यहां कर गान ।।१०।।
मुस्कराते मन्द मन्द, मुनि बोले, सुन राम ।
सिद्धाश्रम की भूमि यह, है लगती अभिराम ।।११।।
देखोगे अब सोम! तुम, मुनि मण्डल मतिमान् ।
बसता इस भू-भाग में, पुण्यवान् गुणवान् ।।१२।।
सिद्धाश्रम के जन सभी, रघुपति आते जान ।
दर्शन को उत्सुक हुए, आदर लिये महान् ।।१३।।
†{चलो चल देखने चलिए, हमारे राम हैं आते ।
मनोमोहक मधुर मोहन, अभी शुभ श्याम हैं आते ।।१४।।
सभी शुभ सार सब रस के, सुहाने सरस नयनों से ।
सबल सतेज अति सुन्दर, सजे अभिराम हैं आते ।।१५।।

---

† विधाता।

बने हैं देव बल लेकर, जगत् में शक्ति के मन्दिर ।
धर्म अवतार हो कर ही, गुणों के धाम हैं आते ।।१६।।
सताये बहुत मुनि जाते, हनन वध घोरतर होते ।
सर्व आर्य ऋषि गण के, परम आराम हैं आते ।।१७।।
भरे उत्साह अपूर्व से, भक्ति अति प्रेम में फूले ।
मिले ऋषिजन मुनि कहते, कि मंगल नाम हैं आते} ।।१८।।
*ऐसे उत्साह में जन धाये, ज्यों चातक दल घन मुख जाये ।
बालक युवक वृद्ध नर नारी, देखें पथ निज नयन पसारी ।।१९।।
अभ्यागमन से स्वागतकारी, आदर देकर विधि अनुसारी ।
जय जय राम ध्वनि थे गाते, भू नभ एकाकार बनाते ।।२०।।
अमृत दर्शन पाकर वे ही, मन तन से बने राम-स्नेही ।
मन हृदय सबके विकसाये, वृष्टि में ज्यों वन विलसाये ।।२१।।
आदर सहित राम को लाते, सशशि तारागण से सुहाते ।
नमस्कार अभिनन्दन देते, स्नेह-सुधा भर अंजलि लेते ।।२२।।
रघुपति ने बहुमान दिखाया, मुनिजन सम्मुख सीस झुकाया ।
मंगल गीत नारिगण गाये, स्वस्ति मंगल सर्व मनाये ।।२३।।
सभी आश्रम बीच पधारे, सूर्य राम, कमल जन प्यारे ।
मोहन-मूर्ति राम निहारे, मुनि-मण्डल ने मन तन वारे ।।२४।।
उत्सव थे उत्साही मनाते, गुण-कथा राघव की बताते ।
असुरी-वध-सुवृत्त सुनाते, रह रह फिर जयनाद गुँजाते ।।२५।।
दिन बीता संध्या जब आई, नित्यकर्म कर सब सुखदाई ।
राघव बोले, कौशिक ज्ञानी, दीक्षित हो अब ही वरदानी! ।।२६।।
यों ही काल नहीं कुछ बीते, यज्ञ सिद्ध हो मुनिगण जीते ।
'दीक्षा-व्रत' ऋषि ने धारे, चिन्ता संशय सर्व निवारे ।।२७।।

* चौपाई।

शान्ति विजय सिद्धि किये हेतू, जप तप रत हो धर्म के सेतू ।
मौन महा मुद्रा में विराजे, अचल शिला सम अविचल राजे ।।२८।।
भोजन कर सोये मुनि-त्राता, तृण-शय्या पर दोनों भ्राता ।
प्रात समय संध्या करके ही, मुनि पै आये सेवक नेही ।।२६।।
विनय सहित शुभ सीस नवाया, बोले, राम अनुज सह आया ।
सेवा कर्म कहो गुरु मेरे, विघ्न रहित हों साधन तेरे ।।३०।।
बोले अपर मुनि राम सियाने, मुनि-मन मोहक मतिमत् माने ।
कौशिक है मौनी अब ऐसे, शैल शिखर होवे भी जैसे ।।३१।।
{सेवा-कर्म कठिन कर जाना, सेवा-धर्म परम है माना ।
सेवा सम शुभ कर्म न कोई, सेवा से सुख सम्पत् हो ही ।।३२।।
सेवा संघ शक्ति को देती, जाति देश के दुख हर लेती ।
कलह कोप कुटिलता हारिणी, मत्सर मान मोह मद मारिणी ।।३३।।
बने सुविनीत जो सेवक होवे, पर हित जागे खावे सोवे ।
सेवक सज्जन शुभ कर ऊंचा, धृति धर्म का रूप समूचा ।।३४।।
सो सेवक जो स्वार्थ त्यागी, नाम दाम से दूर विरागी ।
केवल पर हित का अनुरागी, मन धन तन तक दे बड़भागी ।।३५।।
सो सेवा तुम आज कमाओ, मुनि-पालन कर धर्म बढ़ाओ ।
जाति देश का नाम कराओ, परदेशी का त्रास मिटाओ} ।।३६।।
दश-रात्र सुयज्ञ है भारी, उसमें सेवा रहे तुम्हारी ।
मुनि-मंडल मौनी आराधे, यजन-कर्म सब विधि से साधे ।।३७।।
सावधान रहिए शुभचारी, घटना घटे न बाधा भारी ।
जगते छः दिन रातें बिताना, तज कर खाना नयन मिलाना ।।३८।।
पहरा देना आलस त्यागे, फिर कर सब दिश पीछे आगे ।
तथा अस्तु कह राम स-भाई, सेवा धारी बने सहाई ।।३६।।

रात-दिवस जगते बन ज्योति, देखें घटना जो सब होती ।
निशा अंधेरी अति भय वाली, वन-छाया से चौगुन काली ।।४०।।
बाघ हस्ति फिरते मतवाले, शूकर रीछ नाग अति काले ।
सिंह केसरी गर्जन होते, रघुपति फिरते मुनि सब सोते ।।४१।।
लगातार रवि शशि सम वे ही, शूर वीर सुदृढ़ मन के ही ।
निर्भय फिरते बली तथा ही, मृगराज फिरे भी यथा ही ।।४२।।
हर्ष परम में रात बिताते, आहट खटक जभी सुन पाते ।
दौड़े जाते ताक लगाये, देते हिंसक जीव भगाये ।।४३।।
षष्ठ दिवस जब ऐसे आया, असुरों ने उत्पात मचाया ।
गर्जन तर्जन कर वे आते, नभ भूमि में त्रास फैलाते ।।४४।।
देख कुण्ड की जलती ज्वाला, रूधिर मांस वर्षण कर डाला ।
अस्थि फेंक हनन हेतु दौड़े, लिए नाक मुख लम्बे चौड़े ।।४५।।
रघुपति ने देखे मदमाते, अकारण कलि-कलह सुलगाते ।
भीम काय कुरूप कटु काले, लिये बाण बहु बरछी भाले ।।४६।।
करे अचेत न जन को मारे, दूर फैंक अरि कष्ट निवारे ।
रघुपति ने सो अस्त्र चलाया, देख मारीच ठीक जमाया ।।४७।।
मानवास्त्र ने वह गिराया, मन मस्तक उसका चकराया ।
आग्नेय अस्त्र पुनः घुमाया, उसको फैंक सुबाहु सुलाया ।।४८।।
असुर-संघ जो भी दिखलाये, वायु अस्त्र से सर्व भगाये ।
घन-घटा को भी वायु जैसे, असुर बिखेरे उसने ऐसे ।।४९।।
हस्ति यूथ ज्यों सिंह निहारे, भागे, तथा असुर सब हारे ।
शान्त हुई दश दिश भय नाशे, कमलों सम मुनि-मुख प्रकाशे ।।५०।।

बारहवाँ सर्ग

*यज्ञ की सिद्धि जानकर, देख दिशा सब शान्त ।
कौशिक प्रिय लगे यथा, राहु-मुक्त शशि कान्त ।।१।।
मिल राम को प्रेम से, दोनों भुजा पसार ।
कण्ठ लगा कर गाढ़तर, दर्शा कर अति प्यार ।।२।।
बोले, सौम्य! आश्रम, शुभ सुन्दर रमणीक ।
वर्जित बाधा विघ्न से, सोहे अब शुचि ठीक ।।३।।
तेरे वर बल बाहु से, अतुल तेज से आज ।
सिद्धाश्रम यह नाम शुभ, सच मुच बना विराज ।।४।।
अहो धन्य है राम! तू, धन्य अनुज तव भ्रात ।
धन्य वंश कुल नामतव, धन्य पिता गुरु मात ।।५।।
†मुनि जन के मिले मंडल कि, जय जय राम ध्वनि गाते ।
वनों के नर सभी नारी, हर्ष में पुष्प बरसाते ।।६।।
बढ़े उमड़े सभी आये, नहीं फूले समाते थे ।
विदेशी असुर दल बलपर, विजय पहली मनाते थे ।।७।।
जहां जाओ ऋषि कहते, बनेगा राम अब राजा ।
असुर कर देश से बाहर, बजेगा जीत का बाजा ।।८।।
भली शुभ भूमि भारत से, भय भारे भी भागेंगे ।
दस्यु दल दलन कर सब ही, रवि-वंश-वीर जागेंगे ।।९।।
बहेगी वीर रस गंगा, चलेगी शक्ति की धारा ।
मलिन जन मैल छल बलभी, करेगी दूर धो सारा ।।१०।।

---
* दोहा। † विधाता।

*बोले कौशिक संकट भारे, आज राम ने सर्व निवारे ।
जाति धर्म स्वदेश बचाया, मुनि मण्डल का मान बढ़ाया ।।११।।
कर यह कर्म अलौकिक ऐसा, सम हैं वीत राग हो जैसा ।
{जाते बहुत जन जग में निहारे, निज बड़ाई आप बघारें ।।१२।।
अल्प किये को अधिक बखानें, स्व सम अपर न जग में जानें ।
एक भला कर कभी न भूलें, तुच्छ कर्म पर बहुतर फूलें ।।१३।।
पर रघुपति हैं बहुत निराले, विगत मान सम दृष्टि वाले} ।
आर्य गण का है यह नेता, होगा जग में जगत् विजेता ।।१४।।
दिन भर उत्सव लोक मनाते, मग्न रहे रघुपति-गुण गाते ।
सायं विसर्जित होकर प्यारे, हर्ष-भरे निज स्थान पधारे ।।१५।।
संध्या कर्म कर बन्धु दो ही, भोजन कर सोये शुचि सोही ।
प्रातः समय कर पूजन आये, विश्वामित्र पै हर्ष भराये ।।१६।।
{बहुत बुरी है बान बड़ाई, बात बनाना बढ़ चढ़ भाई ।
निजू गुण गौरव-गीति गाना, आप अलापना निज तराना ।।१७।।
जग में जन जाने बहुतेरे, भरे गर्व से मिलें घनेरे ।
ऐंठे फिरते मूंछ मरोड़े, विनय आदर-मर्यादा तोड़े ।।१८।।
विजय लाभ का ढोल बजाते, निज जय जय बहु गूँज सुनाते ।
कलि काल कपट की काया, बन रचते महा मोह माया ।।१६।।
छल छल छलके छल घट ऊने, पंचम गायें सुर से सूने ।
बजते घने चने बहु थोथे, दाबें फिरें भी निरक्षर पोथे ।।२०।।
दुर्दम दल उद्दंड घमंडी, दस्यु निर्दय दैत्य पाखण्डी ।
दलन दमन कर मुनि पै आना, विनय नम्रता उच्च दिखाना ।।२१।।
अभिमान नहीं मन में लाना, अरि विजय की न बात चलाना ।
राघव में वह शोभा दीखी, दूसरी दुर्लभ उस सरीखी} ।।२२।।

* चौपाई।

विनय सहित दोनों कर जोड़े, विजय मान मन से सब छोड़े ।
बोले रघुपति गुरुवर मेरे, सम्मुख हैं दो किंकर तेरे ।।२३।।
दो आज्ञा हो सेवा जो भी, करूँ तुरन्त मुने! मैं सो भी ।
सुन मृदु मधु मोहिनी वाणी, काया लता मुनि की हर्षाणी ।।२४।।
उसने कहा, हे राम! प्यारे, अद्‌भुत हैं बल कर्म तुम्हारे ।
तू ने कुचक्र चूर बना के, सुखी किये मुनि, असुर भगा के ।।२५।।
प्रान्त सुशान्त हुआ यह त्यों ही, शरत् में सिन्धु होता ज्यों ही ।
निर्भय आर्य-गण का आना, होगा सुख से देश बसाना ।।२६।।
कार्य सिद्ध किये सब तैने, करवाने जो चाहे मैंने ।
पर जो मुनि हैं आते जाते, मिथिला की यह बात बताते ।।२७।।
जनक सुता सीता है ऐसी, जग में सुन्दरी नहीं उस जैसी ।
उसने है यह सुव्रत धारा, वरूँ वीर वर सबल अपारा ।।२८।।
स्वयम्वर शुभ शोभा शाली, होगा लेकर आभ निराली ।
सोम! आप यदि चलना चाहें, उत्सव भव्य तुम्हें दिखलायें ।।२६।।
पण का धनुष दिव्य है दैवी, लिये शक्ति वर उत्तम शैवी ।
देश देश के नरवर राजे, सज धज से हैं वहां विराजे ।।३०।।
हरित भरित जन पद है सारा, धन जन पूर्ण मोहन हारा ।
दर्शन योग्य जनक वैदेही, है गुणी ज्ञानी सभ्य स्नेही ।।३१।।
मन्द स्मित सह सीस नवाया, उसने स्वीकृति भाव दिखाया ।
हँस हर्ष से मुनि बलधारी, करने लगे प्रस्थान तयारी ।।३२।।
रघुपति जाना सुन जन दौड़े, काम काज से मन मुख मोड़े ।
ऋषि मुनि गुणी सिद्ध सियाने, आये वहाँ सभी दर्शन पाने ।।३३।।
दर्शन अमृत दुर्लभ पाते, थे न नयन मन तृप्ति लाते ।
शत शत मुख जय राम उच्चारें, तृषित नेत्र से राम निहारें ।।३४।।

मधुर अधर पर हँसी लाये, खिले कमल सम राम सुहाये ।
स्नेह सने रस सह सुख देने, बोले वाक्य मन हर लेने ।।३५।।
पुण्य घड़ी मेरी फल लाई, मुनि दर्शन जन संगति पाई ।
निज जन जान कभी न भुलाना, विधि बने तो फिर भी बुलाना ।।३६।।

तेरहवाँ सर्ग

*मुनि-मण्डल को मिल तभी, बोले कौशिक आज ।
सिद्ध मनोरथ सब हुए, सुधर गए सब काज ।।१।।
वनों में शान्ति सर्वथा, हो मेरा था भाव ।
असुर विदेशी जनों का, होवे नष्ट दबाव ।।२।।
निर्भय मुनि विचरें सभी, आर्य जन का देश ।
रहे स्वतंत्र यह शुभ, अपना लिए नरेश ।।३।।
राम-शक्ति से हो गया, सो मेरा शुभ काम ।
रहो सुखी अब लोग सब, पाकर राजा राम ।।४।।
पुनः आऊँगा जा अब, जब चाहोगे आप ।
राज्य राम का है अब, रहित विघ्न सन्ताप ।।५।।
मधुर मेल मिलाप मिल, मिष्ट वचन के संग ।
राम विदा हुए सर्व से, देते प्रेम तरंग ।।६।।
अभिवादन कर मिलन से, मोहक कर संलाप ।
चित्त चुरा सबके चले, चुपके चतुर अपाप ।।७।।
राम विदा कर प्रेम से, सब जन हुए उदास ।
अपने को समझे यथा, रहा नहीं मन पास ।।८।।

* दोहा।

विश्वामित्र के संघ में, था समुदाय महान् ।
शुभ उपकरणों से भरे, थे शत शकटी यान ।।६।।
ग्राम-ग्राम में विचरता, शोभा राघव-संघ ।
यथा भगीरथ अनुसरी, हो शोभी थी गंग ।।१०।।
दिन को मार्ग लाँघते, सायं समय विश्राम ।
करते, करके कर्म सब, सहित राम गुण-धाम ।।११।।
भोजन पाकर बैठते, प्रेम भक्ति के साथ ।
वार्ता गोष्ठी ज्ञान से, सुख पाते रघुनाथ ।।१२।।
कथा मनोरंजक मधुर, ऋषि मुनि प्रति रात ।
कहते हर्ष विनोद में, नित्य निराली बात ।।१३।।
विश्वामित्र सोते समय, बोले सहित प्यार ।
पल-पल में बढ़ती निशा, रही मौनपन धार ।।१४।।
रजनी तारागण जड़ी, उज्ज्वल ग्रह समाज ।
विमल नील नभ में लिये, राजे रजनी-राज ।।१५।।
चटकीली शुचि चाँदनी, चमकाय चहुं ओर ।
चन्द्र-कला चमके शुभ, चरम चारुता-ठौर ।।१६।।
चिट्टी चादर चन्द्रिका, ओढ़ सोये उद्यान ।
वन उपवन बन रजत के, नद हो रजत समान ।।१७।।
पंछी पंख समेट कर, तरु-शाखा अनुकूल ।
पा कर बैठें मौन हो, सगे बन्धु सब भूल ।।१८।।
फिरते हिंस्र जीव हैं, हिरण पशु रहे भाग ।
तस्कर घातक चोर भी, फिरें ताक में जाग ।।१६।।
मौन मही पर छा रहा, दिशा बनी सुनसान ।
विहग विरह बहु वेदना, रह रह करे बखान ।।२०।।

नर नारी सब सो रहे, लिए नींद की गोद ।
राम! मनाओ आप भी, मानस लय में मोद ।।२१।।
*ऋषि मुनि सब धर्मचारी, समय पर जगते सभी ।
स्नानध्यानसुकर्मजपकर, संघ चलता वह तभी ।।२२।।
शोण नद पर रात आई, सो वे सुख विश्राम से ।
प्रात काल में हो समुद्यत, चले सब आराम से ।।२३।।
सहज से वे आ पहुँचे, विमल गंगा तीर पै ।
अमल नील स्वच्छ छवि थी, राजती उस नीर पै ।।२४।।
तरंग माला शुचि शोभे, मिली मुनि उपकरण को ।
उछल उछल के आ छुए, राम के शुभ चरण को ।।२५।।
जल स्पर्श करके सब जन, मग्न कर्म-कलाप में ।
लीन संध्या में हुए सब, परम पावन जाप में ।।२६।।
लिये जल में ग्रह तारक, नील नभ के साथ हो ।
सुरास रचता शशि शोभा, निरखता रघुनाथ को ।।२७।।
उछल पछल मत्स्य करते, बड़वानल के दीप ले ।
मानो करते आरति शुचि, चरण पर वर अर्घ्य दे ।।२८।।
पवन पानी एक तन बन, लहर सीकर रूप हो ।
पूजते अभिषेक करते, परम पुण्य सुरूप को ।।२९।।
कर्म से निवृत्त हो सब, पाते सुख विश्राम को ।
कर सम्बोधन मुनि बोले, राम मगंल नाम को ।।३०।।
सूर्य-वंश शिरोमणि था, सगर राजा शुभ भला ।
पूर्ण न्याय नीति में था, शक्ति की ऊँची कला ।।३१।।

* गीतिका।

सुत था उसका असमंजस, उद्दण्ड घट घमण्ड का ।
कुल धर्म विपरीत चलता, क्रोध-घर प्रचण्ड का ।।३२।।
युवक गण को साथ लेकर, नदी जल में खेलता ।
दे उन को गहरे गोते, बीच अधिक धकेलता ।।३३।।
देख उनकी दुर्दशा को, हँसता वह मोद में ।
मार पीट दुःखी करता, खेल कूद विनोद में ।।३४।।
निकट नृप के सब जन आ, पंच मुखिया नगर के ।
धनिक, ज्ञानी, तेजधारी, सच्चे स्नेही सगर के ।।३५।।
सविनय बोले, श्री राजन्, दुष्ट राज-कुमार है ।
हनन बाल अबोध तक का, करे पाप अपार है ।।३६।।
उसके कर्म क्रूरतर से, रहें क्लेशित जन बड़े ।
असह्य हैं कुकर्म उसके, कष्ट कड़वे अति कड़े ।।३७।।
पंच जन का कथन सुनकर, न्याय दृष्टि में किये ।
वहीं सुत बुलवाये उसने, ये आदेश तब दिये ।।३८।।
घोर हैं अपराध तेरे, जाति-हित तुझ में नहीं ।
देश बाहर अभी जाओ, फिर न आना भी कहीं ।।३६।।
ऐसे विमल न्याय से तब, सुयश उसका छा गया ।
कर्म धर्म विशेष करके, उच्च गति वह पा गया ।।४०।।
अंशुमान असमंजस सुत, हुआ राजा अति बली ।
अहर्निश कर प्रजा-पालन, रखता नीति शुभ भली ।।४१।।
दिलीप सुदीप उसका, पुत्र शोभा सब लिये ।
उसने किये कर्म उत्तम, बन नृप, जब तक जिये ।।४२।।
हुआ भगीरथ गुणनिधि शुभ, कर्म उसने यह किया ।
बहा गंगा हिमगिरि से, जगत्-जन को जल दिया ।।४३।।

उसके बुद्धि तेज तप से, सभी प्यासे जन तरे ।
सुखहुआअनगिनतजनको, बने खेत हरे भरे ।।४४।।
भानु-कुल की कथा कीर्ति, सुर सरित है कह रही ।
अमलश्यामलजलभरीयह, लिये लीला बह रही ।।४५।।
कथा अपने वंश की सुन, जान कर्म महान् को ।
राम लक्ष्मण हुए हर्षित, समझ पुरुष पुराण को ।।४६।।
ऐसे करते वार्ता वे, सभी सुख से सो गये ।
नींद की शुभ एकता में, लीन सब ही हो रहे ।।४७।।

चौदहवाँ सर्ग

*उषाकाल उठ कर सभी, कर उपासना ध्यान ।
मिले ऋषि को राम जी, देकर आदर मान ।।१।।
चलने को उद्यत हुए, आये गंगा तीर ।
चलती शीतल मन्द थी, सीकर सहित समीर ।।२।।
नावों में बैठे सभी, लिए सर्व सामान ।
चली नाव जल नील पर, नभ में यथा विमान ।।३।।
लहरउछलजलबिन्दु बन, रघुपति सिर पर राज ।
काले कुंचित केश में, सजती मोती साज ।।४।।
अतुल उत्तंग उतावले, आते तरल तरंग ।
राम-नाव को छू सभी, नत कर देते अंग ।।५।।
विमल लहर जल झाग में, कोमल किरणें मेल ।
सूर्य सातों रंग भर, राम रिझाता खेल ।।६।।

* दोहा।

चम चमाते चारुतम, सुरूप सहस्त्रों धार ।
ललित लहर लीला लिए, आरति रहा उतार ।।७।।
गंगा-धारा हर्ष में, आती वायु समान ।
बन विनीत श्री चरण पर, करती अर्घ्य सुदान ।।८।।
जलचर नाना भाँति के, इत उत बने अवाक् ।
इक टक मोहनी मूर्ति, रहे राम की ताक ।।९।।
उतरे नौका से जभी, तट को ऊर्मी नीर ।
रघुपति दर्शन को यथा, दौड़ा बना अधीर ।।१०।।
†वन उपवन बहुविधि तरुमाला, हरित भरित शुचि शोभाशाला ।
चले निरखते गुरु-अनुगामी, राघव राज विजेता नामी ।।११।।
शुक पिक केकी नाद सुरीले, सारंग सारस स्वर रसीले ।
चातक चिड़ियाँ सब मधु बैना, महा मोहिनी मधुरी मैना ।।१२।।
नाना पंछी नाद सुहाते, सुनते अग्र चले सुखदाते ।
गंगा नद के पास विशाली, राजित था पुर शोभाशाली ।।१३।।
सुमति नाम था उसका राजा, न्याय नीति निपुण महाराजा ।
सुख सम्पत् सुकृत शुभ नाना, बढ़े वहाँ थे बहु धन धाना ।।१४।।
शान्त शुचि शुभ स्थान को पा के, टिके वहां वे सब तब जा के ।
भूपति ने जब यह सुन पाया, पुर में है मुनि कौशिक आया ।।१५।।
आया वह मुनि-दर्शन पाने, संग सेन जन सुजन सियाने ।
स्वागत आदर दे सम्माना, उसने वे पूजे ज्ञान-निधाना ।।१६।।
कुशल प्रश्न किये विधि सेती, जान फली निज सुकृत खेती ।
पूछा, कौन हैं? कुंवर निराले, देव तुल्य पराक्रम वाले ।।१७।।

† चौपाई।

रूप यौवन सम्पन्न प्यारे, सिंह हस्ति-गति शक्ति धारे ।
पग से चल ये क्यों कर आये?, रवि शशि सम शुभ-शोभा लाये ।।१८।।
बोले मुनि, राजन्! ये भाई, राम लखन हैं सब सुखदाई ।
दशरथ सुत रवि कुल के केतु, धर्म शक्ति बल सुकृत सेतु ।।१६।।
ताटिका-वध की कही कहानी, सिद्धाश्रम की कथा बखानी ।
उसने उनके बहु गुण गाये, वीर-कर्म सब बल बतलाये ।।२०।।
सुन भूप हर्षित हुआ ऐसे, देख चाँद चकोर हो जैसे ।
अतिथि परम उसने वे जाने, पूजन आदर से बहु माने ।।२१।।
रात रह वहाँ सुख से सारी, स्नान ध्यान कर विधि अनुसारी ।
प्रातः चले मुनि-मन हर्षाते, कथन-कला-रस सार बसाते ।।२२।।

*क्रम से चलते वे सब, आये मिथिला पास ।
देख एक उजड़ा पड़ा, आश्रम अति उदास ।।२३।।
रघुपति बोले, हे मुनि!, हरा भरा है देश ।
अस्त व्यस्त है क्यों कर, इसका यह प्रदेश ।।२४।।
राघव का सुन कर कथन, बोले मुनि सब जान ।
गौतम ने आ कोप में, किया पत्नी-अपमान ।।२५।।
छल-वश जानी दोषयुत, बोला देकर शाप ।
मुग्धे! मौन में रह सदा, करती ताप विलाप ।।२६।।
अन्न-अशन सब छोड़ दे, जन दर्शन दे टार ।
पापे! जाना अब कहीं, सर्वथा दे निवार ।।२७।।
पड़ी रहो रज भूमि पर, केवल लेती साँस ।
सूख जाय उपवास में, सभी तव मज्जा मांस ।।२८।।

* दोहा।

चलो चलें चल देखिये, नारी रतन महान् ।
काया कदली कुंज की, करे कष्ट में हान ।।२६।।
*करुण-कथा यह सुन कर सारी, जान वियोगिन दुखिया नारी ।
सदय हृदय दीन दुःखहारी, काँप उठे रघुपति इक बारी ।।३०।।
ऋषि, अनुज सह दौड़े आए, अन्य वार्ता मन से भुलाए ।
उसने देखी बेसुध ऐसी, कटी लता पड़ी हो जैसी ।।३१।।
सरित शरद् में ज्यों हो झीनी, घन-घिरी किरण शशि की हीनी ।
धूम्र घिरी अग्नि की ज्वाला, अति कृशा थी त्यों वह बाला ।।३२।।
धूलि-धूसर किये सब अंगा, थी वर्जित वह हर्ष तरंगा ।
कुहर बीच रवि मूर्ति जैसे, तेज रहित थी वह तब तैसे ।।३३।।
काले कोमल केश बखेरे, पड़ी धूल में नयन न फेरे ।
बनी अहिल्या काष्ठ समाना, तज कर वाणी अंग हिलाना ।।३४।।
करुणा कर कोमल मन के ही, हित कर सज्जन सब के स्नेही ।
पिघल गये राघव सभ्राता, दीन दुःखी जन के वर त्राता ।।३५।।
अनुज सहित निज कर फैलाया, चरण पकड़ कर उसे हिलाया ।
मूर्छा मग्न को तभी जगाया, सावधान, दे धृति बनाया ।।३६।।
सुधा सिंचित सचेत बनाई, राघव ने शुभ साख दिखाई ।
{विपत् घिरी नारी जो पाओ, पैर पकड़ विश्वास बैठाओ ।।३७।।
बहिन सुता सम हित दिखलाते, कष्ट हरो मर्यादा निभाते} ।
विद्युत्-बलवत् शक्ति समाई, उसमें गति मति पुनरपि आई ।।३८।।
मृदु मधुर मानव मनहारी, स्थिर शान्त गम्भीराकारी ।
ढारस शान्ति दीन को देते, सार वचन से दुःख हर लेते ।।३६।।

* चौपाई।

बोले राघव, धैर्य लाओ, थामो दिल मन शान्त बनाओ ।
राम लखन हैं लख कर सो ही, उन के पैरों पड़ अति रोई ।।४०।।
बोली, देव! दया दिल लाये, दीन के दुर्दिन दुःख भगाये ।
दोष दाह से दग्ध हुई को, तू ने किया सजीव मुई को ।।४१।।
चरण-शरण अघ-हरण तिहारी, शान्ति-करण मुद मंगल कारी ।
ताप शाप नाशक सुख देना, कर स्पर्श दुर्गुण हर लेना ।।४२।।
दुर्लभ दर्शन, देव! तुम्हारे, मिले मुझे जग तारण हारे ।
करी अकारण करुणा भारी, पति-परित्यक्ता नारी तारी ।।४३।।
सुन कुटी पर राम है आया, वायु-वेगवत् गौतम धाया ।
आदर अर्घ्य दान कर के ही, उसने पूजे सब के स्नेही ।।४४।।
{कहा राम ने मुनिवर सोचो, किये अपने कर्म आलोचो ।
काजल कोठी में जा वैसे, कालख कहिए लगे न कैसे ।।४५।।
कीचड़ में जन कूदे जो ही, रहे नहीं निर्लेप भी सो ही ।
जग में जन्मा जो जन प्राणी, है अलिप्त यह जाय न जानी ।।४६।।
प्राण-प्रिया पत्नी अति प्यारी, तजे नहीं धर्म गृह धारी ।
सती धर्म में साथिन मानी, प्रेम-रता गुण खान बखानी ।।४७।।
कर अवलम्बन से जो ब्याही, प्राण-प्रण से तजे न कदा ही ।
द्रोह द्वेष दुर्गुण दुःखदाई, पर निन्दा निज मान बड़ाई ।।४८।।
तजिए क्रोध कर्म कटु खोटे, वैर कपट छल छोटे मोटे ।
तजिए नहीं पत्नी सुत भाई, माता तात सन्मित्र सखा ही ।।४६।।
जातिक हित स्वदेश भलाई, होना दुखिया दीन सहाई ।
तजे नहीं सद्धर्म कभी भी, मरण विपत्ति आये जभी भी ।।५०।।
रोष दोष सब मन से छोड़ो, स्नेह संग का सूत न तोड़ो ।
क्षमा करो भूलो जो बीता, तजो नहीं यह पत्नी विनीता ।।५१।।

दिल की दुविधा दूर भगाओ, क्षीर नीरवत् फिर मिल जाओ ।
सार मर्म की सुन कर बानी, मुनि-नयनों से निसरा पानी ।।५२।।
राम-चरण वह छू कर बोले, राम-वचन सब हैं अनमोले ।
तज कर मन में संशय भारे, करूँ वचन जो आप उच्चारे} ।।५३।।
दश दिशा गई सुकीर्ति गाई, धर्म चाँद चमके रघुराई ।
तरुण ग्रीव पर सिर है ऐसा, बड़े अनुभवी का हो जैसा ।।५४।।
अचेत पड़ी त्यक्ता उद्धारी, गौतम नारी राम उभारी ।
धन्य-धन्य कह जनता सारी, राघव पर जाती तब वारी ।।५५।।
सुगम कलह का है सुलगाना, वैर विरोध विद्वेष बढ़ाना ।
बनी, वनी को दग्ध बनाना, फूट करा जन को दिखलाना ।।५६।।
पर कितने जन देखे जाते, बिगड़ी बनाते मेल मिलाते ।
जोड़े टूटे मन मोती को, कर सजग बुझी जी ज्योति को ।।५७।।
पर रघुपति की नीति अनोखी, मिलन मूल उत्तम थी चोखी ।
सब जन थे गुण गण तसगाते, शत-शत मुख जयनाद सुनाते ।।५८।।

पन्द्रहवाँ सर्ग

*अहिल्या को तब तार कर, ऋषि-संघ सह राम ।
शारद-शशि-शोभा लिये, शोभे शुभ अभिराम ।।१।।
जिस पथ से जाते सभी, नर नारी के पूर ।
आते दर्शन लाभ को, कर सब दुविधा दूर ।।२।।
तरुण अरुण रवि तेज सम, तरुण तरंगों साथ ।
नव नेता जन जानते, वीर धीर रघुनाथ ।।३।।
गुण गण गाते गर्व से, गौरव गरिमा मान ।
गुरु गिन गहरी भक्ति से, करके आदर दान ।।४।।

* दोहा।

नमस्कार करते सभी, जय जय राम उच्चार ।
कर में लिये कुसुमांजलि, देते शुभ उपहार ।।५।।
मंद हँस मिल मोद में, कोमल हस्त मिलाप ।
करके मिलते राम जी, कर शुभ मधुर अलाप ।।६।।
मिथिला बाहर वन सजे, भूमि भाग रमणीक ।
देखते आये वे सब, यजन स्थान में ठीक ।।७।।
कहा राम ने, देखिये, समतल शुचि भू-भाग ।
वहीं पर मुनि! विराजिए, सहित कर्म अनुराग ।।८।।
कौशिक अपने संघ सह, स्थान देख एकान्त ।
टिके कोण ईशान में, संघ सहित हो शान्त ।।६।।
स्वच्छ शुचि शुभ स्थान में, विमल नीर के तीर ।
सजी ऋषि की शिविर में, शोभे श्री रघुवीर ।।१०।।
देश-देश के थे वहां, शोभित सब नरराज ।
नर-नारी अनगिनत थे, मुनिवर सन्त समाज ।।११।।
सज धज सारे नगर की, थी पुर अमर समान ।
राज-भवन घर धनिक के, दीपे देव विमान ।।१२।।
स्वच्छ मार्ग थे सभी, सजी सर्व थीं हाट ।
मिथिला शोभा सहित थी, उत्सव सभा विराट् ।।१३।।
नगर निकट सम भूमि पर, सोहे मण्डप-राज ।
मंडित मणि मोती महा, उत्तम रहा विराज ।।१४।।
लह लहाते लाल वहाँ, लटकें लीला-मान ।
भानु-किरण को कण्ठ मिल, सुन्दर लगे महान् ।।१५।।
सूर्य भी आ कर मिला, किरण कर को पसार ।
रत्न-रश्मि से भानु बन, मण्डप सजा अपार ।।१६।।

*विप्र शुचि श्रुति गाथा गाते, आगम शास्त्र सर्व सुनाते ।
गूढ़ ज्ञान के निर्णय होते, सुन जन थे निज संशय खोते ।।१७।।
खेल मेल की सभा सुहातीं, समितियां मिली मुदित बनातीं ।
राग रंग शुभ होते गाने, नर्तन वादन जन मन-भाने ।।१८।।
मिष्ट मिलाप में मित्र प्यारे, मोद मनाते मिल कर भारे ।
हर्ष बड़ा सब पर था छाया, उत्साह सागर उमड़ा आया ।।१९।।
सुन कर कौशिक जी का आना, भूपति आया सज विधि नाना ।
सचिव पुरोहित सहित पधारा, था जहाँ मुनिवर का उतारा ।।२०।।
उसने नत हो वचन उच्चारे, हैं मुनि अहो! भाग्य हमारे ।
शुभागमन से मुनिवर तेरे, मंगल शिव शुभ हैं सब मेरे ।।२१।।
दर्शन से दी मान बड़ाई, उत्सव शोभा बढ़ी सवाई ।
योग-क्षेम पूछे मुनि जी ने, कुशल प्रश्न सुधा रस भीने ।।२२।।
कहा जनक ने आप बतायें, दिव्य युवक ये कौन कहायें ।
रूप यौवन सम्पन्न सुहाते, सिंह-हस्ति-गति शोभा पाते ।।२३।।
वृषभ तुल्य महा बल धारी, मधुर मोहिनी मूर्ति प्यारी ।
दीखें दिव्य देव ये दो ही, दैवी दीप्ति उतरी हो ही ।।२४।।
आई शोभा तन को धारे, सुन्दरता ज्यों आप पधारे ।
सृष्टि-सार सदेही हो के, सब शुभ उतरा मानव लोके ।।२५।।
भव्य विभूति भुवन की सारी, भारत भूतल पर अवतारी ।
हो आई सुख सम्पद् देनी, तरुण रूप में मन हर लेनी ।।२६।।
शिष्ट शील शुचि शोभा शाली, सोम शान्त यथा अंशुमाली ।
हँस मधुर, मुनिवर मधुभाषी, शिष्य सुयश के अति अभिलाषी ।।२७।।

---
* चौपाई।

बोले राजन्! तरुण दुलारे, हैं दशरथ सुत गुण भण्डारे ।
सुन्दर मधुर राम सुखराशी, है ज्येष्ठ सब विघ्न विनाशी ।।२८।।
गौर वर्ण सुख करण सुहाना, शूरवीर लक्ष्मण जन जाना ।
गुण गण गाय सके न गणेशा, महिमा कह सके न महेशा ।।२९।।
ताटका वध की कह कहानी, सिद्धाश्रम की जीत बखानी ।
अहिल्या-दुख मोचन होना, गौतम के सब दुखड़े धोना ।।३०।।
कही कथा कौशिक ने ऐसी, अथ से इति तक जो थी जैसी ।
पुनरपि ऋषि बोले हर्षाते, शिष्य-सुगुण उत्कर्ष बताते ।।३१।।
बल पराक्रम दिव्य निराले, इन के हैं सब वर्णन वाले ।
मिलन कथन से सर्व लुभाते, सर्व-प्रिय हैं बनते जाते ।।३२।।
मुनि-मण्डल ने मुखिया माने, आर्य गण ने पालक जाने ।
जितने हैं मुनि जन वनवासी, अग्रणी बने उन के सुखरासी ।।३३।।
मुनि जनों की आश बँधाते, असुरों की काया कँपाते ।
मेरे संग यहाँ हैं आये, उत्सव-दर्शन रूचि मन लाये ।।३४।।
इन्हें समय पर धनुष दिखाना, बल परिचय की बात बनाना ।
प्रिय वचन सुन नृप हर्षाया, राम लखन पै चलकर आया ।।३५।।
बोला पितृ-भाव दिखाता, स्नेह शुचि मन वचन में लाता ।
घड़ी धन्य अवसर मैं मानूँ, शुभ सूचक तव आना जानूँ ।।३६।।
दशरथ सुत का दर्शन देना, स्नेह सूत है नव कर लेना ।
शुभागमन की थी बहु आशा, वन जाना सुन हुई निराशा ।।३७।।
दैव-योग से विधि बन आई, आश लता मेरी फल लाई ।
स्वागत आदर से मैं चाहूँ, अब आप को साथ ले जाऊँ ।।३८।।
स्थान नहीं है यह तो ऐसा, राजपुत्र के रहने जैसा ।
राज-भवन में वास बनाना, होगा मेरा मान बढ़ाना ।।३९।।

अभ्युत्थान प्रणाम किये ही, राघव ने बहु मान दिये भी ।
कहा, दया है देव! तुम्हारी, जो करी यह अनुग्रह भारी ।।४०।।
पर गुरु संग रहे दिन राती, शुभ संगति यह तजी न जाती ।
महापुरुष का संग सुहाना, पुण्य कर्म परिणाम बखाना ।।४१।।
संत-संग मुद मंगल देना, कहा अज्ञान तिमिर हर लेना ।
कमल-कुंज अलि तजै न जैसे, ऋषि-पद पद्‌म भी मम मन ऐसे ।।४२।।
आदर देकर राघव से ही, विदा हुए तब जनक विदेही ।
निज-भवन में राजे तथा ही, मेरु पर शशि शोभे यथा ही ।।४३।।

सोलहवाँ सर्ग

*शतानन्द शुभ नाम से, अहिल्या-सुत गुण धाम ।
राज पुरोहित था गुणी, उस ने पूजे राम ।।१।।
माता-दुःख मोचन सुन, महा मोद के साथ ।
मधु-कर बन श्री चरण पर, उसने नत कर माथ ।।२।।
कहा कुशल है मात मम?, पिता बहुत आनन्द? ।
वंश बचाया आप ने, रामचन्द्र! सुख कन्द ।।३।।
श्रीमुख से सब सुन कथा, अथ से आदि उपान्त ।
वह तो गद्‌गद् हो गया, हर्षित सुखिया शान्त ।।४।।
गाता गुण गण राम के, जाय लगा निज काम ।
यश वर्णन रघुराज का, करता सब दिन याम ।।५।।
चहुँ ओर चर्चा चली, चारु चरित के गीत ।
गाते थे जन चाव से, किये चित्त से प्रीत ।।६।।

* दोहा।

रामचरित की चाँदनी, चमकी चारों ओर ।
उसके नाम से रिक्त न, रहा किनारा कोर ।।७।।
नागर जन मंडल बने, आते दर्शन काज ।
जनपद के गण संघ ने, पूजे राघव-राज ।।८।।
जैसे सागर ओर सब, सरित करें संचार ।
ऐसे राघव ओर था, रहा बन्ध जन तार ।।६।।
सब मन मुख में एक था, जीभ होठ पर एक ।
राम-नाम गुण-ग्राम शुभ, तज कर कथन अनेक ।।१०।।
सब के नयनों में बसा, महा मनोहर श्याम ।
हँसमुख मोहक मूर्ति, लखते जन अभिराम ।।११।।
भरा गया रस राम से, सारा मिथिला देश ।
गूँज भूतलाकाश में, गया सुनाम विशेष ।।१२।।
जहाँ जाय मिलता यही, राम नाम गुण गान ।
बल यश गुण कहते सभी, है यह पुरुष महान् ।।१३।।
राम रंग रंजित हुए, जन गण नागर लोक ।
राम-रूप मोहित किये, हर कर चिन्ता शोक ।।१४।।
*आगामी दिन सभा लगा के, भूपति ने सब सचिव बुला के ।
कहा आज तक बहु दिन बीते, शक्ति शाली कोई न जीते ।।१५।।
देख धनुष को सब मन हारे, कोई बढ़े न हस्त पसारे ।
कर मंडप की आज तयारी, फिर निमंत्रित जनता सारी ।।१६।।
कर के, राजे सर्व बुलाओ, उचित सभी प्रबन्ध रचाओ ।
घोषणा हुई आये राजे, यथा योग्य वे सब विराजे ।।१७।।

---

* चौपाई।

नारी नर गण शोभा ऐसा, नभ में तारा गण हो जैसा ।
वेश विभूषित थे जन ऐसे, खिले कमल सर में हों जैसे ।।१८।।
मोती मणि-मंडित मुस्काता, मण्डप सजा महा मधुराता ।
सूर्य सम था शोभा पाता, नयन पात पर चित्त लुभाता ।।१६।।
उस में धनुष धरा था सोई, उठा सका जिसे नहीं कोई ।
सहस्रों बाण सजे जिस में थे, घण्ट बड़े बँधे उस में थे ।।२०।।
महा धनुष अति बोझल माना, भूमि पर वह एक ही जाना ।
रुद्र-धनुष वह बोला जाता, एक अनूप था वह कहाता ।।२१।।
मंजूषा में था जिस में ही, पहिए आठ लगे उस में ही ।
जन अनेक खींच उसे लाये, मण्डप बीच सजा दिखलाये ।।२२।।
किया गया घोषित उस बेरी, उच्च नाद से ज्यों ही भेरी ।
विदुषी सीता जनक दुलारी, है किया उसने प्रण भारी ।।२३।।
दिव्य धनुष जो वीर उठाये, वर माला वह मेरी पाये ।
घोषणा सुन योद्धा जन धाये, बल अपने सभी ने लगाये ।।२४।।
धनुष उठा न सके वे शूरे, बल शक्ति में वीर भी पूरे ।
थके जभी सब शूर करारे, राघव ने मुनिराज निहारे ।।२५।।
कहा, मुने!मैं मन में चाहूँ, देखूँ धनुष निकट तर जाऊँ ।
अनुमति दे ऋषि वर हर्षाये, राम उठे शुभ शोभा लाये ।।२६।।
उदित भानु सम तेजोराशी, कमल नयन मुख शशिप्रकाशी ।
रत्न जड़ित सिर मुकुट सुहाये, कानों में कुण्डल लहराये ।।२७।।
मुकुट-मणि ने किरण निकालीं, सूर्य किरणें साथ मिला लीं ।
सुवर्ण डोरियां बहु सुहाईं, भूतल से नभ तक फैलाईं ।।२८।।
जग मग मस्तक जन मन मोहे, रवि मण्डल मण्डप में सोहे ।
शस्त्र सजा तन शोभा देता, सुरपति सम सुर मन हर लेता ।।२६।।

कोमल कल्प लता सी काया, उस पर सुन्दर रूप सवाया ।
रतिपति जिसको देख लजाये, उपमा जिसकी कहीं न पाये ।।३०।।
रूप लावण्य हो साकारी, बसा देह में हो अवतारी ।
अद्‌भूत मूर्ति लख सुखकारी, मोहित सभा हुई तब सारी ।।३१।।
मन वच तन जन एक बना के, दृष्टि इक टक रहे टिका के ।
सबके मन में राघव राजे, नयनासन पर वही विराजे ।।३२।।
शोभे राम सभा में आते, यौवन रूप वसन्त बसाते ।
नर केसरी वर वीर प्यारे, मूर्ति बन शक्ति ज्यों पधारे ।।३३।।
राजहंस हाथी वत् जाते, मन्द स्मित से सजे लुभाते ।
सहस्रों नयन अन्य पथ त्यागी, बने राम-अनुचर अनुरागी ।।३४।।
एकी भूत समय था सो ही, एकाकार रहे जन हो ही ।
राघव ने जा धनुष उठाया, लीला में अति खींच चढ़ाया ।।३५।।
तोड़ा तुरत तान कर त्यों ही, कमल नाल गज तोड़े ज्यों ही ।
सुन कर घोष धनुष टंकारा, कांपा जन मण्डल वह सारा ।।३६।।
झंझावात से ज्यों बनराई, सभा नाद ने त्यों कंपाई ।
वज्रपात सा था दहलाना, अति भयंकर भूकम्प समाना ।।३७।।
भूम्याकाश फटा हो मानो, भीषण नाद तथा था जानो ।
भीरु जन भयभीत हो भागे, अचेत हुए बहु स्मृति त्यागे ।।३८।।
हों चकित चित्त, चेत सियाने, बल कर्म लगे उसके गाने ।
सबने शुभ शुभ नाद उचारा, धन्य धन्य श्री राम पुकारा ।।३९।।
जय जय राम की गूंजी तथाही, एक जीभ हो सभा यथा ही ।
वृष्टि पुष्प गई बरसाई, सब दिश से शुभ मिली बधाई ।।४०।।
सन्तुष्टि नृप मुनि ने पाई, राम-विजय सुन सिया हर्षाई ।
वरमाला उसने पहराई, राम-कण्ठ में अधिक सुहाई ।।४१।।

मंडप-मणि थे जगमगाते, रवि बिम्ब उनमें चमचमाते ।
राम मुकुट से रश्मि मिलाते, सहस्रों रवि रहे जय मनाते ।।४२।।

सत्रहवाँ सर्ग

*सभा विसर्जन हो गई, विदा हुए जनराज ।
मंत्रि-मंडल में तभी, बोले जनक विराज ।।१।।
अवधपुरी को भेजिए, सचिव कुशल गुणखान ।
शीघ्र दशरथ को यहाँ, ले आवें दे मान ।।२।।
सचिव भूप आदेश से, नीति-निपुण बलवन्त ।
सजधज से, सब शुभ लिये, चले चतुर मतिमन्त ।।३।।
रथ घोड़ों का बहु सजा, वायु वेग गतिमान् ।
जाय पहुँचा अवध में, चौथे दिन वह यान ।।४।।
सचिव सियाने जनक के, मिले भूप को आप ।
बहु आदर सम्मान से, करते विनय अलाप ।।५।।
हाथ जोड़, बोले वे, अहो! धन्य अवधेश! ।
यह मिथिलेश नरेश का, है मंगल सन्देश ।।६।।
आओ राम विवाह में, दल बल सज्जन साथ ।
मुझ पर कृपा अनुग्रह, होगी तव रघुनाथ! ।।७।।
कथा स्वयम्वर की सब, अथ से अन्त बखान ।
रामचन्द्र की कीर्ति, करि उन्होंने गान ।।८।।
समाचार सुन सुतों के, उस के फूले गात ।
रोमांचित हो हर्ष में, गद्गद् बोले बात ।।६।।

---

* दोहा।

कर्ण-मधुर कह कर कथा, आप किया उपकार ।
रोम रोम मेरा सभी, माने अति आभार ।।१०।।
करिए श्रम सब दूर अब, सुख से किये विश्राम ।
ऐसे उनको कर विदा, बोला वह गुण-धाम ।।११।।
सुमंत्र! सुसज्जा कीजिए, कोश सुबल चतुरंग ।
लीजिए बंधुवर्ग भी, पंच पुरोहित संग ।।१२।।
दे आज्ञा रणवास में, आया वह तत्काल ।
समाचार दे सुतों का, यों बोला भूपाल ।।१३।।
मिथिला में है राजता, सानुज मेरा राम ।
मुद मंगल में मग्न है, महिमा से अभिराम ।।१४।।
चमत्कार चका चौंध के, कर के कर्म कठोर ।
पराक्रमी सुत गुणनिधि, पुज रहा सभी ठौर ।।१५।।
जनक-सुता सीता शुभा, गौरी सुगुण निधान ।
वरमाला से राम ने, वर ली पाकर मान ।।१६।।
उत्सव यहाँ मनाइए, गा कर मंगल गीत ।
दान दक्षिणा दीजिए, करिए सब शुभ रीत ।।१७।।
पुत्र-मिलन के चाव से, मैं जाता हूँ आज ।
भरत शत्रुघ्न संग ले, सज्जन सभ्य समाज ।।१८।।
सुतोंकासुनकरयशबहुत, मातृ-मन में मोद ।
उमड़ा सागर सात बन, करके अति अनुरोध ।।१९।।
स्वस्ति शुभ उपचार कर, मंगल शकुन विचार ।
सगे स्नेही सुजन सहित, भूपति हुए तयार ।।२०।।
सब शुभ सूचक कर्म कर, राजा कर प्रस्थान ।
पहुँचे मिथिला में वे, सेना लिये महान् ।।२१।।

अधिकारी गण सचिव ने, दिया उसे अतिमान ।
स्वागत अभ्यागमन सहित, कर अभिनन्दन दान ।।२२।।
मुख्य स्थान पर जनक जी, सहित सचिव प्रधान ।
बड़े बंधु सब संग ले, दे मिले अभ्युत्थान ।।२३।।
कर-पीड़न करके मिले, दोनों महा मतिमान् ।
दशरथ भूपति जनक मिल, सोहे शक्र समान ।।२४।।
कुशल क्षेम सब पूछ कर, कर के मधुर मिलाप ।
शिष्टाचार अति प्रेम से, सहित मिष्ट संलाप ।।२५।।
दिया उतारा जनक ने, राजा के अनुकूल ।
सजा स्वच्छ सुहावना, सहित भोग फल-फूल ।।२६।।
*राम लखन सुन भूपति आये, दौड़ मिले शुभ सीस नवाये ।
दशरथ ने दोनों सुत प्यारे, कण्ठ लगाये बहुत दुलारे ।।२७।।
कहा, अहो! निज वंश बढ़ाया, मान देश जन में है पाया ।
कर्म किए सब तुम ने सो ही, रघुवंश में शोभते जो ही ।।२८।।
है मम धन्य जन्म जग आना, धन्य हुआ रघुराज कहाना ।
वीर धीर सुत तुम सम पा के, सफल हुआ मैं पितृ कहा के ।।२९।।
{जन्मा जगत् में वही कहाये, जिस से वंश जाति यश पाये ।
जातिक जीवन जोत जगाये, जाति-जीवन सतेज बनाये ।।३०।।
करे सजग जनता, जन जो भी, जाना जग जीना शुभ सो भी ।
वैसे गीध काक हैं जीते, मल से भरते भीतर रीते} ।।३१।।
चारों भ्रात मिले अति प्रेमी, स्नेही परस्पर बन्धु नेमी ।
मीठा मिलना मोद मनाते, मधुर रमण में मन बहलाते ।।३२।।

* चौपाई।

राज पुरोहित वरतर आया, शुभ सन्देश जनक का लाया ।
आशिष वह दशरथ को दे के, सविनय बोला अनुमति ले के ।।३३।।
राजन्! मंगल कर्म कराओ, शान्ति-करण शुभ शकुन मनाओ ।
पूर्व कर्म सभी हैं जेते, करिए सर्व विघ्न हर लेते ।।३४।।
गये पुरोहित कर्म बताते, धर्म-ग्रन्थ से रीति सुनाते ।
सब ने षट् रस भोजन खाये, हर्ष सहित सब स्वाद लगाये ।।३५।।
सोये सुख से रजनी सारी, प्रातः जगे सुव्रत के धारी ।
स्नान ध्यान पूजन करके ही, प्रातराश लिये सब ने ही ।।३६।।
प्रातः काल जनक नृप जागे, हुए कर्मरत आलस त्यागे ।
कुशध्वज बंधु सहित सुहाये, सचिव सुदामा गये बुलाये ।।३७।।
कहा उसे, दशरथ पै जाओ, विनय सहित संदेश सुनाओ ।
मंत्री मुख्य तुरन्त पधारा, अवध-भूप का जहाँ उतारा ।।३८।।
अनुमति ले बोला शुचि वाणी, सहित विनय रस सुधा वर्षाणी ।
राजन्! अवध-पुरी के स्वामी, गुण-गण घर दश-दिश में नामी ।।३९।।
श्री जनक अब मिलना चाहें, ससुत श्रीमानों को बुलायें ।
बंधु सुतों सह ले कर राजे, दशरथ, जनक समीप विराजे ।।४०।।
श्रेष्ठ शैली सर्व निभाते, दोनों मिले सुहर्ष बढ़ाते ।
बोले दशरथ, वंश हमारा, वशिष्ठ गुरु जाने है सारा ।।४१।।
वंशावलि वशिष्ठ सुनाने, लगे वंश के भूप गिनाने ।
सूर्य पहला है जग जाना, वंश पुरुष वर देव बखाना ।।४२।।
इक्ष्वाकु था आदिम राजा, बसा अयोध्या बहुत विराजा ।
कुक्षि विकुक्षि राजे बताते, गये सभी के नाम गिनाते ।।४३।।
बोले, सगर हुआ अति शूरा, धर्म कर्म सब गुण में पूरा ।
असमंजस सुत उसका जानो, अंशुमान उसका सुत मानो ।।४४।।

तस सुत रहा दलीप सुहाई, उसका भागीरथ था सुखदाई ।
ककुत्स्थ उसका तस रघुराया, तस पुत्र प्रवृद्ध बताया ।।४५।।
अम्बरीष उसका बतलाया, तस सुत नहुष गया है गाया ।
उसका ययाति माना दानी, नाभाग था तस सुत सुज्ञानी ।।४६।।
उसका अज था शोभाशाली, उसके आप हैं अंशुमाली ।
राम लक्ष्मण हैं ये सुहाने, दशरथ-सुत गुण तेज निधाने ।।४७।।
दिव्य देव हैं दोनों भ्राता, दो देव! दोनों का सुनाता ।
ऊर्मिला लक्ष्मण साथ ब्याहो, वीर धीर उत्तम वर पाओ ।।४८।।

अठारहवाँ सर्ग

* सुनकर मुनि वर के वचन, कर सहर्ष स्वीकार ।
जनक ने अपने वंश का, स्वयं कहा विस्तार ।।१।।
विश्वामित्र वशिष्ठ ऋषि, बोले, हे मिथिलेश! ।
उत्तम कुल है आप का, उत्तम वंश विशेष ।।२।।
दोनों अवध विदेह के, सर्व उच्च हैं वंश ।
इनमें न है अधर्म का, यत्किंचित भी अंश ।।३।।
इस लिए चाहें हम अब, भरत शत्रुघ्न भ्रात ।
कुशध्वज-कन्या दो संग, ब्याहो कर शुभ बात ।।४।।
रूप यौवन सम्पन्न हैं, चारों राजकुमार ।
एक साथ ही कीजिये, सब शुभ मंगलाचार ।।५।।
कहा जनक ने कर विनय, कहते हैं जो आप ।
हर्षसहित स्वीकार है, हे ऋषियो! निष्पाप ।।६।।

* दोहा।

उसी समय अवधेश ने, कर सभी शिष्टाचार ।
जाने को जनवास में, अनुमति ली सविचार ।।७।।
किये विदा उसने तभी, अनुव्रजा के साथ ।
वैवाहिक शुभ सब किये, मुनि ने अपने हाथ ।।८।।
अगले दिन मंगल समय, सज कर सर्व बरात ।
चलने को उद्यत हुए, जन सज सुन्दर गात ।।९।।
† चले सज कर बराती जब, सभी जन देखने आये ।
पुरोहित मिल मुनि गण ने, सरस सुर साम के गाये ।।१०।।
बजे बाजे मनोगम तब, छटा, छवि झलमलाती थी ।
सब संघ वेश जग मग से, सुवर्ण-सागर हो लहराये ।।११।।
किये मंगल सभी शुभ शिव, शकुन स्वस्ति मनाने से ।
दशरथ सचिव नृप सुत सह, उदित शुचि चन्द्र सुहाये ।।१२।।
गले में हार हीरों के, कर्ण कुण्डल लहराते ।
रत्न-मंडित मुकुट सिर पर, मणि महामोल चमकाए ।।१३।।
मिलाते किरण सूर्य से, सुशोभित राम थे जाते ।
किये तन केसरी जामा, जनों के चित्त को भाये ।।१४।।
सजे शुभ अश्व पर बैठे, मणि हीरों की चम चम से ।
मुग्ध मन चित्त जन कहते, कि सरथ सूर्य उतराये ।।१५।।
मधुर मुख कमल पर जन मन, बन कर भ्रमर थे बैठे ।
निरखते नयन निर्मिष से, अतुल शोभा जभी लाये ।।१६।।
करते कुसुम की वर्षा, पुकारें नाद जय जय के ।
नगर के सर्व नर नारी, हर्ष सब परम को पाये ।।१७।।

† विधाता।

*सुघड़ सुडौल सबल शुभचारी, सुन्दर तन सुशील मनहारी ।
जिनकी तन सँहनन सुहानी, सामर्थ्य शक्ति-रूप बखानी ।।१८।।
बल पराक्रम की मूर्ति पूरे, तेज प्रताप सुरूप शूरे ।
गुणी गम्भीर वीर बराती, जाते थे जन गोती नाती ।।१६।।
तरुण तरंग सजी तरुणाई, उदित रवि सम लिये अरुणाई ।
वर तर वीर तरुण उत्साही, राम मीत जाते सुखदायी ।।२०।।
हंस हस्ति की गति थे जाते, कमल वदन रह-रह मुस्काते ।
हर्ष रंग सब पर छिड़काते, सुर तरु मानव रूप दिखाते ।।२१।।
सरस स्नेह रस रसिक रसीले, सार सैन स्मित से सजीले ।
राम राग रंगे रंगीले, शिष्ट सभ्य शुचि सुजन लजीले ।।२२।।
सुर सेना सम सभी सुहाते, सुर सम्पत् सज्जित मन भाते ।
उन में जाती राम सवारी, सुरपति सम सब शोभाधारी ।।२३।।

†मार्ग सभी स्वच्छ शुचि सुन्दर सुहाने थे,
सींचे गये सब सुगन्धि सहित जल से।
स्थान स्थान पर थे सजे सुनहले तोरण,
सोहें पुष्पमाला मणि झालर अमल से।
गृह हाट द्वार सब सुन्दर थे सज रहे,
शाल माला मोती मणि कुसुम कमल से।
झूलती थीं झण्डियां क्रीड़ा करतीं फूलों साथ,
बन्दनवार सद्वार, राजे झलमल से॥२४।।
राज पथ पर जन पाँति पर पाँति बान्ध,
खड़े देवदर्शन को, प्रतिमा समान थे।

---

* चौपाई। † कवित्त।

छतों पर चढ़े लोग, देव दुर्लभ देखें,
अट्टारियाँ चौबारे, भर रहे महान् थे।
नर-नारियों के गण से, छत्तें झुकी जाती थीं,
उतर रहे भूमि पर मानो विमान थे।
पुष्पवर्षा सहित छत्तें गर्जी जय जय से,
रत्नों की चमक से मेघ मण्डली मान थे।।२५।।
चारों लोकपाल लिये, जैसे जाय शचिपति,
दशरथ सुतों साथ, ऐसे ही थे जा रहे।
मंत्री पुरोहित सुजन, सहित सुहाये वे,
तारागण सहित पूर्णचन्द्र ज्यों आ रहे।
सेना चतुरंगिणी थी, सज्जित वीर गणों से,
सैनिक सब सुन्दर, गठित सुहा रहे।
ठन ठन, झन झन, चम चम करें शस्त्र,
टापों सहित अश्व नभ भूमि गुँजा रहे।।२६।।
धीरे धीरे जाते जब, गये यज्ञ द्वार पर,
जनक तब आये आगे, स्वागत दान को।
मण्डप के मानव तब उठे तुरन्त सब,
विनय शिष्टाचारयुत, देने उत्थान को।
द्वार पर मिष्टमेल मिले, मन मिले मीत,
कर वंश-विधि बहु वेद के विधान को।
समिधिमेलमिलसोहे, गंगा-जमुना मेल सम,
महा मोद माने, मिले मिलन समान को।।२७।।
मंडप में आ शोभे, सब शुभ आसनों पर,
वेदी पर विराजे भ्रात सहित श्री राम जी।

ज्योति के सामने ज्वलन्त, जगती जोत राजे,
रूप रंग राशि, अनुरागी अभिराम जी।
कोमल काले कुंचित केश, सोहे सुशुभ्र वेश,
हीरे मणि जड़ित मौर, धारे सिर श्याम जी।
दीप्ति लेकर द्युलोक, आया दिव्य देह धार,
दीखे ऐसे देव देवी रूप तेजो धाम जी॥२८॥
कुसुमों से सजी वेदी, कदली कलश सह,
हीरों के हार सह मोती माला सोह रही।
सुमणि झालर की जग मग झूम झाम,
अगर गुरु धूप की सुगन्धि थी हो रही।
अक्षत से स्राव भरे अंकुर के नाना रंग,
चित्रित सुवर्ण पात्री, मन को मोह रही।
बिछे बिछान छवि छटा विविध वर्ण लिये,
शोभा सशरीर बनी जहाँ आये तो रही॥२९॥

*ऋषि वशिष्ठ श्रुति शुचि गाते, शोभे सब शुभ कर्म कराते।
बोले जनक, राम! यह मेरी, सीता सुता हो पत्नी तेरी॥३०॥
धर्म रता है परम सुशीला, तव रता हो प्रेम की लीला।
तव काया की छाया ज्यों ही, बने तव अनुगामिनी त्यों ही॥३१॥
धर्मचरी तेरी बन के ही, साथ रहे यथा देह देही।
पाणि-ग्रहण करो सुखदाई, हों मंगल दें देव बधाई॥३२॥
कोमल कर तब राम बढ़ाया, शुभ हस्त सिया ने फैलाया।
कर में कर शुचि शोभा ऐसे, रवि-रश्मि हो चांद में जैसे॥३३॥

* चौपाई।

सुन्दर जोड़ी राजी ऐसी, सुरसरि सागर संगम जैसी ।
पुष्प सुवर्षा गई बरसाई, देते जय जय नाद सुनाई ।।३४।।
बजते बाजे मंगल कारी, शुभ ध्वनि सब जन ने उच्चारी ।
सौभागिन ने मंगल गाये, शुभ कहे सियाराम बधाये ।।३५।।
हर्ष भूप दोनों ने माना, सागर सुखमय उमड़ा जाना ।
सप्तपदी में राम सुहाये, रवि, उषा संग ज्यों ही जाये ।।३६।।
ज्योत्स्ना सहित शशि ज्यों घुमाये, धरणी का वह चक्र लगाये ।
परिक्रमा वेदी की लेते, ऐसे सोहे वे मुद देते ।।३७।।
मेरु के चहुँ ओर फिराता, ज्यों ज्योति सह सूर्य सुहाता ।
परिक्रमा अग्नि की लगाते, दम्पति थे त्यों परम सुहाते ।।३८।।
प्रण व्रत की बान्धि शुभ ग्रन्थी, सत्पथ के हुए दोनों पन्थी ।
एक कर्म धर्म व्रत धारे, एकाकार सुचरित विचारे ।।३६।।
सुखासुख स्वार्थ एक बना के, कोप कलह दुर्दोष मिटा के ।
अर्थ परमार्थ तक हुए ऐकी, शाख से शाख बान्ध हिये की ।।४०।।
मन हृदय से बन कर संगी, दो हुये एक ज्यों अंगांगी ।
यद्यपि दीखे सुदेह दो ही, पर हुए एक राम विदेही ।।४१।।
जोड़ी बनी आदर्श रूपा, व्रत धर्म में बहुत अनूपा ।
नारी नर शत जीभ सहराते, बार बार थे वारे जाते ।।४२।।
विधि के सहित कर्म कर सारा, आशिष वचन गुरु ने उच्चारा ।
सभी जनों से मिली बधाई, सभा सर्व सुहर्ष में आई ।।४३।।
{कितने होते हैं सद गृही, शुचि पूरे पति पत्नी पन के ही ।
प्राण-पण से प्रण में पूरे, यति सती व्रतधारी शूरे ।।४४।।
जो कपि कूकर क्रीड़ा कारी, कुर्कट काक कुचटक विहारी ।
वे क्या जानें गृह धर्म को, वैवाहित व्रत विधि मर्म को ।।४५।।

परम पुनीत प्रतीक प्यारी, रक्खें सम्मुख सब घर बारी ।
पुण्य रूप सिया राम सरीखी, उपमा जग में दुर्लभ दीखी} ।।४६।।

उन्नीसवाँ सर्ग

*उसी काल में हो गये, तीनों अन्य विवाह ।
हुए लक्ष्मण ऊर्मिला, संगी प्रेम अथाह ।।१।।
भरत माण्डवी भी बने, दम्पति गुण-गणवान् ।
शत्रुघ्न श्रुतकीर्ति, ब्याहे सहित विधान ।।२।।
पीछे मंगल कर्म के, दशरथ सुत जन संग ।
आये उतारे पर तब, मन में लिये उमंग ।।३।।
अगले दिन शुभतर समय, कौशिक ने प्रस्थान ।
किया जनक अनुमति सहित, पाकर मान महान् ।।४।।
राघव को चलते समय, मिले प्रेम के साथ ।
मन से आशिष दान दे, धरा पीठ पर हाथ ।।५।।
बोले मुनि गद्‌गद् हुए, हे वीर महाभाग ।
तेरे शक्ति शौर्य से, है मेरा अनुराग ।।६।।
धर्म धृति की हो धुरा, ऋषि गणों की लाज ।
आन बान हो जाति की, गुण-सिन्धु महाराज ।।७।।
नत हो कर बहु विनय से, दोनों कर को जोड़ ।
सजल नयन हो राम ने, कहा, न जाना छोड़ ।।८।।
सच्चा सेवक समझ मुझे, करियो सिमरन देव! ।
जाय न जन मन से यथा, ऐसी रखियो टेव ।।६।।

---

* दोहा।

दशरथ जी मिल जनक को, बोले हस्त मिलाय ।
अनुमति तो नरराज अब, हम को भी मिल जाय ।।१०।।
गाढालिंगन दान कर, कर-पीड़न कर भूप ।
दो मिले दिल देह मिले, सोहे स्नेह सुरूप ।।११।।
दे कर दान दहेज बहु, हीरे रत्न अपार ।
सुता जमाता को विदा, किया उसने सप्यार ।।१२।।
अनुव्रजा कर दूर तक, लौटे जनक नरेश ।
सेना स्वजन सचिव सह, अग्र बढ़े अवधेश ।।१३।।
*चलते आई घन वनराई, झंझावात ने भी कँपाई ।
मिट्टी कंकड़, झाड़ झंखाड़ा, तरुवर जिन को पवन उखाड़ा ।।१४।।
उड़ते फिरते काँटे कीले, तीखे वेधक बहुत नुकीले ।
छूते छेदें तन को छीलें, पीड़ा कर प्राणों को पीलें ।।१५।।
धूली धूसर हुआ नभ सारा, धरणी अधर थे धूली-धारा ।
भूतल नभ थे एकाकारा, दीखता नहीं हाथ पसारा ।।१६।।
लुप्त हुई दिश तम था छाया, दीख पड़े न कौन है आया ।
आँख कान थे मूँदे जाते, रूक रूक साँस सभी को आते ।।१७।।
ऊँचा नीचा स्थान न सूझे, एक की बात अपर न बूझे ।
अश्व हस्ति सब थे अकुलाते, विषम बने बेबस बिगड़ाते ।।१८।।
ऐसे स्थान समय में आगे, परशुराम आये अति भागे ।
हस्ति सम थे खड़े पथ रोके, उसने चलते राघव टोके ।।१९।।
वह खड़ा गिरी शिखर समाना, पास अति आ राम ने जाना ।
आँख किये दो काली पीली, दीप्त दीपक सी चमकीली ।।२०।।

---
* चौपाई।

त्योरी ताने नयन तरेरे, जीभ अधर पर फिर फिर फेरे ।
होठ चबाता था बल खाता, दाँत भी रह रह कटकटाता ।।२१।।
लाल भाल मुँह तम तमाता, आग बगूला बनता जाता ।
वैर वन्हि की ज्वाला माला, विषम विरोध रूप बल वाला ।।२२।।
तप्त ताम्र तुल्य परशु उठा के, बोला तीक्ष्ण वचन सुना के ।
जीर्ण शीर्ण धनु को तोड़े, आता है तू मूँछ मरोड़े ।।२३।।
महा धनुष चमकीला मेरा, ताने यदि बल देखूँ तेरा ।
बार इक्कीस वार कर मैंने, बाण विविध बरसा कर पैने ।।२४।।
क्षत्रिय दल बल बहुत निचोड़ा, अब तू बचे न मुझ से छोड़ा ।
दशरथ पद से सिर तक काँपे, प्राण रूके वे ऐसे हाँपे ।।२५।।
लक्ष्मण ने तब बात कड़ी से, छेड़ा वह ज्यों नाग छड़ी से ।
भार्गव! ले परशु को आना, भानु वंश-सुत से टकराना ।।२६।।
क्षत्रिय कर्म तुझे न सोहे, उचित काटना वन है तोहे ।
जटा जूट वनी हो दिखाते, बिन आई क्यों मरने आते ।।२७।।
जाओ यों न प्राण गँवाओ, क्षत्रिय सिर हत्या न चढ़ाओ ।
मानो वचन कहे जो मैंने, पड़ें नहीं लेने के देने ।।२८।।
सुन वचन वह अति झुँझलाया, कोपावेश वश तिलमिलाया ।
कहा राम ने, भार्गव! यों ही, कलह क्रोध करो कहो क्यों ही ।।२९।।
बहुत बुरा है वैर बढ़ाना, वृथा वाद विवाद बनाना ।
कह कर ऐसे साहस कीना, धनुष बाण उससे ले छीना ।।३०।।
बोले राघव बल युक्त बानी, भार्गव छाती को थर्रानी ।
उसी धनुष में बाण लगा के, भार्गव वक्ष में सीध जमा के ।।३१।।
जमदग्नि का पुत्र पहचाने, कौशिक भगिनी सुत ही जाने ।
अब तक मैंने बहुत विचारा, घातक बाण न तुझ को मारा ।।३२।।

{आततायी हत्यारा द्वेषी, देश द्रोही उद्दण्ड विशेषी ।
वंश विनाशक हिंसक मारे, धर्म न्याय सब वेद उच्चारे} ।।३३।।
गति भंग करूँ अब तेरी, घोर घमण्ड सर्व कर ढेरी ।
परन्तु यदि तुम बचना चाहो, फिर कभी जनपद में न आओ ।।३४।।
फेरो पीठ अभी ही जाओ, शूरवीर को मुख न दिखाओ ।
राघव-वचन से वह थर्राया, पानी रूप बनी तस काया ।।३५।।
अंकुश से हाथी मतवाला, जाय यथा तुरन्त सँभाला ।
जैसे सूर्य से तम भागे, त्यों मान मद भार्गव त्यागे ।।३६।।
हो कर शक्ति-तेज से हीना, बोला वचन विनय से दीना ।
बाण न छोड़ो मुझ पर ऐसा, करूँ वही मुझे कहो जैसा ।।३७।।
राम-बाण से यदि बच जाऊँ, तो फिर देश में, मैं न आऊँ ।
दीखा दीन-दमित अभिमानी, दया दान दे देव सुदानी ।।३८।।
बोले, दान अभय हूँ देता, तजूँ न बाण प्राण हर लेता ।
फिर कभी भी कलह न मचाना, मन में मद अभिमान न लाना ।।३६।।
{वीर जनों से छेड़ा छेड़ी, खाना खीर कठिन है टेढ़ी ।
बलधारी जब भी मिल जाते, दाँतों लोह चने चबवाते} ।।४०।।
भार्गव ने कहा सब माना, क्षीण शक्ति अपने को जाना ।
परिक्रमा कर पीठ फिरा के, टिका महेन्द्र गिरि पर जाके ।।४१।।
राघव ने तब बाण चलाया, उस की पद-भूमि में धसाया ।
जाते देखा वह यों हारे, देवों ने जय नाद पुकारे ।।४२।।
{कुहठी हिंसक घोर घमण्डी, अकरुण क्रूर कुटिल पाखण्डी ।
कुल-घातक जन वंश विरोधी, जाति नाशक अकारण क्रोधी ।।४३।।
दण्ड से वे सुधारे जाते, वश घोड़े कोड़े से आते ।
समझा सकें न जिनको बातें, उनको पथ पर लाती लातें} ।।४४।।

जान भय से भार्गव भागा, वीर-वैर उसने है त्यागा ।
राम-बाण के सीधे होते, तुरन्त उड़े उसके सभी तोते ।।४५।।
दशरथ चेतनता में आये, कुशल देख तब बहुत हर्षाये ।
क्षत्रियपन की बढ़ी बड़ाई, राम ने व्याधि विषम मिटाई ।।४६।।

बीसवाँ सर्ग

*दिशा शान्त सब हो गईं, आगे बढ़ी बरात ।
खिले कमल मुख सर्व के, देख मिटे उत्पात ।।१।।
समर घरेलू जो रचा, भार्गव ने विकराल ।
रघुपति ने उसको किया, सर्व शान्त तत्काल ।।२।।
चलते पहुँचे वे सब, पुरी अयोध्या पास ।
वह शोभा से सज रही, जैसे शक्र निवास ।।३।।
धूम धाम से राज पथ, सजे शुचि स्वच्छ महान् ।
थे सुन्दर शोभित सिक्त, जैसे सुरपुर स्थान ।।४।।
तोरण माला से सजे, ध्वजा रहीं थीं झूम ।
धूप सुगन्धित वस्तु-पथ, गन्धित बने सधूम ।।५।।
स्वागत यात्रा का हुआ, शोभा सहित विस्तार ।
पुष्पवर्षा जय घोष से, दे कर भेंटें हार ।।६।।
वर वधुओं के रथ सभी, सुवर्णमय सुखरूप ।
मोती माला कुसुम से, सोहे तेज सुरूप ।।७।।
मणि मुक्ता की झालरें, झूमें हीरों संग ।
उन से सूर्य रश्मि सम, निसरे तेज तरंग ।।८।।

---
* दोहा।

दम्पति सुन्दर शुचि सजे, जग मग धर शुभ वेश ।
भूषण भूषा भव्य से, सोहे सर्व विशेष ।।६।।
महा मनोहर राम का, सज्जित रथ अनमोल ।
मीठे झन झन नाद से, करता अधिक किलोल ।।१०।।
झालर की लड़ियाँ ललित, मणि-कड़ियाँ चक चौंध ।
करतीं रह रह झूल कर, बिजलीवत् बहु कौंध ।।११।।
उनके हीरे लाल सब, लहके मन अनुकूल ।
सहस्त्रों शोभे बिम्ब रवि, उनमें झूलें झूल ।।१२।।
रथ में माधुरी मूर्ति, इन्द्र शची समान ।
सोहे दोनों वर वधू, सुन्दर सुगुण निधान ।।१३।।
राज भवन अति दिव्य में, सब करते झनकार ।
रथ पहुँचे जय जय कह, सबने किया सत्कार ।।१४।।
वर वधुओं को मात मिल, मानीं मोद-उल्लास ।
मंगल स्वस्ति सर्व कर, दिए उन्हें आवास ।।१५।।
*{सिया को देखने मिलकर, नगर की नारियाँ आतीं ।
जगती ज्योति बनी उज्ज्वल, खिली फुलवारियां आतीं ।।१६।।
सजी सब वेश सुन्दर से, जड़ित भूषण भले धारे ।
सजे सिंगार हारों से, कि केसर क्यारियाँ भातीं ।।१७।।
मिले दर्शन बहुत उत्तम, महा मोहिनी मूर्ति के ।
मिली मोहित मधुर मन से, कि महिला वारियाँ जातीं ।।१८।।
मग्न महा रूप राशि में, अनुपम सौन्दर्य सिन्धु में ।
सुध बुध भूल सभी अपनी, कि गहरी तारियां खातीं ।।१६।।
पहले परिचय पावन ने, पिरोई प्रेम तारों में ।
पड़ पुंज प्रेम में पल पल, परम सुख प्यारियां पातीं ।।२०।।

---

* विधाता।

कमल मुख से हिरण-नयना, सुशोभित केश तिलकों से ।
शुभागम शकुन शुभ मंगल, गायन सुचारियां गातीं} ।।२१।।
{कहें जनियाँ घराने की, बहू सुन्दर हमारी है ।
दिव्य है दीपती देवी, सुशीला शान्त प्यारी है ।।२२।।
भरी गुण ग्राम से गौरी, कि गरिमा ज्ञान की गंगा ।
शशि-मुखी शोभती ऐसे, कि सूर्य-ज्योति सारी है ।।२३।।
महा मोहक मधुर मुखड़ा, मिलन मधु मिष्ट से मोहे ।
सुरों की सम्पदा शोभा, सर्व ही आ पधारी है ।।२४।।
धर्म धर कर यथा काया, सिया के रूप में आया ।
सर्व रस सार सब जग का, समुच्चय रूप नारी है ।।२५।।
निपुण कही, नीति रीति में, वह सुमति बुद्धिमती विमला ।
भुवन भावन विभूति का, भवन यह भव्य भारी है} ।।२६।।
*राज-मन्दिर सभी सुन्दर, रत्न हीरों से जड़े ।
सजे सोहे देवपुर सम, सुवर्ण मुक्ता से मढ़े ।।२७।।
सभी राजकुमार उनमें, मोद सुख थे मानते ।
रमण रंजन हर्ष में वे, काल चाल न जानते ।।२८।।
कहा दशरथ ने भरत को, पुत्र केकय राज के ।
युधाजित मातुल तुम्हारे, मुकुट राज समाज के ।।२९।।
जनकपुरी में थे आये, सहित शुभ सन्देश के ।
ले जाना चाहें तुमको, साथ प्रेम विशेष के ।।३०।।
शत्रुघ्न सह जाइए अब, संग मामा के वहाँ ।
मातामह से मिल बहु दिन, आइयो सुख से यहाँ ।।३१।।
पिता-चरण को सविनय से, भरत ने कर वन्दना ।
साथ शत्रुघ्न जा पूजे, राम पाप निकन्दना ।।३२।।

---

* गीतिका।

भाव-पूर्ण भ्रात चारों, भक्ति भावुक पन धरे ।
गले मिल कर मिले मीठे, मोह ममता मन भरे ।।३३।।
भरत के तब गये पीछे, पितृ-सेवा सब सदा ।
राम लक्ष्मण नित्य करते, भूल चूक न कर कदा ।।३४।।
थे राघव आदर्श पुत्र, पितृ-भक्त विशेष थे ।
अनुशासन पालते सदा, भूपति का अशेष थे ।।३५।।
विनय नम्र विनीतपन से, पितृ-सेवा साधते ।
मन वचन तन एक करके, भू-देव आराधते ।।३६।।
राज-काज में रूचि रखते, भाग लेते काम में ।
देश पुर के लोग सब ही, स्नेह रखते राम में ।।३७।।
रीति प्रीति नीति न्याय से, कर्म कोमल मान से ।
सहानुभूति सहायता से, सहयोग से दान से ।।३८।।
प्रजा प्रिय हो गये वे, अल्पतर ही काल में ।
जनताकाविश्वासथाअति, राम पुरुष दयाल में ।।३९।।
राम जन-चित्त चन्द्र था, लोक-नयन चकोर थे ।
राम-गुण गण प्रेम बादल, देश-जन सब मोर थे ।।४०।।
राम मधुमय कोष में जन, मन कुसुम रस एक थे ।
एकता में मधुर सब थे, नहीं पक्ष अनेक थे ।।४१।।
राम सुर-सितार जब कभी, करे सुर झंकार जो ।
सभीजन-मनएकमुखबन, बजते तदनुसार हो ।।४२।।
मोती माणक पुष्प हीरे, जन सभी थे हो रहे ।
राम तागे में पिरोये, हो माला सोह रहे ।।४३।।
मधु-करियां जायें पीछे, निजू राणी के यथा ।
सर्व जन दल राम पीछे, एक हो चलते तथा ।।४४।।

बने नेता प्रिय सब के, राज-कार्य में लगे ।
राम-राज्य में देश के, पुण्य सुकृत सब जगे ।।४५।।
न्याय नीति ज्ञान गुण गण, बुद्धि मति साकार हो ।
बल तेज शक्ति ज्यों आये, राम मय अवतार हो ।।४६।।
उन्हें ऐसा जानते थे, जन अजान सुजान भी ।
जी जीवन जनता जग का, जाति-ज्योति निधान भी ।।४७।।
पेड़ पानी से पले ज्यों, प्राण से प्राणी पले ।
रघुपति से प्रजा पालन, पाय कहते जन भले ।।४८।।
सूर्य से ज्यों मिले उष्मा, प्राण जीवनवान् को ।
तेज साहस उष्मा दाता, कहा जानी जान को ।।४६।।
राम सीता को प्रिय था, अधिक अपने प्राण से ।
राम को प्यारी सिया थी, अधिक निज जी जान से ।।५०।।
गुण-गुणीवत् एक मन से, शब्द अर्थ यथा मिले ।
राम सीता एक थे ज्यों, कुसुम सुगन्धि सह खिले ।।५१।।
सदा सीता साथ रहती, भर्त्ता की अनुसारिणी ।
चन्द्र-कला सम वह मिली, सुकर्म धर्माचारिणी ।।५२।।
अनूप उपमा दम्पति की, देते पति पत्नी सभी ।
प्रेम-पथ में थे प्रमाण, परम पावन वे तभी ।।५३।।
*बाल काण्ड का पाठ, देता शुभ मंगल नवल ।
सबल शक्ति का ठाठ, हो घर जन मन में सदा ।।५४।।

* सोरठा

अयोध्या काण्ड

पहला सर्ग

*मातामह के गृह में, भरत सहित निज भ्रात ।
बसते थे सुख कुशल से, मुदितमना दिन-रात ।।१।।
मातुल ने अति मोद से, अत्याग्रह के संग ।
बहुत काल न किया विदा, उसको लिए उमंग ।।२।।
तात मात वर भ्रात को, सिमरन कर बहु बार ।
बातें करता राम की, कर वह बड़ा विस्तार ।।३।।
गद्गद् होकर भी कभी, अपना प्रेम उद्गार ।
सजल नयन मधु बयन से, करता बहु प्रकार ।।४।।
अश्वपति नृप-निकट रह, दोनों भाई धीर ।
मात-पिता को कर सिमर, होते बहुत अधीर ।।५।।
दशरथ सिमरन भरत को, करते पुलकित गात ।
रस सरसाते स्नेह वश, करके उसकी बात ।।६।।
पुत्र-प्रेम प्रवाह में, पड़ कर भूपति आप ।
पुन-पुन प्यारे पूत का, कहते कथा कलाप ।।७।।
सदा स्नेह रस से सने, स्वर शब्दों के साथ ।
सिमरन करते सह सिया, सब दिन सीतानाथ ।।८।।
माताएँ मिल भरत की, कहतीं कथा अनेक ।
शत्रुघ्न गुणी वीर की, लिए प्रेम अतिरेक ।।९।।

* दोहा।

ऐसे उनके प्रेम का, बढ़ कर बहुत उद्वेग ।
बहता परस्पर अहर्निश, बन बल बिजली वेग ।।१०।।
माताओं ने राम को, माना एक समान ।
उन्हें मानते राम, दे, सम आदर सम्मान ।।११।।
पूज्य विद्या त्रयी समा, उसको थीं सब मात ।
अभिवादन आदर सदा, करते सायं प्रात ।।१२।।
शक्र सदन सम सुख भरा, सुर सम्पद् भण्डार ।
महा मधुर मधु मिलन में, था राघव परिवार ।।१३।।
मीठे मोद विनोद में, जन सेवा को पाल ।
सब शुभ सुकृत कर्म में, राम बिताते काल ।।१४।।
*राम काम की जनता सारी, गाती कीर्ति दिन दिन भारी ।
कर्म-कुशल हैं राघव भारे, कहते जन, जन के रखवारे ।।१५।।
राज-काज में रहते लीना, आलस रहित सुनिपुण अदीना ।
नीति न्याय में मन दिल देते, सार समझ तुरन्त ही लेते ।।१६।।
बोल चाल से जन पहचाने, सेंत मेंत से मन की जाने ।
विद्युत्वत् भीतर बस जाते, सार भेद जन-मन का पाते ।।१७।।
वह अवतार तर्क का जाना, विद्या में बृहस्पति समाना ।
युक्तिवाद में निपुण निराला, चमका प्रतिभा अतुल वाला ।।१८।।
तैल बिन्दु समा बुद्धि धारी, कुशाग्र सी मति, समझ न्यारी ।
ज्ञान का सागर मुनि बताते, विद्या-निधि सब गुणगणी गाते ।।१९।।
सत्य सदा वह मन से पाले, प्रण प्रतिज्ञा कभी न टाले ।
नियम धर्म सुव्रत में पूरा, वीर धीर गुण-निधि अति शूरा ।।२०।।

---
* चौपाई।

वैर विरोध विवाद विहीना, क्षत्र कर्म में रहता भीना ।
कलह कर्म से किए किनारा, कोप कपट से रहता न्यारा ।।२१।।
कटु कठोर वचन न बोले, मधुर मिलन में अमृत घोले ।
मिष्ट मृदु हितयुत कर बातें, पर जन को भी राम रिझाते ।।२२।।
पाप कभी उस पास न आते, दुष्ट दोष दुर्गुण न दिखाते ।
निर्व्यसनी पूर्ण बड़भागी, स्वार्थ त्यागी गुण-अनुरागी ।।२३।।
निजू किये उपकार भुलाये, पर के सिमरन सदा कराये ।
कुछ हित कर्म करे यदि जो भी, स्मरण करे बहु बार तो भी ।।२४।।
निन्दा वचन कहे यदि कोई, उसको सिमरन करे न सोई ।
उद्यम शील सुकुशल उद्योगी, कर्म परायण पूर्ण योगी ।।२५।।
क्षत्रिय धर्म हैं बहुत बढ़ाते, वीर कर्म को उच्च बनाते ।
राजधर्म है उनको प्यारा, रक्षण-कर्म है रोचक भारा ।।२६।।
अस्त्र शस्त्र सज्जित युध शाला, रहे सदा सज सेना माला ।
रखते पूर्ण कोष तथा ही, जल-पूर्ण हो सिन्धु यथा ही ।।२७।।
वीर जनों में प्रीति दिखाते, साहस बल उत्साह सराहते ।
राम हैं जाति जन के नेता, युवक अग्रणी पर दल जेता ।।२८।।
धर्म के रक्षक पूरे न्यायी, रहे किये सब जन अनुयायी ।
दीन दुःखी जब भी दिख जाता, सदय हृदय दया दिखलाता ।।२६।।
पीड़ित पर प्राणी को पाके, करते कृपा दुख दूर भगा के ।
देख दुःखी जन दुखिया होवे, दुःख दरिद्र दयालु धोवे ।।३०।।
संकट में हो राम सहाई, देवे विपदा विकट भगाई ।
आतुर रोगी शोकी को ही, सुख देते जब मिलता जोही ।।३१।।
शरण परम श्री राम कहाये, गये आश्रय रूप बताये ।
इष्ट मित्र के सबल सहारे, बन्धु जन के हैं परम प्यारे ।।३२।।

सर्व-सहायक सब के स्नेही, सच्चे हितैषी सब के वे ही ।
दमी उदार दयायुत दानी, क्षमावान् मतिमान् सुज्ञानी ।।३३।।
धन जन संचित करते त्यों ही, मधुकरियाँ मधु करतीं ज्यों ही ।
उनको रुचती अश्व सवारी, गायन वादन क्रीड़ा प्यारी ।।३४।।
महारथी योद्धा सेनानी, रहित घमण्ड सुशील अमानी ।
सभी दलों को गठित बना के, गण जन को रहते अपना के ।।३५।।
धनुर्वेद में परम हैं पूरे, लक्ष्य वेध में वरतम शूरे ।
अस्त्र शस्त्र विधि सहित चलाते, सिद्ध हस्त लघु हस्त कहाते ।।३६।।
स्व पर के गुण दोष निहारे, निर्णय में सब सार निथारे ।
पर राज्यों के भेद विचारे, वह पर नीति कूट भी टारे ।।३७।।
नयन किरण सब ओर पसारे, उस रवि ने अघ तिमिर निवारे ।
दस्यु दुष्ट उद्दण्ड अति द्रोही, दुर्जन दमन किये, थे जो ही ।।३८।।
शासक चतुर परम प्रतापी, कीर्ति उसकी दश दिश व्यापी ।
शासन शान्त सबल सुखदाई, पाता है बहु मान बड़ाई ।।३६।।
राम-राज्य में दुःख न होते, सुख से हैं जन जगते सोते ।
निर्भय फिरते जन ज्यों चाहें, पालक जान राम की बाहें ।।४०।।
अभया वनिता विचरें ऐसे, सिंहनियाँ घन वन में जैसे ।
सत्य शील जन सभी निभाते, शिष्टाचार आदर्श बनाते ।।४१।।
परस्पर सब जन हैं हितैषी, कलह कपट से रहित अद्वेषी ।
देश-भक्त राघव अनुसारी, वीर धीर स्वच्छन्द बिहारी ।।४२।।
सुप्रबन्ध प्रबल कर नीति, राम-प्रेम ने जनता जीती ।
देख, भूप सुत-शासन शैली, पक्षपात से न किंचित् मैली ।।४३।।
दशरथ ने यह सब कुछ सोचा, बहु बार मन बीच आलोचा ।
राम सर्व गुण-पूर्ण पाया, रोम रोम उसका हर्षाया ।।४४।।

स्थिर किया हो राघव राजा, चारों कूंट बजे जय बाजा ।
उसने मन में मोद मनाया, जान मनोरथ है फल लाया ।।४५।।
अन्त काल सूचक हों जैसे, उसने देखे स्वप्ने ऐसे ।
मरणदिवसनिजनिकटनिहारा, शीघ्र निर्णय जभी विचारा ।।४६।।

दूसरा सर्ग

*अगणित गुणयुत देख सुत, भूपति ने बहु सोच ।
युवराजा हो राम अब, ठाना बिन संकोच ।।१।।
मंत्रि-मण्डल की सभा, बीच किया प्रस्ताव ।
राजा रामचन्द्र हो, करो विधान बनाव ।।२।।
स्वप्न सूचित कर गया, मम आयु का शेष ।
अशुभ सूचक कुचिन्ह हैं, नभ भूमि पर विशेष ।।३।।
सूझे, आया है, मुझे, अन्तिम दिवस समीप ।
न जाने किस पल बुझे, मेरा जीवन दीप ।।४।।
अति शीघ्र ही इसलिये, मैं चाहूं युवराज ।
होवे राम सुनाम अब, सब कर मंगल काज ।।५।।
अति उतावली से अभी, तत्पर हुए तुरन्त ।
तुम सब साधन ठीक कर, करिए मुझे निश्चिन्त ।।६।।
हित है सब जन देश का, मेरा भी लो जान ।
राघव को सब सौंप मैं, पाऊँ हर्ष महान् ।।७।।
हो गया हूँ वृद्ध मैं, अधिक काम से श्रान्त ।
राघव को युवराज कर, होऊँ शान्त विश्रान्त ।।८।।

* दोहा।

दूर देश में भरत है, रहता सहित विनोद ।
उसका आना कठिन है, वहीं करे आमोद ।।६।।
पीछे सुन सम्वाद शुभ, प्रेमी पुलकित गात ।
सुखी सहज से हो विदा, आवेगा सह भ्रात ।।१०।।
कैकय मैथिल राज भी, दोनों हैं बहु दूर ।
समाचार सुन वे वहीं, लेंगे सुख भरपूर ।।११।।
मंत्री होकर एक मत, बोले हे भूपाल ।
राघव राजा मान कर, होगा देश निहाल ।।१२।।
है हमें स्वीकृत सभी, यह उत्तम आदेश ।
समाचार अभिषेक का, जाये देश विदेश ।।१३।।
सभा बुलाते हैं अभी, रचते हैं दरबार ।
गणनायक प्रतिनिधि मिल, करें राम स्वीकार ।।१४।।
*सम्मति कर मन्त्रियों ने, दूत भेजे देश में ।
मित्र राजे सब बुलाये, भेज सचिव विदेश में ।।१५।।
दूत दौड़े दशों दिश को, द्रुतगामी यान से ।
पंच किये भी निमंत्रित, उन्होंने बहु मान से ।।१६।।
देश की सब कोण में तब, वृत्त विद्युत् वेग से ।
फैल गया चले सभी जन, उमड़ पुर को मेघ से ।।१७।।
मुख्य पंच गण के नायक, भवन भूपति में मिले ।
सभ्य वेश विशेष से सब, सजे, कुसुम यथा खिले ।।१८।।
खान पान सुयान सज्जित, सहित सुख सामान के ।
मिले उतारे शुचि उनको, साथ अति सम्मान के ।।१६।।

* गीतिका।

नियत समय पर आ सब ही, सोहे सभा-भवन में ।
सजी शोभित थी सभा वह, जैसे भानु गगन में ।।२०।।
विशाल सभा दैलान था, सुवर्ण रूप हो रहा ।
हीरे मोती मणि-मण्डित, जन मन को मोह रहा ।।२१।।
मोती मूंगा की लड़ियाँ, रत्न कड़ियाँ झूलतीं ।
पुष्प माला अति मनोहर, मणिक जड़ियाँ झूलतीं ।।२२।।
इन्द्र-सभा सम सजी थी, शुभ सभा सब ओर से ।
सुचारु चित्रों आस्तरण से, छत किनारे कोर से ।।२३।।
राज सिंहासन था वहाँ, सुवर्णमय रत्नों जड़ा ।
मणिक मढ़ा था पाद पीठ, शुचि चमके बढ़ा चढ़ा ।।२४।।
नियत समय भूप पधारे, पंच वर्ग उत्थान से ।
लगे देने मान आदर, भूप को जय-गान से ।।२५।।
सुजन सभ्य से हो पूजित, लिया आसन भूप ने ।
शरत्-शशि सम शान्त शोभा, पाई चारु रूप ने ।।२६।।
हुए आसनासीन सभ्य, पीछे शिष्टाचार के ।
नमस्कार विनीत पीछे, भेंट शुभ उपहार के ।।२७।।
सब बैठे दाएँ बाएँ, जन राज के सामने ।
देव-गण में शक्र सम थे, भूप शोभा में बने ।।२८।।
सभा थी गम्भीर सारी, मौनता थी छा रही ।
दृष्टि मात्र एक हुई, राज दर्शन पा रही ।।२९।।
बनें चातक चित्त सब के, वचन बूँदें पान को ।
हुए उत्सुक सभ्य सुनने, राज-कथन महान् को ।।३०।।
भूपति उसी समय बोले, मेघ दुन्दुभि नाद से ।
मिष्ट भेरी नाद सम शुभ, सरस सुर के स्वाद से ।।३१।।

विदित है सब सज्जनों को, वंश मेरे के यथा ।
पुरुष पालते थे प्रजा, पुत्र प्राणों सम तथा ।।३२।।
उनके चरण चिन्हों पर चल, चित्त चातुरी से सदा ।
चारु चरित से तो मैं भी, बना आलसी न कदा ।।३३।।
नींद तक को त्याग करके, सब ही सुख विश्राम को ।
सजग रहा प्रजा पाली, रक्खा कुल के नाम को ।।३४।।
साध संयम सर्व साधन, प्रजा रक्षा में जगा ।
रात-दिन सब एक कर के, मैं रहा हित में लगा ।।३५।।
श्वेत छत्र के रह नीचे, काम करते देश के ।
जीर्ण शीर्ण है मम तन, वर्ण पीले केश के ।।३६।।
झुर्रियाँ हैं अंग पर अब, देह दुर्बल हो गई ।
क्षीण शक्ति होती दिन दिन, उपजे अब तो न नई ।।३७।।
राज काज की यह गाड़ी, भरी भारे भार से ।
थक गया हूं खींचते मैं, महा बोझ अपार से ।।३८।।
धर्म धुरा को वहते अहर्निश, स्कन्ध मेरे अब थके ।
राज्य चिन्ता में रहते, बाल मेरे सब पके ।।३६।।
है धर्म-धुरीण धृतिधर, धर्मधारी धीर जो ।
सर्व गुण गण युक्त है जो, बने राजा राम सो ।।४०।।
वीर उत्तम पुरुष है वह, राज करने योग है ।
अतुल शक्ति प्रभु बली है, तरुण पुष्ट अरोग है ।।४१।।
रामचन्द्र भूप बन कर, चाँदवत् शुचि चमकते ।
कर सके त्रिलोक शासन, दामिनीवत् दमकते ।।४२।।
युवराज अभिषेक हो कल, यही मम प्रस्ताव है ।
मुझे तो अभीष्ट है यह, आपका क्या भाव है ।।४३।।

परस्पर विमर्श कीजिये, कहो निर्णय निज अभी ।
पंचों के विचार मत में, भूल भ्रम न हो कभी ।।४४।।
{पंच मत के मेल से जो, काम होवें हों भले ।
पंच में परमेश रहता, लोक उक्ति यही चले ।।४५।।
पंच दोषों को दमन कर, पंच पंच सुकरण को ।
पंच नायक बने वह जन, जाति के दुःख हरण को} ।।४६।।
हो सम्मति यदि सब की, राम भूप बनाइये ।
जरा जीर्ण जठर जन के, क्लेश कष्ट मिटाइये ।।४७।।
भूप-भाषण सुन सभासद्, भरे हर्ष उत्कर्ष से ।
हुएविकसितकमलसमसब, गहरे सुख स्पर्श से ।।४८।।
तत्काल किया अनुमोदन, सबने चहुँ ओर से ।
मेघनाद को सुनते जैसे, षड्ज निसरे मोर से ।।४९।।
बहुत अच्छा, कहा सभी ने, घोष जय करताल की ।
सभा-सिन्धु में अति उछली, हर्ष से उस काल ही ।।५०।।

तीसरा सर्ग

*{बहुते जन हैं पंच कहाते, चिकनी चुपड़ी बात बनाते ।
मुँह देख कर तिलक लगाते, सत्य न्याय के निकट न जाते ।।१।।
बात बात में वाद बढ़ाते, गुट-बन्दी के गठते नाते ।
पक्षपात में पड़ते पूरे, बुद्धि बोध में बड़े अधूरे ।।२।।
दीर्घ-सूत्री बहुत विचारें, बैठ बाल की खाल उतारें ।
फिर फिर वृथा बाल बखेरें, गर्व से मूँछ पर कर फेरें ।।३।।

* चौपाई।

कलि काल कपट की काया, कोरे मोह जाल की माया ।
ऐसे चंचल पंचों सेती, राखे राम सभा की खेती ।।४।।
पर थे पंच अवध के ऐसे, सभ्य सभा को शोभे जैसे ।
नीति न्याय में निपुण निराले, सत्य शील शुचि गुण गण वाले} ।।५।।
*अनुमोदन करके सभी, मुख्य पंच मतिमन्त ।
ग्राम नगर के प्रतिनिधि, सेना के गुणवन्त ।।६।।
मिल कर हो कर एकमत, बोले सहित विचार ।
सहमत हैं हम भूप से, है यह निर्णय-सार ।।७।।
हैं आप तो वृद्ध अब, हे भूपते अपाप ।
तिलक करो शुभ राम को, मंगल कर से आप ।।८।।
देखा चाहें हम सभी, छत्र चँवर के साथ ।
हाथी पर आरूढ़ हो, यात्रा में रघुनाथ ।।९।।
उत्सव मंगल कर्म सब, करो, लगे दरबार ।
यौवराज अभिषेक हो, रच कर मंगलाचार ।।१०।।
अन्तस्तल गण पंच का, कैसा है, इस काज ।
बोले उनको भूप तब, रच कर वाक्य-व्याज ।।११।।
चाहो राजा राम हो, है मुझको संतोष ।
उनके शासन न्याय से, तुमको होगा तोष ।।१२।।
शासन मैं हूँ कर रहा, तज कर भोग अशेष ।
फिर तुम चाहो राम को, इसमें कौन विशेष ।।१३।।
वचन भूप का सुन सभी, बोले, राम उदार ।
कर्म कला में कुशल है, मानव-सृष्टि सार ।।१४।।

---

* दोहा।

†शशिसमशान्तसोमसुखकारी, धरती सम क्षमा धृति-धारी ।
सागर सम गम्भीर बताया, अचल हिमाचल सम है गाया ।।१५।।
सूर्य-सा चमके वर दानी, शक्ति शाली पर है न मानी ।
राम धाम है शुभ का ऐसा, सिन्धु रवि जल उष्ण का जैसा ।।१६।।
जाति जनों में ऐसे राजे, तारक में ज्यों चाँद विराजे ।
सब सत्पुरुषों में है ऊँचा, सत्य धर्म का रूप समूचा ।।१७।।
परम प्रेम के पाश पसारे, उनसे बद्ध किए जन सारे ।
ममता से मानव मन मोहे, मधुर मिलन से वह अति सोहे ।।१८।।
सब जन को अपना कर माने, गुणियों के गुण आप बखाने ।
पूछे कुशल क्षेम गुण गाथा, हर्षित हिया करे, मन माथा ।।१९।।
पूछे विद्या-शाला चलाना, ज्ञान सिखाना पाठ पढ़ाना ।
यजन अग्नि का पूछे होना, विनय-बीज व्रती में बोना ।।२०।।
सर्व सुलभ हैं राम हमारे, जन-मन चाँद नयन के तारे ।
सबके सुख दुःख में मिल जाते, पूरा हित अति प्रेम दिखाते ।।२१।।
आर्त पीड़ित को जब पाते, उसके दुखड़े दूर कराते ।
जाते उत्सव जहाँ मनाते, पिता भाई ज्यों वे हर्षाते ।।२२।।
वंश के सच्चे सुहृद् स्नेही, सब जन के हैं हितकर वे ही ।
सब के अपने प्रेमी भाई, मित्र सखा बन्धु पिता माई ।।२३।।
दीखे राम-रथ झन-झनाता, पौर घरों में आता जाता ।
समिति सभा में शोभित प्यारी, दीखे उसकी खड़ी सवारी ।।२४।।
विकसित नयन से वह निहारे, सुधा स्मित सह वचन उच्चारे ।
पहले पूछे कुशल जनों को, कर हर्षित सब हिए मनों को ।।२५।।

† चौपाई।

ऐसे सब जन को अपनाते, रामचन्द्र हैं शुचि सुहाते ।
सब जन हैं उसके अनुरागी, राम अर्थ तन तक के त्यागी ।।२६।।
अनुगामी हैं उसके सारे, राम-वचन न कोई निवारे ।
आज्ञा में है जनता सारी, उसकी कथनी टरे न टारी ।।२७।।
जातीं सरित् सिन्धु को ज्यों ही, उस पै सज्जन जाते त्यों ही ।
ऋषि सेवित है वह तथा ही, नन्दन वन सुरों से यथा ही ।।२८।।
मानसरोवर को ज्यों पा के, हंस रहें सुख हर्ष मना के ।
त्यों सज्जन मुनि सन्त विरागी, राम संग समझें सौभागी ।।२६।।
शत्रु-दमन कर्म में करारा, तेजस्वी है सूरमा भारा ।
महावीर अरिदल संहारी, प्रताप-पुंज पर पक्ष जयकारी ।।३०।।
जाय जहाँ विजय वहीं पाये, दस्यु दलों को शान्त बनाये ।
महा धनुर्धर क्षत्रिय शूरा, सन्धि समर भेदन में पूरा ।।३१।।
वीर कर्म है उसको भाता, धर्म का रक्षक राम कहाता ।
राम कर्म सब जन हैं गाते, दशदिश यश गुण ग्राम सुनाते ।।३२।।
कुशल कला कौशल का ज्ञाता, निपुण न्याय नीति का विज्ञाता ।
आगम निगम सभी उस जाने, ग्रन्थों के सुतत्त्व पहचाने ।।३३।।
संयम शम दम युत शुभचारी, राघव है सत्य व्रत धारी ।
कोमल करुण विमल मन का है, मृदुल अमल कर्म तन का है ।।३४।।
जन्म-स्थान-शुभ गुण का हो ही, मान मोह वर्जित है सो ही ।
प्रिय रूप अनूप है प्यारा, अबल जनों का सबल सहारा ।।३५।।
देव सुरासुर मानव जो भी, गन्धर्व किन्नर गण हैं सो भी ।
मधुर मनोरथ मन में लायें, रामराज को देखा चाहें ।।३६।।
बाल तरुण बूढ़े नर-नारी, आशा रखते हैं यह भारी ।
होवे राजा राम हमारा, कष्ट क्लेश का काटन हारा ।।३७।।

कहते हैं हम पंच सभी ही, होवे राजा राम अभी ही ।
निश्चल निश्चित निश्चय पालो, राज काज उसको सम्भालो ।।३८।।
तिलक करो कोमल कर से ही, राजन्! लो सुख सुत वर से ही ।
हर्षोत्कर्ष से जन हर्षाओ, नवयुग की शुभ लहर चलाओ ।।३६।।
राज्य कर्म करे रघुराई, आप रहें शुभ बने सहाई ।
ऐसे शासन हों शुभशाली, चलती चले यही प्रणाली ।।४०।।
{सो सुन्दर सब जिसे सराहें, वीर वही जिसकी जन बाहें ।
नीति निपुण नेता जन सोई, जन मन मति गति जाने जो ही ।।४१।।
गुण गण निधि निर्दोष न्यायी, जन बनते उसके अनुयायी ।
कर्म-शील समदृष्टि ज्ञानी, जग में जाती उसकी मानी ।।४२।।
पर हित परता जिसमें होवे, जनहित जीवे जागे सोवे ।
जगजन, मनकी जीवनज्योति, उसकी ख्याति दश दिश होती ।।४३।।
राघव राजे बन गुण गेही, प्राण प्रजा के परम स्नेही ।
शतशतमुखयशविमलसुनाते, पंच मुखी थे गुण गण गाते } ।।४४।।

चौथा सर्ग

*पंचों का सुनकर कथन, गद्गद् बोले भूप ।
सत्य सार हितयुत वचन, कहते हो प्रिय रूप ।।१।।
निज को मैं हूँ मानता, उच्च कर्मी बड़भाग ।
जो मम सुत से सभ्य तुम, करते हो अनुराग ।।२।।
सचिवों के सम्मुख तभी, नृप आज्ञा अनुसार ।
वामदेव वशिष्ठ आ, करने लगे विचार ।।३।।

* दोहा।

उन्हें कहा तब भूप ने, भव्य मास है चेत ।
वन उपवन उद्यान सभी, हरे भरे हैं खेत ।।४।।
लता पेड़ हैं हर्ष में, लिये सुगन्धित फूल ।
अवसर यह शुभ शान्त है, ऋतु अधिक अनुकूल ।।५।।
महा मधुर वर मास में, राघव का अभिषेक ।
करिए विधि सुविधान से, कर सुकर्म अनेक ।।६।।
पाकर आज्ञा भूप की, दोनों ऋषि विद्वान् ।
सचिवों को बोले अभी, रचिए सब सामान ।।७।।
मंगवाओ सोना मणि, पुष्प मधु घृत और ।
ओषधियाँ जल विविध शुचि, सजे सभा की ठौर ।।८।।
चन्दन अक्षत चाहिए, चँवर छत्र शुचि श्वेत ।
ध्वजा, कलश सुवर्ण के, शोभित कुसुम समेत ।।६।।
सामग्री सब लाइए, सहित सर्व विनियोग ।
भूप के अग्नि-स्थान में, करके अधिक उद्योग ।।१०।।
नगर पताका से सजे, सिक्त स्वच्छ हों स्थान ।
हाट बाट सज्जित बनें, मन्दिर गृह महान् ।।११।।
राज मार्ग शोभित शुचि, महा पथ हों सुरुप ।
चौक गली कूचे सजें, सिक्त स्वच्छ अनूप ।।१२।।
अगर गुरु का सुधूप हो, मुख्य चौक के बीच ।
शुचि सुगन्धित उदक से, शुद्ध बने पथ सींच ।।१३।।
गायक लेकर साज सब, भूषण धार सुवेश ।
राज-भवन में हों खड़े, मन्दिरों में विशेष ।।१४।।
उनके कथनों से सभी, हुई सज्जा तत्काल ।
बोले निवेदन कर विनय, है सब ठीक भूपाल ।।१५।।

तभी सुमंत्र को कहा, भूप ने, तू तुरन्त ।
रामचन्द्र को ला अब, सहित बन्धु गुणवन्त ।।१६।।
चतुर सचिव ने कर विनय, जाकर राघव पास ।
राजा की आज्ञा कही, सहित मधुरतम हास ।।१७।।
*राज-आज्ञा सुन वे उठे ऐसे, प्रातः भानु उदित हो जैसे ।
वेश विभूषा-शोभित हो वे, सानुज रथ में बैठे दो वे ।।१८।।
राज-भवन को यान सुहाता, चला, रवि ज्यों मेरु को जाता ।
जिस पथ से वर तर रथ आया, मानव कमल-कुंज हर्षाया ।।१९।।
राज-सभा में थे वर राजे, राजा दशरथ साथ विराजे ।
नेता मुखिया लोग जनों के, थे शोभित वर पंच गणों के ।।२०।।
प्रिय दर्शन शुभ शक्ति शाली, शशि सम शोभा लिये निराली ।
कान्ति शान्ति गुण गौरव धारे, उसमें हर्षित राम पधारे ।।२१।।
स्वागत आदर सबसे लेते, मान यथोचित उनको देते ।
सीधे राम पिता पै आये, नम्र हुए शुभ सीस झुकाये ।।२२।।
उसने सुत को कण्ठ लगाया, पास सिंहासन पर बैठाया ।
सुवर्ण आसन पर वे त्यों ही, सजे, रवि शशि शैल पै ज्यों ही ।।२३।।
माना सुख भूपति ने भारा, देख सुयोग्य सुपुत्र प्यारा ।
सज्जित होवे स्व छवि जैसे, लगा पुत्र प्रिय उसे ऐसे ।।२४।।
{अंग अंग का सार बताया, पुत्र पिता की पूरी छाया ।
प्रतिबिम्ब है पुत्र पिता का, पितृ-वंश की पुत्र पताका ।।२५।।
चित्त-चांद हृदय का सँगी, मन का मन अँगों का अंगी ।
जीवन जड़ी जगत् का जीना, जी की ज्योति हिये की वीना ।।२६।।

---

* चौपाई।

सुख का स्वाद सरस पनसारा, प्रिय प्राण नयनों का तारा ।
तेज भाल का मुख की लाली, सुत सुर सम्पत् सदन की ताली ।।२७।।
पुत्र पिता का सुखद सहारा, रोग जरा में सेवन हारा ।
दुःख नरक से जो हो त्राता, सो सज्जन शुभ पुत्र कहाता ।।२८।।
पुत्र पुण्य-पद के अधिकारी, जितने दीखे जन सँसारी ।
राघव थे उन सबसे ऊँचे, विनय प्रेम के रूप समूचे} ।।२९।।
ऐसे सुत को निकट बिठा के, हर्षित भूप हुए सुख पा के ।
एकमना बन उसे निहारे, बार-बार जाते वे वारे ।।३०।।
स्नेह सने सुरसे वे बोले, वचन मधुर उत्तम अनमोले ।
ज्ञान कर्म गुण से, सुत! मेरे, अनुयायी सब जन हैं तेरे ।।३१।।
प्रेमी हित कर बन उपकारी, तूने वश की जनता सारी ।
पुष्य-योग में सब जन चाहें, राज-पद के कर्म हो जायें ।।३२।।
अभिसिंचन तब होवे त्यों ही, होता रहा वंश में ज्यों ही ।
यौवराज पद तुमको देना, चाहें सब गण पंच ससेना ।।३३।।
यद्यपि हो सब गुण गण गेही, विनय भाव युत सबके स्नेही ।
राज-भार निहार के तो भी, अधिक सुशील विनय युत हो भी ।।३४।।
क्रोध कुव्यसन दूर हटाना, नियम अनुशासन बहु बढ़ाना ।
रहना उद्यम संयम धारे, देखना नीति-नयन पसारे ।।३५।।
कोश शस्त्र बल संचित होना, जन-हित में लग जगना सोना ।
है राजा का काम सुहाना, इसको मन से आप निभाना ।।३६।।
प्रजा-हित जो भूप बढ़ाता, अमृत सम वह तो हो जाता ।
उसको मन से गण जन मानें, प्राण-तुल्य प्रिय प्रभु जानें ।।३७।।
राजा जो हो देश हितैषी, रहें न उसके द्रोही द्वेषी ।
अनुरंजक के बन अनुसारी, दें सब जन मन तन धन वारी ।।३८।।

कोमल शासन करना ऐसा, करते थे तव पुरखा जैसा ।
है यह बहुत बताना मेरा, वत्स! ज्ञान है पूर्ण तेरा ।।३६।।
राज-वचन सुन कर रस भीने, नम्र किया सिर राघव जी ने ।
जय जय नाद सभा में गाजे, बरसे कुसुम बजे बहु बाजे ।।४०।।
राम-सखा यह सुनते सभी ही, कौशल्या पै पहुंच तभी ही ।
समाचार सुखकार सुनाते, फूले तन से नहीं समाते ।।४१।।
सुन सम्वाद मधुर शुभ राणी, रोमांचित हो महा हर्षाणी ।
हीरे सुवर्ण मणि बहु मोती, देती उनको गद्‌गद् होती ।।४२।।
राजा से ले राम विदाई, आ अपने घर में रघुराई ।
बोले सुनिए, सुन्दरि! सीते, होगा कल अभिषेक, विनीते ! ।।४३।।
मंगल शुभ कर सुन वह बानी, सम्पदा सुख सुधा बरसानी ।
शोभी ज्योत्स्ना समा सियानी, षोडशी देख पति वर दानी ।।४४।।

पांचवाँ सर्ग

*जा कर निजू निवास में, बोले दशरथ राज ।
कहो सुमंत्र! राम को, आवे कार्य काज ।।१।।
सचिव सहित आकर तभी, झुक कर, कर प्रणाम ।
प्रतिमा परम प्यार की, सोहे अति श्री राम ।।२।।
गले लगाकर पुत्र को, पैतृक प्रीति संग ।
प्रकट किया उसने तब, यों सभी अन्तरंग ।।३।।
अशुभ सूचक कुशकुन सब, मुझे रहे हैं घेर ।
मेरे अन्तिम काल में, नहीं दीखती देर ।।४।।

* दोहा।

नहीं भरोसा है मुझे, जीने का बहु काल ।
सोम! हो भूपति इसलिए, मैं चाहूँ तत्काल ।।५।।
विघ्न बहुत बाधा बड़ी, हों यदि करें विलम्ब ।
शुभ, शीघ्र कल हो सभी, पुष्य-योग अवलम्ब ।।६।।
शुभ समय है शान्त ऋतु, जनता है अनुकूल ।
मंगल कार्य हो अभी, पूज के मंगल मूल ।।७।।
ब्रह्मचारी उपवास कर, अब से पत्नी समेत ।
देव-पूजन में रत रह, होकर सजग सचेत ।।८।।
*राम अनुमति भूप की ले के, आदर उसे विनय से दे के ।
मातृ-मन्दिर में तब आये, भक्ति प्रेम अतुल्य उर लाये ।।९।।
सुत-हित मंगल कर्म मनाती, मन से परम ईश को ध्याती ।
नयन मूंद नारायण लीना, स्थिर थी मूर्ति सम अदीना ।।१०।।
उसने आँखें खोल निहारा, स्वसुत चरण पै नम्र प्यारा ।
कहा राम ने, सुनिये माता, आज्ञा देते हैं जन त्राता ।।११।।
यौवराज पद को मैं पा के, करूँ देश-हित धर्म निभा के ।
मम सीता हित मंगल सारे, करो आप सब विधि को धारे ।।१२।।
हर्ष-अश्रु नयनों में लाई, वह बोली आनन्द भराई ।
मुँह मांगी घड़ी यह आई, फूली फली बेल मन चाही ।।१३।।
पुण्यवती मैं भी हूँ ऐसी, सुनती कथा सुधा हो जैसी ।
भाग्यशाली हो सुत! मेरे, हैं पिता प्रसन्न जो तेरे ।।१४।।
सीता सुमित्रा दोनों आई, समाचार सुन अधिक हर्षाई ।
विकसित था सब राज घराना, होते गायन वादन नाना ।।१५।।

---

* चौपाई।

लक्ष्मण को लख अति हर्षाता, सुहृद् स्नेही सहचर भ्राता ।
कहा राम ने, आत्मा तेरा, अपर आत्मा है, प्रिय! मेरा ।।१६।।
एक प्राण हम दो हैं देही, सच्चे सखा सहायक स्नेही ।
राज-लक्ष्मी यह है सब तेरी, सहित सम्पदा जो है मेरी ।।१७।।
सौमित्रि! सुख-सदन सियाने, भोगो सुख सब ही मन माने ।
निमित्त रूप मुझे तुम जानो, कर्ता हर्ता अपने को मानो ।।१८।।
ऐसे करते मीठी बातें, माता से थे मोद मनाते ।
लेकर राम सिया सह विदाई, स्व घर में आये सुखदाई ।।१६।।
वशिष्ठ मुनि इतने में आये, राज-कथन से शोभा लाये ।
सुना राम ने गुरु का आना, स्वागत आदर कर सुख माना ।।२०।।
बोले मुनि वचन मुद देने, महा मधुर मन वश कर लेने ।
सोम! पिता है तुष्ट तुम्हारा, कल शुभ उत्सव होगा भारा ।।२१।।
राज-तिलक वे तुमको देंगे, शासन सौंप सर्व सुख लेंगे ।
आप उपवास करो ससीता, अवसर उत्तम जाय न बीता ।।२२।।
मंत्र विधि से व्रत रखा के, हुए विदा मुनि पूजा पा के ।
राम-भवन से बाहर आते, देखे मुनि ने जन विलसाते ।।२३।।
कमल-कुंज में अलि दल जैसे, मुद में रमते थे वे ऐसे ।
मास मधु में यथा वनमाला, विकसित सब नर थे सह बाला ।।२४।।
वेश केश सज भूषण भूषा, सोहे तरुण उदित ज्यों पूषा ।
पथ में मानव आते जाते, नदी-पूर सम शोभा पाते ।।२५।।
राज-पथ भरपूर था ऐसा, पूर्ण सागर उमड़े जैसा ।
होते सिक्त गली सब कूचे, सजते थे सुर सदन समूचे ।।२६।।
माला मण्डित थे घर न्यारे, चमकें शुचि ज्यों चहकें तारे ।
सुन्दर तोरण बहुत सुहाते, झण्डे शुभ सुवर्ण लहराते ।।२७।।

ऐसे निरखते सज धज भारी, राज भवन आये शुभचारी ।
ऋषि भूप ने देखे आते, बृहस्पति सम शोभा पाते ।।२८।।
उसने सादर वे बैठाये, समाचार सुनकर सुख पाये ।
भूप विदा होकर सब से ही, अन्तःपुर को पधारे स्नेही ।।२६।।
ज्यों गुहा को केसरी जावे, विमल नील नभ में शशि आवे ।
तथा भवन में भूप पधारे, कल्प तरु सम लगे वे प्यारे ।।३०।।
शक्र-सदन-सा सुन्दर सारा, सज्जित शोभित लगता प्यारा ।
मोती मणि मण्डित सहमाला, महा मनोहर शोभा शाला ।।३१।।
धन सम्पत् से पूरित जो ही, हर्षित जन पूर्ण था सो ही ।
उस में ऐसे सोहे राजा, ग्रह-गण में हो चांद विराजा ।।३२।।

छठा सर्ग

*राम मौन को धार कर, गुरु अनुमति अनुसार ।
नारायण को पूजने, लगे ध्यान को धार ।।१।।
संयम साधन साध कर, रेशमी वस्त्र विशेष ।
पहर कर थे पूजते, पूर्ण पुरुष महेश ।।२।।
विधि से अग्नि में दे हवि, किये शेष उपभोग ।
मग्न हुए सीता सहित, कर नारायण-योग ।।३।।
विष्णु-मन्दिर में सुस्थिर, मन वृत्ति को रोक ।
ध्यान-लीन दोनों हुए, निश्चल शान्त अशोक ।।४।।
लक्ष्मण पहरे पर हुआ, स्थित जगता सचेत ।
शान्तमना गम्भीर हो, संयम शुद्धि समेत ।।५।।

* दोहा।

समाचार अभिषेक का, फैला कानों कान ।
पुर वर सारे देश में, विद्युत् वेग समान ।।६।।
उसी समय सज्जित हुआ, सारा नगर महान् ।
ध्वजा माला मणि चित्र से, ज्यों हो देव-विमान ।।७।।
हुए सुवासित धूप से, सब पथ नगर विशाल ।
भव्य भवन भूषित हुए, बहुत स्वच्छ तत्काल ।।८।।
राग रंग होते भले, सभा समाजों बीच ।
घर-घर में रस हर्ष था, रहा जनों को सींच ।।९।।
सागर सुख आनन्द का, उमड़ा चारों ओर ।
मानव मंडल मिल मधुर, था मुदित सर्व ठौर ।।१०।।
होती बातें स्थान सब, होंगे राजा राम ।
सुख मंगल होगा परम, सभी काल सब याम ।।११।।
कैसा उत्तम है गुणी, ज्ञानी दशरथ भूप ।
जिसने यह अवसर दिया, मंगल रूप अनूप ।।१२।।
ऐसे हर्ष उत्कर्ष में, मनुज रहे थे घूम ।
नागर जन ग्रामीण में, थी उत्सव की धूम ।।१३।।
†सन्ध्या ने ज्यों राग बढ़ाया, नगर जनों ने बहुत सजाया ।
जग मग करती दीपक माला, दृश्य बना था अति निराला ।।१४।।
राज-भवन घर मन्दिर भारे, हँसे दीपक दशन पसारे ।
कलश सुनहले जगमगाते, थे तारों को अधिक लजाते ।।१५।।
नगर-ज्योति नभ भीतर जाती, थी ग्रहों को मन्द बनाती ।
खिले पद्म थे जन पुर वासी, पा उत्सव की पूर्णमासी ।।१६।।

† चौपाई।

थे जन भूषण वेश सजाते, रचते व्यंजन बहुत लुभाते ।
सज सिंगार नगर की नारी, करती थीं शुभ अधिक तयारी ।।१७।।
राम-सखा सब हर्षित होते, करते सज्जा थे नहीं सोते ।
मधुर मनोरथ मन में लाते, महा मग्न थे वेश बनाते ।।१८।।
सुर सम थे वे सर्व सुहाते, दिव्य वेष में शोभा पाते ।
हर्ष परम था युवक जनों में, उमड़ा था आनन्द मनों में ।।१६।।
थी जब नहीं सुख सिन्धु-सीमा, आई भारी भावी भीमा ।
भले भाव में पलटा आया, बिगड़ गया जो खेल रचाया ।।२०।।
{बनी बात जब दैव बिगाड़े, पल भर में सुर सदन उखाड़े ।
रंग में भंग होता ऐसा, वज्रपात उत्पात हो जैसा ।।२१।।
कोट किले पुर पट्टन नीके, मुद मंगलमय अति रमणीके ।
काल कुचक्र चले जिस बेरी, बनें तुरन्त धूल की ढेरी ।।२२।।
चिन्तन में जन काल बिताते, पल में पासे पलटे खाते ।
कितना कोई सोचे प्राणी, भावी फिर भी जाय न जानी ।।२३।।
चाहे रचो मनोरथ माला, पर भावी पर पड़दा काला ।
तब कहते हैं सुजन सियाने, राम की बातें राम जाने} ।।२४।।
मुग्धा मुखरी मन्थरा नामा, ईर्ष्या मत्सर मद-मठ वामा ।
क्रोध कलह कुचाल की काया, हर्ष शशि पर राहु की छाया ।।२५।।
कैकेयी की मुखिया दासी, साथिन मेके की दुःखरासी ।
तब चढ़ कर निज भवन अटारी, उसने अद्भुत बात निहारी ।।२६।।
कौशल्या गृह शोभा शाली, दीप्त यथा शुचि अंशुमाली ।
वादन गायन सहित रसीला, देखा उसने सकल सजीला ।।२७।।
पट-मण्डप सज्जित सह माला, रत्नों हीरों की ज्योति वाला ।
शक्र-सदन सम सुन्दर सोहे, मोहक मुदित जनों से मोहे ।।२८।।

वसन रेशमी धारे धाया, लेकर सज धज हर्ष सवाया ।
पास खड़ी उसने वह जानी, कहा उसे, यह कहो सियानी ।।२६।।
शोभित मन्दिर है यह कैसे, राग रंग क्यों होते ऐसे? ।
अद्‌भुत शोभा सज धज ऐसी, है हो रही आज यह कैसी? ।।३०।।
दान करेगी क्या तव राणी, यज्ञ रचेगी अधिक हर्षाणी ।
हर्ष भरी धाया वह बोली, तुझको ज्ञान नहीं क्या भोली ।।३१।।
कल को उत्सव होगा भारा, हर्षित होगा जनपद सारा ।
तिलक भूपति राम को देंगे, अभिसिंचन कर जन-यश लेंगे ।।३२।।
इसलिये यहाँ शोभा राजे, हर्ष गीत हैं बजते बाजे ।
मधुर वचन सुख अमृत वाला, उसके लिये बना विष-प्याला ।।३३।।
सुन कर कुब्जा अति घबराई, डाह-दाह ने दग्ध बनाई ।
काँप उठी कुकोप की मारी, कलह की काया कपट क्यारी ।।३४।।
तन जलता जैसे जन दौड़े, त्यों जल दौड़ी सब कुछ छोड़े ।
बिजली बन निचले खन आई, सोती राणी उसने पाई ।।३५।।
कहा उसे, क्यों सोवे मूढ़े!, नाव डूबती पर आरूढ़े ।
सुख सौभाग्य है चल तेरा, घोर विपद ने तुझको घेरा ।।३६।।
कुग्रह-ग्रसी न निज को जाने, मुग्धे! सुखवती स्व को माने ।
दिन तेरे सुख के अब बीते, सुकृत-कोष हुए सब रीते ।।३७।।
फँस मीन मृगीवत् दीना, पर के पाश पड़ी बलहीना ।
अपमानित हो रहना जीना, भोगेगी री पुण्यविहीना ।।३८।।
दुःख-सिन्धु में डूबती जाती, धन सम्पत् सम्मान गंवाती ।
है पर मोह-मद्य में माती, जिससे स्व हित समझ न पाती ।।३६।।
अब भी चेत न कर कुछ देरी, मान ले, माननि! सुमति मेरी ।
सुख सभी नहीं तो हो ढेरी, कुदशा दुर्गति होगी तेरी ।।४०।।

यह सुन चौंक उठी वह सोती, बोली उसको व्याकुल होती ।
क्यों तू ने यह रोष बढ़ाया, मुँह फुलाया नाक चढ़ाया ।।४१।।
कहो, कुशल तो है मम प्यारी, कौन विपद् है सिर पर भारी? ।
किस कारण दुखिया तू दीखे, कोप करे खीजे अति झीखे? ।।४२।।

सातवाँ सर्ग

*बोली कुब्जा रोष से, माथे त्योड़ी डाल ।
देवि! दुर्दिन दुःख के, देखोगी सब काल ।।१।।
यौवराज्य पदवी कल, भूप, राम को दान ।
करेगा उत्सव रच शुभ, करके सर्व विधान ।।२।।
हन कर हित तेरे सभी, तव सौकन-सुत आज ।
भूप की नीति कूट से, हो रहा महाराज ।।३।।
इससे सागर शोक में, गहरे गोते खाय ।
मम मन हृदय चित्त तो, पल-पल डूबा जाय ।।४।।
राजवंश की हो सुता, पाकर उत्तम ज्ञान ।
राज-नीति की चाल से, तू क्यों बनी अजान ।।५।।
पद पटराणी लाभ कर, आदर गौरव मान ।
कुटिल नीति के दाव पर, तू क्यों धरे न ध्यान ।।६।।
भीतर से कटु शठ कड़ा, तेरा पति भूपाल ।
चिकनी चुपड़ी बात से, तुझे रहा है टाल ।।७।।
मोह कर मीठे कथन से, करके अति अनुराग ।
तेरे सुख हित के सभी, रहा दग्ध कर बाग ।।८।।

* दोहा।

अन्तःकरण की शुद्ध तू, ठगी गई है देख ।
भोली स्वार्थ समझ ले, सोच मीन वा मेख ।।६।।
भेज भरत को यहाँ से, तव भ्राता के संग ।
तेरे पति ने है रचा, राम-राज का ढंग ।।१०।।
भर्त्ता तव शत्रु है बड़ा, मेरा कहना मान ।
तू, भुजधृत विषधर सम, उसको निश्चय मान ।।११।।
उपेक्षा करने पर ज्यों, हने शत्रु वा नाग ।
ऐसे निज पति-मोह से, तू हत हुई अभाग! ।।१२।।
अपने मेरे भरत के, हित को सोच विचार ।
रक्षण कर निज पुत्र का, अपना संकट टार ।।१३।।
राणी बातें सुन सभी, उठी हर्ष के साथ ।
उदयाचल से शरत् में, ज्यों चढ़े निशा-नाथ ।।१४।।
रूपराशि अवतार धर, आई हो सज साज ।
अमल कमल मुख पर स्मित, उसके रही विराज ।।१५।।
सजी सेज पर बैठकर, सहित सरस संलाप ।
बोली वह, अलि मन्थरे!, तज कटु कथन कलाप ।।१६।।
ऐसे मंगल काल में, तू क्यों हुई उदास ।
बन्धु-वत्सल हैं रघुपति, न्याय सुनीति निवास ।।१७।।
समाचार है हर्ष का, राम-राज्य विधान ।
वही इसके योग्य है, गुण-गण ज्ञान निधान ।।१८।।
*जड़ित सुभूषण उसको देती, बोली, करो न चिन्ता ऐती ।
जो तूने है बात बताई, उससे मैं हूँ बहुत हर्षाई ।।१६।।

---
* चौपाई।

राम भरत हैं दोनों भाई, प्रिय परस्पर परम सहाई ।
मीत मिले मन मीठे स्नेही, हिल मिल रहते यथा देह देही ।।२०।।
क्षीर नीर सम मिलकर प्रेमी, आपस में रहते शुचि नेमी ।
दुई द्वेष दोषों से न्यारे, सब दिन दीखे दोनों प्यारे ।।२१।।
भेद भाव भ्रम भय के त्यागी, गाढ सखा अगाध अनुरागी ।
प्रेमपगे सगे वे सियाने, तू मैं के कुछ भेद न जाने ।।२२।।
मेरे हैं वे परम दुलारे, दिल के दिल नयनों के तारे ।
मुझे प्रिय हैं प्राण-समाना, कभी न अन्तर मैंने माना ।।२३।।
अमृत सम सुवृत्त सुनाया, तू ने मेरा हर्ष बढ़ाया ।
मुँहमाँगा वर माँग प्यारी, इच्छा होगी पूर्ण तिहारी ।।२४।।
भूषण सुन्दर हीरे देती, बोली मिष्ट वचन उस सेती ।
मधुर कथन रानी का ऐसा, उसे लगा कटुतर विष जैसा ।।२५।।
कोप में बोली तिलमिलाती, फैंक सुभूषण नाक चढ़ाती ।
बार बार विष वैर बढ़ाती, बात बात में थी बल खाती ।।२६।।
माननि! मुग्धे! मोह की मारी, माने कथन न तू सुखकारी ।
क्यों कुस्थान में हर्ष दिखाये, जब दुःख में डूबती जाये ।।२७।।
समझ सियानी सम्मति मेरी, सरक रही सुख सम्पत् तेरी ।
भाग्य-भानु भामिनी तेरा, भारी पराभव भय ने घेरा ।।२८।।
सौकन-सुत शासन में तेरे, बढ़ेंगे कष्ट क्लेश घनेरे ।
गौरव गरिमा मान बड़ाई, खो, देखेगी बुरी ढिठाई ।।२९।।
सौकन की तू बन कर दासी, बहु उलाहने ताने हांसी ।
सदा सहेगी मन को मारे, कर्ण-कटु कुकथन करारे ।।३०।।
भावुक भक्त भरत गुणधारी, किंकर होगा आज्ञाकारी ।
मन वच कर्म से रामानुसारी, चल पावेगा दुखड़े भारी ।।३१।।

युवराज पद राम का पाना, तुझ पर दैन्य दुःख है आना ।
धन सम्पत् सब तू ने खो ली, तो भी हर्षित होवे भोली ।।३२।।
राणी सुनकर वचन निराले, रही निज को बहुत सम्भाले ।
यद्यपि विष विद्वेष उस घोला, तदपि मन उसका नहीं डोला ।।३३।।
मन स्वस्थ से बोली राणी, राम-गुणों की अमृतवाणी ।
गुण ज्ञानयुत धर्म का ज्ञाता, बहु नम्र पूजक पिता-माता ।।३४।।
संयमयुत राम सत्यवादी, है धृति सम्पन्न अविषादी ।
ज्येष्ठ सुत राज्य है पाता, रीति नीति है न्याय बताता ।।३५।।
मंगलमय यह अवसर आया, उस पर क्यों तू रोष रचाया ।
मुझको सम हैं दोनों भाई, भक्त विनीत प्रिय सुखदाई ।।३६।।

*राणी का उद्‌गार, दासी को भाया नहीं ।
हो कर कुपित अपार, आग बगोला वह बनी ।।३७।।
तीखे नयन तरेर, भृकुटी की कमान कस ।
बाण कुवचन बखेर, बहुविध फिर करने लगी ।।३८।।
भर कर लम्बी सांस, बोली उसको वह तभी ।
तुझे लिया है फाँस, मोह मान अविवेक ने ।।३९।।
मूर्खे! नयन उघाड़, लुटता है घर तो अभी ।
खेती फली उजाड़, कर मल मल पछतायगी ।।४०।।

†तू नहीं दुर्दिन, देवि! देखे, सब कुछ हैं शुभ तेरे लेखे ।
पर तू सोच समझ तो ऐसा, भरत-भविष्य भी होगा कैसा ।।४१।।
राजा होगा राम जभी से, नीचा होगा भरत तभी से ।
राम-वंश होगा अधिकारी, भरत-वंश उसका अनुचारी ।।४२।।

---

* सोरठा। † चौपाई।

ससुत वंश को दास बनाते, तुझ में सोच विचार न आते ।
तव सुत दोष एक ही जाना, तव कूख में दैव से आना ।।४३।।
होता भूप अवश्य नहीं तो, है गुण ज्ञान सम्पन्न वही तो ।
मति तेरी से अब तो सो ही, रहे दीन दास दुखी हो ही ।।४४।।
मामा के घर उसे बसाया, जाति जन में अप्रिय बनाया ।
अनाथ, साथ पथ पक्ष विहीना, दिया तूने उसे यह जीना ।।४५।।
निष्कंटक बल शक्ति पाके, जनपद जन को राम लुभा के ।
देश निकाला उसको देगा, वा हनन कर सभी सुख लेगा ।।४६।।
अब तू है पारितोषिक देती, तब रहेगी बिलखती रोती ।
कुछ न बने पीछे पछताये, दाव हराये भवन जलाये ।।४७।।
मेरी सम्मति मान अभी भी, दुखिया होगी तू न कभी भी ।
देश बहिष्कृत राघव होवे, भरत भूप बन सुख से सोवे ।।४८।।
सिंह-हस्त में हस्ती यथा ही, संकट में है भरत तथा ही ।
मेरी नीति काम में लाओ, चाल पेंच चल पुत्र बचाओ ।।४६।।
{अवसर चूक यदा जन जावे, गया काल फिर हाथ न आवे ।
क्या बनता पीछे पछताये, जब बाजी निज कर से जाये} ।।५०।।

आठवाँ सर्ग

*घोर गरल उरगी यथा, उगले अमृत बीच ।
त्यों राणी-उर कलश में, भरे भाव अति नीच ।।१।।
बार बार नागिन यथा, डस कर विष-संचार ।
करे, तथा उसने भरा, उसमें वैर विकार ।।२।।

* दोहा।

कल्पलता को हस्ती ज्यों, देवे तुरत उखाड़ ।
त्यों कुल घर का प्रेमतरु, कुब्जा दिया बिगाड़ ।।३।।
पय पानी की प्रीति को, मिल कांजी दे तोड़ ।
ऐसे मन्थरा ने मिल, दिया मात मन फोड़ ।।४।।
बार बार प्रहार से, जाय वज्र भी टूट ।
फिर फिर कुमती कुकथन से, उसमें आई फूट ।।५।।
बह कर नीची भूमि पर, जल नीचे को जाय ।
त्यों कुपन्थ पर राणी को, कुब्जा दिया चलाय ।।६।।
विषम विषैले बाण से, बने वीर की घात ।
उसका वचन कुसंग से, तथा हुआ विनिपात ।।७।।
विद्युत्-तार स्पर्श से, शिथिल बने ज्यों अंग ।
राणी-मन दुर्बल बना, पाकर अधम कुसंग ।।८।।
कीट विषैला तन बसा, करे विषैली देह ।
त्यों कुब्जा विष-वचन से, उसका बिगड़ा नेह ।।९।।
मदिरा मलिन कुसम्मति, करके राणी पान ।
मोहित मतवाली बनी, करने को कुल-हान ।।१०।।
उष्ण सुदीर्घ साँस ले, बोली सह अभिमान ।
होगा राजा भरत अब, कुब्जे निश्चय जान ।।११।।
घोर भयावह वनों में, होगा राम निवास ।
बहिष्कृत प्रवासी बन, भोगे वह दुःख रास ।।१२।।
पर उपाय वे सोचिये, जो दें कार्य साध ।
मम सुत ही राजा बने, बिना विघ्न निर्बाध ।।१३।।

*सुनो कहा कुब्जा ने राणी!, इसकी विधि जो मैंने जानी ।
था मुझे तूने ही बताया, असुर-सुरों ने समर रचाया ।।१४।।
दण्डक वन में एक किनारे, बसते असुर महा मतवारे ।
वैजयन्त पुर का शम्बर नामी, था राजा कुपंथ अनुगामी ।।१५।।
शतशः चलता वह अतिमाया, सुरदल उसने मार भगाया ।
देव मिले दशरथ पै आये, दस्यु-दमन को वे उठ धाये ।।१६।।
तू भी उसके साथ गई थी, समर में साथिन हो रही थी ।
दस्यु-दलों को दलित बनाते, मार-काट कर दूर भगाते ।।१७।।
घायल मूर्च्छित हुए सो ही, गिरे सुरथ पर बेसुध हो ही ।
असुर घेरने दौड़े आये, पर तूने रथ वेग बढ़ाये ।।१८।।
दस्यु-दल से बाहर निकाला, पति प्रेम से आप सम्भाला ।
बहु स्वस्थ हर्षित होके ही, बोले तुझे तब भूप स्नेही ।।१६।।
शूरवीरता उर में लाई, तूने मेरी आयु बचाई ।
दो वर मांगो तुम मनमाने, हे वीरे, गुण ज्ञान-निधाने! ।।२०।।
तूने कहा, मम प्राण प्यारे!, प्रेम पगे हैं वचन तुम्हारे ।
सब कुछ है अब यही कहूँगी, जब चाहूँ तब वर ले लूँगी ।।२१।।
वे दोनों वर मांग अभी ही, अवसर हाथ न आय कभी ही ।
भरत राज्य एक में पावे, अपर में राम मुनि हो जावे ।।२२।।
चौदह वर्ष रहे वनवासी, दण्डक वन में बन प्रवासी ।
इस में तव सुत प्रिय बनेगा, शत्रु विरोधी सर्व हनेगा ।।२३।।
अटल राज की जड़ें जमाके, सुखी होगा सबको रिझाके ।
अब तुम कोप भवन में जाओ, क्रोध करो मुख नयन फिराओ ।।२४।।

---
* चौपाई।

मलिन वसन धर केश बिखेरो, धरती पर पड़ आँसू गेरो ।
भूप आय तो रहना रोते, मूँद नयन मुख दुखिया होते ।।२५।।
बहुत उसे है तू तो प्यारी, सकता लोप न बात तुम्हारी ।
इतना है वह वश में तेरे, जी न सके जब तू मुख फेरे ।।२६।।
तव कथन से वह उसी बेला, जल अग्नि में कूदे अकेला ।
रुष्ट हुई जब तुझको जाने, है कौन कहना जो न माने ।।२७।।
कर निश्चय निज बात बना ले, गई सम्पदा फिर से पा ले ।
दोनों वरों पर रहना हठीली, विनय नय से न होना ढीली ।।२८।।
यदि हीरे मोती दे नाना, तदपि तूने नहीं ललचाना ।
तस रोदन पर ध्यान न देना, आग्रह कोप कर वर लेना ।।२६।।
इस शिक्षा पर जो तू चलेगी, तो वर दाव की खेती फलेगी ।
मान मान मम माननि! राणी, मोहित कर भूपति वर दानी ।।३०।।

*कुब्जा की सुन बात, राणी-मन बिगड़ा बहुत ।
करने को उत्पात, कोप भवन में वह गई ।।३१।।
उठा कर सब बिछान, उलट पलट उपकरण कर ।
सूना किया मकान, भूँडा भयकर कोप घर ।।३२।।
भूषण जडित उतार, उसने फैंके दूर दे ।
मणि मोती के हार, गेरे तोड़ जहाँ तहाँ ।।३३।।
लम्बे केश बखेर, मलिन वस्त्र तन धार कर ।
करी न उसने देर, धूलि धूसर धड़ किया ।।३४।।
माथे त्योड़ी डाल, लिटी भूमि पर वह तभी ।
मुख मस्तक कर लाल, भौंहें तान कमानवत् ।।३५।।

---

* सोरठा।

पड़े कट कर सुबेल, ऐसे थी वह पड़ रही ।
कोमल केश सतैल, रजयुत उसके हो गये ।।३६।।
नागिन कुपित समान, बार बार बहु साँस ले ।
बनी बैर की खान, वह बल खाती बिलखती ।।३७।।
आये ऐसे काल, पिया, पत्नी को देखने ।
हर्षित बहुत निहाल, पर वहाँ दुर्घटना घटी ।।३८।।
†कैकेई को सर्व सुनाने, यौवराज अभिषेक बताने ।
भव्य भवन में भूप पधारे, लिए मनोरथ मन में भारे ।।३९।।
था वह मंडित शोभाशाली, धवल अमल सह आभ निराली ।
मोती माला जनमन मोहें, जड़े रत्न मणि उस में सोहें ।।४०।।
सुवर्ण-सुखासन बहु सुहाने, वहाँ चित्र थे चित्त लुभाने ।
शुक कोकिल कूजे मधु बैना, हंस मयूर शुचि मृदु मैना ।।४१।।
अशोक मालती सुमधुगन्धा, खिली मोतिया बेल अमन्दा ।
सेवती सज सुगन्ध बहाती, केवड़ा केतकी थी लुभाती ।।४२।।
चम्पा चम्बेली अति सुहाये, उसमें बेलें शोभा पायें ।
पुष्पवाटिका पुष्पित ऐसे, सोहे नन्दन वन हो जैसे ।।४३।।
वह गया जहां रहती राणी, उसने न देखी मन हर्षाणी ।
शयन-शय्या आसन पा सूने, राग रंग रास रस विहीने ।।४४।।
द्वारपालिका भूप बुलाई, हाथ जोड़ वह सम्मुख आई ।
पृच्छा पर उसने बतलाया, देव! कोप देवी में आया ।।४५।।
ठनका माथा यह सुनते ही, हुआ विमन वह सिर धुनते ही ।
चिन्ता-चंचल चित्त बनाया, उसका ह्रदय अति घबराया ।।४६।।

† चौपाई।

{घटना दुर्घट जब घट जाती, घोर घटा छाती पर छाती ।
हृदय की उलझें सब तारें, निसरें बेसुर सुर झंकारें ।।४७।।
होने आवे जब अनहोना, भीतर हिलता कोना कोना ।
होनी हो जब ही बहु हानी, मस्तक फिरता बिगड़े बानी} ।।४८।।
व्याकुल मन नृप डगमगाता, बार बार था उखड़ा जाता ।
चला उधर वह पांव बढ़ाता, पीड़ा पाता चक्कर खाता ।।४९।।
जाकर उसने पत्नी निहारी, धूल से लथपथ प्राण प्यारी ।
विद्ध, विषम विष वाणों से ज्यों, हत हो हरिण, पड़ी थी सो त्यों ।।५०।।
देवी, दिव्य देव पुर से ही, दैव-द्युति हत गुण सुर से ही ।
गिरे भूमि पर तथा सियानी, दीखी उसको वह बिलखानी ।।५१।।
डर कर उसने हाथ पसारा, उसके छूकर अंग पुकारा ।
कहो, कोप क्यों तूने धारा, किसने कटु कुछ कहा करारा? ।।५२।।
नहीं कौन कर्म तुझे भाता, दुःख दाह है कौन सताता? ।
कौन रोग है कह, तुझको ही?, अपने वश समझो मुझको ही ।।५३।।
कहो, अभी तो भिषग् बुलाऊँ, जो कुछ चाहो वही दिलाऊँ ।
अपने बल को जाननहारी, तू क्यों कुपिता है दुखियारी? ।।५४।।
किसका हनन मरण तू चाहे, तुझे धन बल किसका न भाये? ।
किस बन्दी को मुक्त कराना, किसको चाहे धनिक बनाना? ।।५५।।
सम्पद् धन जन जो कुछ मेरे, हैं वे सब तो वश में तेरे ।
तेरा कहना टले न टाले, तेरी आज्ञा कौन न पाले? ।।५६।।
कहो वही जो मन में आवे, करूँ वही जीवन भी जावे ।
पुण्य-शपथ ले धृति बंधाऊँ, जो तू मांगे वह दिलवाऊँ ।।५७।।
भानु-किरण से ओस यथा ही, कर दूँ तव अरि भस्म तथा ही ।
फिर क्यों रूठ रही तू यों ही, कोप कठोर किया है क्यों ही ।।५८।।

{मेल अनमेल खेल निराले, तरुण जरठ की जोड़ी वाले ।
विषम बहुत बनें वहां बातें, दिन में दीखें काली रातें} ।।५६।।

नौवाँ सर्ग

*मोह प्रेमवश भूप ने, विनय वचन के संग ।
राणी के हठ कोप को, करना चाहा भंग ।।१।।
मौन भाव को छोड़ कर, उग्र रूप को धार ।
वह बोली तब भूप को, बदल नयन आकार ।।२।।
अनादर मेरा न हुआ, नहीं हुआ अपमान ।
तिरस्कार धिक्कार तथा, हुआ न मेरा जान ।।३।।
प्रयोजन मम एक है, तू सकता है पाल ।
प्रण करे तो मैं कहूँ, तुझको मन सम्भाल ।।४।।
मोह-पाश में मुग्ध मन, मन्द स्मित के साथ ।
उसकी वेणी पर मृदु, अपना धर कर हाथ ।।५।।
वह बोला, मेरी शुभे!, है तुझको यह ज्ञान ।
तुझ से प्रिय नहीं मुझे, धन सुख सम्पत् प्राण ।।६।।
मुझको प्यारा है परम, रामचन्द्र गुणी धीर ।
जेता जन जग का अजय, परम पराक्रमी वीर ।।७।।
कहता हूँ मैं वचन यह, उसकी ले सौगन्ध ।
करूँ वही जो तू कहे, प्रण न होगा मन्द ।।८।।
सफल करूँगा कामना, तेरी हे बड़भाग! ।
हो स्वस्थ तज कोप को, हठ दुराग्रह त्याग ।।६।।

* दोहा।

धर्म सत्य की शपथ खा, कहता हूँ इस काल ।
मैं मनोरथ वचन तव, कभी न दूँगा टाल ।।१०।।
मोहित माया मोह में, मान पति महाराज ।
हो महा मोहक मूर्ति, उसने किया अकाज ।।११।।
हर्ष से बोली वह तब, देव सुजन सुर सन्त ।
महर्षि मुनि सब साधुजन, सुनें सभी गुणवन्त ।।१२।।
सत्य-सन्ध शुचि धर्म धर, तेज गुणों का स्थान ।
दशरथ देता है मुझे, इच्छित वर प्रधान ।।१३।।
साक्षी हैं सब आप अब, तुम ही हो प्रमाण ।
वर देता है भूप यह, पण पर धर कर प्राण ।।१४।।
*चहुँ ओर से उसने ऐसे, घेरा वह, घिरे मृग जैसे ।
बान्धा वचनों बीच तथा ही, पड़े जाल में मीन यथा ही ।।१५।।
पंजे में पंछी हो जैसा, भूप किया वश उसने ऐसा ।
निजू जाल में मकड़ी ज्यों ही, जकड़ा निज वचनों ने त्यों ही ।।१६।।
तब उसने वह कथा सुनाई, उसको दानव देव लड़ाई ।
दोनों वरों की कह कहानी, कहा मुझे वर दो वरदानी ।।१७।।
आज भरत को भूप बनाओ, यों पूर्ण वर एक कराओ ।
रामचन्द्र अपर में जावे, वन में चौदह वर्ष बितावे ।।१८।।
दण्डक वन में मुनिवत् हो ही, सर्व काल वहाँ रहे सो ही ।
कर वर-दान वचन को पालो, स्व प्रण सच्चा आप बना लो ।।१६।।
सत्य धर्म कहते मुनि ज्ञानी, महर्षि सन्त सभी जन ध्यानी ।
तुम सत्य में स्थिर हो जाओ, सत्य-पाल स्वर्ग सुख पाओ ।।२०।।

---
* चौपाई।

सुन वचन दारुण दुःख देने, हृदय-बेधक जी हर लेने ।
पीड़ित चिन्तित हुआ तभी ही, घेरा शोक ने वह जभी ही ।।२१।।
सुन्न बने उनके सब अंगा, मिटे विवेक विचार तरंगा ।
चेतन होकर पीछे मोही, लगा कोसने वह निज को ही ।।२२।।
दीन दुःखी अति हुआ उदासी, दिखी उसे वह दुःख की रासी ।
सिंहनी से ज्यों मृग भय खाता, उससे भूपति भीत दिखाता ।।२३।।
लेता सांस अधिक बहु भारी, मंत्र-मुग्ध यथा फणधारी ।
अहो धिक्कार तुझे मति मूढ़े!, वैर दुराग्रह पर आरूढ़े! ।।२४।।
यह कहते ही मूर्छा आई, जड़ता अति उस पर तब छाई ।
हो सचेत फिर वे यों बोले, देवि! दया कर शान्ता हो ले ।।२५।।
राम ने तेरा क्या है बिगाड़ा, करे कोप क्यों उस पर भारा ।
विनय शीलयुत पुत्र हमारा, पूजे तुझे वह परम प्यारा ।।२६।।
उसकी महिमा सुजन सुनाते, सभी लोग हैं कीर्ति गाते ।
लोक-मान्य गया वह माना, उत्तम पुरुष सर्व ने जाना ।।२७।।
मां-मां कह जो तुझे पुकारे, वचन शुचि विनयवान् उच्चारे ।
ऐसे सुत को दुःखी बनाते, तेरे अंग न क्यों सकुचाते ।।२८।।
जीवें जीव रवि बिना चाहे, उदक बिना खेती फल लाये ।
जी न सकूँ मैं राम विहीना, मरूँ मीन ज्यों जल से हीना ।।२६।।
पापे! पाप-पतन पर से ही, पड़ा उठा ले पग डर से ही ।
कुटिल क्रूर कटु कर्म कमाती, किंचित् भी तू नहीं लजाती ।।३०।।
छोड़ बुरा हठ सुत अपना ले, बहुत बिगड़ी बात बना ले ।
वैर विरोध कुवृक्ष लगाना, दिन दिन दूने दुःख है पाना ।।३१।।
प्रिय भरत है मुझको कैसा, यदि परिक्षण है तब ऐसा ।
तो वर पहला मुझसे पा ले, राजवंश की लाज बचा ले ।।३२।।

सदा राम-गुण पहले गाती, तू थी मन में अधिक हर्षाती ।
बनी वैरिणी अब क्यों ऐती, मुझे दुःख दारुण है देती ।।३३।।
राम भरत में भेद न लाती, दोनों तुल्य समझ सुख पाती ।
स्नेह सने सब सुख रस वाले, कहती मधुर वचन तू बाले! ।।३४।।
आज कोप की लेकर लाली, तू क्यों बनी विषम विष-व्याली ।
प्रिय पुत्र को कर वनवासी, क्यों निज गल में डाले फाँसी ।।३५।।
रात-दिवस जो तुझको सेवे, मात मात कह अति सुख लेवे ।
ऐसे भक्त नम्र सुत सेती, कर द्वेष क्यों पाप है लेती ।।३६।।
इतना है परिवार तुम्हारा, दासी दास गण का विस्तारा ।
उनमें उसका एक न द्वेषी, मिले ढूँढते अरी महेषी ।।३७।।
सभी उसको निर्दोष बतावें, स्व पर जन उसके गुण गावें ।
ऐसे नर से वैर बढ़ाते, तेरे प्राण न क्यों कंपाते ।।३८।।
भू पर जो है सब कुछ मेरा, हुआ आज से सब भी तेरा ।
पर तो विनती इतनी मानो, प्रेमी पुत्र राम को जानो ।।३९।।
मैं कर जोड़ विनय करता हूँ, तव चरणों पर सिर धरता हूँ ।
राम को वन में न भिजवाओ, मुझ बूढ़े के प्राण बचाओ ।।४०।।
ऐसे बहुत बिलखते रोते, बार बार अचेत थे होते ।
सजल नयन भूपति बिललाते, राणी को थे अति समझाते ।।४१।।
{चतुर वही पर चाल बचावे, वचन-बन्ध में सहज न आवे ।
मुख से वचन बिखर जब जाते, दूर गये फिर हाथ न आते ।।४२।।
दाव पेंच चल चाल पेचीली, बात बनाकर बहुत रसीली ।
चतुर चातुरी चलते चालें, दुर्बल का मन वशी बना लें} ।।४३।।

दसवाँ सर्ग

*चरण पड़ा बलहीन, तड़पता राजा मीनवत् ।
दारुण दुःख से दीन, देख, दया से दूर वह ।।१।।
बोली दे वर आप, अब पछतावा क्यों करो ।
वृथा बहुत विलाप, सत्य धर्म का लोप है ।।२।।
मर्यादा नहीं तोड़, पुत्र-प्रेम के पाश पड़ ।
प्रण-पालन न छोड़, पाप शाप से आप डर ।।३।।
साक्षी सब कर लोप, सिद्ध ऋषि सुर पास तू ।
सत्य-भंग का कोप, पावेगा स्वधर्म हन ।।४।।
रोना धैर्य त्याग, कृपण कायर कर्म है ।
प्रण सत्य से भाग, जाना अति अपधर्म है ।।५।।
जैसे विषधर व्याल, कुपित उछल जन को डसे ।
तथा नयन कर लाल, पति को वह थी ताड़ती ।।६।।
फिर बोली स्वर तान, भंग करे प्रण तू यदि ।
तो मैं निज जी जान, नष्ट करूँगी ही अभी ।।७।।
विष प्याला कर पान, तेरे सामने मैं अब ।
करूँ प्राण की हान, यदि राघव राजा बने ।।८।।
सौकन का सुख मान, सह न सकूँ मैं एक पल ।
तुरत मरूँगी जान, राम वनी नहीं हो यदि ।।६।।
बना मोह में मूढ़, मम हित-हत्या कारण तू ।
घोर वैर कर गूढ़, बड़ा शत्रु है बन रहा ।।१०।।
प्रण वचन कर नाश, वंश-विदूषक बन बड़ा ।
कर कुल धर्म विनाश, होगा तू अति नारकी ।।११।।

---
* सोरठा।

सुन ले मेरी बात, भला कहे जग वा बुरा ।
चाहे हो उत्पात, भूप भरत तो कीजिये ।।१२।।
बनी पाप की बेल, कोप कलह कण्टक लदी ।
फूट भेद अनमेल, विषमय वह फलधारिणी ।।१३।।
*भार्या भ्रान्ता देख हठीली, हुई भूप की धैर्य ढीली ।
बुझे दीप सा दीखा सो ही, विस्मित सुन्न विमन अति हो ही ।।१४।।
नीरव बन निज नयन पसारे, पत्नी को इक टक वह निहारे ।
मौन-मूर्ति मत्त समाना, गया मंत्र-मुग्ध सा माना ।।१५।।
किंचित् चेतनता जब आई, बोला उसे वह हो सहाई ।
स्व सुत को वन में भिजवाना, है जीते जी ही मर जाना ।।१६।।
जिसे प्रेम से पोसा पाला, उसको देना देश-निकाला ।
पाप परम है पातक भारा, निन्दा जगत् करेगा सारा ।।१७।।
और पति सुत निज की भलाई, है, समझ तज देना लड़ाई ।
स्व घर की अति फूट बुराई, अति अपमान करे हँसाई ।।१८।।
हैं सगे सम्बन्धी बुलाये, मित्र भूप गण भी हैं आये ।
सुन कर कलह क्लेश हँसेगे, कुवचन बाण कठोर कसेंगे ।।१९।।
पूछें वयोवृद्ध जभी जो, क्या कहूँ मैं उनको तभी तो ।
अपने घर की पोल बताना, जगत् में अपयश है कमाना ।।२०।।
रामचन्द्र है बहुत प्यारा, मेरा जीवन प्राण-सहारा ।
उसको यों वनवास दिलाना, है अत्यन्त अपराध बढ़ाना ।।२१।।
मंजुल मधुर कथन कर जो ही, शशि सम सुन्दर शीतल को ही ।
देश-निकाला घोर सुनाना, वज्र कमल पर है बरसाना ।।२२।।

---
* चौपाई।

शुचि विनीत जो आज्ञाकारी, तोष क्षमा शम दम का धारी ।
जब देखूँगा वन को जाता, मैं मरूँगा तभी बिलखाता ।।२३।।
दीन-दयायुत जो है दानी, धर्म कृतज्ञतायुत अमानी ।
उस देवोपम को वन देना, घोर पाप है सिर पर लेना ।।२४।।
जिस में सत्य मित्रता राजे, शौच त्याग तप विद्या विराजे ।
सेवा सरलता स्थिर जिसमें है, वैर भाव क्यों नर उसमें है ।।२५।।
निर्वासन निर्दोष का होना, पाप बीज है जग में बोना ।
हो विप्र निन्दित सुरापायी, त्यों बढ़ेगी मेरी बुराई ।।२६।।
कल्प लता सम तन जस दीखे, चरण सुकोमल कमल सरीखे ।
सुख सम्पन्न वह षट्रस भोगी, कथं बसे वन में बन योगी ।।२७।।
कर्ण में कुण्डल लहलहाते, मुकुट मोती मणि जगमगाते ।
जिस के वेश केश अति भाते, कर लज्जा उसे वन भिजवाते ।।२८।।
शशिमुख सिया पिया को जाते, जब देखेगी अश्रु गिराते ।
सुन तब उस की गद्गद् बानी, होगी मम जीवन की हानी ।।२६।।
पति यति गुणी सबल स्नेही, वन को जाता जान वैदेही ।
प्राण तजेगी तत्क्षण दीना, मरती मीन यथा जल हीना ।।३०।।
कौशल्या सुख सम्पदा रासी, बनी सदा रहती तव दासी ।
निर्वासन तस पुत्र को देते, क्यों करे कटु कर्म तू ऐते ।।३१।।
प्रेम स्नेह तुझ से था मेरा, आदर सम्मान जो था तेरा ।
घातक घोर घटा वह सारा, वज्र-घात उत्पात यह भारा ।।३२।।
तेरे सुख साधन की बातें, करते कार्टी मैंने रातें ।
अब उसका है यह फल पाया, तूने घोर अनर्थ मचाया ।।३३।।
विष-मिश्रित मदिरा हो जैसी, तव प्रीति हुई मुझको ऐसी ।
कर कुपथ्य हो दुखिया रोगी, दुःखी बना मैं ऐसे भोगी ।।३४।।

खेले बाल साँप से ज्यों ही, तुझसे प्रीति करी मैं त्यों ही ।
व्याध गीत से हरिण यथा ही, मैं तव मोह में फँसा तथा ही ।।३५।।
हास विलास रास रस झूठे, स्नेह प्रेम संलाप अनूठे ।
करके तूने मुझे लुभाया, वचन जाल में पंछी बनाया ।।३६।।
तव मोह की, मोहित विलासी, रहा कण्ठ में डाले फाँसी ।
अब मैं हूँ अति ही पछताता, बद्ध विहगवत् बहु बिलखाता ।।३७।।
लोक लाज को मन में लाओ, पाप कर्म से तो डर जाओ ।
अनर्थ अन्याय करना त्यागो, अनीति-निश्चय से तुम भागो ।।३८।।
भ्रातृ-भक्त भरत है भारी, भावुक भव्य भला आचारी ।
कथन न मानेगा वह तेरा, समझ सुनिश्चित निश्चय मेरा ।।३९।।
फिर क्यों है तू पाप कमाती, रघु-वंश की आन गँवाती ।
मुझे मारकर क्या यश लेगी, उत्तर जन जग को क्या देगी ।।४०।।
पत्नी सती मैंने तू जानी, प्राण-प्रिया थी मन से मानी ।
पर तूने सब झूठ बनाया, रचकर मुग्धे मिथ्या माया ।।४१।।
हाय! हनन हुआ मैं अभागा, पूर्व पाप कर्म है जागा ।
जिससे आज तू हो हत्यारी, बनी बिगाड़ रही है सारी ।।४२।।
मुझको है विश्वास यह पूरा, विनीत शुचि ज्ञानी सुत शूरा ।
सुन आज्ञा वन को तत् वेला, जायगा वह तुरन्त अकेला ।।४३।।
ऐसे सुत सुशील को यों ही, संकट में करती है क्यों ही ।
हाथ जोड़ विनती है मेरी, पुत्र प्रेम बसा एक बेरी ।।४४।।
घोर सघन वन में न जावे, रामचन्द्र यहीं सुख पावे ।
हठ छोड़ कहा कर ये ही, पुत्र सुदान दया से दे ही ।।४५।।
तेरे समीप मैं हूँ आता, चरणों पर हूं सीस झुकाता ।
करुणा करके कलह करारी, तजकर हो सुशान्त प्यारी! ।।४६।।

यह कहते भूपति तब दौड़े, पद छूने को दो कर जोड़े ।
अश्रु-धारा अटूट बहाते, कम्पित काय अति डगमगाते ।।४७।।
अनाथ दीनवत् बिलबिलाते, वाण-विद्धवत् वेदना पाते ।
मूर्छा सहित गिरे वे ऐसे, व्याधि घोर ग्रस्त गिरे जैसे ।।४८।।
हो सचेत वे फिर फिर रोते, विनय करते थे दुःखित होते ।
हाथ बांध बहु बार मनाते, ऊंच नीच सब कुछ समझाते ।।४६।।
पर कटु काय कलह की मारी, कसती वह कुवाक्य कटारी ।
बार बार वर मुख पर लाती, कायर कहकर उसे लजाती ।।५०।।
ज्यों जन जल में गोते खावे, घन में शशि फिर फिर घिर जावे ।
अचेत सचेत हो वे त्यों ही, विद्ध विहग बहु तड़पे ज्यों ही ।।५१।।
पल पल रात्रि बढ़ती जाती, उनकी वेदना थी बढ़ाती ।
क्षण क्षण लगता उनको भारी, प्राण-पीड़न पीड़ाकारी ।।५२।।
राणी को उलाहने देते, दीन दशा में करवटें लेते ।
दीर्घ साँस छोड़ घबराते, पुनरपि मूर्छित वे हो जाते ।।५३।।
मिल निशा निराशा दो ही, दीर्घ दारुण दुःखद हो ही ।
काल रूप हो उसे सतातीं, विषम विषवत् व्यथित बनातीं ।।५४।।

ग्यारहवाँ सर्ग

*दशरथ की वह रात, बीती रोते दुःख में ।
आई जो प्रभात, वह भी नव दुखड़े लिये ।।१।।
रीति नियम अनुसार, वन्दी वर बोले सभी ।
जय जय शब्द उच्चार, उसके जगने के लिए ।।२।।

* सोरठा।

बाजे बजे विशेष, गीत सरस सुर से सने ।
हुए, बोले नरेश, राग रंग सब बंद हों ।।३।।
*कहा पत्नी ने, भूप, अधीर न बनिए ऐसे ।
पुत्र-प्रेम में आप, विलाप न करिए ऐसे ।।
प्रण सत्य कर लोप, न सिर अघ धरिए ऐसे ।
सुत ममता में मग्न, वृथा न मरिए ऐसे ।।४।।
भेज सचिव सुमंत्र, राम को अभी बुलाओ ।
दे आदेश तुरन्त, उसे वन में भिजवाओ ।।
करो भरत को भूप, प्रण सब सत्य बनाओ ।
मुझको वर कर दान, आप उऋण हो जाओ ।।५।।
इत्यादि कर कथन अति, उसने उसको सताया ।
कोड़े से, सद् अश्व, पीट ज्यों जाय चिड़ाया ।।
कर व्याकुल बहु भांति, तथा वह क्रुद्ध बनाया ।
प्रण-पाश में पड़ा, पीड़ कर अधिक तपाया ।।६।।
सूर्योदय के समय, स्वयं वशिष्ठ पधारे ।
सर्व सामग्री सहित, लिए संग शिष्य प्यारे ।।
निरखे मुनि ने सभी, पन्थ शुचि सज्जित भारे ।
हाट बाट सब चौक, सोहें सुशोभित सारे ।।७।।
घर मन्दिर वर द्वार, गली सब मार्ग कूचे ।
सिक्त स्वच्छ सम शुचि, बने वे ऊँचे नीचे ।।
उत्सव का सज साज, सुन्दर सोहें समूचे ।
देव-विमान समान, सजे सुसदन अति ऊँचे ।।८।।

* रोला।

नगर निरखते तथा, ऋषि-वर आगे आये ।
राज-भवन को देख, चित्त में अति हर्षाये ।।
सभी सभासद् वहाँ, खड़े थे सजे सजाये ।
बहुत वेदवित् विप्र, वहाँ थे शोभा लाये ।।६।।
राज-द्वार पर ठहर, मुनि ने देखा सचिव-वर ।
विद्या ज्ञान की खान, न्याय नीति का महा-घर ।।
राजा का विश्वस्त, सुमंत्र सुगुण शक्तिघर ।
कोमल मधुर विनीत, नर वर निर्भय निपुणतर ।।१०।।
कहा ऋषि ने उसे, भूप पै भद्र! जाइए ।
मेरा शुभ सन्देश, विनय से जा सुनाइये ।।
है सामग्री सजी, उन्हें गिनकर बताइये ।
अभिषेक की सुवस्तु, विधि से सब समझाइये ।।११।।
सब हैं कलश सुवर्ण, पूर्ण सिन्धु गंगा जल के ।
चन्दन औषध रत्न, मोति मणि महा झलके ।।
मंगल कारक कुशा, फूल फल पुँज कमल के ।
अश्व हस्ति शुभ सिंह, बैल भी रंग धवल के ।।१२।।
छत्र चंवर इत्यादि, यहाँ सब सज्जित अब है ।
सचिव सभासद् वर्ग, विप्रगण आया सब है ।।
मंगल शकुन विशेष, समय शुभ अवसर ढब है ।
आओ करिए तिलक, मुहूर्त उत्तम जब है ।।१३।।
मुनि के सुन वह वचन, भूप को बोला जाकर ।
हाथ जोड़ हो नम्र, विनय से सीस झुकाकर ।।
ऋषि मुनि लिये साथ, खड़े हैं गुरु जी आकर ।
देव! दो दर्शन दिव्य, दया जन-दल पर लाकर ।।१४।।

राजे नागर पंच, सभी जनपद के नेता ।
शूर वीर नर धीर, सेना-पति शत्रु-जेता ।।
बल गण दल के मुखी, मुनिवर वेद के वेत्ता ।
खड़े सभी हैं सजे, द्वार पर भेदी भेत्ता ।।१५।।
निद्रागत उसे जान, विनय से लगा जगाने ।
बनकर बहुत विनीत, स्तुति वह लगा सुनाने ।।
बोला, हे नर-देव, दिव्य होते हैं गाने ।
जग कर हैं जन सर्व, कर्म करते मनमाने ।।१६।।
भरे सिन्धु में हर्ष, उदित ज्यों सूर्य होकर ।
भूमि को दें चमका, रविशशितिमिरकोखोकर ।।
विधि में बसते वेद, यथा तस मन को धोकर ।
त्यों जन को दो हर्ष, उठकर सेज से सोकर ।।१७।।
उठिये ऐसे नाथ, यथा रवि उदयाचल से ।
निसरे सरस सुगन्धि, महकते पद्म कमल से ।।
शीतल बहे समीर, ससीकर सरित सलिल से ।
जन हर्षित करो तथा, मोहन मुख मधुर अमल से ।।१८।।
किंचित् नयन उघाड़, भूप ने सचिव निहारा ।
कहा होकर उदास, न तू दुःख दे यों भारा ।।
दीन देखकर देव, हुआ वह कम्पित सारा ।
कुछ हटकर हो खड़ा, बना विस्मित भय मारा ।।१९।।
दारुण दुःख से दीन, देख कर राणी पति को ।
बोली उसे तुरन्त, छोड़ शुभ कर्म सुमति को ।।
समझो सचिव स्नेही, राजा की शिथिल गति को ।
राम उत्सव से यह, हर्ष सुख लेता रति को ।।२०।।

जगता सारी रात, रहा आनन्द मनाता ।
निद्रित दीन से तभी, नहीं अब बोला जाता ।।
हुआ निमीलित नयन, देखकर तुझको आता ।
कहती हूं मैं तुझे, इसे जो है मन भाता ।।२१।।
यह देखना चाहे, राम को कहिए जाकर ।
मेरा यह आदेश, उसको कहना सुनाकर ।।
यथा सम्भव तत्काल, मिले वह इसको आकर ।
सुमंत्र मति-निधान, अभी तुम जाओ धाकर ।।२२।।
सुनकर यह आदेश, कहा उसने, हे राणी! ।
कैसे दूँ सन्देश, बिना सुन भूप की वाणी ।।
भूपति दे आदेश, यही है रीति पुराणी ।
यह सुन सोचन लगी, वह सिर पर धरकर पाणि ।।२३।।
किंचित् हृदय थाम्भ, भूप ने कहा, जाइए ।
सचिव सुनिपुण सुजान, राम को जा संग लाइए ।।
है आवश्यक काम, देर न आप लगाइए ।
अब कर वाद विवाद, बात न बहुत बढ़ाइए ।।२४।।
पा कर वह आदेश, चला त्यों भूप-भवन से ।
जैसे सहित सुगन्धि, निसरे समीर सुमन से ।।
समझा वह अभिषेक, काम है विकसित मन से ।
रुका द्वार पर जा, घिरा था जो जन घन से ।।२५।।
लगी हुई थी भीड़, वहां पर नागर दल की ।
होती ऊँची ध्वनि, जनों के रव कल कल की ।।
मंत्री रथ को रोक, बनी बहु सज्जन बल की ।
पूछते उससे सब, बात अभिषेक विमल की ।।२६।।

मृदु मधुर संलाप, सहित वे तुष्ट बनाये ।
उसने मिष्ट मिलाप, संग जन सभी रिझाए ।।
अति शीघ्र वह बढ़ा, यान का वेग बढ़ाये ।
राज-भवन से गया, रहा जो बहुत सुहाये ।।२७।।
उसने देखा भवन, सूर्य सम चम चमाता ।
सोहे ज्यों कैलाश, मेरु सम शोभा पाता ।।
मणि हीरों से जड़ा, मनोहर जन-मन भाता ।
मणि मूँगे मय द्वार, सहित था बहुत सुहाता ।।२८।।
उस के तोरण सभी, रजत युत थे सुवर्ण के ।
चित्रित चित्र विचित्र, चमकते चारुवर्ण के ।।
रत्न झालरें सजें, लिये रंग चित्त हरण के ।
सुवर्ण पुतलियाँ शुचि, सह उपकरण भरण के ।।२६।।
चित्रित चारु किवाड़, दृढ़ थे बहुत सुहाते ।
उन में हीरे जड़े, रत्न महा जग मगाते ।।
छत्त कोठरी भीत, सब थे मन को लुभाते ।
कोट कंगूरे कलश, कंचन के चम चमाते ।।३०।।
महल में महा दैलान, सजा था बहुत मनोहर ।
सुमणि मोती की थीं, झूलती झालरें सुखकर ।।
उस में थे उपकरण, बहु मोल सब ही वरतर ।
सर्व सुन्दर था वह, ललित लीला का आकर ।।३१।।
सज्जित सुखासन थे, सहित शुभ रंग निराला ।
आँगन उसका बहुत, बड़ा था शोभा वाला ।।
शुचि चंदोए तने, लटकती मोती-माला ।
सुन्दर बिछे बिछान, बनी थी शोभा शाला ।।३२।।

पुष्प वाटिका वहाँ, थी अति रमणीय भारी ।
करती सुरभि पसार, खिली कुसुमों की क्यारी ।।
बेलें पुष्प सपत्र, झूलती लगतीं प्यारी ।
देव-उद्यान समान, दिव्य थी वह फुलवारी ।।३३।।
केतकी केवड़ा की, मोतिया महक वहाँ पर ।
बहता सुगन्धित स्रोत, चम्बेली का जहाँ पर ।।
पुष्प वासना सहित, वहाँ जल चलता सर सर ।
रम्य बने थे बहुत, लता मण्डप शोभा-घर ।।३४।।
हरित सुकोमल घास, खेत में बिछा बिछाया ।
पत्रित पुष्पित पेड़, देते सुशीतल छाया ।
विविध वर्ण के फूल, रखते सुरूप सवाया ।।
नाना रचना साथ, गया था बहुत सजाया ।।३५।।
चहकतीं चिड़ियाँ चपल, वहाँ बहु रंग बिरंगी ।
कोयल हंस मयूर, मधुर शुक सारस संगी ।।
मैना क्रौंच कपोत, पक्षी सुर रस के अंगी ।
उड़ फिर करते रमण, बोल हि बोलियां चंगी ।।३६।।
था जलाशय पूर्ण, वहाँ शुचि नीले जल से ।
लहरें लेता ललित, पवन की चाल चपल से ।।
मछली गण बहु भांति, रहा उछल पछल से ।
अलि-दल करता रमण, कमल कलि कुंज विमल से ।।३७।।
धूप रहा था बहुत, महक वहां गुरु अगर का ।
कस्तूरी की सुगन्धि, सहित लोहबान तगर का ।।
अद्भुत था सामान, वहां सब देश नगर का ।
मूर्तिमय था मान, गौरव यश कुल सगर का ।।३८।।

वहां सेवक सब थे, शुचि सजे कुशल कर्म में ।
सुन्दर सबल सुडौल, निपुण तर विनय धर्म में ।।
भद्र सुकर्मी सुशील, चतुर वर बात मर्म में ।
राम-भक्त अनुरक्त, पगे थे प्रेम परम में ।।३६।।
रथ से उसने उतर, भवन में पैर बढ़ाया ।
नत हो सेवक संघ ने, उसको सिर झुकाया ।।
सस्मित मिलता उन्हें, वह उस भाग में आया ।
जहाँ राजते राम, लिये बल तेज सवाया ।।४०।।
दूत को बोला वह, प्रिय! तुरन्त ही जाना ।
है आया सुमंत्र, सिया-पति को बतलाना ।।
अति आवश्यक काम, उसे है आप बताना ।
उनका ले आदेश, अभी फिर मुझ पै आना ।।४१।।
प्रतिहारी ने यह, राम को जाय सुनाया ।
पितृ-सारथी समझ, उन्होंने उसे बुलाया ।।
सचिव ने जा समीप, मस्तक उनको नवाया ।
जय जय नाद अलाप, राम यश उसने गाया ।।४२।।
उदय काल का यथा, रवि सजे उदयाचल पर ।
सर्व कला के साथ, सोहे शशि सिन्धु जल पर ।।
राम शोभते तथा, आसन सुवर्ण अमल पर ।
झलमल करता तेज, था उसके मुख कमल पर ।।४३।।

*लिये सुतिलक, सुन्दर लाल चन्दन का,
शशि सम शोभता, विशाल भाल राम का।

* कवित्त।

लम्बे कोमल चिकने, काले घुँघराले केशों,
पर था विराजता, मुकुट अभिराम का।।
दामिनी-सी दमकती, मन्द-मन्द हँसी लिये,
अरुण वर्ण था, युगल अधर श्याम का।
कुण्डलों की लहक से, मणियों की चहक से,
माला की महक से शोभे तन सुनाम का।।४४।।
शुचि रस भरे, प्रफुल्ल दो नयन कमल,
लाल नीली डोरियों से सज्जित सुहाते थे।
शुक नाक सम लम्बी नासिका की दोनों ओर,
सेब से कपोल गोल लाल शोभा पाते थे।।
कलश समान सुन्दर मस्तक के नीचे दो,
अरुण कर्ण तरुण के अति लुभाते थे।
मोतिए की कलि सम दाड़िम के दानों से,
जड़े हुए दशन चिट्टे चमचमाते थे।।४५।।
गेंडे की पीठ सम छाती शुभ विशाल चौड़ी,
दोनों पार्श्व पुष्ट सम रूप अति भाते थे।
वृषभ स्कन्ध सम कन्धे अति बलिष्ठ दोनों,
दीर्घ भुज-दण्ड साथ कर विलसाते थे।।
केसरी की कटि के सदृश कटि नीचे दोनों,
कदली स्तम्भ जंघा सह पैर रमाते थे।
महा मोहक मूर्ति के मधुर सुडौल अंग,
कर्ता का कला कौशल काम दिखलाते थे।।४६।।
दर्शन कर अद्भुत दिव्य देव देह के,
दूत बोला, देव जी को देखना चाहते हैं।

देव देवी दोनों मिले अभी राज मन्दिर में,
यात्रा के मानो वे मनोरथ मनाते हैं ।।
दास की अरदास है चलें अभी देव प्रिय,
सुने जो भी आदेश माता पिता सुनाते हैं ।
यह सुन उठे राम तत्काल आसन से,
यह समझ राजा राणी मुझे बुलाते हैं ।।४७।।

बारहवाँ सर्ग

*वेश विभूषा सहित शुचि, श्री शोभा शुभ-धाम ।
सह स्मित स्नेह सरस से, बोले सीते! राम ।।१।।
मध्यम माँ के महल में, श्री पिता महाराज ।
मिलना चाहते हैं अब, मुझे काम से आज ।।२।।
सुमंत्र स्नेही सुचतुर, सचिव नीति-भण्डार ।
लाया है श्री भूप का, यही शुभ समाचार ।।३।।
जाता हूँ मैं तो, शुभे!, पितु दर्शन मन धार ।
आऊँगा पीछे अभी, समझ मर्म सब सार ।।४।।
उत्सव यात्रा की वहाँ, होगी प्रायः बात ।
सभी सुनाऊँगा तुझे, होकर हर्षित गात ।।५।।
प्राण-प्रिये ! पावन सब, सुव्रत पालन लीन ।
रहना मन तन कर्म से, बनी सुशान्त अदीन ।।६।।
स्नेह सने सुर शब्द सुन, होकर पुलकित अंग ।
चलती वह पति चाल से, चली द्वार तक संग ।।७।।

* दोहा।

मिल कर चित्रा चन्द्र ज्यों, सुर-तरु कुसुमित बेल ।
सिया सिर राम-स्कन्ध त्यों, शोभे कर मधु मेल ।।८।।
शची शक्र स्वसदन से, निसर फिरें स्वच्छन्द ।
निसरण उनका था तथा, शान्त गम्भीर अमन्द ।।६।।
ज्यों सुरवन में सुर-सुरी, सुख से करें विहार ।
आंगन में से था तथा, सिया राम संचार ।।१०।।
पुष्पित निज उद्यान में, शोभे सीता साथ ।
कमल-कुंज पर सप्रभा, ज्यों हो रजनीनाथ ।।११।।
कुसुमित दोनों ओर से, पथ से जाते राम ।
राजहंस की जोड़ ज्यों, लगे बहुत अभिराम ।।१२।।
चलते धीमी चाल से, मन में भरे उमंग ।
राम जानकी शोभते, यथा युगल सारंग ।।१३।।
राम सिया श्री से मिले, करते थे प्रकाश ।
रवि ज्योति से यथा मिला, शोभे शुभ कैलाश ।।१४।।
विकसित जन-मुख कमल पर, स्मित सुकिरण पसार ।
पूर्ण शशि सम अति प्रिय, लगे राम सुखकार ।।१५।।
सेवक वर्ग विनीत से, लेते बहु प्रणाम ।
गये डयोढ़ियाँ लांघते, सब ही पूर्ण काम ।।१६।।
जा बाहर के द्वार पर, सहित मधुर मुस्कान ।
सस्नेह सीता से विदा, हुये भर्त्ता गुणवान् ।।१७।।
रथ सुवर्ण उनका चला, ज्यों हो भानु-विमान ।
सिया रही तब शोभती, सन्ध्या शुभा समान ।।१८।।

*पुष्ट सुन्दर चाल वाले, अश्व थे रथ में जुड़े ।
सभी सधे सुशील थे पर, छेड़ से जाते उड़े ।।
अल्प-सा संकेत समझें, जभी चाहो हों खड़े ।
विषम दुर्गम लांघते, पथ, कभी अटक नहीं अड़े ।।१६।।
जगमगाते बैठ रथ में, सियापति थे जा रहे ।
बैठ पीछे वीर लक्ष्मण, थे चँवर डुला रहे ।।
आगे पीछे संग सैनिक, हुये सज्जित आ रहे ।
अश्व हस्ति सवार सुन्दर, साथ शोभा पा रहे ।।२०।।
झनझनाती रथ-ध्वनि सुन, नगर-जन आये वहाँ ।
करने दर्शन रघुपति के, यान जाता था जहाँ ।।
कहते, मोहक शुभ दर्शन, सर्व दिन मिलते कहाँ ।
ज्ञान नीति शक्ति देह धर, राम आता है यहाँ ।।२१।।
न्याय शान्ति सुरूप होगा, राज राजा राम का ।
सब में सम होगा शासन, धर्म से गुण-धाम का ।।
बढ़ेगा धन धान जन से, भाग नगरों गाम का ।
जाति-ज्योति ज्वलन्त उज्ज्वल, हो तेज ले श्याम का ।।२२।।
सब जनों में मेल होगा, एकता के तार से ।
परस्पर हित कर्म होंगे, धर्म से उपकार से ।।
लोक उन्नत सर्व होंगे, ज्ञान विद्या विचार से ।
गृह के सम्बन्ध सुन्दर, होंगे विनय प्यार से ।।२३।।
दुष्कर्म दुर्गुण पाप ताप, देश में होंगे नहीं ।
चोर डाकू दस्यु दम्भी, दीखेंगे न जन कहीं ।।

* गीतिका।

आधि व्याधि उपाधि ईती, मिलेंगी कहीं न रहीं ।
ऋद्धि सिद्धि हो श्री शोभा, राम होवें भी वहीं ।।२४।।
चहुँ ओर से यों कहते, जन-दल थे पिले पड़े ।
थे सज धज रूप रंग में, परस्पर हि बढ़े चढ़े ।।
वेश भूषा भव्य भारी, लिए भूषण भी जड़े ।
नगर तोरण द्वार घर सब, मणि रत्नों से थे मढ़े ।।२५।।
सभी हाटें सज रही थीं, मुक्ता-माला हार से ।
पुष्प-तोरण पुष्प-मण्डप, शोभे अति विस्तार से ।।
ध्वज झण्डे झूलते थे, राज-पथ घर द्वार से ।
सुन्दरता थी आ उतरी, शुचि रूप अवतार से ।।२६।।
जाते जिस पथ से राघव, उधर आते जन मिले ।
पूर्णा को लहरें लेता, जैसे सिन्धु जल हिले ।।
हर्ष के उत्कर्ष से सभी, कमल गण सम थे खिले ।
वर्षा के नद-पूर सम वे, वेग से आते ठिले ।।२७।।
जन-सागर उमड़ रहा था, एक मन तन काज हो ।
उसे लाँघता वह वर रथ, दीखा ज्यों जहाज हो ।।
रजत रूपी निकल घन से, यथा रजनी-राज हो ।
राजता था जन-जगत् ज्यों, तारागण का समाज हो ।।२८।।
नारि नर से लद रहे थे, भवन हाट अट्टारियां ।
थीं कुसुमित बेलों सम सब, सुनम्र छत्तें भारियां ।।
थे शोभित नारि नर सभी, जैसे कुसुम क्यारियां ।
लेते राम-प्रेम में मन, हर्ष गहरी तारियां ।।२६।।
राज-पथ की ओर दोनों, भित्ति मानव थी बनी ।
वेश भूषा से सजे ज्यों, कुसुम बेलें हों घनी ।।

राम-मुख पर पड़ते हुई, एक सब आंखें तनी ।
गगन तक में गूँजती थी, राम की जय जय धुनि ।।३०।।
मुखकमल पर नयन-अलि-दल, शुचि करते किलोल थे ।
सर्व जन-मन राम सर में, रमते हंस अनमोल थे ।।
मधुर मूर्ति एक मन जन, निरखते अनडोल थे ।
प्रेम-भक्ति स्नेह समादर, उनके सब अतोल थे ।।३१।।
तथा भावुक जनों में से, राम-रथ था जा रहा ।
उसके पीछे जन सागर, चला लहरें खा रहा ।।
राम-रथ रत्नों में बिम्बित्, था सूर्य समा रहा ।
रश्मि-वेश उतार कर उस, सर शुचि में नहा रहा ।।३२।।
मुकट-हीरों की रश्मि, रवि-रश्मियों से सटी ।
हो सुनहले रूप में सुर, सरित नहरों में बटी ।।
देव दर्शनों को समझो, सुरों की सड़कें पटी ।
हार भूषण रत्न चमचम, राम-तन में थी घटी ।।३३।।
रूप-राशि अतुल्य में सब, थे जन-चित्त एक हो ।
वे भूल भेद तू मैं के, तदाकार अनेक हो ।।
भाव प्रीति हर्ष भक्ति में, लय थे एकमेक हो ।
राम बसते थे जनों में, एक निश्चल टेक हो ।।३४।।
पितृ-गृह-द्वार ओट में, वे जन को निहारते ।
गये, शशि ज्यों,अस्ताचल से, कला सब संहारते ।।
रूके जन ज्यों ,सिन्धु तट पर, रुके ठाठें मारते ।
राम-यश गाते रहे सब, धन्य धन्य पुकारते ।।३५।।
तीन डयोढ़ी गये रथ से, उतर फिर पैदल चले ।
निरखते सुदृश्य सुन्दर, बेल तरु फूले फले ।।

राम राजे अन्तःपुर में, उतरा हो भानु तले ।
उनको देते थे आदर, भृत्य भद्र शुचि भले ।।३६।।
पिता मात समीप जाकर, नमस्कार उसने किया ।
उन्हें देख उदास बैठे, हिल गया उसका हिया ।।
हर्ष-हीन वे थे दोनों, ज्योति-रहित यथा दिया ।
दशा देख अभूत पूर्व, राम का तड़पा जिया ।।३७।।
परम प्रेमी था प्रिय सुत, छूता पितृ-चरण को ।
पड़ा चुप निहारता पिता, पुत्र अनुपम वर्ण को ।।
करता अश्रुपात बोला, राम! उस मन हरण को ।
बोल सका न कुछ अधिक वह, यथा जन हो मरण को ।।३८।।
दुःखद दारुण दृश्य देखा, राम ने भूपाल का ।
उसके मृदु दिल को लगा वह, स्पर्श विषम व्याल का ।।
हिला वह सिर-पैर तक ज्यों, पत्ता ताल तमाल का ।
पीत पीपल पानवत् तो, हुआ वर्ण विशाल का ।।३६।।
भूप लेते सांस लंबे, दुखिया बहुत थे हो रहे ।
टपकते थे अश्रु टप टप, हांफते थे रो रहे ।।
मूर्च्छा में आते फिर फिर, चेतना थे खो रहे ।
हक्के बक्के होके राघव, सोचते ही तो रहे ।।४०।।
विनय से होकर ही नम्र, राम बोले मात को ।
होता अतुल हर्ष पहले, मुझे देख सुतात को ।।
आज क्या है कष्ट पीड़ा, मृदु इनके गात को ।
यदि दोष अपराध हो मम, तो कहो उस बात को ।।४१।।
कुपित हों मम दोष से यदि, इन्हें आप मनाइये ।
दोष सब अपराध मेरे, क्षमा देवि! कराइए ।।

विनय अनुनय अभी करके, सुखी शान्त बनाइए ।
अपने कौशल से माता, इन को अब हर्षाइए ।।४२।।

तेरहवां सर्ग

*करे जो यों उत्पात, पद पद पर तस पतन हो ।
कर के आत्मघात, फिर फिर वह गिरता रहे ।।१।।
एक पाप कर पाप, होते हैं रुकते नहीं ।
पापी जन तो आप, पानीवत् नीचे चले ।।२।।
हिम-जल तज निज स्थान, नीचा चल खारा बने ।
व्यक्ति तथा महान्, गिरकर नीचे बने बुरा ।।३।।
होता है विनिपात, सत्य धर्म को लोप कर ।
होते घात विघात, मिथ्या द्रोह द्वेष से ।।४।।
अपना तज कर स्थान, जन शोभा पाता नहीं ।
दन्त केश नख जान, गिर कर ज्यों सोहें नहीं ।।५।।
पारिवारिक तज प्रेम, राणी तो गिरती गई ।
न्याय नीति शुभ नेम, सत्य धर्म उसने तजे ।।६।।
लोक-लाज को छोड़, छल कपट द्रोह चाल में ।
पड़ी मर्यादा तोड़, प्रेम-भावना भूल कर ।।७।।
बोली तब वह झूठ, भूप कुपित रोगी नहीं ।
नहीं रहा है रूठ, पर तुझसे है डर रहा ।।८।।
इस के मन में बात, है तो कहने को तुझे ।
तुझसे डर कर तात, चुप है कहता कुछ नहीं ।।९।।

* सोरठा।

अप्रिय कथन कलाप, प्यारे से कैसे करे ।
इससे तेरा बाप, दुःखित दीन उदास है ।।१०।।
तरुण पुत्र बलवान्, यदि कहना माने नहीं ।
होगा मम अपमान, यही सोच है रो रहा ।।११।।
प्रिय पुत्र ! पर राम, मेरी सम्मति सुन भली ।
रख ले कुल का नाम, पालन कर पितृ-वचन ।।१२।।
यदि लेवे तू मान, जो मैंने इससे सुना ।
तुझ से कहूँ बखान, सत्य सत्य मैं आदि से ।।१३।।
सत्य धर्म को लोप, उस ने ऐसा छल रचा ।
भीतर अपना गोप, परम कुपथ पर वह पड़ी ।।१४।।
*कैकेयी की सुन कर बानी, राघव की काया कंपानी ।
बोले वे अति पीड़ित होते, मेरे काज पिता हैं रोते ।।१५।।
हनन हुआ मैं यह सुन पाते, मुझ से भूपति हैं भय खाते ।
हतभागी का है धिक् जीना, जो हो पितृ-प्रेम से हीना ।।१६।।
उचित नहीं यह वचन सुनाना, कब कथन मैंने नहीं माना ।
भूप कहे तो मैं विष-प्याला, पीऊँ तुरन्त करूँ नहीं टाला ।।१७।।
अग्नि में कूद कर जल जाऊँ, देह-लता को भस्म बनाऊँ ।
जल में डूब मरूँ मैं माता, यदि चाहे तू वा मम ताता ।।१८।।
भूप पिता हैं मेरे स्वामी, मैं उनका अनुचर अनुगामी ।
करूँ अवश्य यथा वे चाहें, वह भी बात जो तू बताये ।।१९।।
भंग वचन मैं नहीं बनाता, प्रण कथन हूँ सर्व निभाता ।
यह सुनकर राणी फिर बोली, वचन विषम ज्यों विषयुत गोली ।।२०।।

* चौपाई।

राघव ! सुनिए एक कहानी, आप बीती रहस्य बतानी ।
समर हुआ देवासुर भारा, उस में लड़ा मिल राजा तुम्हारा ।।२१।।
दल बल से असुरों पर जाता, वह था सिंह समान सुहाता ।
असुर-दलों को मार भगाता, विद्ध गिरा मूर्च्छित दुःख पाता ।।२२।।
तब रथ मैंने आप चलाया, अश्व-चाल का वेग बढ़ाया ।
बहुत विधि से रथ को घुमाया, आसुर घेरा काट दिखाया ।।२३।।
असुर-हस्त से भूप बचाया, वैरी अरि कोई पास न आया ।
स्वस्थ होकर राजा बोले, मुँह-मांगे राणि! वर दो ले ।।२४।।
वे वर मैंने अब हैं पाये, भरत भूप बन काम चलाये ।
चौदह वर्ष बना वनवासी, दण्डक वन में हो तू प्रवासी ।।२५।।
यदि चाहे तू बाप रिझाना, सत्यवादी सुकर्मी बनाना ।
तो मम कहना मन में लाओ, सीधे दण्डक वन को जाओ ।।२६।।
वल्कल चीर ले मृगछाला, जटायुत रूप कर मुनि वाला ।
रात-दिवस तुम रहो वनों में, हिंस्त्र पशुयुत घोर घनों में ।।२७।।
सामग्री अभिषेक की सारी, होती सुविधि जिससे तुम्हारी ।
भरत-अभिषेक उस से होवे, राजा बन वह सुख से सोवे ।।२८।।
भूप-मुख में वचन हैं आते, हो भयभीत नहीं कह पाते ।
दुविधा से तुम उसे उभारो, सच्चा करो संकट से तारो ।।२६।।
वज्राघात-सी पीड़ा देने, वचन वाण वेधक बहु पैने ।
सुन कर राम नहीं घबराये, यत्किंचित् भी नहीं डुलाये ।।३०।।
धीर रहे अविचल तो ऐसे, मेरु-शिखर बिजली से जैसे ।
सिन्धु सम गम्भीर अति हो ही, शान्त भाव से बोले सो ही ।।३१।।
बहुत अच्छा मैं हूँ अब जाता, बस कर वन में वचन निभाता ।
वहां रहूँगा सब दिन-रातें, पर सताती हैं मुझे बातें ।।३२।।

मुझे पिता क्यों नहीं बताते, वन-आज्ञा वे नहीं सुनाते ।
यथापूर्व न प्रेम दिखाते, पुत्र न कहकर कण्ठ लगाते ।।३३।।
भरत अभिषेक करो हर्षाते, क्यों नहीं मुझे कह करवाते ।
तन धन आदि जो वस्तु मेरी, है सब भरत-चरण पर ढेरी ।।३४।।
भरत हैं मेरे बन्धु प्यारे, उन पर प्राण जाय भी वारे ।
राज-काज नहीं वस्तु ऐसी, जिस से हो विपदा इस जैसी ।।३५।।
देवि ! पिता को तुम समझाओ, दूत भेज भरत को बुलाओ ।
राज्य करे प्रिय मम भ्राता, हों प्रसन्न पिता श्री माता ।।३६।।
पितृ-वचन सब बिना विचारे, यथा आपने अभी उच्चारे ।
मान लिये मैंने सब वे ही, पितृ-भक्त रहे भरत स्नेही ।।३७।।
राम-वचन सुन बहुत हर्षाई, उसकी मुख-मांगी फल लाई ।
वन-गमन की करती तयारी, बोली वह रच माया भारी ।।३८।।
राम! अभी तुम वन को जाओ, अल्प देर भी नहीं लगाओ ।
इस नगर में तुम्हारे होते, निरन्न रहेंगे पिता तव रोते ।।३६।।
नगर से जब तक तू न जाये, खाये पिये न वह न नहाये ।
जरा-जरित का जीना चाहो, तो तुरन्त तुम वन को जाओ ।।४०।।
यदि मरा भूपति निराहारी, होगा तू पितृ-हत्या कारी ।
गुरु जन से होकर अति शापी, पतित बनेगा जग में पापी ।।४१।।
वह वचन पर हठ से खड़ा है, लज्जावश चुपचाप पड़ा है ।
न बोले तभी दुःख न मानो, इसकी भी चिन्ता पहचानो ।।४२।।
बोले रघुपति धैर्य धारे, धन सम्पत् हैं मुझे न प्यारे ।
वस्तु जगत् में नहीं दिखाये, जो लुभाये मुझको गिराये ।।४३।।
पितृ-प्रिय कार्य करने को, मैं उद्यत हूँ भी मरने को ।
भूप नहीं तो तुम कहती हो, स्वामिनी मम बनी रहती हो ।।४४।।

तव कथन से मुझे वन जाना, चौदह वर्ष तक है ही निभाना ।
मिल माता से आशिष लेके, धैर्य श्वासन उसको दे के ।।४५।।
देखूँगा शुभा सती सीता, पत्नी प्रिया सहचरी विनीता ।
हो बिदा मैं वन को चलूँगा, तेरे संशय दूर करूँगा ।।४६।।
करिओ कर्म देवि! तुम सो ही, देना सुशिक्षा भाई को ही ।
पितृ-सेवा धर्म को पाले, धर्म सनातन यही निभा ले ।।४७।।
{होता है जन जग में कोई, वज्र पड़े पर हिले न जो ही ।
विपदा घोर घटा बन आवें, उसको तो भी डुला न पावें ।।४८।।
व्रत सत्य में जो जन पूरे, प्रण-पालन में पक्के शूरे ।
ऐसे धीर जन के सहारे, धरती सहती कुभार भारे} ।।४६।।

चौदहवां सर्ग

*सुत की बातें सुन सभी, शोकातुर भू-पाल ।
हा-हा करके रो पड़े, सके न मन सम्भाल ।।१।।
नयन उन के झरने बन, झर झर झरते नीर ।
पीला दुर्बल हो गया, उनका सकल शरीर ।।२।।
वाक्-शक्ति के लोप से, सके न शब्द निकाल ।
अचेत मूर्च्छा में पड़े, दीखे बहुत निढाल ।।३।।
दो कर जोड़े नम्रतर, राम विनय की ठौर ।
परिक्रमा कर बाप की, चले कौशल्या ओर ।।४।।
कैकेयी को वन्द कर, राज-चिन्ह सब त्याग ।
माता-दर्शन को चले, रथ त्याग महाभाग ।।५।।

* दोहा।

उनके पीछे चल पड़ा, लक्ष्मण बल गुणवान् ।
सच्चा सुहृद् बन्धु सखा, निर्भय पुरुष निधान ।।६।।
आँखें दोनों कोप से, किये लाल-सी लाल ।
निश्चय कर वनवास का, चला सिकोड़े भाल ।।७।।
अभिसिंचन उपकरण की, परिक्रमा कर आप ।
बड़े बन्धु का वह बली, बना संगी निष्पाप ।।८।।
शरत् ऋतु में यथा शशि, देता शीतल भास ।
तथा सोम सुभास रहे, राघव सुगुण निवास ।।९।।
दीखे नहीं उदास वे, कुछ भी तो उस काल ।
वीतराग मुनि मुक्तवत्, थे सम शान्त दयाल ।।१०।।
शिशिर समय में भानु ज्यों, तजता नहीं सुतेज ।
रघुपति तथा नहीं हुए, कुछ भी तभी निस्तेज ।।११।।
विलसित विद्युत्-रेख-सा, प्रभा मधुर मुस्कान ।
हर्ष रहा मुख राम पर, शशि-कला के समान ।।१२।।
निज जन से होते बिदा, मित्र न समझे भेद ।
हलका भी झलका नहीं, उनके मुख पर खेद ।।१३।।
गये बहुत गम्भीर हो, निज जननी के पास ।
शोभित उत्सव हर्ष से, था तस सदन निवास ।।१४।।
तीनों डयोढ़ी लांघते, गये जहां थी मात ।
नारायण को पूजती, रही सर्व थी रात ।।१५।।
रेशमी कपड़े पहर कर, करती थी तब होम ।
हर्षित हुई सुत को निरख, सिन्धु देख ज्यों सोम ।।१६।।
धेनु आता देखकर, ज्यों बछड़ा नवजात ।
दौड़ मिली त्यों राम को, जननी पुलकित गात ।।१७।।

गले लगाकर पुत्र को, उसका मस्तक चूम ।
बोली आशिष बहुत दे, पुत्र-प्रेम में झूम ।।१८।।
हो राजा प्रताप घर, ऋद्धि-सिद्धि के साथ ।
सत्य धर्म गुण न्याय से, बन तू पृथ्वीनाथ ।।१६।।
यौवराज्याभिषेक से, पद देता है आज ।
तुझको सुधर्मी तव पिता, शुभकर्मी महाराज ।।२०।।
यात्रा उत्सव काम से, आओगे कर देर ।
भोजन करने को तभी, होगी बहुत अबेर ।।२१।।
प्रातराश तो कीजिये, भरे धरे हैं थाल ।
बैठ सुखासन पर प्रिय, लो यह मधुर रसाल ।।२२।।
प्रेम में गद्‌गद् हो अति, करती प्रेम अलाप ।
वह थी मनाती सुख जब, तब ही राम अपाप ।।२३।।
*सहज से नम्र कोमल प्रेमी, विनय धर्म सुकर्म के नेमी ।
मात गोद से सीस लगाये, बोले नीचे नयन झुकाये ।।२४।।
जननि ! कष्ट कठोर है आता, सीता लक्ष्मण तुझ पर माता ।
खेद अहो ! है तुझे बताना, मुझको दण्डक वन है जाना ।।२५।।
चौदह वर्ष मैं वन में रहूंगा, कष्ट सभी भी वहाँ सहूँगा ।
कन्द मूल वन्य वस्तु खाने, वल्कल होंगे चीर बनाने ।।२६।।
मृग-चर्म तो धार जटायें, कुँचित कोमल छोड़ लटायें ।
भूमि-शय्या पर होगा सोना, तिनके कंकड़ मान बिछौना ।।२७।।
नीरस भोजन स्वाद विहीने, वनज वस्तु पर होंगे जीने ।
रसमय अशन सर्व माँ मेरी, मैंने तज दिये एक बेरी ।।२८।।

* चौपाई।

सुखद आसन तजे सुख कारे, कुश कंटक के रहे सहारे ।
मुझे दो आज्ञा जननि प्यारी, वन-गमन की करिये तैयारी ।।२६।।
यौवराज भरत गुणी भाई, होगा सब जन को सुखदाई ।
मध्यम मां है यह बताती, भूप-आज्ञा है वह सुनाती ।।३०।।
करो दया शुभ आशिष पाऊँ, मैं अभी ही नगर से जाऊँ ।
माता बातें सुन कर ऐसे, गिरी, गिरे कटी लता जैसे ।।३१।।
वज्र-हता अशोक की डाली, शाख परशु-हत कुसुमों वाली ।
पड़े कृपाण-कटा ज्यों केला, त्यों भू पर वह पड़ी तद्वेला ।।३२।।
अचेत पड़ी तुरन्त उठाई, सुत ने वह तत्काल बैठाई ।
धूलि-धूसर थी वह तथा ही, धूल में लिट हो घोड़ी यथाही ।।३३।।
उसके तन से धूल हटाई, आप राम ने शान्त बनाई ।
फिर बोली वह दुःखित होती, बहुत हिचकियाँ लेती रोती ।।३४।।
मैंने नहीं था कभी सुख पाया, सहा सौत का कष्ट सवाया ।
सदा पति की सहती उदासी, बन रही मैं सौत की दासी ।।३५।।
मेरा एक तू है सहारा, नयन का तारा प्राण-प्यारा ।
सो अब तू है बिछड़ा जाता, जरित देह को दाह लगाता ।।३६।।
पुत्र किसे कहो मैं कहूँगी, विरह वियोग कैसे सहूँगी ।
देख किसे मैं हर्षित हूंगी, रात दिन तो रोती रहूँगी ।।३७।।
हृदय-हीन यथा हो जीना, मछली मरे ज्यों जल-विहीना ।
तड़प-तड़प तथा मैं मरूँगी, तुझ से बिछुड़ी प्राण हरूँगी ।।३८।।
एक सहे दुःख वन्ध्या नारी, सुत अभाव भाग्य की मारी ।
मेरे होंगे दुखड़े नाना, होकर बिछड़ गोद से जाना ।।३६।।
मोहक मुखड़ा मधुर लुभाना, मिष्ट कथन कर जाना-आना ।
हाव भाव भावुक शुभ प्यारे, मृदुल कोमल कर्म तुम्हारे ।।४०।।

सिमर-सिमर मम हिया फटेगा, कलेजा टुक-टुक हुए कटेगा ।
क्षण-क्षण होगा जीना भारी, काटेगी तन विरह कटारी ।।४१।।
वज्र-पात-सी सुन कर बानी, कठोर कटु वनवास कहानी ।
हाय ! छाती फट नहीं जाती, मुझे मृत्यु क्यों नहीं आती ।।४२।।
तव वियोग मैं देख न पाऊँ, चाहती हूँ अभी मर जाऊँ ।
भूतल में हो लीन समाऊँ, जल में डूब न बाहर आऊँ ।।४३।।
व्रत नियम करके बहुतेरे, रात-दिन जग कर भी घनेरे ।
क्या मैंने इस कारण पाला, तुझे मिलेगा देश-निकाला ।।४४।।
दारुण दुर्दिन देखे मैंने, वियोग वचन के वाण ये पैने ।
सह कर भी मैं हूँ अब जीती, जीवन घड़ी न मेरी बीती ।।४५।।
देह, वियोग अग्नि से, मेरी, जल बनेगी राख की ढेरी ।
जो तू मेरा जीवन चाहे, वन में ले चल साथ बनाए ।।४६।।
मैं हूँ तेरी जननी माता, तू कहना यह क्यों न निभाता ।
माता का है ऊँचा नाता, उसका कथन न मोड़ा जाता ।।४७।।
रोती यों बहुविध बिलखाती, पल-पल में थी मूर्छा खाती ।
राम-राम कह डूबी जाती, विषम वेदना थी वह पाती ।।४८।।
गद्-गद् कण्ठ बनी थी राणी, आँखों से बरसाती पानी ।
जीर्णा वृद्धा की तब काया, दीखी कमल यथा कुमुलाया ।।४६।।

पन्द्रहवाँ सर्ग

*देख कौशल्या मातु को, करती बहुत विलाप ।
लक्ष्मण बोला कोप से, पाकर अति सन्ताप ।।१।।

* दोहा।

आर्ये ! भाती है नहीं, मुझे राम की बात ।
वन को जाना देखते, कलह कपट उत्पात ।।२।।
बाप बुढ़ापे में पड़ा, पत्नी से पराभूत ।
पुत्र-त्याग है कर रहा, तोड़ न्याय का सूत ।।३।।
बिना दोष अपराध के, करना यों बहिष्कार ।
धर्म न्याय विपरीत है, घोर है अत्याचार ।।४।।
ऐसा कहना मानना, जिसमें न्याय न मूल ।
वीर-कर्म विपरीत यह, है धर्म प्रतिकूल ।।५।।
मैं कहता हूँ बन्धु को, योद्धे वीर विख्यात ।
है तजना अधिकार को, न्याय नीति की घात ।।६।।
मैं तो तेरे पास हूँ, लिये धनुष वर बाण ।
जो हरे अधिकार तव, उसके हर लूँ प्राण ।।७।।
तेरे शत्रु होकर यदि, सब जन देवें क्लेश ।
बरसा तीक्ष्ण वाण मैं, निर्जन कर दूँ देश ।।८।।
कौन मात का लाल है, जो आ करे विरोध ।
तेरे सम्मुख हो खड़ा, बल से कर अनुरोध ।।६।।
घास-पात ज्यों आग में, दीप ऊपर पतंग ।
भस्मसात् कर दूँ सभी, विषम बाण के संग ।।१०।।
कहता हूँ मैं शपथ खा, सुनो बड़ी हे मात ।
मैं संगी हूँ राम का, सब दिन सब ही रात ।।११।।
चाहे कूदे आग में, जल में होवे लीन ।
पहले कूदूँ राम से, मैं प्रसन्न अदीन ।।१२।।
मन वच काया से मुझे, भक्त अनन्य विचार ।
जो आज्ञा है वह करूँ, दूँ सब विघ्न निवार ।।१३।।

बहु वेदना से व्यथित, बोली वह, हे राम ।
सोचो कहना अनुज का, वन से करो विराम ।।१४।।
*यह सुन तब बोले रघुराई, नरवर शान्त बनो मम भाई ।
जो आपद् इस घर पर आई, उसका कारण तात न माई ।।१५।।
सौम्य सुजन सदा सुख दाता, सुहृद् स्नेही मेरे भ्राता ।
उचित नहीं है कोप बढ़ाना, अपनों को यों दोष लगाना ।।१६।।
सहन करो धैर्य को धारो, मानापमान सर्व निवारो ।
करिए कोप कहो किससे ही, वैरी कौन लड़ें जिससे ही ।।१७।।
स्वजन पर यों कोप दिखाना, है अपना घर आप जलाना ।
जिनमें हो सुप्रीति भारी, उनसे कैसी मारा-मारी ।।१८।।
घटना घोर घटी दुर्दैवी, शान्ति करो लिए शक्ति शैवी ।
बल तेरा है मैंने जाना, पराक्रम भी वरतर है माना ।।१६।।
पर बल का यह स्थान नहीं है, धर्म सत्य का काम यही है ।
बल-उपयोग गृह में लाना, पाप कर्म है घोर कमाना ।।२०।।
स्वार्थ सुख यश सम्पत् से ही, धर्म बड़ा कहते गुणगेही ।
सत्य धर्म-पथ वेद बताते, जीवन-सार ऋषि समझाते ।।२१।।
सत्य-स्थिति धर्म में बताई, सत्य-बड़ाई गुणि-गण गाई ।
सत्य-वचन के वश से प्यारे, पीड़ित अति पिता हैं हमारे ।।२२।।
प्रण-पाश से उन्हें बचाना, सत्यवादी सुधर्मी बनाना ।
पितृ-वंश की साख रखाना, होगा तभी सुपुत्र कहाना ।।२३।।
सुत का धर्म कर्म जग जाना, पितृ-देव को कहा रिझाना ।
मध्यमा मां यह है बताती, सच्चा वर करना वह सुनाती ।।२४।।

---

* चौपाई।

कोप सत्य-पालन में कैसा!, क्यों आवेश हुआ इस जैसा ।
क्यों न सोम! तू हर्ष मनाता, मैं हूँ जब अब सत्य निभाता ।।२५।।
भूप पिता गुरुवर हैं मेरे, तथा पूज्य प्रभु हैं तेरे ।
उनका करना कथन मुझे है, धर्म रूप ही कर्म तुझे है ।।२६।।
कैसा कर्म कष्ट कर कोई, वे कहें मैं करूँगा सोई ।
इससे मैं टलूँ न टारे, चाहें कष्ट क्लेश हों भारे ।।२७।।
सौमित्रे? प्रिय रूप सुहाने, सोचो समझो सोम सियाने ।
है सभी यह दैव की माया, कर्म कटुतर है फल लाया ।।२८।।
कर्म-गति जो न आती ऐसे, मध्यमा माँ बिगड़ती कैसे ।
राम भरत में भेद न लाती, देखते ही सदा हर्षाती ।।२९।।
भेद-भाव का उसमें आना, दैव कर्म का है फल लाना ।
कलह करना बहु बात बढ़ाना, है दैव-वश, वह है बहाना ।।३०।।
मुझ उसमें दुरदैव खड़ा है, भेद-भित्ति बन कर्म अड़ा है ।
कर्म-कला यदि बने न ऐसी, घटना घटे नहीं इस जैसी ।।३१।।
मधुर मृदु जो मुख से बोले, पति विरुद्ध वह कैसे होले ।
दैव ने हो यदि न भटकाई, तो करती वह नहीं बुराई ।।३२।।
हमने माताएँ सम जानीं, भाव भक्ति से सम सब मानीं ।
उसके मन जो फूट समाई, जान दैव ने बात बनाई ।।३३।।
समर देव से कौन रचाये, है कौन जो इसको भगाये ।
कौन दैव को दूर निवारे, इसके सम्मुख मुनि भी हारे ।।३४।।
शूर वीर जन जग के जेता, पराजित हुए नर वर नेता ।
गिरे ऋषि जन इसके आगे, व्रत नियम तज यतिवर भागे ।।३५।।
कर्म-चक्र वक्र जभी होवे, सुमति बुद्धि विवेक को खोवे ।
नीति-भ्रष्ट बनें, नर नारी, चलें कुचालें चपल कुचारी ।।३६।।

जिसका कारण दीख न पावे, ऐसा सुख दुःख भय जो आवे ।
हानि लाभ कोप तथा आये, जन्म मरण ये दैव कहाये ।।३७।।
ऐसे सोच शान्त हो जाओ, मेरे वत् बन शम दिखलाओ ।
अभिषेक सामग्री लाओ, उससे मुझे वनी बनवाओ ।।३८।।
अभिसिंचन जल जो हो लाये, दो मम सिर पर उसे चढ़ाये ।
व्रत-दीक्षा मुझे यों देके, तुम हो सुखी हर्ष अति लेके ।।३९।।
राज-लक्ष्मी मुझ से जाती, काल-गति भी कुचक्र चलाती ।
देख न कुछ भी तुम घबराओ, भीतर ताप न किंचित् पाओ ।।४०।।
विकसित नयन कमल मुख सेती, सोम ! सहो विपदा सब ऐती ।
धीर जनों पर हैं दुःख आते, उनसे तो वे परखे जाते ।।४१।।
कैकेयी से रोष हटाओ, नहीं घरेलू प्रेम घटाओ ।
दैव-वशा वह बोले बोली, कर्म-कला के वश है भोली ।।४२।।
पारिवारिक बहु प्रेम बढ़ाना, बन्धु जनों का साथ निभाना ।
सेवा स्नेह समादर पूरा, करना वचन न रखना अधूरा ।।४३।।
आपस में हो सदा सहाई, रहना मिल-जुल रीति बनाई ।
मात पिता को आदर देना, धर्म जगत् का है रस लेना ।।४४।।
माता पिता दो देव बखाने, मूर्तिमान गये हैं जाने ।
उनकी आज्ञा होवे जैसी, करना वह है सुरीति ऐसी ।।४५।।
वर तर अश्व यथा पुचकारे, हो शान्त पति करके सहारे ।
जल-स्पर्श से जैसे देही, हुआ शान्त तथा अनुज स्नेही ।।४६।।

सोलहवाँ सर्ग

*देखा माता ने तभी, निज सुत खड़ा तयार ।
बसने को वनवास में, तत्परता अति धार ।।१।।

* दोहा।

बोली वह, अति खेद है, मम सुत कोमल गात ।
वनीबन, वनघनविषममें, काटेगा दिन रात ।।२।।
कैसे रह मुनि-वेश में, कन्द मूल कर भोग ।
रूखा सूखा शाक खा, वह रहेगा अरोग ।।३।।
राज-भोग सब छोड़ कर, व्यंजन सर्व निवार ।
नीरस फीके वनज का, करके सब आहार ।।४।।
काटेगा कटु काल को, कठिन कष्ट के साथ ।
कोमल काय कमल कल्प, सोम शान्त रघुनाथ ।।५।।
सोता है सुख सेज पर, सहित मृदुल बिछान ।
कैसे कंकड़ कंट पर, होगा शयन विधान ।।६।।
रामचन्द्र सुप्रिय सुत, कुछ तो करो विचार ।
मेरा अब तेरे बिना, कैसे बने निस्तार ।।७।।
सूखे तिनके काठ को, यथा जलाती आग ।
कर देगा तन भस्म मम, तेरा घर का त्याग ।।८।।
जाती अपने वत्स के, गौ ज्यों पीछे दौड़ ।
मैं चलूँगी संग तव, राज-भवन को छोड़ ।।६।।
भूप-भवन में सोम! मैं, सौत कुपित के पास ।
बनी अनाथा तुम बिना, कैसे करूँ निवास ।।१०।।
छम छम आँसू बरसते, थे उसके उस काल ।
रुक रुक कर थी बोलती, वह नयन किये लाल ।।११।।
जननी दुखिया देखकर, भीतर पा संताप ।
अधिक धृति को धार कर, रघुपति बोले आप ।।१२।।

*अधीर बनो न मेरी माता, करो वही जो धर्म बताता ।
वेद सदा है यह समझाता, धर्म कर्म का जग में नाता ।।१३।।
पुत्र-मोह ममता की मारी, तजे भर्त्ता को जो भी नारी ।
वह बने निन्दनीया भारी, शुभ पूंजी वह खोवे सारी ।।१४।।
छल बल में हैं भूपति ऐसे, जाल में पक्षी होवे जैसे ।
घोर कष्ट में हैं बिलखाते, छिन-छिन में हैं मूर्छा खाते ।।१५।।
देख तुझे भी घर से जाती, टुक-टुक होगी उनकी छाती ।
ऐसा काम न करिए कोई, जिससे पीड़ा पावे सोई ।।१६।।
फिर यह वचन न मात उच्चारो, मन से भी यह नहीं विचारो ।
पति-त्याग की बोलते बानी, होती कही धर्म की हानी ।।१७।।
छोड़ पति को सुत संग जाना, सत्य धर्म को बट्टा लगाना ।
है अधर्म कुदोष यह भारा, पाप रूप दुष्कृत भी सारा ।।१८।।
पत्नी सदा पति संग सुहाती, सुख दुःख बाधा कष्ट उठाती ।
सजन विजन में साथ निभाती, पति-त्याग नहीं मन में लाती ।।१९।।
पति की साथिन होवे जाया, ज्यों देह संग रहती छाया ।
मन तन वचन से भर्त्ता राधे, गृह-धर्म रुचि मन से साधे ।।२०।।
पति कहे करे नारी सो ही, पितृ-वचन करे पुत्र जो ही ।
धर्म सनातन यह है गाया, वेद श्रुति ने सार सुनाया ।।२१।।
तव भर्त्ता, मम पिता सुखदाई, पालक भूप गुरु है सहाई ।
उसकी आज्ञा भग्न बनाना, जग में है अपकर्म कमाना ।।२२।।
तू न अनाथा पति के जीते, दुःख के दिन जावेंगे बीते ।
आयेंगे सुख दिवस तथा ही, बसे वसन्त वन में यथा ही ।।२३।।

* चौपाई।

भूपति हैं सदा मृदुभाषी, बन्धु जनों के सुख-अभिलाषी ।
जननि! सदा तुमको सुख देंगे, सार संभार बहुतर लेंगे ।।२४।।
सुत-वियोग को मन में लाते, तुझे रहेंगे सदा हर्षाते ।
ऐसे कर्म करेंगे वे ही, भूल जाय तू दिन दुःख के ही ।।२५।।
चौदह वर्ष बिता माँ मेरी, सुख से आऊँगा बिन देरी ।
चरण कमल पर शीश नवा के, पूजूँगा मैं तुझको आके ।।२६।।
पुत्र-शोक यथा नहीं पावे, भूप, वियोग से न घबरावे ।
तथा उपाय करना सभी ही, पीड़ित वे ज्यों हो न कभी भी ।।२७।।
धर्म सनातन यह तुम जानो, वंश-धर्म इसको माँ मानो ।
इससे सुकृत शुभ फल आते, दोनों लोक सुधर हैं जाते ।।२८।।
मेरे मंगल सदा मनाती, मन को व्रत जप में लगाती ।
नियम धर्म शुभ कर्म निभाती, माता रहियो सदा हर्षाती ।।२६।।
ब्रह्मा सदृश सुत की वाणी, धर्म सार अमीरस वर्षाणी ।
सुन कर माता अश्रु गिराती, बोली बहुत वेदना पाती ।।३०।।
दैव-गति यह विषम है आई, बहुत विकट विधि बात बनाई ।
जाय वन को जो है अदोषी, रहे मुनि बना शान्त अरोषी ।।३१।।
भाग्य यदि विपरीत न होते, तो क्यों भूप बिलखते रोते ।
होता क्यों मुझे यह बिछोड़ा, शोक कष्ट दुखड़ा भी थोड़ा ।।३२।।
जो मति है यह तूने धारी, मुनिवत् बसना बन वन-चारी ।
मुझसे तो तू रुके न रोके, मैं क्यों रोकूँ बन्धन हो के ।।३३।।
सत्य धर्म वश तू है जाता, तज सुख बन्धु पिता भी माता ।
सच्चे हठी को कौन हटाये, सत्य धर्म से कौन गिराये ।।३४।।
शुभ मंगल वन में सुत तेरे, होवें हैं ये आशिष मेरे ।
रात-दिवस हों मंगल दाता, शान्ति-करण हों सायं प्रातः ।।३५।।

ऋषि मुनि जो सिद्ध हैं ज्ञानी, तापस यतिवर मौनी ध्यानी ।
देव अमर सुर विदेह जो भी, शुभ आशिष दें तुझको सो भी ।।३६।।
दैवत बलयुत साधक योगी, शुभ करें तुझे रक्खें अरोगी ।
सन्त साधु जो साधन सेवें, मंगल आशिष तुझको देवें ।।३७।।
जाओ जहाँ वहीं शुभ पाओ, सुख मंगल से घर फिर आओ ।
शान्त दिशाएं सब हो जावें, पथ में बाधा विघ्न न आवें ।।३८।।
गिरी नदी सर वन घन जेते, घास लता तरु हों सुख देते ।
पक्षी कीट पशु जन वन-वासी, ऊँचे नीचे स्थान निवासी ।।३६।।
होवें सब अनुकूल तुम्हारे, रहें सर्व दिश शिवशुभ भारे ।
नभ भूतल हों मंगल वाले, तारा गण दें शुभ उजियाले ।।४०।।
रवि शशि ग्रह गणों की चालें, नक्षत्र रचना की वर मालें ।
लोकपाल दिक्पाल सुहाने, दें तुझको मंगल मनमाने ।।४१।।
जो जप तप शुभ कर्म किये हैं, दक्षिणा दान जो मैंने दिये हैं ।
यज्ञ होम जो बहुत रचाये, उनके फल जो वेद बताये ।।४२।।
उससे हो यह फल शुभकारी, फूले तव मंगल-फुलवारी ।
यह कहती वह आगे आई, पुत्र को कण्ठ लगा हर्षाई ।।४३।।
बार-बार शुभ आशिष सेती, बोली मुख से आज्ञा देती ।
आशा पूर्ण हो सुत! तेरी, सुख से जा है आज्ञा मेरी ।।४४।।
वन के वर्ष बिता कर आना, माँ के मन कमल को खिलाना ।
मन में रख सुत-दर्शन आशा, सह लूँगी सुख राज निराशा ।।४५।।
धन्य घड़ी पल होंगे वे ही, मैं मिलूँगी फिर प्रिय से ही ।
ऐसे मंगलाचार मनाती, स्वस्त्ययन विधि सहित रचाती ।।४६।।
सुत-सिर पर वह पुष्प चढ़ाती, मस्तक पर शुभ तिलक लगाती ।
सीस चूम चित्त में हर्षाई, दी उसे तब उसने बिदाई ।।४७।।

{मृदु महा मोहक मधु गाता, मंजुल मंगल मूर्ति माता ।
ममता मोहमयी मुद-माया, मिष्ट मान की शीतल छाया ।।४८।।
स्नेह सुधा से सुर-सरिता सी, पावन प्रेम पुञ्ज परता-सी ।
कल्प लता सी सब सुख देनी, चिन्ता दुःख शोक हर लेनी ।।४६।।
जननी जग में जीवन ज्योति, सन्तति जन के जी में होती ।
मां गोद की महा मधुराई, कर कमलों की कोमलताई ।।५०।।
प्रेम पगी मीठी पुचकारें, सुत सुर तारों की झंकारें ।
पुण्यवान् सन्तानें पातीं, नीरस सुर-सुखों को बनातीं ।।५१।।
मां की स्नेह-सनी जब बाहें, खींच पुत्र को कण्ठ लगायें ।
सुख हर्ष तब ही वहाँ तो, उमड़ पड़ें सुख-सागर सातों ।।५२।।
प्रेम सजल नयनों से निहारे, चुम्बन कर जभी माँ पुकारे ।
झड़ी अमीरस की लग जाती, शुष्मा सेज है मां की छाती ।।५३।।
स्नेह सरस रस शब्द रसीले, सुत सुत सुस्वर स्वादु सुरीले ।
माता-मुख से जब निसराते, अमृत रस का स्वाद चखाते ।।५४।।
माँ पन की प्रतिमा परा थी, सब शुभ शोभित मात वरा थी ।
राघव माँ की महिमा भारी, कह न सके सुर सृष्टि सारी} ।।५५।।

सत्रहवां सर्ग

*जननी से हो कर विदा, सिया-सदन को राम ।
आये चलते पैर से, शान्त सुधीर अकाम ।।१।।
वह थी मंगल मानती, करती शुभ उपचार ।
यौवराज्य पद का तब, रही मनोरथ धार ।।२।।
उसे पता तो था नहीं, उधर गया क्या बीत ।
कैसा वायु-वेग वहां, बहता था विपरीत ।।३।।

* दोहा।

पति-दर्शन की लालसा, रक्खे हुए इकतार ।
बान्ध द्वार पै टकटकी, वह थी रही निहार ।।४।।
आवेंगे पतिदेव अब, कहेंगे हो तयार ।
यात्रा उत्सव के लिये, सज सोलह सिंगार ।।५।।
ऐसे मन था उमड़ता, उसका ले नव आश ।
राघव आये संग ले, घोर निशा नैराश ।।६।।
पर घुसते ही भवन में, वन का सोच निवास ।
सीता के अति कष्ट से, वे भी हुए उदास ।।७।।
कैसे विरह वियोग में, यह काटेगी काल ।
कैसे मानस वेदना, सिया सकेगी टाल ।।८।।
इस चिन्ता से वे हुए, चंचल चित्त विशेष ।
पत्नी प्रिया शुचि पति परा, का दुःख सोच अशेष ।।६।।
हृदय-सागर से उठे, ऐसे विविध विचार ।
उनके मुख पर त्यों घिरे, रवि पर कुहर विस्तार ।।१०।।
सीता ने आता तभी, देखा निज पतिदेव ।
चिन्तित चित्त उदास मुख, ज्यों तापित हो सेव ।।११।।
उतरा मुखड़ा देखकर, हो अति कम्पित गात ।
आँसू टप टप गेरती, बोली गद् गद् बात ।।१२।।
अहो खेद अति कष्ट है, मुख मण्डल पर रेख ।
मैं अति भाव उदास की, आज रही हूँ देख ।।१३।।
उदासीन देखा नहीं, किसी काल मुख चन्द ।
पूर्ण के दिन आज क्यों, कला बनी है मन्द ।।१४।।
ऐसे उत्सव के समय, होते हर्ष उल्लास ।
पर क्यों पति-मुख मधुर पर, नहीं मुस्कान विलास ।।१५।।

नर नारी सब देश में, जब है बसा वसन्त ।
राम कमल के कुञ्ज में, क्यों उसका है अन्त ।।१६।।
ऐसा फीका मुख वर्ण, कभी न देखा नाथ ।
क्यों हो आज न दीखते, आभा शोभा साथ ।।१७।।
मैं स्वप्न हूं देखती, क्या करती हूँ भूल ।
क्या अब मेरे हो गया, दैव अति प्रतिकूल ।।१८।।
*हो गम्भीराकार, सिया से बोले वे ही ।
हैं देते वनवास, पिता मुझको वैदेही ।।
पावेगा सुख सर्व, राज्य के भरत स्नेही ।
माँगे वर दो आज, मध्यमा माँ ने ये ही ।।१६।।
कह कर कथा अशेष, लगे उसको समझाने ।
पारिवारिक सम्बन्ध, उचित हैं मधुर बनाने ।।
तू है ज्ञान-निधान, धर्म-पथ तूने जाने ।
दोनों वंश की आन, तू है सिये असमाने ।।२०।।
जो भी मैंने कहा, सदा है तूने माना ।
मन से मेरा कथन, पालना उद्देश जाना ।।
कहूँगा जो कुछ अब, उसको मन से निभाना ।
यही कहा है धर्म, सनातन परम पुराना ।।२१।।
होगा भूपति भरत, सियानी सुनिए सीते! ।
उसका करना कथन, यथा वह कहे विनीते ।।
इस पर धरना ध्यान, विनय नहीं न्याय बीते ।
भूप भरे भण्डार, करे भी पूर्ण रीते ।।२२।।

* रोला।

वचन न कहना कदा, उसे जो कभी न भावे ।
देना न उपालम्भ, कि जिससे वह चिढ़ जावे ।।
कभी कठोर कुवचन, न तुझसे तो सुन पावे ।
रहना बन अनुकूल, भूल कुछ मूल न आवे ।।२३।।
उसके जाकर पास, न मुझको सिमरन करना ।
मेरा कह न वियोग, उसे अति दुःख से भरना ।।
मेरी विपदा सिमर, झरेगा जैसे झरना ।
इस कारण हे सिये!, धृति निज मन में धरना ।।२४।।
बन्धु-प्रेम का भाव, भीतर ऐसा भरिए ।
मन को रखिए विमल, कभी अपवाद न करिए ।।
यश गुणगण कर गान, दोष निन्दा परिहरिए ।
त्रुटि भूल पर कभी, धीर बन ध्यान न धरिए ।।२५।।
उसके सुगुण बखान, सदा तुम सुख से रहना ।
मात-पिता का सर्व, मानियो मन से कहना ।।
विरह-दाह कर कथन, उन्हें न दुःख से दहना ।
सीते ! शम दम धार, विरह विपदा को सहना ।।२६।।
पूजा करियो नित्य, चित्त से सास ससुर की ।
देव मान कर उन्हें, विधि कर विनय आदरकी ।।
तू ही होगी सिये!, ज्योति अब उनके घर की ।
प्रिये! कामना है, यही तो तेरे वर की ।।२७।।
भ्राता पुत्र समान, समझना दोनों देवर ।
भरत शत्रुघ्न वीर, हैं सच्चे तेरे हितकर ।।
बली धीर वर शूर, वंश में उत्तम नरवर ।
स्नेही सेवक सदा, रहे हो मेरे अनुचर ।।२८।।

उनको देना मान, बहिन बन अथवा माई ।
उनके लिए तू है, पूजन योग भौजाई ।।
दुःख सुख में सब काल, उनकी होना सहाई ।
बान्धव वत्सल व्रत, बड़ों की बड़ी बड़ाई ।।२९।।
मेरी जननी जान, जरा ने जरित बनाई ।
अति कृशा हो गई, विपद् की बहुत सताई ।।
करना उसका मान, भक्ति करके अधिकाई ।
जावे भूल वियोग, ऐसी करना कमाई ।।३०।।
सब माताएं मुझे, लगती समरूप प्यारी ।
भेद भावना भूल, पूजी मैं बन पुजारी ।।
उनसे करना नेह, रीति कर कुल की सारी ।
मेरे पीछे कभी, न होना उनसे न्यारी ।।३१।।
सीते! कर उपवास, व्रत तप नियम निभाती ।
अर्चन कर भगवान्, होम जप यजन रचाती ।।
पालन कर सब कर्म, ईश का ध्यान लगाती ।
मेरे मंगल कर्म, रहना मन से मनाती ।।३२।।
मैं धर कर मुनिवेश, रहूँगा वन में जाकर ।
सुख से बसूँगा वहाँ, नित्य कन्द-मूल हि खाकर ।।
आऊँगा फिर यहां, वर्ष दश चार बिताकर ।
तभी मिलूँगा तुझे, प्रेम अपार को पाकर ।।३३।।
हर्षित होकर करो, बिदा मुझे देवि! अब ही ।
आया हूँ कर आश, इसी की मैं तो जब ही ।।
तूने मुझ से नहीं, किया हठ कुछ भी कब ही ।
माने मेरे वचन, सदा सहर्ष तो सब ही ।।३४।।

सुन कर पति का कथन, सिया कुछ कोप दिखाकर ।
बोली, हे पतिदेव!, कहो न मुझे समझाकर ।।
मात पिता सब सगे, बन्धु सुत नौकर ठाकुर ।
निजू किये का भोग, भोगते फल को पाकर ।।३५।।
पर तो पत्नि-भाग्य, बन्धा है साथ पति के ।
वह सब भोगे भोग, भले बुरे कर्म गति के ।।
रहना निज पति-संग, धर्म हैं सच्ची सती के ।
तुच्छ कहो क्यों बात, तुम होकर उच्च मति के ।।३६।।
तेरा कहना यही, सुनेगा क्षत्रिय जो भी ।
हँस पड़ेगा तुरत, तुच्छता लख कर सो भी ।।
अभी चलूँगी संग, संगिनी सुखदा हो भी ।
मैं वन में कर वास, रखूँगी संयम को भी ।।३७।।
पथ में आगे हुई, चलूँगी सुख से जाती ।
कुश कंटक कटु कीट, कंकड़ पथ से हटाती ।।
तेरे सम्मुख बनी, तुझे अति हर्ष दिलाती ।
शाक पात कर भोग, शान्ति से समय बिताती ।।३८।।
मुझे तजो न राम, दोष बिन ऐसे घर पर ।
कैसा तुझे है भय, कहो तो मुझको वर नर ।।
सुख से मैं तव साथ, विचर देखूंगी वन सर ।
वन में बसने का नहीं, मुझे है कुछ भी तो डर ।।३६।।
दो न मुझे उपदेश, अधिक मेरे सुखदाई ।
बाल काल के बीच, गई मैं बहुत पढ़ाई ।।
जनक जननी ने बहु, मुझे थी शिक्षा दिलाई ।
ऐसे ज्ञान की तो, यहाँ है नहीं समाई ।।४०।।

बाल समय में यथा, रही मैं पितृ-भवन में ।
तथा सुख शान्ति सहित, रहूँगी जंगल वन में ।।
होगा आलस नहीं, कभी भी मेरे मन में ।
कर्तव्य उद्यम दो, रहेंगे मेरे तन में ।।४१।।
मैं घन वन में घूम, रहूँगी हर्षित निशिदिन ।
नद नाले सर ताल, सभी निरखूंगी गिन गिन ।।
पुष्पित तरुवर बेल, लता मण्डप कोमल तिन ।
मृदु हरित शुचि घास, स्थान स्थल सब बिघ्न बिन ।।४२।।
तुझ बिन मेरे देव, न मैं स्वर्ग में जाऊँ ।
नन्दन वन के बीच, कभी न हर्ष को पाऊँ ।।
कन्द मूल को त्याग, नहीं अमृत भी खाऊँ ।
तज कर सुर रवि लोक, यहीं हर्षित हो आऊँ ।।४३।।
तुझे छोड़ कर नाथ, जीऊँ न एक घड़ी मैं ।
तोड़ूँ अभी तुरन्त, प्राण की प्रिय लड़ी मैं ।।
व्रत धर्म के लिए, हठीली रहूँ बड़ी मैं ।
बीच कर्म कर्तव्य, कही गई हूँ कड़ी मैं ।।४४।।

अठारहवाँ सर्ग

*सीता का हठ देख कर, वन के दुःख आलोच ।
राम नयन जी भर तभी, बोले फिर अति सोच ।।१।।
ज्ञानवती शुभ गुणवती, तू है मेरे प्राण ।
सोच विचार विवेक से, मेरा कहना मान ।।२।।

---
* दोहा।

भोली भीषण वनों में, भारी भय के स्थान ।
मिलते हैं जाओ जहाँ, मिलती शरण न त्राण ।।३।।
गिरि गुहा से निकलते, करते सिंह दहाड़ ।
हस्ति रीछ चीते बली, करते फिरें चिंघाड़ ।।४।।
उन से डर कर भागते, मिलती कहीं न ठौर ।
वन में कष्ट अपार हैं, मुझ से सुनिए और ।।५।।
मत्त हस्ति वर केसरी, रहते राहें रोक ।
भारी भय यह है वहां, देता चिन्ता शोक ।।६।।
विषम बहुत विषधर विविध, वन में बसते नाग ।
उनकी फण फुँकार से, जाता धैर्य भाग ।।७।।
नाना रंगाकार के, हिंस्र जीव अनेक ।
जन का क्रमण घात से, हरते ज्ञान विवेक ।।८।।
कीट बनैले विषभरे, देते काया काट ।
स्थूल पशु भियावने, रोक बैठते बाट ।।६।।
बिच्छू मच्छर डंस जोंक, डस कर दुःख महान् ।
देते वन में हर घड़ी, करते लहू लुहान ।।१०।।
वन में वर्षा होने पर, रहती बनी न राह ।
नदी नाले चढ़ते अति, विस्तृत बहुत अथाह ।।११।।
दल दल कीचड़ लांघते, उनको करते पार ।
ग्राह नक्र तब पकड़ते, पंजे दान्त पसार ।।१२।।
भयंकर लम्बे सर्प बहु, चलते टेढ़ी चाल ।
जल में बांधे पाँव को, बने कमल की नाल ।।१३।।
ऐसे दुखड़े देखकर, मुनि भी हों भयभीत ।
वीर धीर जन शूर की, जाती धैर्य बीत ।।१४।।

सुन कर गर्जन, घोरतर, देख भयंकर रूप ।
थर थर काया कांपती, होते रूप विरूप ।।१५।।
सोना वन में है कठिन, जब हो वृष्टि काल ।
जल स्थल हों जंगल सब, उपजें कृमि तत्काल ।।१६।।
कीचड़ गीले घास पर, कंकर कंटक स्थान ।
पाकर लिटना रात को, आसन रहित बिछान ।।१७।।
उस पर मच्छर डंस बहु, डसें जोक बहु भान्त ।
कान खजूरे नाग बहुत, फिरते करें अशान्त ।।१८।।
अधिक अन्धेरी रात में, उमड़ घटा घनघोर ।
गर्ज चमक से धीर की, हरती धैर्य ठौर ।।१६।।
वायु-वेग बहता बली, उड़ते झाड़ झंखाड़ ।
धूल पात तिनके उड़े, देते धृति उखाड़ ।।२०।।
कड़े कष्ट कड़वे कठिन, करते काया नाश ।
मुनिवर भी उनसे सिया, होते अधिक निराश ।।२१।।
साग-पात को तोड़कर, लाना अपने हाथ ।
अभ्यागत अतिथिदेव को, पूजन कर उस साथ ।।२२।।
पीछे खाना बांट कर, तज कर सब रस स्वाद ।
रह निरन्न उपवास में, करना नहीं विषाद ।।२३।।
वल्कल धारण कर वसन, हरिण चर्म को धार ।
जटा जूट योगी यथा, है यह मुनि आचार ।।२४।।
लोभ मोह को त्याग कर, तजना ईर्ष्या क्रोध ।
शम दम संयम साधना, रहना बने सुबोध ।।२५।।
करने कर्म कठोर ये, सह सभी कष्ट क्लेश ।
बसना वन में है कठिन, तुझको सखे! विशेष ।।२६।।

तू है कोमल अंगिनी, मृदुल कमल समान ।
वन में बसने का नहीं, तेरा बने विधान ।।२७।।
कोमल काया कमल-सी, कटुतर कष्ट सहार ।
सके नहीं प्रिये सखे!, मन में सोच-विचार ।।२८।।
हठी बनो न मम प्रिये!, तजो आग्रह आप ।
वन में चलने का नहीं, करिए कथन कलाप ।।२९।।
मुझको जाने दो सखे!, कर मंगल उपचार ।
स्वस्त्ययनसमीशकुनरच, करके सुमधुर प्यार ।।३०।।
*{भर्त्ता भावुक भावों वाले, भार्या का हित भीतर डाले ।
भाव भरी जो कहते बातें, भारी भीषण गिन दिन रातें ।।३१।।
पत्नी प्रेम पूर्ण दिखलाते, पतिपन का परिचय करवाते ।
प्रेम-पगे वे होते ऐसे, अनूप पति श्री राघव जैसे} ।।३२।।
† सुनकर पति का कथन, सिया तब अति घबराई ।
उसके नयनों बीच, राशि जल की उमड़ाई ।।
बोली गद् गद् वचन, देती हूँ मैं दुहाई ।
मुझको कहो न आप, जीना कर पृथकाई ।।३३।।
तुम हो उत्तम पुरुष, सार संसार सर्व के ।
दुर्दिन पति के साथ, बनेंगे दिवस पर्व के ।।
तुझे असुर अवलोक, त्याग दें वैर गर्व के ।
बने जीव सब शान्त, दुष्ट दल अर्ब खर्ब के ।।३४।।
तुझे देखकर देव!, भय भी भीत हो भारी ।
भीषण हिंसक जीव, बनें सब ही सुखकारी ।।
चरण कमल के पास, निर्भय शान्त मैं नारी ।
नित्य रहूँगी नाथ!, साथ तव अति सुखियारी ।।३५।।

* चौपाई। † रोला।

दिया मुझे आदेश, विवाह में मम बाप ने ।
रहना निज पति संग, सुना था सर्व आप ने ।।
व्रत-बंधन हैं यह, गाया वेद अलाप ने ।
सती पत्नी का धर्म, बताया कर-मिलाप ने ।।३६।।
पितृ-वचन को पाल, रहूँगी सत्य बनाती ।
मैं चलकर तव संग, बसूँगी नियम निभाती ।।
पितृ-प्रण तव देव!, मैं हूँ नहीं तुड़वाती ।
केवल अपना प्रण, हूँ मैं रखना चाहती ।।३७।।
आराधे पति देव, एक मन वच कर काया ।
तज दे पति के काज, जग मोह ममता माया ।।
विचरे पति के साथ, यथा तस तन की छाया ।
कही जगत् में वही, सुपत्नी सच्ची जाया ।।३८।।
यथा सावित्री बनी, संगिनी सत्यवान् की ।
ऐसा मुझको जान, पत्नी निज आन बान की ।।
वन में रहूँगी मैं, सोच तज खान-पान की ।
सुर-सुख समझ असार, चाह तज पद महान् की ।।३६।।
जो कुछ दोगे नाथ, शाक वन कन्द मूल फल ।
यदि मिले नहीं वही, रहूंगी पीकर मैं जल ।।
कोमल कुसुम समान, होंगे सेज सभी स्थल ।
कर जप तप शुभ कर्म, बनूँगी साथिन अविचल ।।४०।।
करके मधुर कटाक्ष, बोली फिर मृदु गाता ।
क्या मानेगा जनक, विदेह का पति विधाता ।।
पुरुष देह में स्त्री, देख कर राम जमाता ।
होगा यों उपहास, यही है जाना जाता ।।४१।।

है आश्चर्य तो यह, कहेंगे जन अनजाने ।
राम में है न तेज, चमको भी रवि समाने ।।
डरो कहाँ से आप, खेद क्यों इतने माने ।
जिससे तुमने देव!, दुखड़े वन के बखाने ।।४२।।
तप हो वा वन-वास, तव सह स्वर्ग स्थान है ।
तुझ बिन नगर-निवास, दीखे नरक महान् है ।।
रूखा सूखा शाक, पति सह सुधा समान है ।
पति का विरह वियोग, देह को दाह दान है ।।४३।।
तिनके तीखे अधिक, झाड़ झुर्मट कंटीले ।
काश कुशा की नोक, कटे तरु पड़े नुकीले ।।
बींधे बरछी बने, विषम पथ अति पथरीले ।
रेशम चर्म समान, बनेंगे सभी सुखीले ।।४४।।
तेरे चरणों पास, न हो दुःख कष्ट निकन्दन ।
वन की उड़ती धूल, बनेगी शीतल चन्दन ।।
तेरे पास वन-भय, मिटेंगे सब रघुनन्दन ।
बनेंगे खेल विनोद, वनी पशु क्रीड़न क्रन्दन ।।४५।।
कर्कश कंकर कंट, कुसुम सम कोमल हों सब ।
बाधा विपत्ति विघ्न, शम हों, संग हो तुम जब ।।
श्री चरणों के पास, दुष्ट सब जाते हैं दब ।
मैं तो तेरा साथ, सकूँ न छोड़ कभी अब ।।४६।।
वन में तेरे लिए, नहीं मैं हूंगी दुर्भर ।
बचा हुआ वन अन्न, छकूँगी कर पर ही धर ।।
धूप ताप सम विषम, सहूंगी सब को सम कर ।
होगा मुझको नहीं, मन में स्मरण पितृ-घर ।।४७।।

मुझको वन का वास, होगा सुखद स्वर्ग सम ।
तव साथिन बन नाथ, रहे न कोई दुःख तम ।।
श्री चरणों का ध्यान, मुझे देगा बहु दम शम ।
निर्भय बनी निश्चिन्त, फिरूँगी वन वन में रम ।।४८।।
जगूँगी पहले मैं, सोऊँगी देर करके ।
होऊँगी न भयभीत, कदापि किसी से डर के ।।
होंगे अमृत भोग, पदार्थ दिये जो वर के ।
सेव सदा पतिदेव, जाऊँ भव सिन्धु तर के ।।४६।।
यहाँ रहूं नहीं मैं, लाख चाहे समझाओ ।
मानूँगी यह नहीं, बहुत कितना बतलाओ ।।
चलूँगी साथिन हो, हठ से चाहे हटाओ ।
डर कर रहूं न यहाँ, अधिक क्यों मुझे डराओ ।।५०।।
यदि न ले चलो साथ, अभी ही तो मरती हूँ ।
हलाहल विष मैं खा, अन्त जीवन करती हूँ ।।
तेरे सम्मुख नाथ, प्राण अपने हरती हूँ ।
विरह वियोग से पर, बहुत ही मैं डरती हूँ ।।५१।।
आर्त रोदन साथ, भर्ता से लिपट गई वह ।
घर्षित अरणी यथा, अति थी जल ही रही वह ।।
यथा निपीड़ित कमल, अश्रुयुत बनी सही वह ।
चक्षु से स्रोत समान, पल पल जाती बही वह ।।५२।।
दुःखित देख अचेत, राम ने भुजा बढ़ा कर ।
करी शान्त विश्वस्त, कण्ठ से गाढ़ लगाकर ।।
बोले वे तब उसे, प्रेम का पूर बहाकर ।
तज तुझे मैं प्रिये!, रहूं न सुरों में जाकर ।।५३।।

निर्भय देव समान, जान तू मुझको प्यारी ।
बहुत आवश्यक थी, जाननी इच्छा तुम्हारी ।।
इसी कारण से की, प्रेरणा पहली सारी ।
होकर निर्भय परम, संगिनी बनो हमारी ।।५४।।
रचा ईश ने तुझे, यदि बन कर वनवासिनी ।
फिरना वन-वन बीच, बहुत वन-वन विलासिनी ।।
सहने दुःख असह्य, रहना बनी सुहासिनी ।
वन को चलो सहर्ष, सीते! सुगुण निवासिनी ।।५५।।
ज्योत्स्ना तजे न चाँद, तजे नहीं भानु ज्योती ।
यथा न तजता सीप, जीते जी निजू मोती ।।
त्यागी तथा न जाय, मुझे तू जीवन होती ।
चलिए मेरे साथ, रहो न यहाँ पर रोती ।।५६।।
कहा सनातन धर्म, पितृ-कहने को करना ।
परंपरा गत कर्म, उचित है यह अनुसरणा ।।
नियम मर्यादा सत्य, पालना धर्म है वर्णा ।
मात पिता को पूज, कहा जग से है तरना ।।५७।।
पूजे कौन परोक्ष, देव जो जगत् विधाता ।
यदि न पूजे सदेह, देव पिता और माता ।।
ये देव प्रत्यक्ष, चित्त से नित्य रिझाता ।
वह जीवन-फलचार, लोक में सुख से पाता ।।५८।।
ब्रह्मचारी बना मैं, बन तू ब्रह्मचारिणी ।
तू चल मेरे साथ, शोक सन्ताप-हारिणी ।।
बन वैरागिन सखे!, बनो वन-वन विहारिणी ।
सहचरी मम प्रिय!, तू है अति सुखकारिणी ।।५९।।

हो जा अभी तयार, हीरे मोती लुटा दे ।
कोष रत्न कर दान, घर सब सूना बना दे ।।
दोनों की स्मृति के, चिन्ह तो सर्व मिटा दे ।
सिमरें माता पिता, देख जिसे वह उठा दे ।।६०।।
वस्त्र सभी पहरान, दीजिए सेवक जन को ।
भूषण माला हार, दान दो अनुचर गण को ।।
अश्व हस्ति रथ यान, दान कर उनके मन को ।
करिए हर्षित देवि!, चलो वन को ले तन को ।।६१।।
अनुमति पाकर तथा, हर्ष की बन वह सागर ।
देने लगी सुदान, भरे ले थाली गागर ।।
सेवक विप्र विशेष, याचक भी भिक्षु नागर ।
भरी झोलियाँ लिए, गए पा राघव आगर ।।६२।।

*{यज्ञ धर्म शुभ कर्म संगिनी, कही पत्नी पति अर्ध-अंगिनी ।
घर वन विजन में सह विहारिणी, विपद व्याधि व्यथा निवारिणी ।।६३।।
कष्ट क्लेश असह्य सहारिणी, सच्ची सखी सदा सहचारिणी ।
प्रिया प्राण समा जग जीना, मुदित करी मन माधुरी वीणा ।।६४।।
हर्ष जड़ी जी जीवन जाया, शान्ति भरी शुभ शीतल छाया ।
लोक द्वय की साथिन गाई, पति की गति मति कर्म बड़ाई ।।६५।।
संग सखा ऐसे के होते, सुख के सरते सूखे सोते ।
फिरते दिन बिगड़ी बन आती, खोई गई हाथ आ जाती ।।६६।।

---

* चौपाई।

यति सती दानी शूर सहारे, देश धर्म के कार्य भारे ।
युग युग में होते हैं आये, मुक्त कण्ठ से गुणि गण गाये ।।६७।।
सभ्य सर्ग की सोभा सीता, वन में साथिन बनी विनीता ।
पतिव्रता भगवती भवानी, नारिजगत् जी जीवन जानी} ।।६८।।
*{सियाकाजानबनजाना, सखियां आईं भर आहें ।
करती शोक अधिक रोतीं, मिली गल डाल कर बाहें ।।६९।।
कहतीं होकर अति गद्‌गद्, नयन से नीर बरसातीं ।
यदि राघव न संग होते, तो देती न तुझे राहें ।।७०।।
अड़िये! प्राण सम प्यारी, सखी सुन्दर हमारी तू ।
धर्म बाधक न हो जो तो, सभी हम संग तव जायें ।।७१।।
सरला स्नेह सनी सजनी, सहेली है सियानी तू ।
जगत् में दूसरी तुझ-सी, नहीं ढूंढे कहीं पायें ।।७२।।
सिया उनको लगा छाती, बोली बहिनो! री सखियो! ।
रखना मन में मुझको तो, मिलूंगी राम जब आयें} ।।७३।।

उन्नीसवाँ सर्ग

†राम सिया को देख तब, वन को हुए तयार ।
लक्ष्मण दो कर जोड़कर, बोला निश्चय धार ।।१।।

---

* विधाता। † दोहा।

धनुष वाण के सहित मैं, चलता हूँ तव साथ ।
सेवक बहुत विनीत बन, तुझे रिझाऊँ नाथ ।।२।।
आगे चलकर मैं सदा, पन्थ विषम सम जान ।
पथ प्रदर्शन करूँगा, बनकर सेवावान् ।।३।।
शाक पात जल वनज सब, कन्द मूल फल फूल ।
समय पर वस्तु वन्य भी, लाऊँगा तज भूल ।।४।।
होम यजन के उपकरण, लाकर विधि अनुसार ।
सेवा साधन साध सब, करूँगा निज निस्तार ।।५।।
रातें चौदह वर्ष की, सब काटूँगा जाग ।
मैं पहरा देता हुआ, निद्रा आलस त्याग ।।६।।
तुम, सोम! कहा राम ने, वन निश्चय दो छोड़ ।
उससे अपने चित्त को, लो तुरंत ही मोड़ ।।७।।
मेरा परम स्नेही तू, है सखा गुणी मीत ।
मेरा आत्मा प्राण है, सुहृद् सच्चा विनीत ।।८।।
घर पर रह कर बन्धुवर, करो पितृ सम्भार ।
मेरी अपनी मात के, देना दुःख निवार ।।६।।
मेरे पीछे वे तुझे, उपस्थित सम्मुख देख ।
शान्ति धृति को धारकर, सहेंगी कुदिन लेख ।।१०।।
भरत भी तो सुदूर है, तू रह राजा पास ।
उसको सेवा भक्ति से, होने दे न उदास ।।११।।
लक्ष्मण ने कहा सविनय, राम को प्रीति संग ।
मेरे मन में उच्चतर, उठती वही तरंग ।।१२।।
मुझसे मनुज सहस्र को, सके कौसल्या पाल ।
मेरे से जन बहुत को, सुमित्रा सके सम्भाल ।।१३।।

भूप तो शक्तिमान् है, बने नहीं वह दीन ।
मेरे तो वनवास से, बली वीर स्वाधीन ।।१४।।
हुआ समुद्यत जानकर, बोले राघव आप ।
अच्छा चलिए सहित हर्ष, वन को बन्धु अपाप ।।१५।।
सबको मिलते जाइए, आदर धैर्य मान ।
देना अपनी पत्नी को, विषम विरह कर ध्यान ।।१६।।
*{मन तन से यथा अंगांगी, दुःख सुख में हो सच्चा संगी ।
विपद् व्याधि में बने सहाई, सो सज्जन समझो शुभ भाई ।।१७।।
जो हो हृदय से हितकारी, सरल सखा सदा स्नेह धारी ।
प्राणों सम जो प्रेमी प्यारा, वह भाई गुणी गण उच्चारा ।।१८।।
बन्धु, बन्धु की शीतल छाया, जीवन ज्योति दूसरी काया ।
बली हाथ बांह शक्ति वाली, बन्धु आश्रय है बलशाली ।।१९।।
भाई भुज के सबल सहारे, कार्य होते जग में भारे ।
निर्भय फिरते भाई वाले, उनके कहने जाते पाले ।।२०।।
बाँह पसार मिले जब भाई, सुर-सुख रहते सर्व लजाई ।
पूरी प्रेम झड़ी लग जाती, बन्धु बन्धु की मिलती छाती ।।२१।।
जैसा जग में जननी जाया, मित्र मिले कब पुत्र पराया ।
भाई भाई पन के नाते, जी जीवन से मिल जुड़ जाते ।।२२।।
राम-सखा लक्ष्मण वर भ्राता, पालन कर स्व बान्धव नाता ।
सर्व समर्पण करके शूरा, भाई पन में उतरा पूरा} ।।२३।।
राघव की अनुमति अनुसारी, लखन सखा बान्धव सुखकारी ।
निज भवन में तुरत वह आया, निज जनों को उसने रिझाया ।।२४।।
भर्ता स्वपत्नी को अति प्यारा, धैर्य शान्ति देता सहारा ।
बोला बनकर मैं अनुगामी, सेवा धार सहित श्री स्वामी ।।२५।।

* चौपाई।

जाता हूँ वन को मम प्यारी, मुझे रहे न चिन्ता तुम्हारी ।
हो सेवक मैं जगते रातें, तज दूँगा सब सुख की बातें ।।२६।।
रहना प्रिये! तुम सुख से ही, सास पूज मन तन मुख से ही ।
विनय धर्म में रहियो ऐसे, भारत सतियाँ रहतीं जैसे ।।२७।।
दोनों नयन वह डबडबाती, मिली पति को लगाकर छाती ।
मंगल कर्म उसने रचा के, विदा किया पति तिलक लगा के ।।२८।।
{सेवा समर हेतु जब जावे, पत्नी पथ में नहीं तब आवे ।
देश विदेश वणिज को जाना, संकट हरण कर्म भी नाना ।।२६।।
भार्या कभी न बाधक होके, धर्म-पथ से पति को रोके} ।
क्षत्रिय कुल की सतियाँ ऐसी, होती थीं ऊर्मिला जैसी ।।३०।।
लखनमिलाआरघुपतिजीको, विनय सहित श्री सिया सती को ।
तीनों मिल चले व्रतधारी, भूप मिलन बन वन-चारी ।।३१।।
राज-चिन्ह तजकर थे जाते, देख उन्हें जन विस्मय पाते ।
सब थे हाहाकार मचाते, अंगुल दान्तों बीच दबाते ।।३२।।
शत शत थे जन दौड़े आते, उष्ण कड़वे आँसू बहाते ।
कहते बनी राणी हत्यारी, ये किये जिसने व्रतधारी ।।३३।।
जिस पर छत्र चमर थे होते, जिसके रत्न तेज के सोते ।
पग से सिर तक सूना सो ही, वन को जाता है मुनि हो ही ।।३४।।
कमल नाल सम कोमल काया, जिस पर है सौन्दर्य सवाया ।
सो सिया है पति संग जाती, पैरों चलती हर्ष मनाती ।।३५।।
वन में विचरेंगे ये कैसे, बीतेंगे कैसे दिन ऐसे ।
कैसे बिगड़ गई है राणी, बोली विषम विषैली वाणी ।।३६।।
धर्मधर जो है सत्यवादी, शम दम धारी नहीं विवादी ।
उसको ऐसे बहुत सताते, न वह लजाई बनी बनाते ।।३७।।

जिस पुर में हों कुकर्म भारे, कटुतर कर्म कठोर करारे ।
उस पर आती विपदा भारी, भय-करी फैले महामारी ।।३८।।
रघुपति सुनते थे जन-वानी, वन बसने की करुण कहानी ।
चिन्तायुक्त न होने पाये, हर्षित शशि-कला से दिखाये ।।३९।।
भवन-द्वार पर जाकर वे ही, बोले, सुमंत्र! सचिव स्नेही ।
करिए निवेदन भूपति सेती, मेरा आगम वार्ता ऐती ।।४०।।
वह जा थर-थर कम्पित होके, कहा भूप से उसने रोके ।
राघव, देव! सुपुत्र तुम्हारे, अनुमति लेने यहां पधारे ।।४१।।
हैं रत्न धन उसने लुटाये, शयन भवन सब रिक्त बनाये ।
अनुज संग लिये सति सीता, आये घर सारा कर रीता ।।४२।।
यह सुन उसने बन्धु बुलाये, निमंत्रित फिर राम कराये ।
देखे राम को मुनि बन आते, दौड़े भूप खेद अति पाते ।।४३।।
गिरे बीच में वे तब त्यों ही, वज्र-हता लता गिरे ज्यों ही ।
अनुज राम सिया ने उठाये, वर पलंग पर भूप लिटाये ।।४४।।
नर-नारी सब जन थे रोते, बार-बार बहु व्याकुल होते ।
हा-हा नाद हुआ तब ऐसा, पीड़ित प्राण करे भी जैसा ।।४५।।
दो घड़ियों तक भूप न चेते, थे सुजन सब सिसकियाँ लेते ।
हुए सचेत तब राम जी ने, कहे वचन सार विनय भीने ।।४६।।
भूप पिता गुरु वर हो ज्ञानी, आप सदा मेरे वरदानी ।
दो अनुमति वन को मैं जाऊँ, सत्य वचन कर सुख को पाऊँ ।।४७।।
लक्ष्मण सीता आये दो भी, वन बसने को सज्जित हो भी ।
मैंने उनको बहुत हटाया, घर रहना कर्तव्य बताया ।।४८।।
पर ये रहना यहाँ न चाहें, हो आज्ञा तो मम सह जायें ।
करो दया दो अनुमति देवा, साधें जाकर वन-जन-सेवा ।।४९।।

भूपति ने सुन वचन उच्चारे, राम! परम प्राणों से प्यारे ।
वरदान में हूँ मैं तथा ही, पंछी जाल में हो यथा ही ।।५०।।
राणी माया अति फैलाई, मेरी बुद्धि विचलित बनाई ।
उसने छल से मुझको घेरा, वन-वास हुआ जिससे तेरा ।।५१।।
घोर अन्याय करे यदि कोई, गिना गया अपराधी सोई ।
ऐसा दोषी मुझको पाओ, बाँध मुझे राजा बन जाओ ।।५२।।
नीतियुक्त यह धर्म बखाना, न्यायगत यह कर्म है माना ।
करना उचित तुझे है सो ही, तुझको कहता हूँ मैं जो ही ।।५३।।
विनय सहित बोले रघुराई, देता हूँ मैं देव! दुहाई ।
ऐसा पन्थ मुझे न बताओ, धैर्य धरो शान्ति मन लाओ ।।५४।।
{पिता पुत्र का प्राण सहारा, जीवन मूल प्रथम उच्चारा ।
पिता पुत्र में हो अवतारी, सुबिम्ब प्रतिबिम्बानुसारी ।।५५।।
पिता पुत्र हैं अंशांशी, धर्म कर्म गुण गण से वंशी ।
सुत की आत्मा पिता कहाता, अपर रूप है वेद बताता ।।५६।।
पूज्य देव प्रभु साकारी, पिता रूप है विग्रह धारी} ।
ऐसा जान राम जी बोले, फिर सुवचन धर्म तुला तोले ।।५७।।
मैंने धर्म कर्म है जाना, पितृ-वचन को सत्य बनाना ।
आऊँगा वर-वर्ष बिता के, पूजूँगा पितु-पद सुख पा के ।।५८।।
कहा भूप ने, राम! दुलारे, मन मोहक हैं कथन तुम्हारे ।
व्रत नियम संयम हैं ऊँचे, सत्य धर्म शुचि शील समूचे ।।५६।।
बल छल में पड़े को बचाना, ठगे गये को सच्चा दिखाना ।
पर कारण कटु कष्ट उठाना, तेरा बिरद बना जन-माना ।।६०।।
कैकेयी ने रचकर माया, तुझको यों वनी है बनाया ।
इच्छा है तू वन न जावे, शासन कर घर में सुख पावे ।।६१।।

पर ठगनी की समझ ठगाई, पितृ-सेवा तुझमें समाई ।
कर्म आश्चर्यमय हैं तिहारे, ज्येष्ठ पुत्र विनीत हमारे ।।६२।।
आज यहां रह भोजन पाना, रात्रि मेरे साथ बिताना ।
कब मिलना फिर होगा तेरा, कौन कहे क्या होगा मेरा ।।६३।।
बोले राघव नम्र सियाने, खाये आप साथ बहु खाने ।
धार वनी मुनि जन का बाना, वन्य पदार्थ होगा खाना ।।६४।।
देश सर्व यह सब धन धाना, भरत भूप का मैंने माना ।
राज काज कर जनता पाले, सब जन के वह दुखड़े टाले ।।६५।।
भूपति हर्ष चित्त में लायें, घर की दुविधा दूर भगायें ।
रुदन न करिये आतुर होके, शान्त धीर रहो अश्रु रोके ।।६६।।
गिरि शिखर सम आप न डोलो, सागर सम गहरे अब हो लो ।
बीत गया जो भी था होना, तजो प्रभु अब रोना धोना ।।६७।।
परम कामना है यह मेरी, सत्य प्रतिज्ञा हो इक बेरी ।
जीवन प्राण भले ही जावें, पितृ-प्रण न भंग हो पावें ।।६८।।
{सुजन बहुत लिखते हैं पोथे, आप चरित से होते थोथे ।
सदाचार सत्य धर्म त्यागी, फिरते बने विद्वान् विरागी ।।६९।।
कुल मर्यादा रीति को छोड़े, गृह धर्म से मन मुख मोड़े ।
करते सो जो हो मनमानी, उन्हें न भाती सच्ची पुरानी ।।७०।।
मात पिता सगे सभी नाती, भाते नहीं उन्हें जन जाती ।
राम चरित है चित्र निराला, धर्म कर्म सुज्ञान की शाला ।।७१।।
करने में कहना दिखलाया, आचरण रूप शुचि ग्रन्थ बनाया ।
राघव में वह शोभा आई, और ठौर न देवे दिखाई} ।।७२।।

* स्नेह-सने सुत वचन सुन, वह उठ प्रेम समेत ।
गले लगा सुत को मिला, फिर गिर पड़ा अचेत ।।१।।
राज-भवन में घोर तर, गूँजा हाहाकार ।
महिला मण्डल में हुआ, रोदन नाद अपार ।।२।।
हृदय थाम्भ सचेत हो, बोले फिर तब भूप ।
सूत सचिव सुमंत्र तुम, होकर शान्त सुरुप ।।३।।
एकत्रित धन कोश कर, सज्जित सेना साथ ।
भेजो वह सब ही वहाँ, जहाँ जाये रघुनाथ ।।४।।
शस्त्र अस्त्र भी दीजिए, सेवक अनुचर लोग ।
वन-भेदी दो कर्मी जन, जो कर सकें उद्योग ।।५।।
मुनि जन से जा राम मिल, करे विविध वर याग ।
शासन तो इस देश का, रहे भरत के भाग ।।६।।
वाक्य ये सुन कर सभी, कैकेई भय मान ।
बोली तभी तुरन्त तो, त्यौड़ी तान कमान ।।७।।
धन सेना से रिक्त तर, राज्य सब असार ।
भरत न लेगा भी कभी, अपने हाथ पसार ।।८।।
भूपति ने तब खीज कर, उसको दिया धिक्कार ।
कहा, क्यों लज्जा त्याग कर, करे तू अत्याचार ।।९।।
वरदानों के फेर में, क्यों कहा नहीं राम ।
जाय अकेला वनों में, लेवे साथ न दाम ।।१०।।
कांप कोप में अधिक वह, बोली नयन तरेर ।
प्रवासित तो था हुआ, सगर पुत्र इक बेर ।।११।।
परम्परा गत है यही, तव पुरुखा की चाल ।
असमंजस को सगर ने, ऐसे दिया निकाल ।।१२।।

* दोहा।

परम्परा वह पालिये, निर्वासन कर राम ।
वंश बान को राखिये, करके कुल का काम ।।१३।।
वर मन्त्री सिद्धार्थ तब, बोला अति बलवान् ।
देवि! ऐसा न करो, घोर अन्याय महान् ।।१४।।
असमंजस था सगर सुत, करता अति उत्पात ।
सरयू-तट पर खेलते, करता बालक घात ।।१५।।
नागर बालक पकड़ कर, फैंक नदी के बीच ।
हर्ष मनाता मोद वह, कर कुकर्म अति नीच ।।१६।।
गण्य मान्य नागर जन, मिले सगर को आप ।
उन्होंने कहा उसको सब, असमंजस का पाप ।।१७।।
उनके सम्मुख सगर ने, सुत को दोष विशेष ।
कह कर निर्वासित तब, किया सहित आदेश ।।१८।।
असमंजस तुमको अभी, से है देश-निकाल ।
वन में रह तुम काटना, सारा जीवन-काल ।।१६।।
यही वर-न्याय सगर का, सब जन रहे बखान ।
उससे अब तक हो रहा, उसका जग में मान ।।२०।।
पर कहिये यदि कह सको, दोष राम का आप ।
फिर तो क्यों हो भेजती, वन में वह निष्पाप ।।२१।।
लव लेश नहीं दीखता, इसमें कोई दोष ।
अनर्थ घोर तर क्यों करो, किये कलह कटु रोष ।।२२।।
{देना दोष अदोष को, ईर्ष्या रोष कुद्वेष ।
कर कुकर्म कठोर तर, होता पाप क्लेष ।।२३।।
हठ से पर हित हरण कर, हिंसक हृदय हीन ।
जन, होते जग में सदा, निन्दनीय अति दीन} ।।२४।।

देवि ! जो नहीं दुष्ट है, है सन्मार्ग रूढ़ ।
तजना उसे निज नाश है, पाप कर्म अति गूढ़ ।।२५।।
व्यर्थ सता न राम को, करो न दोषारोप ।
डर जा निज अपवाद से, तज दे कड़वा कोप ।।२६।।
*{स्वार्थी दुराग्रही उद्दण्डी, घृणा घर जन घोर घमण्डी ।
अभिमानी अहंकारी भारे, जिनके कहने होते सारे ।।२७।।
वे तो मुखर हठी बन जाते, वैर विरोध विद्वेष बढ़ाते ।
उनको करते सीधे वे ही, जो भी बनें बल शक्ति गेही} ।।२८।।
मंत्री की सुन बलवद् वाणी, मौन हुई वह अति सकुचानी ।
राजा बोले वचन करारे, राणी को दुःख देने हारे ।।२९।।
मंत्री-वचन न तुझको भाते, तव मन में कुकर्म हैं आते ।
बनकर कलुषित कलह कटारी, काटे क्यों कुल कुसुम क्यारी ।।३०।।
पतन पाप पद पद पर पाती, पाप ताप की पोट बढ़ाती ।
जाने तू न निजू हित मेरा, बिगड़ गया इतना मन तेरा ।।३१।।
राघव बोले, सुनिए स्वामी, मुझको जानो निज अनुगामी ।
राज तजा जब मैंने सारा, कोश आडम्बर क्यों लूँ भारा ।।३२।।
वर हस्ति दे दान में कोई, तजे न रस्सी भला क्यों सोई ।
देश नगर जब है तज देना, व्यर्थ कोश और है सेना ।।३३।।
वन-जन-वेश मुझे पहराओ, वनवासी मुझे अब ही बनाओ ।
एक कुदाली एक पटारी, वन-सामग्री दीजिये सारी ।।३४।।
यह सुन हर्ष अतुल में आई, चीर तभी कैकेयी लाई ।
वल्कल छाला हस्त बढ़ाके, उसने दिया उसे लाज उठाके ।।३५।।
राज-वस्त्र तब राम उतारे, वन के चीर वहीं तन धारे ।
लक्ष्मण ने भी लेकर वे ही, अंग ढके अपने तन के ही ।।३६।।

* चौपाई।

{जाति जनपद हितों के हेतु, संगठना के सुदृढ़ सेतु ।
पिता बन्धु हित बने विरागी, राज काज सुख सम्पत् त्यागी ।।३७।।
मधुर मेल ऐक्य की माला, स्नेह सुधा रस की शुभ शाला ।
हर्ष में बने मुनि वनचारी, स्वकुल देश जाति हितकारी ।।३८।।
सुख स्वार्थ रस स्वाद, रसीले, वेश वसन शुचि साज सजीले ।
राग रंग सुर गीत सुरीले, मुद विनोद विलास रंगीले ।।३६।।
सगे स्नेही सब सुजन प्यारे, मीत मनोहर महा दुलारे ।
देश बन्धु हित मन में धारे, पितु चरण पर राम ने वारे ।।४०।।
सुकोमल सुख सेज के शायी, सदा सुधा सम रस के पायी ।
विविध व्यंजन षट् रस भोगी, पर प्रण से बने वन-योगी} ।।४१।।
वल्कल मृग-चर्म लो सीता, फिर बोली राणी विपरीता ।
चीर देख सिया डरी ऐसे, व्याध-जाल से हरिणी जैसे ।।४२।।
रेशम की थी सुन्दर साड़ी, जिस पर लम्बी चौड़ी भारी ।
क्षुद्र वस्त्र से कैसे नारी, अंग ढके वह राजदुलारी ।।४३।।
बार बार वह उन्हें उठाती, कटि कण्ठ तक खींच बैठाती ।
पर वे थे सब इतने छोटे, तन पर जाते नहीं लपेटे ।।४४।।
अति दुखिया हुई लाज के मारे, उस ने तब पतिदेव निहारे ।
सजल नयन ढब ढब थे दो ही, दुविधा में बहु व्याकुल हो ही ।।४५।।
बोली, पति! मुनि-नारी कैसे, गोपे तन ले पहरन वैसे ।
यह सुनकर तब रघुवर जी ने, क्षुद्र वस्त्र चर्म-खण्ड हीने ।।४६।।
लेकर सीता से सम्भाले, पहने वस्त्रों पर बाँध डाले ।
बोले वे, जा सिये! वनों में, लेना बदल सब तरु घनों में ।।४७।।
राजवंश की महिला, रोतीं, बोली तब बहु दुखिया होतीं ।
वत्स! चर्म न इसे पहनाओ, नारीगण को न आप लजाओ ।।४८।।

वनवास इसने नहीं पाया, किसी ने न आदेश सुनाया ।
ओढ़े चर्म यह क्यों कल्याणी, जाय वनों में क्यों घर राणी ।।४६।।
इस पर वशिष्ठ गुरुवर बोला, कैकेयी! तू ने विष घोला ।
फिर भी तुझको लाज न आती, किसी का भी तू भय न खाती ।।५०।।
यदि तू सोचे घर रह सीता, शासन करेगी बन विनीता ।
राम-स्थान अवश्य यह होगी, चाहे राम बने भी योगी ।।५१।।
आत्मा सम है नर की नारी, सम हैं दोनों पद अधिकारी ।
मोह कोप में तू है भूली, अपनी आप रचे क्यों शूली ।।५२।।
भरत जान राघव वनवासी, वह भी होगा विपिन निवासी ।
हम सब भी यह पुर तज देंगे, सुजन यहाँ का नाम न लेंगे ।।५३।।
राष्ट्र बनेगा वही कोना, होगा जहाँ राम का होना ।
उजड़ जायगा देश हमारा, होगा राम बिना वन भारा ।।५४।।
सोच करो हठ से हट जाओ, चीर न सीता को पहराओ ।
वरदान में यह तो नहीं है, घोर अन्याय तू कर रही है ।।५५।।
जावे सवस्त्रा वन वैदेही, सहित दास रथ भूषण के ही ।
गुरुवर के सुन कथन करारे, सीता ने न पहरन उतारे ।।५६।।
भूपति ने यह कहा तभी ही, ये न वस्त्र ले सिया कभी भी ।
जावे गुरु ने यथा बताया, भूषण-भूषित ही शुभ काया ।।५७।।
बोले राम विनय दर्शाते, मधुर शील युत वचन सुहाते ।
है कृशा वृद्धा माँ मेरी, शीलवती पत्नी प्रभु तेरी ।।५८।।
पुत्र-शोक वह यथा भुलाये, ऐसे करना देव उपाये ।
शान्ति धृति उसको दिलवाना, बहु विधि उसका मन बहलाना ।।५६।।
तथा भूप से करते बातें, हर्ष में थे वे देखे जाते ।
संकट संकुल वन में जाना, जान राम ने खेद न माना ।।६०।।

{बढ़ी बड़ों की बड़ी बड़ाई, विपदा विविध जिन्होंने पाई ।
बीहड़ विकट विषम पथ गामी, हो सफल हुए जग में नामी ।।६१।।
समाज सदन-सुदेव कहाये, जनता-हित जिन कष्ट उठाये ।
धर्म देश में पूजे जाते, परार्थ रहे जो संकट पाते ।।६२।।
विपदा जने जनों के नेता, समर में उपजे बहु विजेता ।
रगड़ से अग्नि विद्युत् ज्यों ही, संघर्ष से उत्कर्ष त्यों ही} ।।६३।।
भूप ने देखी दीन महेषी, देखा पुत्र बना मुनि वेशी ।
बोला वह अति पीड़ा पाता, हाहाकार का नाद गुंजाता ।।६४।।
हे सुमंत्र, अभी ही जाना, क्रीड़ा-रथ तुरन्त ले आना ।
अस्त्र शस्त्र से उसे सजाओ, वस्त्राभरण उसमें भर लाओ ।।६५।।
पहरन भूषण होवें ऐते, चलें चौदह वर्ष तक जेते ।
रथारूढ़ कर तुम ले जाओ, राम को वन बीच पहुँचाओ ।।६६।।
हा, मैं कैसा हूँ मतिहीना, भोगूँगा अति दुःख का जीना ।
मुझको मरण क्यों नहीं आता, काल कवल क्यों नहीं बनाता ।।६७।।
*{सिया को देख वन जाती, महिला मिल आहें भरतीं ।
चर्म के चीर चतुरा पर, निरख कर बहुत थी डरतीं ।।६८।।
भर कर श्वास बहुत लम्बे, हिचकियाँ सिसकियाँ लेतीं ।
अविरलतर नयन अश्रु से, गीले तन बदन थीं करतीं ।।६९।।
भरे यौवन सजी युवती, फिरेगी घोर वन में तो ।
इसे चिन्तन किये हम तो, अड़ियो, जाती हैं मरतीं ।।७०।।
बड़ी छोटी सभी जनियां, घराने राज की तब ही ।
गहरे अति शोक सिन्धु में, डूब कर थीं कभी तरतीं ।।७१।।
कुसुम सम मृदु विधु वदना, विमला शुभा कमल नयना ।
विचरे बहुत विषम वन में, हम तो धीर नहीं धरतीं} ।।७२।।

* विधाता।

इकीसवां सर्ग

†दिया कौशल्या ने तभी, सीता को उपदेश ।
अधिक प्यार से चूम सिर, बन गम्भीर विशेष ।।१।।
सीते! तू है जा रही, अपने पति के साथ ।
काया की छाया बनी, संगी सुदृढ़ हाथ ।।२।।
स्वार्थरत जो नारियाँ, होती हैं जग बीच ।
विपदा में पति साथ वे, तज देती हैं नीच ।।३।।
सुख सम्पत् में बन सखा, करतीं हास-विलास ।
दुर्दिन दुर्गति दुःख में, कभी न आती पास ।।४।।
जो हैं सतियां गुणवती, धर्मरता शुभकार ।
विपदा संकट विकट में, नहीं तजतीं पति-प्यार ।।५।।
उनका लक्ष उद्देश तो, होता है सब काल ।
मन वच काया से सदा, करना पति सम्भाल ।।६।।
एक भाव अति प्रेम से, अनन्य निश्चय संग ।
रहतीं बनी सुसंगिनी, करतीं धर्म न भंग ।।७।।
पतिव्रता वे नारियां, जीतें दोनों लोक ।
अति दुःख कष्ट क्लेश में, कभी न करतीं शोक ।।८।।
घोर विपत् में घिर गया, मेरा प्यारा राम ।
कोमल कर्म सुवचन से, देना उसे विश्राम ।।९।।
मधुर मीत हो मन मिले, ममता मान उल्लास ।
मन में रख रहना शुभे, होना नहीं उदास ।।१०।।
लाड़ प्यार में हो पले, सुख में सब दिन रात ।
भयकर घन वन में कहीं, कटुतर बने न बात ।।११।।

† दोहा।

सौभागिन रहो सुन्दरी!, सुख स्वस्ति कर लाभ ।
चतुरे! सुचारु चरित से, चौगुन चमक सआभ ।।१२।।
हाथ जोड़कर विनय से, बोली सिया विनीत ।
माता! तव उपदेश के, मैं न चलूँ विपरीत ।।१३।।
पति-परा जो पत्नियां, उनके चलन अनुसार ।
पति-पद पद्मानुरागिणी, रहूँगी निश्चय धार ।।१४।।
देवतुल्य मैं मान कर, लूंगी पति आराध ।
होगा भूल न चूक से, मुझ से कुछ अपराध ।।१५।।
चन्द्र सह जो चांदनी, रहती है सब काल ।
ऐसे पति के साथ मैं, रहूँगी व्रत-पाल ।।१६।।
मात-पिता सब बन्धु गण, परिमित सुख दें दान ।
सुख असीम दो लोक के, भर्त्ता करता विधान ।।१७।।
कौन मूढ़ है जो तजे, ऐसा शुभ सम्बन्ध ।
जो जीवन-फल चार दे, करे जग से निर्बन्ध ।।१८।।
*{सती सत्य शुभ सन्त सहारे, भूमि सहती भार भी भारे ।
वंश जाति की शोभा सारी, पतिव्रता गई सती पुकारी ।।१६।।
सृष्टि सार सती थी सीता, पतिपरा पुण्य रूप विनीता ।
सुख रस सम्पत् सगे स्नेही, पति-पद हित तज दिये विदेही ।।२०।।
भाग्यवती भगवती भवानी, पति सह भानु-भासा समानी ।
भाव भरी पति भक्ता प्यारी, भारत भू की निरुपम नारी} ।।२१।।
बोले तब रघुपति गुण गेही, विनय शील सुदृढ़ मन के ही ।
धर्मपरा हो मेरी माता, करना वही सुखी हो ताता ।।२२।।
करिए आशा जब हैं जीते, चौदह वर्ष समझिए बीते ।
स्वप्न सम होगी यह भारी, कटु क्रीड़ा जो गई पसारी ।।२३।।

* चौपाई।

आदर मान सर्व मन ला के, मां मण्डल को सीस नवाके ।
परिक्रमा उन्होंने लगाई, पूजे भूपति सब सुखदाई ।।२४।।
सुमित्रा तब आगे आई, बोली पुत्र-वियोग सताई ।
जाइये लक्ष्मण वीर प्यारे, तुझ पर सुत मैं जाऊँ वारे ।।२५।।
सुजनों में अनुरक्त सदा हो, बने नहीं विपरीत कदा हो ।
तूने जन्म लिया है मानो, ऐसे वन बसने को जानो ।।२६।।
बड़ा पिता सम समझो भाई, मेरे सम समझो भौजाई ।
घन वन को अयोध्या बनाना, ऐसे सुख से समय बिताना ।।२७।।
सेवा में कुछ भूल न लाना, बन्धु-धर्म में चूक न जाना ।
सेवा करना तत्पर हो के, आलस कोप कलह को खो के ।।२८।।
सुख-सम्पत् में होवे चाहे, घोर विपद् में वा घिर जाये ।
गति मति सब है भ्राता तेरी, सुतवर! शिक्षा यही है मेरी ।।२६।।
धर्म सनातन कुल का गाया, दान दीक्षा यज्ञ बीच बताया ।
समर में प्राण बली कर देना, उत्तम फल है जग में लेना ।।३०।।
जहां-जहां तू जाने पावे, सुख स्वस्ति मंगल बस जावे ।
जीत विजय हो लाभ तुम्हें ही, मिलना आ सुख सहित हमें भी ।।३१।।
जाओ जाओ परम दुलारे, चित्त-चन्द्र नयन के तारे ।
ऐसा कह सिर चूम विदाई, दी माता ने सहित बधाई ।।३२।।
{जननी जाती दुर्लभ जानी, जग में सुमित्रा समा सयानी ।
जो निज जात का जी उभारे, वीर भाव के वचन उच्चारे ।।३३।।
ऐसी जननी के जन जाये, जग जेता जन राज कहाये ।
उनके ओज तेज की ज्योति, जग जन का जी जीवन होती} ।।३४।।
बोला तब सुमंत्र सियाना, रघुवर! जिस वन को हो जाना ।
रथ में बैठ चलो वर दाता, कैकेयी को है यह भाता ।।३५।।

पहले बैठी सीता राणी, अधिक हर्ष से अधिक हर्षाणी ।
अस्त्र शस्त्र लिये बन्धु दो भी, रथ में बैठ चले वन को ही ।।३६।।
आर्त नाद भवन पर छाया, भूतलाकाश हो कम्पाया ।
मूर्च्छा महा नगर पर छाई, घटना घोर घटा घिर पाई ।।३७।।
ज्यों-ज्यों सूत रथ थे चलाते, मनुज-प्राण त्यों बाहर आते ।
जैसे कोई कमल निचोड़े, निचुड़ रहे जन नयन सिकोड़े ।।३८।।
वर्षा में गिरि झरते जैसे, नारी नर थे रोते ऐसे ।
सब पर सम दुखड़ा था आया, अति शोक ने सबको दबाया ।।३६।।
बाल तरुण बूढ़े नर नारी, विरह-वेदना पाकर भारी ।
राम ओर थे दौड़े आते, ग्रीष्म-हत ज्यों जल को जाते ।।४०।।
चहुं ओर से रथ को घेरे, चलते थे सज्जन बहुतेरे ।
जिधर जभी जन नयन पसारे, दीखते नयन बने फवारे ।।४१।।
सहस्रों रूप धर था गर्जाता, जन-घन बरस बहु मंडलाता ।
सिसक-सिसक जन भरते आहें, रोते सब कर ऊँची बाहें ।।४२।।
रुद्र रुदन दारुण दुःख देना, सब दिश दीखा सुख हर लेना ।
दयनीय दशा दश दिश छाई, दुर्बल दैन्य रहा समाई ।।४३।।
नयन-नीर ने भूमि सिंचाई, पथ की धूलि रज भी दबाई ।
सब दिश गूँजा हाहाकारा, अनमना बना जन गण सारा ।।४४।।
राम-सखा थे बहु बिलखाते, पीड़ित प्राण पड़े तड़पाते ।
व्याकुल हृदय न शान्ति पाते, फिर-फिर थे वे मूर्च्छा खाते ।।४५।।
जल बिन कमल सिकुड़ ज्यों जाये, सब जन वदन थे त्यों मुर्झाये ।
तड़पे मीन बिना ज्यों पानी, तड़प रहे थे त्यों वे प्राणी ।।४६।।
धीरे-धीरे यान चलाओ, सूत नहीं रथ वेग बढ़ाओ ।
दर्शन-अमृत दो कुछ पीने, कहते थे जन हर्ष विहीने ।।४७।।

दुर्लभ दर्शन होंगे पाने, राम मिलें कब कैसे जाने ।
बार-बार रघुनाथ! पुकारें, अतृप्त नयन वे उसे निहारें ।।४८।।
आपस में करते थे बातें, कैसे ये काटेंगे रातें ।
वन-वन फिरते अहर्निश जीना, खान पान सुख शयन विहीना ।।४६।।
कैसे यह सब विपत् सहेंगे, दुर्गम विषम में कैसे रहेंगे ।
धन्य लखन है सुखकर भ्राता, सेवक साथ बना है जाता ।।५०।।
धन्य सती सीता कहलाती, जो है वन को पति सह जाती ।
ईश! सदा जीवे यह जोड़ी, जिसने सब सुख-सम्पत् छोड़ी ।।५१।।
{पुण्य पुरुष जो परहित राते, प्रण हेतु प्राणों के दाते ।
प्रेम रूप उपकारी पूरे, पुर जन पद हितकारी शूरे ।।५२।।
आकर्षण के परम पुंज से, कर्म के कोमल कमल कुंज से ।
जन-मन मोहक शक्ति परा से, धर्म जनाश्रय हों धरा से ।।५३।।
अपर प्राण वे बनें जनों के, बन्धन बलवत् मनुज मनों के ।
राघव नेता सकल कला के, पूर्ण नर थे मति अमला के} ।।५४।।
मात पिता पीछे थे आते, राम राम का नाद सुनाते ।
रोते थे राजा वर राणी, यथा मेघ बरसाता पानी ।।५५।।
राम समीप न उनके आये, व्रत-बन्ध में बहु बन्धाये ।
भू पर भूपति गिरे तथा ही, छिन्न मूल तरु गिरे यथा ही ।।५६।।
कौशल्या थी अति अकुलाती, बहु विलख अति वेदना पाती ।
राघव ने फिर त्यों न निहारा, गौ से बद्ध वत्स हो न्यारा ।।५७।।
जनता कहती यान न भागे, कहते राम चलो अति आगे ।
दुविधा में तब सूत पड़ा था, उसको मानस कष्ट बड़ा था ।।५८।।
यान गति जब उसने बढ़ाई, पछड़ गई जनता अधिकाई ।
तन से लौटे बहु तनधारी, मन से रहे राम-अनुचारी ।।५६।।

भूप धूल में लतपत ऐसा, था कीच में कमल हो जैसा ।
कौशल्या ने उसको उठाया, रज पूंछ रथ बीच बैठाया ।।६०।।
लौटे भूप अन्त में ऐसे, ज्योति रहित दीपक हो जैसे ।
प्राण रहित होवे ज्यों प्राणी, स्मृति हीन ज्यों होवे वाणी ।।६१।।
सहस्त्रों जन हो कर के संगी, थे राम संग शोक-तरंगी ।
उनको रघुवर थे समझाते, प्रेम साथ पीछे लौटाते ।।६२।।
पर सब थे मन में यह धारे, रहें वहीं जहां यह पधारे ।
घर बार सभी हमने त्यागे, मोह लोभ सब हम से भागे ।।६३।।
कन्द मूल फल भोग लगाते, वन में हम होंगे विलसाते ।
हम बन राम-चरण अनुरागी, विचरेंगे वन बीच विरागी ।।६४।।
बोले राम, सुनो सब भाई, परम प्रीति है मैंने पाई ।
वह प्रीति तुम भरत में लाना, उसका आदर मान बढ़ाना ।।६५।।
इस से मुझको तुष्ट करोगे, अपने मानस खेद हरोगे ।
ज्ञानी गुणी भरत मम भ्राता, शूर वीर है स्व-जन त्राता ।।६६।।
उसके चमर छत्र की छाया, देगी बहु सुख तुम्हें सवाया ।
मृदु मधुर मोहक सुखकारी, रोष दोष रहित सदाचारी ।।६७।।
गुण में है वह मुझ से ऊँचा, नीति न्याय नयवान् समूचा ।
अवध देश का राजा स्वामी, रहना उसके बन अनुगामी ।।६८।।
तथा कर्म हो बन्धु तुम्हारा, सुख से जीवे भूप हमारा ।
राजा दशरथ कष्ट न पावे, ऐसी विधि तुम से बन आवे ।।६९।।
ज्यों ज्यों वे उपदेश सुनाते, जन प्रेम से खिंचते जाते ।
राम कथन ने जन मन मोहे, प्रेम तार में सर्व पिरोये ।।७०।।
राम साथ जन जाते त्यों ही, वायु-संग घन दल हो ज्यों ही ।
रचकर रसना-रास रसीली, जनता सर्व राम ने कीली ।।७१।।

वयोवृद्ध तपोधन ज्ञानी, उन में थे बहुते जन ध्यानी ।
कांप रहे थे लिए बुढ़ापा, शोक खेद था उनमें व्यापा ।।७२।।
बोले वे गद्‌गद् हो बानी, व्यंग सहित जन-चित्त लुभानी ।
भो-भो वंशज अश्व सुशीलो, प्रभु-भक्तो तुम सुनो फुर्तीलो ।।७३।।
पीछे फिरो आगे न जाओ, स्वामी-हित निज मन में लाओ ।
बदलो मुख अब पाँव फिराओ, राघव जी को घर ले जाओ ।।७४।।
कर्णवन्त प्राणी हैं माने, गये अश्व विशेष से जाने ।
इस विनती पर कान लगाना, राम को ले वन को न जाना ।।७५।।
गहरे दुःख से गिड़गिड़ाते, गुणी गुरु गिरा से समझाते ।
रघुपति तभी उतर रथ से ही, उनके साथ चले पथ से ही ।।७६।।
विनय सहित ब्राह्मण वे बोले, सार वचन अमृत में घोले ।
द्विज विप्र के परम हितैषी, राघव गुण शुभ सार गवेषी ।।७७।।
वन को जाते संग तुम्हारे, यजन हवन सब कर्म हमारे ।
उपकरण पीछे सभी आते, हम तेरे हित में हैं राते ।।७८।।
वेद परम धन-कोश हमारा, सो हमने मस्तक में धारा ।
पतिरता हैं हमारी दारा, धर्म है रक्षक उनका भारा ।।७६।।
हम सब तेरे साथ चलेंगे, टालो तो हम नहीं टलेंगे ।
जो चाहो विद्यालय विशाला, वेद होम चलें अग्नि-शाला ।।८०।।
पाठन-पठन रहें सब होते, हम रहें शुभ बीज को बोते ।
भूपर हमने सीस लगाये, हंस पक्ष से केश झुकाये ।।८१।।
तो मानो विनती वर दानी, तज दो वन-गमन की कहानी ।
बोले राम, है व्रत मेरा, मैं न फिरूँ निश्चय से फेरा ।।८२।।
शिक्षा-दीक्षा जो थी दिलाई, विद्या मुझे जो गई पढ़ाई ।
मैं चलता हूँ तद् अनुसारी, क्यों बनाओ मुझे अनचारी ।।८३।।

उस समय तमसा नदी आई, दूर से बहती दी दिखाई ।
चलती टेढ़े से बल खाती, हो राघव-स्वागत को आती ।।८४।।

बाईसवाँ सर्ग

*यान वहाँ पर रोक, घोड़े खोले सूत ने ।
था बहुत उसे शोक, फिर भी करता काम था ।।१।।
मर्दन कर के आप, उसने नहलाया उन्हें ।
पाता वह परिताप, चारा दाना दे रहा ।।२।।
रघुवर सिया सभ्रात, जाकर तमसा तीर पर ।
बोले करके बात, लक्ष्मण पहली रात है ।।३।।
पंछी गण का नाद, रोदन सम है हो रहा ।
होगा बहुत विषाद, पुर-जन जननी भूप को ।।४।।
हा! कैसे यह रात, काटेंगे माता पिता ।
भरत प्रेमी विख्यात, आ देगा धीरज उन्हें ।।५।।
अहो प्रिय मम प्राण!, अद्‌भुत् तेरे कर्म हैं ।
बना शरण का स्थान, वन में तू मम साथ आ ।।६।।
तुझ सा मीठा मीत, सच्चा सहायक दूसरा ।
जीवन जावे बीत, तो भी मिलना कठिन है ।।७।।
करो बन्धु! जल-पान, भोजन तो भाता नहीं ।
ऐसा करो विधान, जन सब सुख पावें यथा ।।८।।
सुखकर सचिव सुजान!, कहा राम ने सूत को ।
सज्जित रखना यान, चाहें जब तब चल पड़ें ।।६।।

* सोरठा।

ऐसे कर संलाप, संध्योपासन में मग्न ।
तीनों वे चुप चाप, रहे जाप में लीन हो ।।१०।।
सूत अनुज ने ठीक, तृण पत्तों की सेज रच ।
कहा राघव! निर्भीक, देव, देवी विश्राम लें ।।११।।
तृण शय्या पर राम, सोये सीता भी तथा ।
लक्ष्मण कह गुणग्राम, सूत साथ जगता रहा ।।१२।।
अवध देश के लोग, साथी थके निरन्न थे ।
करते चिन्ता सोग, सोये पिछली रात सब ।।१३।।
निश का चौथा भाग, जब आया उस काल में ।
राघव सीता जाग, तमसा-तट पर हो खड़े ।।१४।।
कहा राम ने वीर!, जन पुरवासी ये सभी ।
कोमल सुखी शरीर, वन में आये साथ हैं ।।१५।।
तज कर घर परिवार, वन बसने को चल पड़े ।
त्याग वणिज ब्यौहार, हठ से आये साथ हैं ।।१६।।
कह लो बार हज़ार, पर ये लौटेंगे नहीं ।
होगा कष्ट अपार, इन को आगे वनों में ।।१७।।
है हमारा उद्देश, जनपद पुरवासी सभी ।
कभी न पावें क्लेश, सुख मंगल देखें सदा ।।१८।।
इन को सोते छोड़, अभी यहां से हम चलें ।
इधर उधर रथ मोड़, तमसा से हम पार हों ।।१६।।
करके सम्मति एक, सूत ने रथ तयार कर ।
कहा उन्हें सिर टेक, देव! चलो सब ठीक है ।।२०।।
तीनों हुए सवार, नगर ओर रथ फेर कर ।
करके तमसा पार, दूर वनों में वे गये ।।२१।।

*{वंश देश जन हित को धारे, धर्म जाति रीति को विचारे ।
स्वयं सेवक जो बन जाते, मर्यादा हेतु कष्ट उठाते ।।२२।।
वन वन फिरते त्यागी हो के, संयम में रहते मन रोके ।
पर सेवा में दिवस बिताते, सदा लोग उनके गुण गाते ।।२३।।
हुआ राम का वन में जाना, पछड़े जनों को पंथ दिखाना ।
कोल भील को कण्ठ लगाना, मार काट से ऋषि बचाना ।।२४।।
वन जन में नव जीवन लाना, धर्म सभ्यता बहुत बढ़ाना ।
न्याय नीति को अधिक चलाना, वीर वृत्ति वन जन में बसाना ।।२५।।
असुर विदेशी त्रास मिटाना, स्वतन्त्र स्वदेश बनाना ।
काले घन से जल हो ज्यों ही, शुभ सम्पत् यह उपजी त्यों ही} ।।२६।।
सबेर समय उठे पुरवासी, देख न राघव, हुए उदासी ।
इधर उधर थे दौड़ लगाते, गिरते पड़ते मूर्छा खाते ।।२७।।
निशा निराशा उन पर छाई, घोर हताशा गहरी आई ।
पुर को जाती रथ की नेमी, बोले देख राम के प्रेमी ।।२८।।
गई अयोध्या को रथ-रेखा, राजा ने होगा यह देखा ।
निर्वासन यों पुत्र को देना, निन्दा अपयश को है लेना ।।२९।।
ऐसा सोच भूप हो आया, उसने आ हो राम फिराया ।
करते बातें वे मनमानी, कहते राघव करुण-कहानी ।।३०।।
चले नगर को टूटे जी के, वे विमना ले मुखड़े फीके ।
रथ-रेखा फिर देख न आगे, विचार विवेक उनसे भागे ।।३१।।
यंत्रवत् निर्जीव से वे ही, चले देह मात्र बन देही ।
डग मग पग नयनों को मींचे, चलते आँसू से पथ सींचे ।।३२।।
कटे पतंग से लड़खड़ाते, रोते चिल्लाते गिड़गिड़ाते ।
पुर में आये हर्ष विहीने, दुःखित तज कर खाने पीने ।।३३।।

* चौपाई।

राम बिना पुर दीखा सूना, उन्हें हुआ इस से दुःख दूना ।
लोग नहीं थे हाट लगाते, वणिज-वस्तु थे नहीं सजाते ।।३४।।
ताले दुकानों पर जड़े थे, सभा भवन सब बन्द पड़े थे ।
हार सिंगार से जन सूने, जीवन में भी थे सब ऊने ।।३५।।
सुत आता मां पै इकलौता, उसे हर्ष का लेश न होता ।
इष्ट वस्तु पाता यदि कोई, किंचित् हर्ष न लाता सोई ।।३६।।
किसी का बन्धु यदि मर जाता, उस को अधिक न दुःख सताता ।
पति पत्नी न प्रेम दिखाते, हंसी हर्ष न मुख पर लाते ।।३७।।
ग्रीष्म में सर हों ज्यों सूखे, प्रेम हीन बन्धु बने रूखे ।
घुने हुए दाने ज्यों थोथे, हर्ष-हीन पुरवासी सो थे ।।३८।।
राम-गमन का दुःख अति भारा, उन से जाता नहीं सहारा ।
राम-गमन की पाकर पीड़ा, जन थे रहित रमण सुख क्रीड़ा ।।३९।।
राम विदा कर जब घर आये, भूपति राम बिना घबराये ।
बोले वे गण अनुचर को ही, अभी चलो कौशल्या घर को ही ।।४०।।
रहे वहीं अब मेरा डेरा, चार दिनों का शयन बसेरा ।
पास महेषी शोक सताये, रहने लगे सुख हर्ष मिटाये ।।४१।।
राम-विरह में व्याकुल होते, क्षण-क्षण में थे दोनों रोते ।
बहुत दुःखी थे राजा राणी, वन-दहन से यथा वन-प्राणी ।।४२।।
पल पल लगते उनको भारी, दिन चढ़ते जी जीवन-हारी ।
काल निशा बन आतीं रातें, घड़ियां करती मन की घातें ।।४३।।
यद्यपि थे वे दोनों जीते, पर थे प्राण प्रीति से रीते ।
धमनी यथा सांस वे लेते, निरे निर्जीव दिखाई देते ।।४४।।
रोते राघव की कर बातें, कल्प रही थीं उनकी आंतें ।
रुकते सांस हिचकियां आतीं, उनकी सब नसें खिंच जातीं ।।४५।।

पुर जन की सौभागिन नारी, सखियां सीता की दुखियारी ।
रोती थीं वियोग की मारी, तड़पती ज्यों मीन बिन वारी ।।४६।।
दीखते सर्व उत्साह से हीने, अनमने जन साहस विहीने ।
हास विलास सभी ने त्यागे, राग रंग पुर भर से भागे ।।४७।।
नृत्य गीत न थे तब होते, चलते फिरते जन थे रोते ।
पुरी बनी थी शोभा हीना, जनता थी दुखिया अति दीना ।।४८।।
कमल यथा जल बिन कुम्हलाते, ग्रीष्म तप्त कुसुम मुरझाते ।
बने तथा थे पुर के वासी, अवध देश के सर्व निवासी ।।४६।।
बिना वर्षा जैसे वन-राजी, नीरस थे सब अवध-समाजी ।
होवे रैन यथा बिना तारा, था त्यों देश तमोमय सारा ।।५०।।
जन मन रमते राघव में त्यों, चन्द्र में चक्षु चकोर के ज्यों ।
अपने को सब भूल रहे थे, राम ध्वनि में झूल रहे थे ।।५१।।
रहते दूर बहुत तन से थे, राम निकट पर वे मन से थे ।
रात दिवस उसके गुण गाते, यश वर्णन कर काल बिताते ।।५२।।

तेईसवां सर्ग

* उधर राम चलते हुए, पाकर सन्ध्या काल ।
अनुज सिया सह जाप में, तत्पर हुए दयाल ।।१।।
प्रात समय के कर्म कर, आगे कर प्रस्थान ।
नगर ग्राम को देखते, चले राम गुणवान् ।।२।।
पुष्पित पत्रित फलित सब, हरित भरित वन खेत ।
जाते राम निहारते, लक्ष्मण सिया समेत ।।३।।

* दोहा।

अवध-राज के जन सभी, आते ले उपहार ।
रोते आंसू आठ से, राघव-वंश निहार ।।४।।
वल्कल छाला हरिण की, ओढ़े राज-कुमार ।
देखे जनपद जनों ने, पाते कष्ट अपार ।।५।।
प्रतिमा सम निर्जीव से, इक टक नयन पसार ।
दीन मना बन देखते, पथ में बांध कतार ।।६।।
ग्राम वनों की नारियां, आतीं बहु मिल साथ ।
बिलख बिलख कर सिसकतीं, निरख सिया तस नाथ ।।७।।
कहतीं आपस में सभी, यह शोभा अवतार ।
बसेगी वन में सह पति, सब सुख रमण बिसार ।।८।।
† सुन सीता का वन जाना, घरों की नारियां रोकर ।
भर कर सांस बहुत फिर फिर, कहती जोड़ सभी दो कर ।।६।।
पुतली संग मर्मर की, पद्म शुचि चांद सी गोरी ।
मधुर बयना कमल नयना, चली वनवासिनी होकर ।।१०।।
रहती गृह सुनहलों में, कुसुम सम सेज पर सोती ।
करेगी कंट कंकर पर, शयन तिनके परुष ढोकर ।।११।।
पली जो लाडले पन में, रसीले भोज फल खाती ।
कसैले बेर फीके फल, कटु कन्द खायगी धोकर ।।१२।।
हिया जिया है नारी का, पिया पर प्राण तक वारे ।
सहचरी विपद् में बनती, सर्वसुख सम्पदा खोकर ।।१३।।
{राम को देख राह चलतीं, युवतियां पूछती बहिने! ।
कमल कोमल कोय काले, फिरा तिरछे चपल दहिने ।।१४।।
सिया से बयन सैनों से, रसीले हाव भावों से ।
कहतीं अहो सर्व सुन्दर, कहां जाने कहां रहने ।।१५।।

† विधाता।

सुघड़ सजनी नवेली री, नरों के वेश क्या कहते ।
जग मग वस्त्र सब तेरे, जड़ाऊ कीमती गहने ।।१६।।
अड़िये! कौन कहो होते, हैं तेरे दो ये तापस ।
सिया ने पिया देवर की, करी मुस्कान से सैनें ।।१७।।
सरस स्मित सुर अति धीमे, रसिक संकेत से सब ही ।
वन में बसने मुनिपन के, कहे उसने उन्हें कहने ।।१८।।
सुन कर करुण कहानी को, सिर से पैरों तक काँपी ।
कहतीं बहुत बनी दुःखित, सती को कष्ट हैं सहने} ।।१६।।
*नदी नद नाले सम थल, विषम बहुत भू-भाग ।
राघव जाते देखते, वनी बने बड़ भाग ।।२०।।
सीमा कोशल देश की, जब आई तत्काल ।
कर जोड़ कहा राम ने, अंजलि पर धर भाल ।।२१।।
मातृ-भूमि तू है बड़ी, हरी भरी, सुविशाल ।
क्षत्रिय सूर्य वंश के, रहे तुझे हैं पाल ।।२२।।
पुण्य भूमि है पितृ-भू, देव भूमि सुखरास ।
आर्य जन हैं कर रहे, तुझ में देवि! निवास ।।२३।।
मैं तो होता हूँ बिदा, माता, तुझ से आज ।
जाता हूँ सब छोड़ कर, वंशज सुजन समाज ।।२४।।
पितृ-ऋण से पार हो, आऊँगा फिर मात ।
अर्च पूज कर मैं तुझे, सफल करूँगा गात ।।२५।।
सजल नयन गद्गद् वचन, बोले रघुपति आप ।
कोशल जन के संघ से, करते वार्तालाप ।।२६।।
आते हो रथ घेर कर, तज कर घर बहु दूर ।
मुझ पर कर के अति दया, लिये प्रेम भरपूर ।।२७।।

* दोहा।

धन्यवाद हो आप का, हृदय से शत बार ।
जाओ करिए काम निज, रखिओ मुझ से प्यार ।।२८।।
नर नारी की टोलियां, सहित नम्र नमस्कार ।
बिछुड़ीं छम छम बरस कर, जातीं बनीं असार ।।२६।।
युवकों के दल सबल सब, राम-राह रथ रोक ।
रह रह रोते देर तक, सदय सुहृदय लोक ।।३०।।
आदर मान सुप्रेम से, स्नेह साथ पुचकार ।
जाते आगे राम थे, सब का कर सत्कार ।।३१।।
*राघव-रथ चलता था ऐसे, नभ में सूर्य मण्डल जैसे ।
गये वेग से वे बढ़ आगे, मुनि महा मोह ममता त्यागे ।।३२।।
देख दूर से बहती गंगा, गर गर गर्जित संग तरंगा ।
बोले रघुपति, सिये निहारो, देवनदी पर नयन पसारो ।।३३।।
नीरज निर्मल नीर सुनीला, निरखो नृत्य करता लीला ।
शीतल स्वच्छ शुचि सुखदाता, सब अशुचि श्रम श्रान्ति नसाता ।।३४।।
उछल कूद कर दौड़ लगातीं, लहरें लचकें तट को आतीं ।
सुन्दर लगती ऊर्मि श्रेणी, धारा सजे यथा वर वेणी ।।३५।।
शोभे अति तट से टकराती, ध्यानी जन पर अर्घ्य चढ़ाती ।
भंवर भारे हैं, भयकारी, चक्कर देते धीरज हारी ।।३६।।
भानु किरण से जल चमकाता, रजत रूप कैसे बन जाता ।
कैसी भाती हैं बहु मीना, उछल घूम कर अति स्वाधीना ।।३७।।
जलचर नाना रंग बिरंगे, दौड़े फिरते लगते चंगे ।
हंस सारस सरंग सुहाने, नीर तीर पर लगे लुभाने ।।३८।।

* चौपाई।

उड़ती चिड़ियां नाना रंगी, चित्रित साज सजी सह संगी ।
वक खड़े एक पैर उठाये, मुनिवत् दृष्टि ठीक जमाये ।।३६।।
रवि-किरण से चमक यह रेती, रजत-रूप में शोभा देती ।
गंगा जल से सटकर सोहे, रजत नील मणि सम मन मोहे ।।४०।।
हिरण रमें बहु झुण्ड बनाये, रंग सींग से सजे सजाये ।
कूँजें कूँज रही हैं भाती, आती डार कतार बनाती ।।४१।।
ग्वाले दूर खड़े हैं भाते, गौएं भैंसें फिरें चराते ।
गड़रिये लिये बकरी भेड़ें, रेवड़ को अब घर को छेड़ें ।।४२।।
गोचर भूमि है अति नीली, सजल गंगा-खेत की गीली ।
हरित भरित इस ओर किनारे, पुष्पित बेल तरु लगें प्यारे ।।४३।।
शीशम पीपल वट की छाया, आम्र नीम कदम्ब सुहाया ।
बबूल इमली ऊँची बेरी, नाना पेड़ ने भूमी घेरी ।।४४।।
अद्‌भुत शोभित है वनराजी, हरी भरी इस ओर विराजी ।
घनी बनी श्यामल दिखलाती, तरुगण से है शोभा पाती ।।४५।।
बातें करते रघुवर ऐसी, पाकर भूमि उतारे जैसी ।
तरु समीप उतरे रथ से ही, लक्ष्मण संग और वैदेही ।।४६।।
सूत लगा तब अश्व फिराने, घास चराने जल दिखलाने ।
श्रृङ्गवेर पुरवर का स्वामी, गुह नामक निषाद था नामी ।।४७।।
वह सुनकर रघुपति का आना, तन पर धर मुनि जन का बाना ।
निज बन्धु संग मिलने आया, खान पान आदिक सब लाया ।।४८।।
राघव ने देखा वह आता, बन्धु सुजन गण सहित सुहाता ।
बोले लक्ष्मण को, हे भाई!, सच्चा सखा वह है सुखदाई ।।४६।।
आत्मा सम मुझको है प्यारा, मधुर मीत है प्राण हमारा ।
आगे बढ़े दोनों हर्षाते, मिले उसे निज कण्ठ लगाते ।।५०।।

कुशल क्षेम करके वह राजा, बोला, हे राम! महाराजा ।
श्रृंगवेर नगरी को पालो, भूप बन मम देश सम्भालो ।।५१।।
यथा अयोध्या पुर था तेरा, वैसा पुर तेरा है मेरा ।
बनो भूप हम सबके स्वामी, हम नौकर हैं तव अनुगामी ।।५२।।
तू अतिथि प्रिय देव समाना, उत्तम पुरुष गया है जाना ।
अभी चतुर्विध भोजन खाओ, पीछे पुर में रह सुख पाओ ।।५३।।
वचन मधुर सुन कर सुख देने, प्रेमभरे मन को हर लेने ।
कहे उसे तब राघव जी ने, वचन मनोहर रस से भीने ।।५४।।
मीत! जभी तुम चलकर आये, सर्व पदार्थ हमने पाये ।
सच्चे सखे! पर अब यह जानो, मुनि बना तापस मुझे मानो ।।५५।।
कन्द मूल मुझको है खाना, वह भी अपने कर से लाना ।
पर नहीं करते हूँ लजाता, समझो दान नहीं हूँ खाता ।।५६।।
भुजा राम ने फिर फैलाई, मित्रों ने निज छाती मिलाई ।
हुए एक वे दोनों स्नेही, मन तन से यथा देह देही ।।५७।।
{जग में मीत कहो हैं केते?, जो सखा को सर्व दे देते ।
कड़े काल में कौन सहाई ?, विपदा घोर में देता दिखाई? ।।५८।।
बनी के बन्धु हैं बहुतेरे, सुख सम्पद् के सखा घनेरे ।
बिगड़ी में बने न साथी, रज्जू बदल में मांगे हाथी ।।५६।।
यदि अपने घर में हो दाने, तो सब मिलते करते खाने ।
निर्धन को अपने तज जाते, रुण्ड पेड़ पर पक्षी न आते ।।६०।।
राम-सखा पर था वह ऐसा, ढूंढ़े मिले नहीं उस जैसा ।
प्रेम भाव में अति उमड़ाया, उसने उस पै सर्व चढ़ाया} ।।६१।।

चौबीसवां सर्ग

* दाना घोड़ों के लिये, और हरित वर घास ।
दे कर गुह ने सूत को, किया वहीं पर वास ।।१।।
सायं सन्ध्या जाप कर, करके तब ही ध्यान ।
लक्ष्मण का लाया हुआ, गंगा जल कर पान ।।२।।
तृण-शय्या पर सो गये, राम परम हो शान्त ।
सीता भी तब सो गई, स्थान लिये एकान्त ।।३।।
गुह लक्ष्मण थे जागते, करते बहुविध बात ।
रामचन्द्र की सुकथा, कहते पुलकित गात ।।४।।
वर्णन सब वनवास का, अथ से इति तक शेष ।
लक्ष्मण ने गुह को कहा, बीता सर्व विशेष ।।५।।
बार बार बहु सांस ले, पाता वह परिताप ।
गुह भी सुन कर कटुकथा, करता था अनुताप ।।६।।
प्रात समय रघुवर जगे, सीता भी तब जाग ।
स्नान ध्यान में रत हुए, वे तीनों बड़भाग ।।७।।
गुह को राघव ने कहा, वट दुग्ध मिले आज ।
जटा जूट सब केश कर, सजे वनों का साज ।।८।।
दूध आया तत्काल तब, वह ले दोनों वीर ।
काले कुंचित केश में, मलने लगे सुधीर ।।६।।
कोमल केशों की तभी, करके लटें अनेक ।
जटिल जटायुत हो गये, क्षत्रिय सहित विवेक ।।१०।।

* दोहा।

पुनरपि बोले राम जी, मेरे सखा निषाद ।
हमको करिए अब विदा, तज कर शोक विषाद ।।११।।
नौका आवे घाट पर, करो हमें उस पार ।
सुखी हर्षित मैं हूँ अति, पाकर तेरा प्यार ।।१२।।
गुह बोला कर जोड़ कर, उत्तम है यह स्थान ।
यहीं निवास करो सखे!, सेवा देकर दान ।।१३।।
कहा राम ने मित्रवर, नगर अयोध्या पास ।
है, इस कारण जनों का, होगा सदा निवास ।।१४।।
रहना मुझको है वहीं, जहां जान पहचान ।
कुछ भी मेरी हो नहीं, हो वन निबिड़ महान् ।।१५।।
व्याकुल हो अति खेद से, गुह ने कर आदेश ।
नौका की सज्जित तभी, सुदृढ़ बहुत विशेष ।।१६।।
नावा देख तैयार तब, सौम्य! सूत सुजान ।
राघव ने कहा अब तुम, लौटो लेकर यान ।।१७।।
मात पिता को वन्दना, कहना बने विनीत ।
कुशल क्षेम भी पूछना, पालन कर सब रीत ।।१८।।
कहियो तीनों हैं सुखी, वन में कर संचार ।
शुभ मंगल से विचरते, हर्षित मुदित अपार ।।१६।।
उन्हें चित्त में एक है, पितृ-चरण का ध्यान ।
प्रेम-पूर से भरत का, सब माता का मान ।।२०।।
पीछे बहुत उतावले, आवेंगे दिन काट ।
भूपति रहें निश्चिन्त हो, देखें कभी न बाट ।।२१।।
फूट फूट कर रो पड़ा, पाकर वह सन्देश ।
कहा सूत ने हो दुःखी, दो न मुझे आदेश ।।२२।।

देव! दया कर दास को, रखिए अपने पास ।
सेवा सब ही सौंप कर, मानो यह अरदास ।।२३।।
सजल नयन से निरख कर, स्नेह वचन के साथ ।
सचिव! कहो ऐसा नहीं, बोले श्री रघुनाथ ।।२४।।
बिना यान सामान के, प्रण सत्य को धार ।
वन में बसना है मुझे, परिग्रह सब निवार ।।२५।।
उचित यही है, हे सचिव!, यान बनाना पैर ।
पितृ-वचन को पालना, करना वन की सैर ।।२६।।
सो सौम्य! अब जाइए, कह कर दीन दयाल ।
गाढ़ आलिंगन गुह को, देकर किये निहाल ।।२७।।
नौका में आरूढ़ हो, तीनों वे उस काल ।
प्रेम स्नेह से देखते, चले बन्धु सुख पाल ।।२८।।
सूत गुह रहे देखते, बान्ध नयन का तार ।
निर्निमेष निश्चल खड़े, पाते शोक अपार ।।२९।।
ओझल आँखों से हुए, जभी राम गुणवान् ।
इष्ट स्थान को वे चले, करते तस गुणगान ।।३०।।
*नौका नाविक निपुण चलाई, नीर नील में बहुत बढ़ाई ।
पतवार खोल कर चप्पू लगाते, चपलावत् वे चतुर चलाते ।।३१।।
वायु-वेग से नावा जाती, लहरों से फिर फिर टकराती ।
चीर काट प्रबल तम धारा, पाया उसने पार किनारा ।।३२।।
नाविक जन को आदर देते, परितोषिक से मन हर लेते ।
तीनों उतर चले वनवासी, भीतर भरे हर्ष की रासी ।।३३।।

* चौपाई।

सोम सौमित्रे! रघुवर बोले, भारी भुज मम भाई भोले ।
अजन वनों में हम अनजाने, जानों आज गए हैं माने ।।३४।।
सावधान समुचित है होना, देख चलो वन झुर्मट कोना ।
भीत कदापि न होवे सीता, दुःख न देखे कभी विनीता ।।३५।।
अग्र आप मध्य सीया राणी, पीछे मैं चलूँ धनुः-पाणी ।
ऐसे विषम चलो सब राहें, अवलोकन कर दायें बायें ।।३६।।
मात पिता की कहते कथाएँ, भारी विषम भूप व्यथाएँ ।
निबिड़ घना वन गहरी छाया, सायं समय वहीं पर आया ।।३७।।
सायं सन्ध्या सब जप के ही, कर सब साधन वन तप के ही ।
वन्य पदार्थ भून पकाये, तीनों ने मिल भोग लगाये ।।३८।।
वार्ता करते मन बहलाते, ग्रह गण गिनते गति दिखाते ।
वट सुविशाल वृक्ष के नीचे, सोये वे तब आंखें मीचे ।।३६।।
ऐसे निर्भय थे वे सोते, सिंह गुहा में जैसे होते ।
गिरी शिखर सम कम्प विहीना, थे सब शान्त सर्वथा लीना ।।४०।।
प्रात जगे वे सुख से ऐसे, सूर्योदय हो नभ में जैसे ।
सब निपट शुचि जल में नहाये, नित्य कर्म में सर्व रमाये ।।४१।।
अग्रसर वे हुए नव योगी, सुन्दर सबल सुडौल अरोगी ।
देख पन्थ नव तर वनमाला, भव्य विभूति भवन विशाला ।।४२।।
कर निर्देश उसे तो बताते, आपस में बहु हर्ष बढ़ाते ।
पथ चलते जब सायं आई, संगम पर आये सुखदाई ।।४३।।
चढ़ता ऊपर वलयाकारी, धूम्र देख बहुत नभचारी ।
सुरक्षित देख भूमि शुचि सारी, फिरते हरिण बहु तृण-हारी ।।४४।।
बोले राघव, मम लघु भ्राता, होम-धुआं है दृष्टि आता ।
भरद्वाज मुनि रहता वहाँ है, दीख रहा वह धुआँ जहां है ।।४५।।

ऐसी बातों बीच पधारे, जहां थे भरद्वाज मुनि भारे ।
नमस्कार कर राघव बोले, विनय सहित वाक्य अनमोले ।।४६।।
दशरथ-सुत हम हैं दो भाई, पत्नी सीता मम संग आई ।
किया गया मैं हूँ वनवासी, फिरते हैं हम रहित उदासी ।।४७।।
विकट वनों के बने विहारी, हम विचरेंगे सुव्रत धारी ।
आश्रम बीच स्थान बतायें, जहां टिकें हम रात बितायें ।।४८।।
स्वागत कर तब मुनि ने भारा, अर्चा कर उन्हें दिया उतारा ।
बोले वचन सुधा बरसाते, स्नेह सदयता वे सरसाते ।।४६।।
राघव! सब है मैं ने जाना, राज-भोग तज वन में आना ।
मातृ भ्रातृ-प्रेम तुम्हारा, पितृ-कथन भी करना सारा ।।५०।।
सोम! शान्त यह बहुत वनी है, छाया शीतल अधिक घनी है ।
कन्द मूल फल फूल घनेरे, वन्य भोजन यहां बहुतेरे ।।५१।।
हैं सब भोजन स्वादु रसीले, मिलते सदा यहां बिन हीले ।
रहो यहां ही सब सुख पाओ, वन बसने के वर्ष बिताओ ।।५२।।
रहते वन के एक किनारे, किंचित् कष्ट न होगा प्यारे ।
परस्पर हम मिलते रहेंगे, सार मर्म के वचन कहेंगे ।।५३।।
कहा राम ने, मुनिवर ज्ञानी, दया आपकी है वरदानी ।
पास देश है अवध हमारा, जन-गमनागम जाय न टारा ।।५४।।
विघ्न बहुल बसना हो मेरा, बाधा बहुल बने वन तेरा ।
इस कारण वह स्थान बताना, जहाँ रहूं मैं बन अनजाना ।।५५।।
मधुर हास सह वचन सुहाने, कहे ऋषि ने शुभ फल लाने ।
दूर कोस दस वन है ऐसा, स्थान शान्त तुम चाहो जैसा ।।५६।।
चित्रकूट पर्वत है नामी, सुन्दर शोभित फल जल धामी ।
वन्य वस्तु मिलतीं रसवाली, वहां पेड़ हैं शोभाशाली ।।५७।।

रहते मुनि बहुत वहाँ त्यागी, जप तप रत तापस बड़भागी ।
गमन रमण भ्रमण सुखकारी, है बसना सुखद श्रमहारी ।।५८।।
स्थान-ज्ञान उनको करवाते, वन भोजन खाये मनभाते ।
आतिथ्य मान मुनि से पाये, वे सोये वन-शय्या सजाये ।।५६।।

पच्चीसवाँ सर्ग

* सुख में सोकर वह जगे, शौच शुद्धि कर स्नान ।
रघुपति मुनिवर को मिले, करने को प्रस्थान ।।१।।
कहा ऋषि ने रघुपते!, गिरी वर चित्रकूट ।
बहुविध उस पर पेड़ हैं, फल हैं मधुर अखूट ।।२।।
कुसुमों से हैं महकते, उसके स्थल उद्यान ।
अति रमणीक तो है वह, पावन कहा महान् ।।३।।
जाइए, भद्र वहाँ पर, बसिए सब दिन रात ।
इष्ट मित्र के मेल से, रहोगे बन अज्ञात ।।४।।
अनुव्रजा करते हुए, बोले मुनि भरद्वाज ।
मैं दिखलाता हूं तुझे, सुपथ हे महाराज! ।।५।।
गंगा यमुना हैं मिलीं, वह है संगम-स्थान ।
उससे ऊपर और जा, करके सब सामान ।।६।।
यमुना करियो पार तब, काष्ठ-उडुप कर ठीक ।
उससे जाना पार तुम, होकर अति निर्भीक ।।७।।
घिरा विविध बहु वृक्ष से, वट है पार विशाल ।
श्यामल सेवित सिद्ध जन, रहता है त्रिकाल ।।८।।

* दोहा।

उसके पश्चात् कोस भर, दूर घना वन नील ।
दीख पड़ेगा तब तुम्हें, जहाँ हैं पशु सुशील ।।९।।
इस पथ से हूँ मैं गया, पर्वत को बहु वार ।
उससे जाओ हो कुशल, स्वस्ति मंगलाचार ।।१०।।
मुनि लौटे स्वस्थान को, कर सभी शिष्टाचार ।
राम सिया तब अनुज ने, किया उसे नमस्कार ।।११।।
जाकर यमुना तीर पर, चुन कर काठ विशेष ।
तरु शाखाओं से उसे, सुदृढ़ बाँध निश्शेष ।।१२।।
तुरन्त तमेड़ तयार कर, लक्ष्मण हर्षित गात ।
बोला सीता आइए, वस्तु सहित मम भ्रात ।।१३।।
भूषण वस्त्र सीता के, आयुध सहित पिटार ।
धर उस पर तीनों चढ़े, करने को नद पार ।।१४।।
चप्पू लगा कर बन्धु दो, महा कुशल बलवान् ।
उस उडुपे को ले उड़े, बलयुत वायु समान ।।१५।।
ऊर्मि-माला देख कर, नद का पाट निहार ।
सिया मनाती मन्नतें, देने बहु उपहार ।।१६।।
बातों में पहुंचे तब, वे जा परले तीर ।
उतर उडुप से चल पड़े, छू कर यमुना नीर ।।१७।।
लांघ बड़े वट वृक्ष को, घुसे घने वन-देश ।
जिसके पुष्प सुगन्धिमय, हरते थकान क्लेश ।।१८।।
पाकर सरिता सलिल शुचि, देख विमल भू-भाग ।
वन्य-वस्तु खाकर टिके, वे श्रम सर्व त्याग ।।१९।।
निशा बिता कर नींद में, उठकर बहुत सबेर ।
सन्ध्या जप कर वे सभी, चले न करके देर ।।२०।।

पथ में बोले राम जी, देखो सीते! साज ।
वनचर पशु हैं दौड़ते, गर्ज रहा वनराज ।।२१।।
कुसुमों का सिंगार सज, शोभे बहुत बसन्त ।
फूल-लदे लता तरु सब, लगते शोभावन्त ।।२२।।
जलकौवा है बोलता, नाच रहा है मोर ।
कोयल कोमल कण्ठ से, कूज रही सब ओर ।।२३।।
जोड़ी सारस हंस की, करती अधिक किलोल ।
वन सारस बहु विचरकर, लेते रस अनमोल ।।२४।।
शुक वक काक उड़े फिरें, तीतर और चकोर ।
नभ में श्येन शिकार में, उड़े वेग से घोर ।।२५।।
तिलिहर उड़ते वेग से, लम्बी बाँध कतार ।
उड़ती कूँजें बोलतीं, एक तार कर डार ।।२६।।
चिड़िया चपला चहकतीं, चट-चट चीं-चीं बोल ।
चोगा चुगने के लिए, रहीं मधुर रस घोल ।।२७।।
गुटगूँ गूँज कपोत गा, रहे सर्व सुख मान ।
पुष्पों पर फिरते भ्रमर, रहे सुरों को तान ।।२८।।
चित्रकूट की भूमि है, बहुत विचित्र विख्यात ।
सफला सजला है शुभा, सहित पत्र नव-जात ।।२६।।
यहीं बसेंगे भो सखे, लखन परम प्रवीण ।
मुनि जन का कर संग शुभ, रहते शान्त अदीन ।।३०।।
करते वार्तालाप यों, तीनों देव समान ।
वाल्मीकि-कुटी पर गये, दिव्य रूप गुणवान् ।।३१।।

*वाल्मीकि-आश्रम में आ के, राघव ने निज सीस झुका के ।
नमस्कार किया उसे ऐसा, सभ्य सुजन करते हैं जैसा ।।३२।।
मुनिवर ने हो हर्षित भारी, उनको पूजा विधि अनुसारी ।
स्वागत करते आसन देते, मुनि थे हर्ष बहुत ही लेते ।।३३।।
कुशल क्षेम होकर तब सारा, दिया ऋषि ने उन्हें उतारा ।
बोले मुनि, श्रीराम तुम्हारे, वृत्त ज्ञात मुझे हैं प्यारे ।।३४।।
बसो यहां जैसे सुख मानो, भूतल यह अपना सब जानो ।
बोले राम, मनोरथ मेरा, है तो यह यहीं करूँ डेरा ।।३५।।
तथास्तु कह कर के निहारा, उसने अपना भाई प्यारा ।
राम कथन से बल्ली गढ़ाई, पर्णकुटी लखन ने बनाई ।।३६।।
खिड़की छप्पर सब थे भाते, द्वार किवाड़ दृढ़ दिखलाते ।
राम ने देख हर्ष मनाया, लक्ष्मण का बल यश गुण गाया ।।३७।।
वास्तु शान्ति विधान बताई, राघव ने वह सर्व कराई ।
स्नान जाप कर होम रचाया, उसमें चरु बलिदान चढ़ाया ।।३८।।
मंगल पद श्री सुख से गाते, विधिपूर्वक सब शकुन मनाते ।
सिया सहित कुटी में पधारे, सानुज वे मुनिगण-रखवारे ।।३६।।
†मिले कहते सभी मुनि जन, यहाँ रघुराज आये हैं ।
वल्कल वस्त्र देह धारे, बने मुनिराज आये हैं ।।४०।।
बलधर वीर बहुत बाँके, विविध वर वाण धनुष लेकर ।
बहु विधि अस्त्र दिव्य दीपें, सज्जित महाराज आये हैं ।।४१।।
रवि सम तेज दिव्य दीखे, सुचारु चाँद सा चेहरा ।
परम दैवी लिये शोभा, सुरों के राज आये हैं ।।४२।।

* चौपाई † विधाता।

दस्युदल-असुर मुनि जन को, नित्य हैं मारते खाते ।
बने उनकी शरण, राजा, सजे सब साज आये हैं ।।४३।।
धर्म के मेघ बन कर वे, नीति आचार वृष्टि से ।
सभ्य करने असुर गण को, ऋषिवर आज आये हैं ।।४४।।
{चलो चल कर करें, दर्शन, यहां रघुपति पधारे हैं ।
धन्य जीवन वनी जन का, सफल जीने हमारे हैं ।।४५।।
परम हैं प्रेम के पुतले, पुण्य के पुञ्ज हैं पूरे ।
पतित-पावन पुरुष पूर्ण, सभी के प्रभु प्यारे हैं ।।४६।।
सच्चे सुशील शुभ सुन्दर, सरस स्नेह के शुचि सागर ।
सजते सतेज सम सूर्य, सभ्य सरदार भारे हैं ।।४७।।
धर्मधर धीरता धारी, धुरा ध्रुव सुधृति की हैं ।
धुरन्धर हैं सुधी मति में, धर्म-अवतार धारे हैं ।।४८।।
मनोमोहक मधुर मूर्ति, महा मोहन महा मीठे ।
मुनि मण्डल मिले गुणी पर, सब ही जाते वारे हैं} ।।४९।।
*चित्रकूट पर बस रघुराई, हर्षित हुए सिया सह भाई ।
माल्यवती में प्रातः नहाते, सन्ध्या साधन कर सुख पाते ।।५०।।
मधुगन्धा मोहक वनमाला, लेते निरख सुहर्ष निराला ।
मुनिजन-संगति में वे जाते, वार्ता कर थे मन बहलाते ।।५१।।
करते भ्रमण सहित सिया के, होते कथन कलाप हिया के ।
भेद भाव सब भूल जिया के, वह हर्षित थी संग पिया के ।।५२।।
निरख सरित सलिला अमला-सी, झल मल जल लीला कमला-सी ।
ऊर्मिमाला चल चपला-सी, जलचर चाल सुचारु कला-सी ।।५३।।
वन तरु वेल लता हरियाली, नव पल्लव कोंपल की लाली ।
कुसुम कुंज कलि अलिदल वाली, पत्रल कोमल डाल सुडाली ।।५४।।

* चौपाई।

पाते मोद मिले मन संगी, देख बनी बहुरंग-बिरंगी ।
कहते राम, सिये! वनराई, सुन्दर सोहे सजी सजाई ।।५५।।
मृदुल घास पात मन मोहे, महा मधुर तरु माला सोहे ।
शैल शिला शोभें शुचि ऐसे, शोभा शाली स्वर्गों जैसे ।।५६।।
चित्रकूट की वर वनराजी, चारु रूप लिये है विराजी ।
सुन्दर सोहे वेणू माला, भूमि बनी है शोभा-शाला ।।५७।।
रजत रंग तरु शोभा देते, अरुण वर्ण हैं मन हर लेते ।
निरखो पंछी चित्रित नाना, मिल-जुल गाते मोहक गाना ।।५८।।
युगल सारंग फिरते त्यों ही, अमर पुर में सुरी सुर ज्यों ही ।
वनचर पशु हैं अधिक सुहाते, मिले परस्पर मोद मनाते ।।५९।।
चित्रकूट शुचि चारु सुहाना, विचित्र रूप मन चित्त लुभाना ।
सुर वन सम है सुन्दर सारा, भारत का सुभाग प्यारा ।।६०।।
शची शक्र ज्यों सुर सदनों में, सिया राम त्यों घने वनों में ।
निरख परख थे मन बहलाते, मुनि संगति में भी वे जाते ।।६१।।
कुटिया आँगन शुचि क्यारे, बनी वाटिका शोभित भारे ।
शाक पात कन्द मूल खेती, विकसित क्यारी कुसुमों सेती ।।६२।।
कदली कुञ्ज घने थे नीले, फल अन्न शुभ भोज्य रसीले ।
चर्वण करते हरिण वनीले, बारासिंगे मोर सजीले ।।६३।।
मुनि बालक जन से कर क्रीड़ा, कभी न पाते वे भय पीड़ा ।
बैठ जुगाली करती गायें, फिरतीं अजावि दायें बायें ।।६४।।
कुटी द्वार लिपे पुते दीखे, स्वच्छ शुचि सुर सदन सरीखे ।
श्रुति श्लोक शुक मैना गाते, स्वागत शब्द से मन हर्षाते ।।६५।।
सिया राम जा मुनि संगों में, विविध विषय वर्णन रंगों में ।
श्रुति ज्ञान के सब अंगों में, तर्क न्याय के बहु व्यंगों में ।।६६।।

मिल जुल सार सरस सरसाते, मुनि-मण्डल मन को मधुराते ।
विनीत भाव भूरि दर्शाते, अनुपम प्रेम सुपूर बहाते ।।६७।।
स्मृति श्रुति के अवतरणों से, सरल मर्ममय उदाहरणों से ।
विषय विवेचन प्रकरणों से, उक्ति युक्ति के आभरणों से ।।६८।।
शब्द सरित् के अवसरणों से, वाणी वर्णन के करणों से ।
कोमल कथन कला विलसाते, राघव थे आनन्द मनाते ।।६९।।
वयोवृद्ध बन राम सनेही, राघव यश गाते गुण गेही ।
युवक तरुण जन बन अनुरागी, हो अनुयायी सब बड़ भागी ।।७०।।
जय जय राम की गूँज गुँजाते, राम राग जन बीच बसाते ।
रहते हो उनके अनुसारी, राम कर्म के सुव्रत धारी ।।७१।।
चित्रकूट की दिशा चारों में, जल थल पर्वत घरबारों में ।
राम नाम धुन जाती गाई, राम गुण गण देते सुनाई ।।७२।।
सिया राम थे सुन्दर ऐसे, सब के प्राण प्रिय हों जैसे ।
मुनि नयन के बने वे तारे, शत शत मुनि मन जाते वारे ।।७३।।
भाई दो सीता सुख देनी, त्रैयी विद्या बने त्रिवेणी ।
जन तारण कारण अवतारी, आये हों वे विग्रह धारी ।।७४।।

छब्बीसवाँ सर्ग

*उधर सूत मतिमान्, अगले दिन सायं समय ।
लिये हुए रथ यान, पहुँचा पुर में विमना ।।१।।
हर्ष उल्लास विहीन, पुर देखा उसने तभी ।
जन सब आतुर दीन, दीखे उसको तब वहाँ ।।२।।

* सोरठा।

आता उसे निहार, सहस्रों जन दौड़े तभी ।
कहाँ कहो है सार, बोले दुःख से पूछते ।।३।।
बोला वह कर जोड़, बलात्कार से ही मुझे ।
दिया राम ने मोड़, मैं दुःख पाता आ गया ।।४।।
राजभवन के लोग, देख राम बिन सूत को ।
करते गहरा सोग, हा हा कहते रो उठे ।।५।।
अष्टम ड्योढ़ी पार, कर भूपति को वह मिला ।
झुक कर कर नमस्कार, समाचार उसने दिया ।।६।।
भूपति बने अवाक्, राम कथा सुनकर तभी ।
रहे लगाये ताक, पर मूर्छा में थे पड़े ।।७।।
कौशल्या दुःख साथ, बोली रोती, दूत यह ।
आया है, हे नाथ, तज कर मेरे राम को ।।८।।
पूछो तो कुछ बात, कैसे हैं वे विचरते ।
मृदु मनोहर गात, महा विषम वन घोर में ।।६।।
कैकेयी तो पास, है नहीं यहाँ देव जी ।
क्यों हो भीत उदास, निर्भय हो सब पूछिए ।।१०।।
ऐसे करती शोक, राणी रोती हुई तब ।
कट कर लता अशोक, गिरे तथा वह गिर गई ।।११।।
उसको पड़ी अचेत, महिला मण्डल देखकर ।
आंसू से भर नेत, अति रोदन करने लगा ।।१२।।
निसर रुदन का नाद, नर-नारी सब नगर में ।
दारुण दुःख विषाद, गूँज गूँज भरने लगा ।।१३।।
धृति अन्त में धार, थाम्भ कलेजा भूप ने ।
कहा कह समाचार, सूत! वे कैसे हैं सब? ।।१४।।

कहिए, कोमल अंग, कंकर कांटों पर चले ।
बन्धु सिया के संग, कैसे करते वास हैं? ।।१५।।
करके नंगे पैर, कांटे नुकीले सह सब ।
रहित द्वेष वा वैर, क्यों कर दिन हैं काटते? ।।१६।।
साग पात वन बेर, कैसे खाते हैं, कहो ।
चल अबेर सबेर, कैसे पथ हैं लांघते? ।।१७।।
कहना आद्योपान्त, उनका कर्म-कलाप सब ।
रहते हैं किस भाँत, अतिशय घन वन घोर में? ।।१८।।
जोड़े दोनों हाथ, सूत हिये को थाम्भ कर ।
धीमे सुर के साथ, समाचार देने लगा ।।१९।।
राघव हे नरराज, लक्ष्मण सीता सहित ही ।
वन में रहे विराज, हर्षित निर्भय सर्वथा ।।२०।।
उनके मनो विचार, विमल शान्त हैं उच्चतर ।
किंचित् नहीं है विकार, उनके मानस देश में ।।२१।।
झुक कर बारम्बार, कहा उन्होंने था मुझे ।
मेरा कह नमस्कार, कुशल पिता को पूछियो ।।२२।।
माताओं को मान, देना मेरी ओर से ।
तीनों मुझे समान, चरण-वन्दना स्थान हैं ।।२३।।
सीता बहुत विनीत, नमस्कार करती तुम्हें ।
सासुओं को सप्रीत, कही उसने सुवन्दना ।।२४।।
लक्ष्मण बलयुत वीर, सेवा करता नित्य है ।
नमस्कार वह धीर, कहता था तुम सर्व को ।।२५।।
आदि अन्त तक सूत, वर्णन करता ही गया ।
अपना सिमर सुपूत, राजा मूर्छा से गिरा ।।२६।।

*कौशल्या तब सुन यह कहानी, नयनों से बरसाती पानी ।
बोली पति को देती पीड़ा, जिस पर थी कटुकाल-कुक्रीड़ा ।।२७।।
भूप विख्यात हो सत्यवादी, न हो कलह कर और विवादी ।
सब गुण गण होते भी स्वामी, पुत्र तजा क्यों जग में नामी ।।२८।।
कैसे तरुणी सीता भामा, सहती है वन दुखड़े वामा ।
मृदु शय्या पर सोने वाली, रहे तृण पर सब रातें काली ।।२६।।
स्वादु रसीले भोजन खाती, षट्रस युत जो भोग लगाती ।
कड़वे कसैले पत्ते भाजी, खा रही है वन में विराजी ।।३०।।
गीत सरस में जो प्रवीणा, सुनती सितार वादन वीणा ।
सिंह-गर्जना सुनकर कैसे, जिये सहेगी दुर्दिन ऐसे ।।३१।।
तू ने तजा क्यों पुत्र प्यारा, जो था मेरा एक सहारा ।
जो वह वर्ष बिता कर पूरे, आवे तदपि न चिन्ता चूरे ।।३२।।
भरत ने जो पद वर्षों भोगा, राघव चित्त न उस पर होगा ।
लेगा वस्तु कैसे पराई, खाये नहीं वह पर की खाई ।।३३।।
जैसे जूठन विप्र न खाते, उच्छिष्ट यज्ञ रचे न जाते ।
बचे पदार्थ की बलि देना, यजन दोष है सिर पर लेना ।।३४।।
त्यों जो भूमि भरत ने भोगी, राम वृत्ति न उस पर होगी ।
पर भुक्त पद वह न लेगा, जूठनवत् सब ही तज देगा ।।३५।।
असुरों से जो जाय न जीता, वह विचरे वन में सह सीता ।
जिसके बल की धाक पड़ी है, उसकी चर्या कैसी कड़ी है ।।३६।।
भूतल भस्म करे जो सारा, वीर धीर कभी नहीं हारा ।
मच्छ बच्चों को खाता ज्यों ही, राम, पिता ने मारा त्यों ही ।।३७।।

* चौपाई।

राणी की सुन दारुण वाणी, राजा की काया थर्राणी ।
लम्बे सांस बहुत वे लेते, अचेत रहे चिर तक न चेते ।।३८।।
चेतनता जब उन में आई, चित्त-शक्ति उनकी चमकाई ।
कर्म किया अपना था जो ही, स्मरण हुआ उन्हें तब सो ही ।।३६।।
बोले वे, देवि! है सचाई, अति दया तुझ में है भलाई ।
ऊँच नीच जग की तू जाने, धर्म कर्म सुकृत पहचाने ।।४०।।
सती सदा पति को सुख देती, वह विपद् में भाग है लेती ।
जो बातें तूने कह डारी, सतियों का यह धर्म न प्यारी ।।४१।।
हाथ जोड़ विनती है मेरी, इसमें समझ, न शोभा तेरी ।
पति-वचन यह सुन सयानी, हो गई तभी पानी-पानी ।।४२।।
पति-अंजलि निज सीस लगाती, पश्चात्ताप से पीड़ा पाती ।
बोली, देव ! क्षमा कर देना, मन में मेरे वचन न लेना ।।४३।।
अन्याय मुझ से हो पाया, जो आपको मैंने सताया ।
देव ! सत्यवादी हो भारे, धर्म-धुरा हो मेरे प्यारे ।।४४।।
शोक ने मेरी मती बिगाड़ी, बुद्धि चेतना समझ उखाड़ी ।
पता न मैं क्या हूँ कह जाती, अस्त व्यस्त बनी अकुलाती ।।४५।।
शोक, धृति विवेक को मारे, बुद्धि सुमति को बहुत बिगाड़े ।
नदी वेगवत् जब बढ़ जावे, धर्म कर्म सब दूर बहावे ।।४६।।
शोक-हता की बहुत बुराई, क्षमा करो मेरे सुखदाई ।
सुत-वियोग सहा न जाता, इससे मस्तक है चकराता ।।४७।।
राणी मति को देख ठिकाने, सुख सन्तोष भूप ने माने ।
ऐसे बातें करते आई, निशा, निराशा साथिन लाई ।।४८।।
रात छठी में भूप वियोगी, हुआ सचेत यथा हो योगी ।
रात्रि बीत रही थी आधी, भूपति तज कर मानस व्याधी ।।४६।।

बोला, मैं हूँ देवि! सुनाता, तुझे कर्म का भेद बताता ।
जैसे कर्म करे जन कोई, वैसे फल पाता है सोई ।।५०।।
जैसा बीज भूमि में बोवे, अंकुर फल वैसा ही होवे ।
जो करनी करता है जैसी, उसकी गति होती है वैसी ।।५१।।
कर्म-फल पर दृष्टि न लाते, जो जन उलटे कर्म कमाते ।
अन्धाधुन्ध वे बन अन्यायी, करें पाप की बहुत कमाई ।।५२।।
फलवेला पछतावें ऐसे, विष-भक्षण कर बालक जैसे ।
आम काट जो ढाक लगावे, पुष्प देख वह बहुत हर्षावे ।।५३।।
फल समय बहुत ही पछतावे, कर मल मल कर ही रह जावे ।
ऐसे हूँ मैं अब पछताता, किये कर्म का कटु फल खाता ।।५४।।
जो बीजी थी मैंने खेती, आज फली जीवन हर लेती ।
किये सर्व आये हैं आगे, अब संस्कार पुराने जागे ।।५५।।

सत्ताईसवाँ सर्ग

* कुमार काल मुझ पर जब, था राणी! भरपूर ।
आधी रात अहेर को, मैं जाता बहु दूर ।।१।।
शुभ विद्या शब्द वेधिनी, सिद्ध बनाने काज ।
वन में जाता रात को, मैं सब सजकर साज ।।२।।
वर्षाकाल था एकदा, जब जल थल थे एक ।
हरिण यूथ चीते बहुत, फिरते सिंह अनेक ।।३।।
वन सर्व थे हरे भरे, बढ़े हुए थे घास ।
नहीं दिवस में दीखते, वन पशु फिरते पास ।।४।।

* चौपाई।

एक रात को मैं तदा, थाम्भ धनुष वर बाण ।
सरयू-तट की वनी में, गया धनुष को तान ।।५।।
गर्जन करते सिंह थे, गूँज रहे नद-तीर ।
दौड़े फिरते जीव थे, नाना चित्र शरीर ।।६।।
वन भैंसे थे भागते, गवय शशक श्रृगाल ।
फण फटकाते फूँकते, बड़े विषैले व्याल ।।७।।
हस्ति रहे थे दौड़ तब, उल्लू रहे थे बोल ।
मीण्डक मोद भरे सब, करते अधिक किलोल ।।८।।
नद तट पर तब था खड़ा, मैं सब ले हथियार ।
सीध बांध कर दबक कर, करने को प्रहार ।।६।।
सुना नाद मैंने तभी, डब डब का उस काल ।
जल में समझा हस्ति मैं, सूँड रहा है डाल ।।१०।।
शब्द सीध पर सर तुरत, मैंने मारा तान ।
हा हा नाद सुना तभी, मैंने अपने कान ।।११।।
मानव वाणी मानकर, मैं खेदित धर ध्यान ।
सुनता था तब वचन ये, किसने मारा वाण ।।१२।।
जल भरते इस काल में, मेरी की क्यों घात ।
हनन तापस निर्वैर का, कहा कर्म उत्पात ।।१३।।
किसका बिगाड़ा है कुछ, कौन किया अपराध ।
जिससे मैं मारा गया, वनी मुनि निरपराध ।।१४।।
दण्ड न देता हो कभी, जो तज वैर विरोध ।
उस मुझ को मारा गया, कर वृथा ही क्रोध ।।१५।।
वल्कल मेरे वस्त्र हैं, चर्म जटा को धार ।
क्या मिलेगा उसको तो, ऐसे मुझको मार ।।१६।।

अपने हनन का शोक न, मुझ को है लवलेश ।
बूढ़े मम माता पिता, सहेंगे अधिक क्लेश ।।१७।।
मुझे मरा वे जानकर, त्यागेंगे निज प्राण ।
एक वार से तीन को, मार गया यह वाण ।।१८।।

*ऐसी सुनकर तापस-बानी, मेरी काया सब कंपानी ।
ऐसा मैं मन में घबराया, हस्त से धनुष वाण गिराया ।।१९।।
पीछे चलकर धीरे-धीरे, देखा मैंने सरयू-तीरे ।
लहू लुहान पड़ा घर्राता, था वह अन्तिम सांस बिताता ।।२०।।
जटा उसकी बिखरी पड़ी थीं, नसें उसकी उखड़ी पड़ी थीं ।
धूल रुधिर से लथपथ भारा, बना हुआ था तस तन सारा ।।२१।।
घड़ा पड़ा था नदी किनारे, तापस ने यह वचन उच्चारे ।
हे राजन्! मैं हूँ वनवासी, शान्त एकान्त स्थान निवासी ।।२२।।
मात-पिता मेरे हैं प्यासे, वन में बहुत समीप यहां से ।
उन्हें जाकर जल था पिलाना, इस लिए हुआ मेरा आना ।।२३।।
वे दोनों हैं नयन विहीने, मुझ पर निर्भर उनके जीने ।
सेवक हूँ मैं उनका प्यारा, रात दिवस का सच्चा सहारा ।।२४।।
बाट देखते होंगे मेरी, दुःखित होंगे होते देरी ।
उनको तो यह ज्ञात नहीं है, उनका सुत क्यों पड़ा यहीं है ।।२५।।
हाय! हैं असमर्थ वे ऐसे, जानें तो भी आवें कैसे ।
मुझे मार तू ने वे मारे, नयन शक्ति बल हीन बिचारे ।।२६।।
मेरा मरना सुनकर दो ही, व्याकुल तड़प मरेंगे सो ही ।
देखो यह पगडंडी जाती, कुटिया तक जावे बल खाती ।।२७।।

* चौपाई।

यह घड़ा भरा ले जाना, पहले पानी उन्हें पिलाना ।
पीछे भेद सर्व बतलाना, अपना दोष क्षमा करवाना ।।२८।।
पर पहले यह वाण निकालो, बहुत वेदना तन की टालो ।
श्रवण की सुनकर सब बातें, मेरी उछल पड़ी सब आंतें ।।२९।।
कर लाघव से बहुत बचाते, सहज सुगम सी खींच लगाते ।
बल से मैंने वाण निकाला, रक्त बहा तब ज्यों पतनाला ।।३०।।
उसी समय उसने तन त्यागा, आत्मा उसका तन से भागा ।
मैंने तब वह घड़ा उठाया, काँपता मैं कुटी पर आया ।।३१।।
सुने शब्द मैंने तब जाते, वे तापस थे अति बिलखाते ।
सुत सौम्य! क्यों देर लगाई, अति है प्यासी तेरी माई ।।३२।।
मोहमयी है तेरी माता, उससे वियोग सहा न जाता ।
वह पड़ कर गद् गद् है रोती, पुत्र पुत्र कह व्याकुल होती ।।३३।।
कभी पिता ने तुझे चिढ़ाया, कह कर परुष हो जो सताया ।
पर मां है सुत! मीठी तेरी, उससे बोलो तो इक बेरी ।।३४।।
रूठ गये हो कहिए क्यों ही, चुपचाप क्यों आज हो यों ही ।
रूठे नहीं कभी वनवासी, क्रुद्ध बनें न, हों न उदासी ।।३५।।
नयन हीन अति दीन तुम्हारे, जा रहे कहाँ कौन सहारे ।
तुम हो जीवन प्राण हमारे, हम अधीन हैं पुत्र तिहारे ।।३६।।
एक बार तो मुख से बोलो, मात तात कह अमृत घोलो ।
मैंने कलश स्पर्श कराया, उन्होंने कर पीछे हटाया ।।३७।।
बोले वे सुने बिना वानी, हम पीयेंगे नहीं यह पानी ।
उसी काल मैंने दुःखदाई, घटना उन को सर्व सुनाई ।।३८।।
कहा, जानिए मुझे हत्यारा, जिसने तापस को है मारा ।
दया करो निज विरद विचारो, क्षमा करो मुझको अब तारो ।।३९।।

बोले—हमें वहां ले जाओ, मरे पड़े सुत को दिखलाओ ।
यह सुन कर मैं उन को लाया, जहाँ पड़ी थी उसकी काया ।।४०।।
सुत-तन को छू दोनों रोते, वे गिरे अति मूर्च्छित होते ।
बार-बार थे लिपटे जाते, तन को छूते कण्ठ लगाते ।।४१।।
कहते, अभी न बेटा जाना, हम को नहीं अनाथ बनाना ।
तुम बिन कौन कहेगा माता, वन्दन चरण करेगा आता ।।४२।।
कौन उठेगा प्रातः गाता, वेद श्रुति के शब्द सुनाता ।
कौन आयगा चरण दबाने, सरयू पर जावेगा नहलाने ।।४३।।
कन्द मूल कौन हमें देगा, सार हमारी कैसे लेगा ।
कौन पिता कह कर अति प्यारा, गले लगेगा पुत्र हमारा ।।४४।।
सुत, नहीं अब जा तू अकेला, सभी चलेंगे कल की वेला ।
हमें संग यमपुर को जाते, तुम ले चलो प्रेम दिखलाते ।।४५।।
उत्तम गति वह हो सुत तेरी, जो मिले कर तपस्या घनेरी ।
सत्यकर्मी जिस गति को जाते, शूरवीर जिस पद को पाते ।।४६।।
हनन समर में हो पद जो ही, मिले तुझे भी वर पद सो ही ।
होम यजन जो बहुत रचाते, दान पुण्य के कर्म कमाते ।।४७।।
एक पत्नीव्रती गति जैसी, पावे, तुझे मिले भी वैसी ।
देव-यान से बेटा जाना, काट कर्म का ताना बाना ।।४८।।
दुखिया ऐसे व्याकुल होते, पीड़ित बहुत बिलखते रोते ।
बहुत वचन वे कहते ऐसे, प्राण रहित हुए उसी जैसे ।।४६।।
उत्तर क्रिया करके सारी, मैंने दुःख पाया अति भारी ।
आज मुझे सिमरन है होता, वह पाप है मुझे डुबोता ।।५०।।
करनी समझो फली पुरानी, मम जीवन की करती हानी ।
सुत-वियोग में जैसे वे दो, मैं भी मरूंगा दुःखित हो तो ।।५१।।

राम-वियोग वेदना भारी, अब तो देवि ! न जाय सहारी ।
प्राण देह से निसर रहे हैं, नाम रूप सब बिसर रहे हैं ।।५२।।
देह-दीपक बुझा है जाता, इन्द्रियों में तेज नहीं आता ।
पैर हुए हैं मेरे सूने, जीवन अंश हुए हैं ऊने ।।५३।।
डूब रही है मेरी नाड़ी, दिल ने अपनी चाल बिगाड़ी ।
अचेतन काया हुई जाती, ठण्डी सर्व हुई मम छाती ।।५४।।
साँस उखड़ कर निकला चाहे, दीखें मुझको अगली राहें ।
हाय राम प्यारे सुत मेरे, अब कब होंगे दर्शन तेरे ।।५५।।
धन्य वे ही जो जन जियेंगे, राघव-दर्शन सुधा पियेंगे ।
करके सुकृत कर्म कमाई, राम सखा होंगे सुखदाई ।।५६।।
मैं तो जा रहा हूँ अभागी, पावन परम पुत्र का त्यागी ।
भूप ने अन्त राम पुकारे, तन-त्याग वे स्वर्ग सिधारे ।।५७।।

अठाईसवां सर्ग

* प्राणपक्षी जब भूप के, तन पिंजर को त्याग ।
सुर पद को सीधे गये, सुत-वियोग में भाग ।।१।।
कौशल्या सुमित्रा ने तब, छूकर भूप शरीर ।
देखा जीवन रहित वह, शीतल ज्यों हिम-नीर ।।२।।
हा हा कर वे रो उठीं, ऊँचे सुर के साथ ।
कहतीं देव कहां गए, हम को छोड़ अनाथ ।।३।।
सुन कर दोनों का तभी, होता बहुत विलाप ।
राज-भवन में उस समय, गया रुदन वह व्याप ।।४।।

* दोहा।

नर-नारी सब भवन के, करते आर्त-नाद ।
शोकाकुल था दीखता, मन्दिर सहित विषाद ।।५।।
वर्षा ऋतु में ज्यों गिरी, झरें नीर समतार ।
त्यों बहते जन-नयन थे, अनवरत एक सार ।।६।।
सूर्योदय होते समय, पुर जनपद सब स्थान ।
विस्तृत हुआ वृत्त वह, विद्युत् वेग समान ।।७।।
शोक सर्व में छा गया, सब जन हुए उदास ।
सूने बने पुर-घर सब, ऊँचे राज निवास ।।८।।
हुई शोक की घोषणा, दश दिश सब ही देश ।
गाढ़ अन्धेरा था तब, छा रहा सहित क्लेश ।।६।।
कुमार कोई था नहीं, वहाँ पास उस काल ।
उत्तर क्रिया जो करे, ले राज्य सम्भाल ।।१०।।
इससे चिन्तित बहुत हो, सचिव संघ हो एक ।
राज-काज में लग गया, तन्मय सहित विवेक ।।११।।
राजा का शव तेल में, रखा गया विधि संग ।
जिससे वह बिगड़े नहीं, तजे न अपना रंग ।।१२।।
मंत्रि-मण्डल निपुण ने, सोच विचार विधान ।
राज-गुरु वशिष्ठ को, सौंपा पद प्रधान ।।१३।।
राज-काज चलते सभी, नीति नियम अनुसार ।
भरत को लाने का तब, होने लगा विचार ।।१४।।
सिद्धार्थ आदि सचिव को, बोले गुरुवर आप ।
जाओ लाओ भरत को, अति शीघ्र चुपचाप ।।१५।।
सज्जित सुदृढ़ अति भले, अश्व बहु वेगवान ।
अस्त्र शस्त्र सब संग लो, पथ का सब सामान ।।१६।।

सचिव पुरोहित ओर से, पूछ कुशल सब क्षेम ।
भेद न देना कुछ उसे, पूरा रखकर नेम ।।१७।।
देना मेरी ओर से, उसको यह सन्देश ।
आओ शीघ्र हो यथा, समझो यह आदेश ।।१८।।
यहाँ आवश्यक है अति, बहुत बड़ा ही काम ।
आओ तुरन्त इसलिए, तुम तज सभी विश्राम ।।१६।।
* करके सम्मति सचिव, सभी निज घर में आकर ।
लिये पाथेय संग, शस्त्र ले अश्व सजा कर ।।
लेकर धन का कोश, सैनिक वीर मंगवाकर ।
चले वेग के साथ, वायुवत् वेग बढ़ाकर ।।२०।।
अपर ताल शुभ देश, लांघते हुए अग्रसर ।
नदी मालिनी लांघ, देश सब सुन्दर वरतर ।।
हस्तिनापुर-सुनिकट, गये गंगा को वे तर ।
जनपद शुभ पांचाल, देखते बढ़े सरित सर ।।२१।।
कुरु जांगल को लांघ, वे बढ़ते जा रहे थे ।
इक्षुमति हुए पार, वे वेग बढ़ा रहे थे ।।
हुए विपाशा पार, पश्चिम को आ रहे थे ।
घुड़सवार गुणवान्, सदश्व दौड़ा रहे थे ।।२२।।
शाल्मली नद लांघ, देखते जनपद भारे ।
कैकेय राज सुदेश, बीच वे सचिव पधारे ।।
नगर गिरि ब्रज नाम, शोभता जैसे तारे ।
रात को उसमें जा, उन्होंने लिये उतारे ।।२३।।

* रोला।

जिस रात्रि को दूत, पुर में पहुँच गये थे ।
उसी रात को भरत, कुस्वप्ने देख रहे थे ।।
पितृ-रूप को निरख, वे चिन्तित सो रहे थे ।
स्वप्न बीच कुमार, अति दुखिया हो रहे थे ।।२४।।
मलिन रूप में भूप, उसने तब तो निहारा ।
तेल में लत पत था, जिसका देह भी सारा ।।
रक्त चन्दन विलिप्त, वह हो रहा था भारा ।
रहा तेल में डूब, बिना तब और सहारा ।।२५।।
इत्यादिक सभी देख, अति उसने दुःख पाया ।
प्रातः सभा में जा, सखा को सर्व सुनाया ।।
सचिव संघ उस काल, सभा में था ही आया ।
राजा को कर विनय, उन्होंने बहुत बढ़ाया ।।२६।।
भरत को आदर दे, कुशल के शब्द उच्चारे ।
भरत ने पूछा, क्या, कुशल हैं पिता हमारे ।।
योग क्षेम से कहो, हैं तो रघुराज प्यारे ।
लक्ष्मण भ्राता मात, रहते क्या सुख विस्तारे ।।२७।।
दोनों कर को बांध, उन्होंने कहा तभी ही ।
आपका मुख-सुवर्ण, कह रहा कुशल सभी ही ।।
सुनिए यह सन्देश, हमें गुरु दिया जभी ही ।
उनके वचन हैं ये, आओ तुरन्त अभी ही ।।२८।।
है आवश्यक काम, इस से शीघ्र आइए ।
यथासम्भव न आप, पथ में देर लगाइए ।।
जैसे होवे यहाँ, तुरन्त ही पहुँच जाइए ।
यह सन्देश निर्देश, पाते ही उठ धाइए ।।२९।।

सुन कर सब सन्देश, भरत नाना पै आए ।
बहुत विनय के साथ, मस्तक उसने नवाये ।।
कहा आऊँगा फिर, सुअवसर उत्तम पाये ।
अब दो अनुमति देव!, रहा गुरुदेव बुलाये ।।३०।।
उसने मस्तक सूंघ, भरत को कण्ठ लगाकर ।
कहा जाओ सौम्य!, मिलो गुरुजन को जाकर ।।
दशरथ को कह कुशल, राम को प्रेम दिखाकर ।
मातृ-गण को पूछ, यहाँ का कुशल बताकर ।।३१।।
करना अपने काम, आना फिर भी समय पर ।
वहां से उठकर वह, गया निज नाना के घर ।।
मिले उसे उपहार, शाल कम्बल बहु वरतर ।
भूषण हाथी अश्व, श्वान भी सुन्दर शुचिवर ।।३२।।
होकर विदा विनीत, निकल वह अन्तःपुर से ।
मित्र सुजन को मिला, लगाकर अपने उर से ।।
लिए शत्रुघ्न संग, सज कर वस्तु प्रचुर से ।
चला इन्द्र ज्यों जाये, निकलता समूह सुर से ।।३३।।
चला वह निज पुर को, लिये बहु सज्जित सेना ।
हुआ सुदामा पार, फिर नद ह्रादिनी बहना ।।
उतरा शतद्रु नदी, तजकर बीच में रहना ।
उतरा सरस्वती सरित्, काट पथ बांयां दाहिना ।।३४।।
यमुना गंगा पार, वह करता आ रहा था ।
अन्य नदी नद लाँघ, अति दौड़ा जा रहा था ।
वन पर्वत सम भाग, लाँघ सभी धा रहा था ।।
अवध पुरी पर लक्ष, वह एक जमा रहा था ।।३५।।

ऐसे पथ सब लांघ, अयोध्या देख दूर से ।
बोला, सारथे! कह, नगर क्यों हीन शूर से? ।।
शोभते बहु उद्यान, नष्ट हुए किस क्रूर से? ।
उछल पछल क्यों आज, न युवक जन जल-पूर से? ।।३६।।
फिरते यान न आज, बाहर बहु झनझनाते ।
रथ झालर के साथ, आज नहीं चमचमाते ।।
वेगवान बहु अश्व, मिलें नहीं हिनहिनाते ।
हाथी मिलते नहीं, बाहर झूमते जाते ।।३७।।
सज कर सब सिंगार, फिरती रहती नारियाँ ।
वेश विभूषा साथ, हों ज्यों केसर क्यारियाँ ।।
सज धज सजे अपार, फिरें पति संग प्यारियाँ ।
कहो सारथे! आज, किसने सभी निवारियाँ? ।।३८।।
सुन्दर सजे सुडौल, न फिरते युवक निराले ।
कोमल कुँचित केश, काले सज घुँघराले ।।
सिर पर धारे मुकुट, कान में कुण्डल डाले ।
शूरवीर अति धीर, फिरें न अयोध्या वाले ।।३६।।
धनुष बाण को थाम्भ, न दीखें योद्धे जाते ।
खड्ग बांध सज शस्त्र, फिरें न अश्व दौड़ाते ।।
चलते सैनिक संघ, मिलें न भूमि कँपाते ।
बाँकी मूँछ कमान, न ताने कहीं दिखाते ।।४०।।
सूने सभी उद्यान, कहिए किसने बनाए? ।
पुष्प वाटिका बाग, किसने उजाड़ दिखाए? ।।
सब पथ मार्ग राज, किसने तोड़ मिटाये? ।
राग रंग सुर गीत, कैसे किसने उठाये? ।।४१।।

किसने शोभा नष्ट, कर दी मुझे बताइए ।
क्यों बना यह दृश्य, कह कर सब समझाइए ।।
विधवावत् है पुरी, क्यों यह भेद दिखाइए ।
बाग बने श्मशान, हैं क्यों यह बतलाइए ।।४२।।
करता बहु विषाद, पुर में लाया भरत रथ ।
उसने देखे सभी, सूने पण-पथ महा पथ ।।
दुःख क्लेश तब शोक, गया मन उसके को मथ ।
बहुत पूछा तब भी, किया न किसी ने तो अथ ।।४३।।
अधोमुख चलता वह, गया तब राजमहल में ।
सुन्न सान था सर्व, कभी जो चहल पहल में ।।
हर्ष हीन थे दीन, जो जन रहते टहल में ।
उसका बिगड़ा चित्त, डूबा दिल बहु दहल में ।।४४।।
मात महल में नहीं, उसने भूप को पाया ।
हो चिन्ता में चूर, चित्त उसका घबराया ।।
अस्त व्यस्त सभी देख, कलेजा मुख को आया ।
मां ने पहले नहीं, उसे कुछ भेद बताया ।।४५।।
कहा कैकेयी ने, कुशल हैं तेरे नाना ।
मात भ्रात मम तात, कैसे हैं यह बताना ।।
बोला वह, हे जननि, सुख है सब में समाना ।
अश्व हस्ति धन रत्न, सभी ने पीछे आना ।।४६।।
सात दिवस में दौड़, बिना विश्राम लिये ही ।
आया हूँ मैं मात, रात दिन एक किये ही ।।
खान पान पर ध्यान, कभी न कुछ भी दिये ही ।
सम विषम स्थल लाँघ, आया हूँ जी जिये ही ।।४७।।

मुझे कहो तो मात!, सूना क्यों यह सुघर है? ।
सब शोभा का धाम, भूप पिता कहां पर है ।।
नृप न दीखे यहाँ, मुझे पहला अवसर है ।
करूँ दर्शन मैं जा, जहाँ वह उत्तम नर है ।।४८।।

उनतीसवाँ सर्ग

*लोभ मोह की खान, बोली वह सुत को वचन ।
भूप-प्राण अवसान, जानो सुत है हो गया ।।१।।
सुन कर उनका काल, भरत बहुत व्याकुल हुआ ।
सका न वह संभाल, रोते अपने आपको ।।२।।
मुख पर कपड़ा डाल, रोता वह भू पर गिरा ।
हो सचेत तत्काल, उसने पूछा फिर उसे ।।३।।
क्या हुआ उन्हें रोग, जननी कहो विस्तार से ।
राघव करते सोग, होंगे अब किस स्थान पर ।।४।।
बड़ा बन्धु मम भ्रात, पूज्य पिता सम है वह ।
कर उसे प्रणिपात, रोऊँ मिल उस के गले ।।५।।
बोली सोच विचार, भरत को बातें वह सब ।
वन में वल्कल धार, लक्ष्मण सीता राम हैं ।।६।।
हुआ बहुत वह भीत, वन बसना सुन राम का ।
कर्म किया विपरीत, उसने है क्या यह कहो ।।७।।
लिया विप्र-धन छीन, क्या जन निरपराधी को ।
किया प्राण से हीन, वा पर नारी है लखी ।।८।।

* सोरठा।

इनमें से वह दोष, कहिए उसने जो किया ।
राम निर्मल निर्दोष, भेजा वन में क्यों गया ।।६।।
राजवंश के पूत, यह कुकर्म करते नहीं ।
सूर्य-वंश सुपूत, कुल-कलंकित नहीं करें ।।१०।।
बोली वह, हे तात!, राम ने कुछ अपराध न ।
किया न कोई उत्पात, सुन कारण वनवास का ।।११।।
उसने कथा निश्शेष, कह उसको अभिषेक की ।
वर कर कोप विशेष, जैसे मांगे कह दिया ।।१२।।
लखन सिया सह राम, वन को जाते देख कर ।
भूपति सब पल याम, दुर्बल होते ही गये ।।१३।।
वे करते अति शोक, राम-चन्द्र पुकारते ।
अन्त गये परलोक, अब सब तेरा राज है ।।१४।।
करिए शासन आप, निष्कंटक बना सर्वथा ।
बिना राम वा बाप, तू तो राजा है सही ।।१५।।
पितृ-देह कर दाह, मिलकर ही सब सचिव से ।
करे न कोई डाह, ऐसे शासन कीजिए ।।१६।।
*सुन सब वचन अति दुःखदाई, भरत की मति बुद्धि चकराई ।
सिर पग तक वह काँपा ऐसे, पीपल पत्र पवन से जैसे ।।१७।।
बोला वह अति पीड़ा पाता, तू ने पाप किया है माता ।
राजवंश की रीति बिगाड़ी, राज-धर्म की नींव उखाड़ी ।।१८।।
रीति सनातन यह चल आई, पावे पद ज्येष्ठ जो भाई ।
इस पर क्षत्रिय सर्व हठीले, रहते कभी न होते ढीले ।।१६।।

* चौपाई।

रामासन पर पैर टिकाना, पाप-कर्म है मैंने माना ।
जब तक है यह जीवन मेरा, पूरा हो न मनोरथ तेरा ।।२०।।
राजा पद मुझे नहीं भाता, पीछे लाऊँगा मैं भ्राता ।
उसे राजसिंहासन देके, सदा रहूँगा सब सुख लेके ।।२१।।
उत्तम कुल की हो कर नारी, तूने पाप किये हैं भारी ।
ज्ञानवती तू थी कहलाती, फिर बिगड़ी क्यों समझ न आती ।।२२।।
ऐसे कोस कोप कर रोता, फिर फिर था अति व्याकुल होता ।
मन को थाम्भ चला बिलखाता, देखने को कौशल्या माता ।।२३।।
कौशल्या सुन भरत को रोते, उसके अंग शिथिल थे होते ।
सुमित्रा को वह यह तब बोली, रो रहा है भरत री भोली ।।२४।।
दोनों मिलने को उठ धाईं, मार्ग में उसको मिल पाईं ।
भरत शत्रुघ्न दोनों भाई, देख अति दीन दुखिया माई ।।२५।।
दौड़ कर लिपटे उसे ऐसे, गाये को नव बछड़ा जैसे ।
आठों नयन थे छमछमाते, बादल बन बहु जल बरसाते ।।२६।।
उखड़े मन से बोली राणी, मर्म-वेधिनी चुभती वाणी ।
हुआ मनोरथ तेरा पूरा, है कैकेयी कैसी क्रूरा ।।२७।।
मेरे सुत को कर वनवासी, लाई घर में दुःख की रासी ।
जो चाहे वह भी कर लेवे, हम को भी वन बसना देवे ।।२८।।
मुझ को वहां तू पहुँचा दे, मुझ को मेरा राम मिला दे ।
देती बहु उलाहने ताने, तीखे तप्त विष-सर समाने ।।२६।।
विद्ध हरिण गिरता है ज्यों ही, मां चरण पर वह गिरा त्यों ही ।
बोला वह तब बहु बिलखाता, शपथें खाता चरण दबाता ।।३०।।
मैं हूँ माता! निपट अजाना, मुझे पता नहीं अणु समाना ।
इस में हूँ मैं मान अदोषी, बन्धु-प्रेमी विनीत अरोषी ।।३१।।

जैसा हूँ तुमने है जाना, मुझ को भक्त सदा है माना ।
सत्यवादी सदा सुखकारी, विद्या-निपुण गुणी व्रतधारी ।।३२।।
जिस के मत से बना वनचारी, भूल जावे वह विद्या सारी ।
पापी जन का दास कहावे, बुद्धि भली वह कभी न पावे ।।३३।।
वह बने उस पाप का भागी, जो पाता है भृत्य-त्यागी ।
लेकर काम न वेतन देवे, तथा पाप को वह जन लेवे ।।३४।।
उसी पाप का हो वह भोगी, जिसने दी वन की मति होगी ।
दोनों सन्ध्या में जो सोता, उसे पाप है जो भी होता ।।३५।।
पावे पाप वही जन वैसा, दिया जिसने मत वनी जैसा ।
जिसने भ्राता वनी बनाया, उसको मिले न सुख मन भाया ।।३६।।
जिन्होंने षड्यंत्र रचाया, राघव को वन में पैठाया ।
पावें पाप बहुत वे भारा, जो पाता गो-बाल-हत्यारा ।।३७।।
लगे पाप वृद्ध को मारे, होता जो अबला संहारे ।
पाप वही उसके सिर आये, जिसने रघुपति वन भिजवाये ।।३८।।
न्याय से करे शासन जो ही, उसे मार कर पातक हो ही ।
लेवे कर प्रजा न बचाये, डाकू दुर्भिक्ष नहीं मिटाये ।।३९।।
लगे पाप भी जो उसको ही, पाप वही पावे जन सो ही ।
जिसकी सम्मति से रघुराई, वन में गये सिया सह भाई ।।४०।।
आग लगाये खेत जलाये, जन को विष देवे दिलवाए ।
पानी दूषित करे कराये, ऐसा अधम पाप जो पाये ।।४१।।
जो पाप पाता दुराचारी, चोर दस्यु पर सम्पत्-हारी ।
पाप वही पावे वही भारी, जिसने वन भेजे सुखकारी ।।४२।।
जाति मित्र का जो जन द्रोही, धर्म विरोधी जो जन हो ही ।
सती पत्नी को जो नर त्यागे, उस अधम को पाप जो लागे ।।४३।।

पाप वही ले राम विरोधी, धर्म-हीन हो जन वह क्रोधी ।
उच्च गति को वह न जावे, अधम नीच वह जन कहलावे ।।४४।।
ऐसे उसे विश्वास दिलाते, भरत अचेत हुए थे जाते ।
भूमि पर तब गिरा वह त्यों ही, महल कलश भूचल से ज्यों ही ।।४५।।
बोली वह, सुत! शपथें लेते, दारुण दुःख मुझे हो देते ।
बेटा, तुम सौगन्ध न खाओ, रोकर मुझको नहीं सताओ ।।४६।।
निश्चय है मन शुद्ध तुम्हारा, पुत्र! तू है राम को प्यारा ।
राम वियोग में बन मतवाली, बात न जानूँ क्या कह डाली ।।४७।।
मेरे कथन पर मन न लाना, पहले कहा जो वह भुलाना ।
उसे गोद ले कण्ठ लगाती, वह थी उसको शान्त बनाती ।।४८।।
वेदना सहित अति दुःखदाई, भरत ने रात्रि वह बिताई ।
प्रात समय वशिष्ठ जी बोले, स्वस्थ राज-पुत्र तू हो ले ।।४९।।
उत्तर कर्म करो सब पूरे, शान्त धीर वीर बनो शूरे ।
दाह-क्रिया की विधि रचाओ, रथी शव के लिये बनवाओ ।।५०।।
भरत समीप पुरोहित आये, सब उन्होंने विधान दिखाये ।
वस्त्र पुष्प से शिविका ऐसी, सजी लगी सूर्य रथ जैसी ।।५१।।
शिविका लिए सचिव सुत जाते, जन थे उनके पीछे आते ।
यों उसे श्मशान में लाये, जनता ने बहु कुसुम चढ़ाये ।।५२।।
चन्दन से सब चिता चिनाई, उस पर वह शव गई लिटाई ।
अगर आदिक सुगन्धि चढ़ाते, पुरोहित सब साम थे गाते ।।५३।।
परिक्रमा हो दुखिया लेतीं, राणियाँ थीं दिखाई देतीं ।
दाह कर्म कर विधि अनुसारी, पुर को लौटी जनता सारी ।।५४।।
दिन दस तक सब शोक मनाते, रहे भरत जी कर्म निभाते ।
थे पीड़ित चिन्तित वे ऐसे, पवन बिना प्राणी हों जैसे ।।५५।।

तीसवां सर्ग

*पितृ-शोक में लीन थे, दोनों राजकुमार ।
उनको मिल गुरु ने कहा, करिये तत्त्व विचार ।।१।।
काल बहुत बलवान् है, इसका टले न वार ।
इसके सम्मुख सर्व जन, गये आज तक हार ।।२।।
भूख प्यास मरना जरा, और मोह अति शोक ।
सम हैं प्राणी जगत् में, दश दिश तीनों लोक ।।३।।
अवश्यंभावी नियम है, सब में रहे समान ।
तत्त्व-बुद्धि से मनन कर, उठो कुमार सुजान ।।४।।
शोक-स्थान से वे उठे, मिल तब दोनों भ्रात ।
राघव के वनवास की, करते थे बहु बात ।।५।।
शत्रुघ्न ने कहा, भरत!, लक्ष्मण अति बलवान ।
वह तो कैसे सह सका, बहुत बुरा अपमान ।।६।।
भूप-कर्म था मोहवश, अत्याचार अति घोर ।
निग्रह करता भूप को, वह लख कर्म कठोर ।।७।।
ऐसा करना था तभी, धर्म न्याय अनुसार ।
विस्मय है उसने नहीं, किया यही उपचार ।।८।।
ऐसी बातों मध्य में, खड़ी द्वार के बीच ।
भरत देख कर मन्थरा, बोले वह है नीच ।।६।।
उस कुटिला के कर्म से, लगी भवन को आग ।
उस ने सूर्य-वंश को, बुरा लगाया दाग ।।१०।।

* दोहा।

शत्रुघ्न ने तब तुरन्त, ली वह पकड़ घसीट ।
बहुत कोपवश वह उसे, रहा तभी था पीट ।।११।।
मारो न, कहा भरत ने, यह तज देगी प्राण ।
राघव उसका हनन सुन, होंगे रुष्ट महान् ।।१२।।
बुद्धि जिसकी जैसी हो, वैसी उस से बात ।
होती है इस लोक में, है यह नियम विख्यात ।।१३।।
हनन योग्य माता मम, है पर राम विनीत ।
कुब्जा के सुन हनन को, होगा अति विपरीत ।।१४।।
मेरे तेरे साथ तो, बात चीत तक छोड़ ।
निश्चय मिलना त्याग कर, देगा नाता तोड़ ।।१५।।
स्त्री-हनन नहीं उचित है, हो जाइए उपराम ।
मेरा तेरा कर्म है, हर्षित रखना राम ।।१६।।
शत्रुघ्न ने भी तुरन्त, छोड़ी वह तत्काल ।
दिन चौदहवें को लगी, राज-सभा सुविशाल ।।१७।।
अधिकारी जन ने तभी, कहा भरत को आप ।
राज-काज लो हाथ में, बनो भूपति अपाप ।।१८।।
राघव के अभिषेक की, सभी वस्तु के साथ ।
अभिषिक्त हो सौम्य जी, बनो देश के नाथ ।।१९।।
अभिसिंचन उपकरण को, परिक्रमा दे दान ।
बोला वाक्य भरत यह, सबको देता मान ।।२०।।
†है हम सब का राघव राजा, वह तो है वन बीच विराजा ।
मैं उनका हूँ आज्ञाकारी, बनूं नहीं तस पद अपहारी ।।२१।।

† चौपाई।

यदि पद देता हमें विधाता, अग्र जन्म मुझे दिया जाता ।
पर-पदवी को छीन दबाना, नीच कर्म सब जन ने माना ।।२२।।
माता-वाक्य भंग करूँगा, वन में बस मैं वहीं मरूँगा ।
अथवा लाऊँगा रघुराई, बनिये आप सब ही सहाई ।।२३।।
आगे मेरे सेना जावे, विषम मार्ग जो सम बनावे ।
रक्षक लोग चलें संग सो ही, मार्गभेदी बलधर जो ही ।।२४।।
भरत-वचन सुन जन अधिकारी, हर्षित हुए सर्व ही भारी ।
धन्य-धन्य के शब्द उच्चारे, भरत-कथन सबने स्वीकारे ।।२५।।
बोले आंसू हर्ष बहाते, सचिव पुरोहित तस गुण गाते ।
राजवंश की शोभा ऐसी, है तूने दिखलाई जैसी ।।२६।।
ले आदेश चले पथ ज्ञाता, शिल्पी मार्ग वर पुल निर्माता ।
पथ उन्होंने स्वच्छ बनाये, ठहरने के सुस्थान रचाये ।।२७।।
जल आदिक कर संचित पूरा, रक्खा नहीं कोई काम अधूरा ।
सुन प्रबन्ध सर्व सुखदाई, तब भरत ने आज्ञा सुनाई ।।२८।।
वन-यात्रा की करो तयारी, लाओ मेरी अभी सवारी ।
सुन्दरतर रथ सजा सजाया, सुमंत्र सम्मुख लेकर आया ।।२६।।
चतुरंगिणी सेना सुहाती, नदी पूर समा चली जाती ।
नगर जनपद के जन वासी, राम मिलन के बहुत उल्लासी ।।३०।।
जाते थे सज धज कर ऐसे, उत्सव यात्रा को जन जैसे ।
सब साथ थीं भरत की माता, सचिव पुरोहित गण था जाता ।।३१।।
वे तब चलते धीरे धीरे, आ ठहरे गंगा के तीरे ।
श्रृंगबेरपुर का गुह स्वामी, राम-मित्र वीर बड़ा नामी ।।३२।।
सेना देख भरत की आई, शंका उसके चित्त समाई ।
यथा बीज वैसा फल आता, वैसा सुत हो जैसी माता ।।३३।।

जिसकी मां ने देश-निकाला, दिया राम को पीड़ा वाला ।
सैनिक ले अब वह है आया, इसके मन हो वैर समाया ।।३४।।
देख भरत का ऐसा चाला, दीखे मुझे दाल में काला ।
हो न ऐसा वहाँ यह जावे, रघुपति जी को मार मिटावे ।।३५।।
{मित्र वही जो बने सहाई, लग जावे वह वाण दवाई ।
चतुर वही जो चाल न चूके, वे वीर हैं जो दृढ़ जी के ।।३६।।
जो जन पहले करे तयारी, उसने समझो बाजी मारी ।
जिसने गुप्तचर व्यूह सजाये, शत्रु से वह जीता न जाये} ।।३७।।
गुह ने तब सब भील बुलाये, वे शस्त्र सन्नद्ध हो आये ।
बोला वह, तुमने है जाना, राघव है मम सखा पुराना ।।३८।।
सेनासहित भरत का आना, इसमें मैंने भय यह माना ।
गंगा पार करे जो क्रोधी, राम हत्या करे बन विरोधी ।।३६।।
इस कारण गंगा तट सारा, करलो सुरक्षित सर्व किनारा ।
व्यूह रचना तथा हो जावे, पार उतरने भरत न पावे ।।४०।।
नाव पाँच सौ यहाँ हमारी, सेना रहे उन पर तुम्हारी ।
प्रति नाव पर शत शत शूरे, युवक रहें हो सज्जित पूरे ।।४१।।
यदि बैरी बन कर वह जाये, एक नावा न पाने पाये ।
यदि जाता है हो हितकारी, तो देखेंगे सब उस बारी ।।४२।।
कर के वह तथा सावधानी, भेंट सचिव सह निषाद ज्ञानी ।
आया तब जहां था उतारा, पड़ा पड़ाव भरत का भारा ।।४३।।
देख सुमंत्र उसे तब आता, बोला भरत को वह बताता ।
राम-सखा वह है सुखदाता, गुह नाम वन-भेद का ज्ञाता ।।४४।।
उठ कर उसने की अगुआई, दोनों मिले दो कर को मिलाई ।
खान पान सब भोजन देता, बोला उसे वनों का नेता ।।४५।।

स्वागत हो कुंवर जी तेरा, अर्पित है यह जनपद मेरा ।
अपने गृह सम यह स्थल जानो, अपना जन कर मुझको मानो ।।४६।।
रहो यहाँ मम भोजन पाओ, इससे मेरा मान बढ़ाओ ।
लेकर भोजन सब उससे ही, बोले भरत जी अधिक स्नेही ।।४७।।
आदर पाकर भूप तुम्हारा, सब दल हर्षित हुआ हमारा ।
कृपया मुझे वह पथ बतलाना, गंगा-पार हमें है जाना ।।४८।।
बोला देख बड़ा वह डेरा, मेरा मन है चकित घनेरा ।
द्वेष बुद्धि लेकर के क्या ही, जा रहे नहीं हो बल पा ही ।।४६।।
यह सुन भरत बहुत थर्राते, बोले नयन से आंसू बहाते ।
ऐसा कुकाल कभी न आवे, जब मम मन में वैर समावे ।।५०।।
पिता तुल्य है राघव भाई, मैं हूँ उसका बहु अनुयायी ।
जाता हूँ मैं उसे मनाने, नम्र विनय कर पीछे लाने ।।५१।।
सच्ची बात तुम्हें है बताई, करो विश्वास अहो वनराई ।
सुन कर यह वह अधिक हर्षाया, उसका गुण निषाद ने गाया ।।५२।।
सूर्य अस्त हुआ तम छाया, भरत का दिल बहुत घबराया ।
राम-विरह में जलता त्यों ही, सूखा पेड़ आग में ज्यों ही ।।५३।।
राम लक्ष्मण के सुगुण गाते, गुह भरत थे रात्रि बिताते ।
कहते भरत, राम बिन कोई, मुझको प्रिय है जन न सोही ।।५४।।
तीन लोक की सम्पत् सारी, मेरी रघुपति है धनुधारी ।
जीवन रूपी प्राण सहारा, मेरा राम है परम प्यारा ।।५५।।
कहा गुह ने, भरत जी सोना, शान्त अब तो चाहिए होना ।
चुप करो धीर अब बन जाओ, मौन भाव से आंख लगाओ ।।५६।।
बोले भरत, बताओ मोहे, जहां रात राघव थे सोये ।
सोई जहां सती भौजाई, सुख में पली जनक की जाई ।।५७।।

बैठ जहां पहरा था देता, लक्ष्मण वीर दलों का जेता ।
गुह ने वे सब स्थान दिखाये, शय्या के तृण दबे दबाये ।।५८।।
शयन-स्थान जब उसने देखा, उसमें फिरी तब विद्युत् रेखा ।
तड़प उठा वह दुःख का मारा, चीत्कार कर उसने पुकारा ।।५६।।
आओ माता मैं दिखलाऊँ, राम का शयन-स्थान बताऊँ ।
पद्मकमल सम जिसकी काया, कैसे तिनकों पर सो पाया ।।६०।।
वज्र सम, दृढ़ रघुपति प्यारे, उसने तृण चूर कर डारे ।
पास सेज पर सीता राणी, सोई थी दें तृण निशानी ।।६१।।
रेशम की तिनकों को तारें, लिपट रहीं सन्देह निवारें ।
यहां बैठ कर लक्ष्मण भाई, जगते ने सब रात बिताई ।।६२।।
कौन कुपाप किये थे मैंने, जिससे वाण लगे ये पैने ।
बहुत वेदना हूँ मैं पाता, अपने में हूँ मिटता जाता ।।६३।।
दोनों बन्धु बने प्रवासी, तृण पर सोते वन-निवासी ।
है जंजाल जगत का जीना, होकर रहना राम विहीना ।।६४।।
सर्व रात भर रोते धोते, सहित वेदना दुखिया होते ।
रात्रि बीती हुआ सबेरा, उठा भरत का डेरा घेरा ।।६५।।
हुए तयार बजी तब भेरी, हुई चलने में कुछ न देरी ।
उसी समय आकर गुह जी ने, पूछे कुशल प्रेम से भीने ।।६६।।
कहा भरत ने आदर सेती, आव भगत की मेरी ऐती ।
तूने भोजन स्वादु खिलाये, सैनिक सभी तृप्त बनाये ।।६७।।
नावा हमें अभी दिलवाओ, सेना गंगा पार कराओ ।
तथास्तु कह कर वह सियाना, निजजनसेमिलकरविधिनाना ।।६८।।
नाव सभी तभी मंगवाईं, उसने सज्जित सब करवाईं ।
स्वस्ति नामा नावा आई, नाविक जन ने अधिक सजाई ।।६६।।

झण्डे उन पर थे लहराते, घण्ट नाद थे बहु गुँजाते ।
कोमल आसन बिछे सुहाते, थे साधन सब चित्त लुभाते ।।७०।।
बैठे भरत खुली पतवारें, चप्पू चलते काटते धारें ।
जल के यान तथा थे जाते, वायु-यान ज्यों दौड़ लगाते ।।७१।।
सब जन, पहुँच पार किनारे, नाविक ने सुख सहित उतारे ।
भरत से पारितोषिक पाते, फूले तन मल्लाह न समाते ।।७२।।

इकतीसवाँ सर्ग

*संघ सर्व श्री भरत का, करके गंगा पार ।
विषम वनों के बीच से, करता था संचार ।।१।।
हाथी घोड़े खच्चरें, पालकी रथ अनेक ।
पैदल सेना सहित सब, उमड़ा था नद एक ।।२।।
वनचर हस्ति रीछ मृग, सिंह बघेले सूर ।
शशक सेह श्रृगाल बहु, चीते भागे क्रूर ।।३।।
नभतल तक था गूँजता, सेना-नद का नाद ।
भीरु पक्षी थे उड़ रहे, करते नाद विषाद ।।४।।
भरत-वाहिनी-वेग से, फैला वन में त्रास ।
जीव जन्तु भयभीत हो, भागे तज बिल-वास ।।५।।
ऐसे वन को लांघते, गये भरत उस स्थान ।
बसता जहाँ समीप था, मुनि भरद्वाज महान् ।।६।।
सेना ठहरा दूर तब, गिने चुने जन संग ।
भरत गये आश्रम में, मन में लिये उमंग ।।७।।

* दोहा।

हाथ जोड़ कर वन्दना, शिष्ट रीति अनुसार ।
उसको की श्री भरत ने, विनय भाव को धार ।।८।।
पूजा अर्घ्य पाद्य से, सहित बहुत सत्कार ।
मुनि ने कर आतिथ्य सब, शुभ पूछ समाचार ।।६।।
कहा भरत को, हे प्रिय, क्या मन में धर वैर? ।
राघव के विपरीत तुम, चले बढ़ाते पैर ।।१०।।
कहा भरत ने, हे मुने!, मैं हूँ उसका दास ।
पीछे लाने के लिये, जाता हूँ उस पास ।।११।।
मुनि ने तब उसको कहा, मुझे है सब विश्वास ।
पर मुनि जन तव यान से, शंकित हुए उदास ।।१२।।
सुत जो सूर्य वंश के, चलें मर्यादा बीच ।
विनय न्याय को पालते, करते कर्म न नीच ।।१३।।
फिर कहा ऋषि ने उसे, सब सेना सह आप ।
मेरा भोजन मानिये, पा यह मिष्ट मिलाप ।।१४।।
स्वीकार कर भरत ने, डेरा अपना डाल ।
रात्रि निवास वहीं पर, स्थिर किया उस काल ।।१५।।
सर्व संघ ससैन्य तब, आया पा आदेश ।
भरद्वाज सहभोज सर्व, था सरस सुविशेष ।।१६।।
खान पान कर स्वादुतम, मीठे फल उपभोग ।
पूर्ण तृप्ति लाभ कर, मोद-मग्न थे लोग ।।१७।।
उत्तम सजे पलंग दे, शयन-सेज कर दान ।
सोने को सबको दिये, मुनि ने सुन्दर स्थान ।।१८।।
सुख से सोये रात सब, जब हो गई सबेर ।
नित्य कर्म कर भरत जी, मुनि को मिल उस बेर ।।१६।।

बोले दो कर जोड़ कर, हे मुनिवर सुखकार ! ।
तेरे अतिथि-सत्कार का, माना मैं आभार ।।२०।।
कृपा करो दो अनुमति, चले सर्व यह संघ ।
मिले राम को जा वहाँ, नद वन सभी उल्लंघ ।।२१।।
अनुव्रजा कर प्रेम से, हर्षित मुनि भरद्वाज ।
फिरे पहुँचा कर दूर तक, भरत को सहित समाज ।।२२।।
यमुना जल को पार कर, चला भरत का यान ।
चित्रकूट के निकट वह, गया किये प्रस्थान ।।२३।।

*वन की शोभा देख, भरत ने कहा शत्रुघ्न ! ।
कैसा सुन्दर स्थान, रमणीय है यह घन वन ।।
चिकने कोमल पात, कोपलें हैं हरती मन ।
कुसुमित सुन्दर बेल, लचकती सोहे शुचितन ।।२४।।
पत्रित बहुत विशाल, पेड़ ये बहुत घने हैं ।
घनी शाख के साथ, विधि से तम्बू तने हैं ।।
बेलें तरु पर फैल, कुसुमों के घर बने हैं ।
है सुमोद का धाम, हम तो पर अनमने हैं ।।२५।।
मृग रहे हैं दौड़, यथा ही नभ में बादल ।
लम्बी बांध कतार, वह है जाता हस्तिदल ।।
कपि भालू लंगूर, रहे हैं तोड़ फूल फल ।
सज धज ले बहु-रंग, पक्षी करते चहल-पहल ।।२६।।
नदी मन्दाकिनी यह, शोभा देती वनों पर ।
वेणी ज्यों बल साथ, विलसे वनिता तनों पर ।।

* रोला।

फिरते भौंरे मत्त, गूँज कमलों सुमनों पर ।
सुन्दर सब सुदृश्य, दीखते महा मनोहर ।।२७।।
लगे खोजने वहीं, राम की पर्णकुटी को ।
करने को फिर लाभ, सम्पत् सर्व लुटी को ।।
कहा भरत ने तभी, सेना सारी जुटी को ।
कोना कोना खोज, रखना कभी न त्रुटि को ।।२८।।
देख कुण्डलाकार, धूआँ चढ़ता दूर से ।
बोले सैनिक सुजन, आकर कुँवर शूर से ।।
वहाँ चिन्ह हैं देव!, कुटी के अति सुदूर से ।
वह चला उसी काल, बिछुड़ सभी सेना-पूर से ।।२६।।
उधर राम थे आप, वनों में चक्र लगाते ।
कह कर सब के नाम, वस्तु वृक्ष पशु दिखाते ।।
कहते, देखो सिया, बेल वट कैसे भाते ।
जामुन नीम कदम्ब, आंवले बेर सुहाते ।।३०।।
कटहर बाँस ककोल, महुआ इमली यही है ।
अर्जुन तरु कचनार, गुड़हल साखू वही है ।।
बांसा बेंत बबूल, शिंशपा आम सही है ।
अमलतास यह खदिर, इन्द्रयव वह कही है ।।३१।।
सुन्दर लगे अनार, चम्पा फूली पड़ी है ।
शोभें शाल विशाल, वन की शोभा बड़ी है ।।
सिम्बल तूत तमाल, तरु की लम्बी लड़ी है ।
सहित सरस सिंगार, लता वह वहाँ चढ़ी है ।।३२।।
झरने झर-झर झरें, सोत शीतल हैं बहते ।
सर सरोवर सोहें, मत्स-गण उनमें रहते ।।

हरे-भरे सम स्थल, प्रभु की विभूति कहते ।
इन्ही वनों में देवि!, द्वन्द्व ऋषि हैं सहते ।।३३।।
नीली पीली श्वेत, शिला यहां है सुहानी ।
चिकनी चौड़ी अमल, मन को मृदुल लुभानी ।।
स्वच्छ बिछे बिछान, घास-स्थली सुख-दानी ।
भानु-वंश के ऋषि, यहाँ आ रहते ज्ञानी ।।३४।।
सरित् मन्दाकिनी वह, सुवेग से बह रही है ।
जीव जन्तु की राशि, इस में तो रह रही है ।।
जल करता है काट, भूमि घुली ढह रही है ।
है संघर्षण जगत्, रचना सब कह रही है ।।३५।।
सुखी मुझे तू जान, सुख से यहां पर रह कर ।
कितना है यह मोद, तुझे यह सब कुछ कहकर ।।
होते पावन यहां, मुनि जन पाप को दहकर ।
बन जायेंगे सिद्ध, विषम दिन हम भी सहकर ।।३६।।
ऐसे करते रमण, राम सह अनुज सिया के ।
पत्नी पाती सुहर्ष, वचन सुन प्रिय पिया के ।।
सब दिन हरती खेद, ऐसे अपने हिया के ।
सरस स्नेह के साथ, जगते दीवे जिया के ।।३७।।
राम कर के भ्रमण, कुटी पर बैठे आकर ।
चढ़ी धूलि की रेख, अनुज को दूर दिखाकर ।।
बोले वे, हे सोम!, कोई क्या बल सजा कर ।
आता है इस ओर, दौड़ता सीध लगा कर ।।३८।।
हस्ति मृग के यूथ, दौड़े सब जा रहे हैं ।
वनचर जीव अनेक, त्रास सभी पा रहे हैं ।।

इससे सूझे मुझे, सेना-दल आ रहे हैं ।
वा कोई मिल वीर, आखेट जमा रहे हैं ।।३९।।
देखिये तो सुवीर!, इसका कौन है कारण ।
यदि होवे भय स्थान, उसका होवे निवारण ।।
क्यों कोई कर रहा, त्रास, वनचर संहारण ।
होता कलरव नाद, यों तो नहीं साधारण ।।४०।।
अनुमति लेकर अनुज, पुष्पित पेड़ पै चढ़ कर ।
देख भाल कर ठीक, बोला कोप में बढ़कर ।।
अश्व हस्ति रथ यान, सेना शस्त्रों से मढ़ कर ।
आता दीखे भरत, वैर-वश बहुत उमड़ कर ।।४१।।
रथ की कर पहचान, ठीक मैंने है जाना ।
हमें हनन के हेतु, हुआ है उसका आना ।।
मां सदृश हो पूत, सत्य यह सर्व बखाना ।
आज उसे कर हनन, उचित है मार मिटाना ।।४२।।
कुटी में जाय सिया, अग्नि को तुम बुझाइए ।
मुझ को दे आदेश, उसे सब फल चखाइए ।।
उसको अब हन मार, मध्यमा को बताइए ।
अपने किये का फल, कटु तर हम से पाइए ।।४३।।
कहा राम ने, सोम!, काम नहीं कटु क्रोध का ।
कुछ भी करे न भरत, कार्य बन्धु विरोध का ।।
बोलो विकल न बोल, भोले भरा अबोध का ।
क्यों आता है भरत, पुंज प्रेम अनुरोध का ।।४४।।
मिलने पर नव राज, कठिन है उसका आना ।
यदि आया है ठीक, तो है वह बहु सियाना ।।

तेरा मिष्ट मिलाप, मुझे आ सीस नवाना ।
हेतु सिया से मेल, दोष है क्षमा कराना ।।४५।।
नीचे आओ उतर, बैठो मेरे पास में ।
होगा देखो सभी, कार्य मंगल आस में ।।
सीता सुरक्षित रहे, भीतर कुटी निवास में ।
हम काटें यह काल, वार्ता विनोद हास में ।।४६।।
अपने पास बैठा, लक्ष्मण-मन को मोहते ।
बोले राघव वचन, प्रेम से उसे भिगोते ।।
तुझे भरत को त्याग, मुझे तो हर्ष न होते ।
तुम हो मेरे प्राण, सुजीवन जगते सोते ।।४७।।
तुम दोनों के बिना, मिले मुझ को त्रिलोकी ।
सुर-सम्पत् कर लाभ, नहीं मैं बनूँ अशोकी ।।
मुझे भरत के बिना, लगे सब सृष्टि फोकी ।
प्रिय! समझ यह सत्य, प्रीति मम रुके न रोकी ।।४८।।
ये करते यों बात, भरत थे दौड़ लगाते ।
रथ को तज कर दूर, शीघ्र अति पैर उठाते ।।
तरुमाला पर लगी, झण्डियां बहुत दिखाते ।
कहते शत्रुघ्न ये, पन्थ वन-भीतर जाते ।।४६।।
राम बहुत हैं पास, पन्थ हैं चिन्ह उन्हीं के ।
जल फल-पथ-संकेत, रचे हुए लखन मुनि के ।।
राघव हैं गुण धाम, पक्के अति अपनी धुनि के ।
पाऊँगा सन्तोष, चरण छू आज गुणी के ।।५०।।
होकर सचिव समीप, कहा धिक् है मम जूनी ।
राम ज्योति से रहित, देखूँ यह भूमि सूनी ।।

राम बिना तो मुझे, लगे सब रचना ऊनी ।
उसने कहा तब ही, अहो! वह दीखे धूनी ।।५१।।
लो कुटी पड़ी दीख, बाहर वेदी बनी है ।
विस्तृत आँगन सहित, सुन्दर तर छत तनी है ।।
कुटी के चहुँ ओर, छाया स्वच्छ घनी है ।
उस में से बन दीप, किरणें पड़ती छनी हैं ।।५२।।
वह दीख रहे राम, अनुज भी बहुत पास है ।
जटा जूट सिर धार, मुनिवर सुख की रास हैं ।।
तन पर मल कर राख, तापस सुजन निवास हैं ।
तुरत दौड़ पग पड़े, बोले वे तव दास हैं ।।५३।।

बत्तीसवां सर्ग

*वल्कल को धारण किये, लिये जटा का भार ।
पड़े चरण पर भरत को, किया राम ने प्यार ।।१।।
गले लगाकर गाढ़तर, दोनों को पुचकार ।
उष्ण अश्रु से राम ने, किया उनका सत्कार ।।२।।
लक्ष्मण को दोनों मिले, दीर्घ भुजा पसार ।
गाढ़ आलिंगन से वे, करते हर्ष उद्गार ।।३।।
देख भरत को मुनि बना, दुबला दीन उदास ।
राघव स्नेह-स्पर्श से, उसे खींच कर पास ।।४।।
बोले, कहो तो हे प्रिय!, योग क्षेम से तात ।
हैं सुख कुशल से भूपति, सुख से सोते रात ।।५।।

* दोहा।

मन्त्री गण अनुकूल हैं?, है पूर्ण सब कोश ।
सेना प्रजा में नहीं, क्या बढ़ा द्रोह रोष? ।।६।।
कड़े कठोर कुदण्ड से, क्या प्रजा में त्रास ।
फैला नहीं विरोध है!, जिससे हुआ निर्वास ।।७।।
न्याय नीति को तोड़कर, करते शासन आप ।
पुरोहितों ने पतित कर, तुझे दिया क्या शाप ।।८।।
मन मुखियापन देख कर, तुझ में अधिक घमण्ड ।
सचिवों ने त्यागा तुझे, क्या देकर यह दण्ड? ।।६।।
रत रह कर कुव्यसन में, कर्म धर्म को भूल ।
क्या तू ने शासन किया?, जन बने प्रतिकूल ।।१०।।
आस्तिक बुद्धि त्यागना, झूठ कथन की बान ।
क्रोध भूल ही कुसंगति, रहे सदा हठ तान ।।११।।
ज्ञानी जन की भेंट न, करना बन सुविनीत ।
तजना सम्मति सचिव की, कार्य कर विपरीत ।।१२।।
दिन को सोना, नाच को, देखना अच्छा जान ।
अहेर जुआ भी खेलना, करना अति अभिमान ।।१३।।
रहना वादन गीत में, करना बहुत विहार ।
गुप्त भेद को खोलना, करना ही व्यभिचार ।।१४।।
निन्दा करना अन्य की, बहुत बुरे हैं पाप ।
क्या इन में तो न रत रह, विमल रहे हो आप? ।।१५।।
क्या कारण इस वेश का?, क्यों आये हो भाग? ।
राज-काज को छोड़ कर, पूज पिता को त्याग ।।१६।।
कहा भरत ने तब उसे, मुझ में बसे न दोष ।
इस में निश्चय सहित तुम, रक्खो सर्व सन्तोष ।।१७।।

पर मैं तो हतभाग हूँ, इस सृष्टि के बीच ।
पिता बन्धु से बिछड़ कर, रखता जीवन नीच ।।१८।।
पूजनीय प्रभु भूपति, पिता गये पर लोक ।
तेरे राम वियोग में, रोते करते शोक ।।१६।।
मेरी माता है कड़ी, कर्कश अधिक कठोर ।
जिसके कारण आ पड़ा, संकट कटु तर घोर ।।२०।।
पितृ-मरण की बात सुन, गई धीरता टूट ।
ऊँचे सुर से रो पड़े, राम फूट ही फूट ।।२१।।
वचन-वज्र वह भरत का, सके न राम सहार ।
गिरे शाल तरु ज्यों गिरे, खा बिजली-प्रहार ।।२२।।
ऐसे पड़े अचेत वे, जैसे खाकर वाण ।
हंस गिरे भू पर तड़प, लेता अन्तिम प्राण ।।२३।।
भाइयों ने मिलकर तब, कर शीतल उपचार ।
बैठाया श्रीराम को, मूर्छा सर्व उतार ।।२४।।
होकर अधिक सचेत वे, दिल मन को सम्भाल ।
दीन दुःखी रोने लगे, जैसे बिछड़ा बाल ।।२५।।
गद्-गद् बोले हे सिया, भूप ससुर सुखकार ।
तेरे हितकारी बड़े, गये स्वर्ग सिधार ।।२६।।
लक्ष्मण! पितृ-विहीन अब, गए हो बन अनाथ ।
तुम भी हतभागी बने, आकर मेरे साथ ।।२७।।
चारों भाई सह सिया, रोये कर अति नाद ।
मुनि-स्थानों में दूर तक, फैला बहुत विषाद ।।२८।।
सुन कर आर्तनाद को, समझे सैनिक लोग ।
राम भरत हैं मिल गए, करते हैं अति सोग ।।२६।।

नाद-सीध पर सब चले, माता सचिव समेत ।
सुजन-संघ पहुँचा सब, अश्रुभरे ले नेत ।।३०।।

*सहित कौशल्या तीनों राणी, आई तब रोती बिलखानी ।
वशिष्ठ मुनि थे साथ सुहाते, ढार्स देते बहु समझाते ।।३१।।
राम को देख जटा घनी में, बढ़ी वेदना सर्व जनी में ।
दौड़ मिले बछड़े को गैया, मिलीं उसे वे त्यों सब मैया ।।३२।।
पीठ पै मृदु हस्त फिरातीं, लिपटे रज कण पोंछ हटातीं ।
छम छम आंसू बहु बरसातीं, थी जटा पर मोती जड़ातीं ।।३३।।
चरण-कमल उनके गह के ही, रघुपति पिघल बड़े बह के ही ।
उनके चरण पड़ी तब सीता, आदर देती बहुत विनीता ।।३४।।
लक्ष्मण भी कर वन्दन माता, दुःखी हुआ सुजन सह भ्राता ।
कौशल्या ने सिया को देखा, दूज-चांद की ज्यों हो रेखा ।।३५।।
वन-बसने से दुबली ऐसी, पानी बिना वल्ली हो जैसी ।
बोली वह, हा! जनक दुलारी, सहती है वन दुखड़े भारी ।।३६।।
कमल घाम से जैसे सूखे, दीखें अंग सिया के रूखे ।
वर्षा बिना जैसे वन-राजी, पीली पड़ी वन में विराजी ।।३७।।
मृदुल कमल दल ज्यों मुर्झावे, धूलि धूसर चन्द्र दिखावे ।
तद्वत् देख सिया मुख तेरा, मर्दित मथन हुआ मन मेरा ।।३८।।
ऐसे जब राणी थी रोती, बार बार अति पीड़ित होती ।
रघुवर ने देखे गुरु ज्ञानी, वशिष्ठ मुनि उत्तम वरदानी ।।३९।।
नमस्कार कर पास बैठाये, रघुपति सह वे अधिक सुहाये ।
कहा भरत ने, मेरे भाई, प्रभु बड़े राजा सुखदाई ।।४०।।

* चौपाई।

माँ ने जो पद मुझे दिलाया, वह मुझे न किंचित् भाया ।
सौंप तुझे वह सम्पत् तेरी, मति गति सब तब सुधरे मेरी ।।४१।।
कृपा कर पुरी में पधारो, सब जन का यह कष्ट निवारो ।
ऐसे बनिए जन के राजा, नभ में ज्यों हो भानु विराजा ।।४२।।
चरण पकड़ कर विनय दर्शाते, भरत, राम से थे मनवाते ।
गिड़-गिड़ाते अति रो रहे थे, बहुत वे व्याकुल हो रहे थे ।।४३।।
धैर्य-धार धर्म-धुर धारी, बोले राम तत्त्व अनुसारी ।
पराधीन पुरुष यह जाना, इसे अपूर्ण प्राणी माना ।।४४।।
पद पद पर विपदा यह पावे, पल पल बीच पतित हो जावे ।
फिरे कालवश दश दिश खींचा, जाय कमल वत् उससे मींचा ।।४५।।
जगत् नहीं यह है अविनाशी, संचित वस्तु सब है विनाशी ।
ऊँचे जो वे सब गिर जाते, हैं सुयोग, वियोग को पाते ।।४६।।
मिला मेल में रहे बिछोड़ा, त्यों है जन्म-मरण का जोड़ा ।
जितने जीव जन्म में आते, अन्त में वे सभी मर जाते ।।४७।।
ऐसा कौन जन्म में आया, जिसने मरण नहीं हो पाया ।
जो आता है अवश्य जाता, आदि सदा ही अन्त दिखाता ।।४८।।
पके हुए फल गिरते जैसे, भोग आयु जन मरते ऐसे ।
जरा-जीर्ण मरे जन त्यों ही, बोदा भवन गिरे तो ज्यों ही ।।४९।।
नदी-जल ज्यों सिंधु में जाता, पीछे को फिर लौट न आता ।
रात बीतती जो है जाती, फिर पीछे वह लौट न आती ।।५०।।
छिन-छिन में छवि छाया छीजे, फिर किस पर जन इतना रीझे ।
रंग रूप अंग सभी नीके, कालान्तर में पड़ते फीके ।।५१।।
ग्रीष्म में रवि-किरण यथा ही, करे शोषण जल को तथा ही ।
क्षण क्षण में जग जीवन बीते, करता कल्प काल भी रीते ।।५२।।

ठहरे जावे सोवे चाहे, आयु तो सब बीतती जाये ।
जीवन संग मरण की माया, रहती सदा यथा तन छाया ।।५३।।
आता जब है बहुत बुढ़ापा, देह पर रहता कम्प व्यापा ।
होते अंग सभी तब ढीले, झुर्रियाँ हों रंग भी पीले ।।५४।।
केश श्वेत बन कर शिथिलाते, कर स्पर्श से ही झड़ जाते ।
इस पर कौन गर्व हो वैसा, सबल स्वाधीन बन कर कैसा ।।५५।।
स्वाधीन यहाँ कौन कहावे, बन कर जब सब ही बिनसावे ।
जो दिन चढ़ता करता हानी, फिर भी हर्षित हों अभिमानी ।।५६।।
श्येन यथा झपटा दे मारे, चिड़ियों में से चुन संहारे ।
ऐसी करता काल चुनौती, चुन-चुन चुगता न्याती गोती ।।५७।।
सागर-लहरों में लुढ़काते, काष्ठ खण्ड यथा जुड़ जाते ।
त्यों है बन्धु सुजन का मेला, वैसे मरता जन्म अकेला ।।५८।।
राव रंक नौकर जो स्वामी, सब जन हैं इस पथ अनुगामी ।
काल चक्कर की चंचल चालें, टलें नहीं कितना भी टालें ।।५९।।
जैसे पीछे रुक कर राही, मिलें संग में दौड़ा जा ही ।
जाते मर कर जो जन आगे, उनको शेष मिलेंगे भागे ।।६०।।
कोई रहता सदा न जीता, भरा हुआ निश्चय हो रीता ।
बन कर बिगड़े सृष्टि सारी, माना कार्य सर्व विकारी ।।६१।।
पन्थ जिस से पुरुखा गये हैं, हम भी उसी पर जा रहे हैं ।
मरण-अन्त होता है जीना, हो दुःखी जो निश्चय हीना ।।६२।।
जिसका कुछ उपचार नहीं है, जिसका होना बहुत सही है ।
उसकी सोच करे क्या कोई, अवश्यंभावी है तो सोई ।।६३।।
जग में हैं सब जन सुख भागी, सब में रहे सुख इच्छा जागी ।
रहता धर्म में सुख समाया, मुनि जनों ने यह है बताया ।।६४।।

उचित हमें है धर्म कमाना, पड़े नहीं पीछे पछताना ।
अपनी सोच करो तुम ऐसी, उच्च सुगति हो चाहें जैसी ।।६५।।
क्या किया शुभ यही सोचो, अपने किए कर्म आलोचो ।
सोचन योग्य पिता न प्यारे, यजन दान के करने हारे ।।६६।।
कर्म धर्म करके सब पूरे, पाप ताप सब उसने चूरे ।
सोच योग्य नहीं वह न्यायी, वेदागम का जो अनुयायी ।।६७।।
जन-सेवा कर बाप हमारे, उत्तम लोक गति को पधारे ।
न वह सोचन योग्य विवेकी, जिस ने की हो अहर्निश नेकी ।।६८।।
{सोचिए जन जो हों अनाचारी, आततायी पतित दुःखकारी ।
सत्य धर्म विरुद्ध हो जो ही, जाति देश का घातक द्रोही ।।६९।।
कायर कपटी लम्पट क्रोधी, दुष्ट विवादी बहुत विरोधी ।
सोचन योग्य है जन सो ही, दोष लगावे जो पर को ही ।।७०।।
सो तुम सोच पिता की त्यागो, अपने धर्म कर्म में जागो ।
सोच करो क्या पुण्य कमाया, कितना जीवन काल बिताया} ।।७१।।
तज कर चिन्ता मेरे भाई, शान्त बनो धीरों की न्याई ।
राज्य काज करो बन नेता, नीति न्याय के हो तुम वेत्ता ।।७२।।
सत्य धर्म के जो अभिलाषी, शोकित चिन्तित हो न निराशी ।
गुरु-जन के अनुगामी होते, वचन निभाते जगते सोते ।।७३।।
चरण चिन्ह पिता के निहारो, चलना उन पर चतुर! विचारो ।
मेरा तेरा धर्म यही है, जो आदेश करना वही है ।।७४।।
मुझ से वचन न जावे लोपा, प्रण सत्य नहीं जाय गोपा ।
पितृ-ऋण है मुझे चुकाना, पितृ-प्रण को सच्चा बनाना ।।७५।।

तेतीसवाँ सर्ग

*रघुपति की सुन बात, कहा भरत ने फिर उन्हें ।
तुम हो वीर विख्यात, कष्ट घोर भी सह सको ।।१।।
कौन कष्ट-कर काम, कटु कठोर दुष्कर कर्म ।
सके नहीं कर राम, ऐसा मैं हूँ मानता ।।२।।
पर यह है विपरीत, राज-धर्म कुल वंश के ।
तज कर शासन रीत, मुनि बन फिरना वनों में ।।३।।
मम जननी का दोष, बहुत बुरा अपराध है ।
आता मुझ को रोष, अभी हनन उसका करूँ ।।४।।
पर, वनिता की घात, जग में कर्म निंद्य है ।
तेरा डर है भ्रात!, नहीं तो दण्डित हो वह ।।५।।
भूपति-कर्म विचार, दुःख मुझे होता अधिक ।
पर वे गये सिधार, उनका वर्णन क्या करूँ ।।६।।
पर इतना ही ज्ञान, भूप-विषय में बहुत है ।
अधिक उन्होंने हान, की मोह पराधीन हो ।।७।।
है यह भारी भूल, भ्रम भरा उलटा कर्म ।
भूल धर्म का मूल, मान सुखों को त्यागना ।।८।।
चरण पड़े की लाज, आज तुझे है बन्धुवर ।
चल कर करिए काज, राज समाज सुशोधिए ।।६।।
जग में है जन-वाद, मोह इच्छा वश भूप ने ।
सब को दिया विषाद, राघव को वन-वास दे ।।१०।।

* सोरठा।

सर्व पितृ-अपवाद, दूर करो बस नगर में ।
इस में नहीं विवाद, अन्यथा निन्दा है अति ।।११।।
माता का है मान, तेरे मन में बहुत ही ।
इस का दो प्रमाण, मध्यमा की निन्दा हर ।।१२।।
मुझ पर दया अपार, दिखलाओ हे देव जी ।
करुणा-नयन पसार, विनय बन्धु की मानिए ।।१३।।
करो नहीं स्वीकार, यदि यह विनती दीन की ।
तो लो निश्चय धार, मैं भी वनवासी बना ।।१४।।
रह कर तेरे साथ, सर्व सुखों को त्याग कर ।
तापस बन कर नाथ!, विचरूँगा वन घोर में ।।१५।।
कोमल कर को फेर, लघु भ्राता की पीठ पर ।
राम दूसरी बेर, बोले, तज दो, भरत! हठ ।।१६।।
पिता-दत्त वरदान, सत्य बनाना है मुझे ।
मत बनिए अनजान, पुत्र-धर्म को सोचिए ।।१७।।
होकर बहु गुणवान्, पतन पाप अति नरक से ।
जो करता परित्राण, मात पिता की, पुत्र है ।।१८।।
कर सार्थक सुनाम, हमें दिखाना उचित है ।
है सुपुत्र का काम, सच्चा बनाए बाप को ।।१६।।
पण पर धर कर प्राण, प्रण पालना है मुझे ।
करो न खींचातान, शासन करिए आप ही ।।२०।।
चमर छत्र सिर धार, राजा बनिए सर्व के ।
जटा जूट ले भार, मैं तो तापस बन रहा ।।२१।।
मिले शत्रुघ्न संग, तुम तो सर्व समर्थ हो ।
लक्ष्मण सहित उमंग, मेरा सहायक है यहाँ ।।२२।।

इस से तज संताप, शोक रहित राजा बनो ।
परम प्रिय अब आप, मेरा कहना मानिये ।।२३।।

*दशरथ का था सचिव सियाना, जाबालि ब्राह्मण वर जाना ।
बोला, राघव!, कहना तेरा, मिथ्या मूलक भ्रम अन्धेरा ।।२४।।
होकर ऐसे उत्तम ज्ञानी, व्यर्थ बोल रहे हो बानी ।
पाप पुण्य का झगड़ा सारा, मिथ्या मत है मैंने विचारा ।।२५।।
है न बान्धव कोई किसी का, सब नाता है लोक इसी का ।
चार दिनों का है जग मेला, आता जाता जीव अकेला ।।२६।।
सगे मात पिता हैं हमारे, मत्त मनुष्य ऐसा विचारे ।
पामर मन की हैं सब बातें, मुनि बन तप कर काटो रातें ।।२७।।
ज्यों करे जन गाँव में डेरा, तजे दो दिन पीछे बसेरा ।
सब जन ऐसे हैं सम्बन्धी, सो तजो प्रेम कुरीति अन्धी ।।२८।।
सज्जन जन न इस में लुभाते, लोक वृथा न यह गँवाते ।
यह कुमार्ग नहीं है तेरा, मनन करो अब कहना मेरा ।।२६।।
विषम कुपंथ है दुःखदाई, कंटकाकीर्ण कटु कमाई ।
छोड़ इसे पुर वन में जाओ, करो शासन सभी सुख पाओ ।।३०।।
राज-भोग के बनिए भोगी, सुरपति सम सुख सहित अरोगी ।
दशरथ कौन अब हैं तुम्हारे, उनके कौन तुम्हीं हो प्यारे ।।३१।।
भूमि बीज मिल तरु हो जाता, माता पिता से सुत हो आता ।
मरण समय सब ही मिट जाते, जितने जाने जग के नाते ।।३२।।
यजन दान जो ग्रन्थ बताते, पुण्य कर्म के पाठ सुनाते ।
चतुर जन ने चलाई हाटें, हरने को पर धन पर बाटें ।।३३।।

* चौपाई।

लो संन्यास बनो घर त्यागी, दीक्षा लेकर बनो विरागी ।
बिना परिश्रम चले कमाई, गई पुस्तकें सर्व बनाई ।।३४।।
धर्म सत्य सभी हैं बहाने, परलोक हैं झूठे तराने ।
तुम परलोक से मन हटाओ, इसी लोक से लाभ उठाओ ।।३५।।
जो जन ऐहिक सुख को त्यागे, अपर लोक के पीछे भागे ।
दृश्य तजे जो अदृश्य अनुरागी, वंचित रहे सब से अभागी ।।३६।।
ये हैं पण्डित जन के फन्दे, आप तजो यह सब ही धन्धे ।
सत्य की देना तज दुहाई, भोगो सम्पत् सम्मुख आई ।।३७।।
वचन सर्व सुनकर रघुराई, बोले, तूने बात बताई ।
वह नहीं है उचित जो मानें, सत्य नहीं हम उसको जानें ।।३८।।
हितकर वचन तूने उच्चारे, न्यायाचार हीन हैं भारे ।
ऊपर से हैं सुधा सरीखे, उनके बीच भरा विष दीखे ।।३६।।
शुभ आचार धर्म है ऐसा, अन्य नहीं कोई उस जैसा ।
भला बुरा जन यही बताये, कुल सुवंश को यह परखाये ।।४०।।
आर्यानार्य जानें जायें, इससे गुण अवगुण दिखलायें ।
सुशील दुःशील हो जन जैसा, इससे दीखें जो हो वैसा ।।४१।।
तज आचार यथेच्छाचारी, सत्य मर्यादा सर्व बिसारी ।
बना चलूँ मैं तव अनुसारी, जग में रहूँ बन अनाचारी ।।४२।।
धर्म-दूषण जग में कहाऊँ, गण सुजन में न आदर पाऊँ ।
सत्यासत्य के जो हैं ज्ञाता, मुझे कहें हैं पाप कमाता ।।४३।।
टूट जायगी सभी मर्यादा, हत्या पाप में रहे न बाधा ।
जगत् में चल पड़े मनमानी, सत्य धर्म बन जाय कहानी ।।४४।।
सत्य धर्म को जो जन छोड़े, उसने प्रण नियम सब तोड़े ।
जन में उसकी साख न होवे, वह सब में विश्वास को खोवे ।।४५।।

झूठे से डरते जन त्यों ही, फणधर से जग डरता ज्यों ही ।
वह वणिज व्यापार गंवावे, जन-सभा में न आदर पावे ।।४६।।
सत्य तजे जन लोभी जो ही, कायर कपटी लम्पट मोही ।
उस पथ पर मैं कभी न जाऊँ, आत्मा को क्यों नीच बनाऊँ ।।४७।।
सुजन सभ्य रहे सत्यवादी, ज्ञानी गुणिजन जो न विवादी ।
उनका पथ मैं कैसे त्यागूँ, सज्जन मत से मैं क्यों भागूँ ।।४८।।
तू ने उचित, अनुचित बताया, उलटा पथ मुझको दिखलाया ।
लौकिक मार्ग मुझे न भाता, ऐहिकवाद समझा न जाता ।।४६।।
पिता-वचन को यों तज देना, भरत-वचन अवलम्बन लेना ।
हीन मति है मेरी निचाई, इस में कुछ सुख नहीं बड़ाई ।।५०।।
भूमि लक्ष्मी कीर्ति सुख भारी, पाते सत्य व्रत के धारी ।
मैं सो सत्य कहो क्यों छोडूँ, पितृ-कथन से क्यों मुख मोडूँ ।।५१।।
सत्य धर्म पराक्रम भारा, प्रिय-कथन दया दान न्यारा ।
देव अतिथि पूजन का होना, है पुण्य का बीज ही बोना ।।५२।।
होती इनसे गति मति ऊँची, जीव गति नहीं पाता नीची ।
वेदागम का यही बताना, सत्य धर्म है मुनि जन-माना ।।५३।।
वेदागम के बने विरोधी, नास्तिक कुपथ के अनुरोधी ।
पक्के नास्तिक हो यदि ऐसे, लिया भूप ने तुमको कैसे ।।५४।।
सत्य धर्म कर्म नहीं माने, उसे हानिकर सब जन जाने ।
उसकी संगति है दुखदाई, उससे भाषण बड़ी बुराई ।।५५।।
कामना रहित मुनिवर जो थे, धर्म-कर्म-रत रहते सो थे ।
सत्य धारणा मन में धारे, रहते पाप कर्म से न्यारे ।।५६।।
उच्च सुगति के होते भागी, परमार्थ रत स्वार्थ त्यागी ।
उसी पथ पर चलना मुझे है, सत्य में क्यों विवाद तुझे है ।।५७।।

कहा सचिव ने, सत्य यही है, मेरा निजी मत यह नहीं है ।
है सब सार तुझे लौटाना, युक्तिवाद से घर ले जाना ।।५८।।

चौतीसवाँ सर्ग

*वशिष्ठ मुनि ने राम को, समझाया बहु बार ।
माताएँ तब मिल सभी, समझातीं कर प्यार ।।१।।
कैकेयी ने भी तदा, बनकर दुखिया दीन ।
कहा उसे, पीछे चलो, है तव सर्व अधीन ।।२।।
पर, करके अनुनय विनय, राघव ने सब शान्त ।
किये, सत्य प्रण कह कर, हो स्थिर मति एकान्त ।।३।।
राम आग्रह देख कर, हो कर भरत उदास ।
बिछा कुश-आसन को तब, बैठा कुटिया पास ।।४।।
बोला, धरना है दिया, अब तो मैंने डाल ।
देखें मानें कैसे न, रघुपति दीन दयाल ।।५।।
जब तक मानें यह नहीं, मैं सब धन को छोड़ ।
अनशन ब्राह्मणवत् कर, दूँगा नाते तोड़ ।।६।।
खान-पान सब त्याग कर, दोनों आँखें मूँद ।
पड़ा कुटी के पास मैं, पीऊँ उदक न बूँद ।।७।।
देख भरत का हठी पन, बोले राघव आप ।
धरना देना तो उचित, है नहीं, हे अपाप ।।८।।

---
* दोहा।

मैंने अनीति अपकर्म, किया यदि हो अन्याय ।
तब तो धरना हे प्रिय!, इस भान्ति दिया जाय ।।६।।
धरना उसका है कहा, विप्र शान्ति दमवान् ।
शक्ति का उपयोग नहीं, करे जो विधि को जान ।।१०।।
जो जन क्षत्रिय वीर हैं, सह राज्य अधिकार ।
धरना देना है नहीं, उनका यह आचार ।।११।।
क्षत्र धर्म को धार कर, तुम करते हो भूल ।
धरना दे बैठे यहाँ, जो धर्म-प्रतिकूल ।।१२।।
उठो अभी नरसिंह तुम, पुरवर बीच विराज ।
राज काज को कीजिए, पालो सभ्य समाज ।।१३।।
सजल नयन कर भरत ने, सब को कहा निहार ।
तुम आर्यगण! क्यों नहीं, करते वचन विचार ।।१४।।
सब बोले, तुम ठीक हो, पर हमको है ज्ञान ।
पितृ-वचन भंग न करे, राजा राम महान् ।।१५।।
तुले पड़े थे भरत जी, दृढ़ आग्रह संग ।
पर राघव जी-जान से, वचन न करते भंग ।।१६।।
मुनि जन तब सब बीच पड़, बोले भरत कुमार ।
हम कहते हैं इसलिए, हठ दो सर्व निवार ।।१७।।
नीति न्याय अनुकूल है, सत्य धर्म अनुसार ।
राज-वंश को शोभता, ऐसा राम-विचार ।।१८।।
राणी-ऋण से उऋण, भूप गए परलोक ।
पितृ-ऋण से मुक्त हो, तुम भी तजकर शोक ।।१६।।

*{परस्पर सब ऋषि कहते, कि यह परिवार कैसा है ।
मिले मन से मधुरतम हैं, परम शुचि प्यार कैसा है ।।२०।।
विरोध विवाद से वर्जित, विवेकी वीर हैं वरतर ।
बली सब बन्धु हैं बांके, विमल आचार कैसा है ।।२१।।
पक्के प्रण नियम व्रत में, पिरोये प्रेम तारों में ।
परस्पर प्राण बन रहते, शुभ व्यवहार कैसा है ।।२२।।
कलह कटु कोप कलिमल से, कमलवत् अमल ये शोभें ।
करें न काम कभी काले, उत्तम विचार कैसा है} ।।२३।।
†ऋषि-वचन सुन कर रघुराई, बोले देते उन्हें बड़ाई ।
ऋषि जनों का विरद यही है, कहनी वह जो सत्य कही है ।।२४।।
ऋषि-व्यवस्था सुन कर सारी, भरत हुआ दुखिया अति भारी ।
बोला होकर गद् गद् बानी, आँखों से बरसाता पानी ।।२५।।
दीन-विनय रघुपति उर धारो, राज्य करो सब दुःख निवारो ।
उसे राम ने कण्ठ लगाया, गोद बीच सप्रेम बिठाया ।।२६।।
कहा उसे, सुख से तुम जाओ, जन पालो सब काम चलाओ ।
सचिव पुरोहित वंशज भाई, सब जन हैं तेरे अनुयायी ।।२७।।
कर सकते हो शासन ऐसा, रघुवंशी करते थे जैसा ।
तुम समर्थ सशक्त ऐसे, उत्तम भूपति होते जैसे ।।२८।।
मात मध्यमा ज्यों सुखयारी, होवे करना वह विधि सारी ।
गृह कलह की बात भुलाना, मन में मैल न किंचित् लाना ।।२९।।
मम सिया की शपथ ही जानो, यदि तुम मध्यमा को न मानो ।
हो गया जो कर्म था होना, अब उस पर वृथा है रोना ।।३०।।
चाँद तजे शोभा को चाहे, हिम गिरि सम स्थल हो जावे ।
सिन्धु यदि मर्यादा को तोड़े, तो भी राघव न प्रण छोड़े ।।३१।।

* विधाता † चौपाई।

जब निश्चित निश्चय है मेरा, फिर आग्रह न फबता तेरा ।
मानो कथन भरत! अब तो ही, राज करो जाओ घर को ही ।।३२।।
नयन नीर भर वीर सियाना, बोला, कहना मैंने माना ।
इन पादुक पर पैर टिकाओ, पग तले का स्पर्श कराओ ।।३३।।
चरण पादुके लेकर दो ही, राम ने पैर तले कर सो ही ।
फिर भरत को वे दे डालीं, भरत ने स्व सिर पै उठा लीं ।।३४।।
बोला वह, ये विघ्न हरेंगी, राम-स्थान पर राज करेंगी ।
मैं भी बन कर वल्कलधारी, कन्द-मूल वन-जन्य आहारी ।।३५।।
वर्ष चार दश आज्ञाकारी, बन पालूँगा भूमि तुम्हारी ।
सिंहासन पर शोभा देतीं, होंगी पादुक मन हर लेतीं ।।३६।।
यदि अन्तिम दिन आप न आये, अयोध्या में न शोभा लाये ।
मैं अग्नि में कूद के मेरी, देह करूँगा भस्म की ढेरी ।।३७।।
भरत वचन राघव स्वीकारे, बहुत अच्छा के वचन उच्चारे ।
दोनों भुज विशाल फैलाई, लिया राम ने कण्ठ लगाई ।।३८।।
कहा उसे, है निश्चय मेरा, होगा वही वचन जो तेरा ।
होंगे पूर्ण वर्ष जभी ही, तव पास मैं हूँगा तभी ही ।।३९।।
दोनों बन्धु को देते विदाई, राघव की आंखें भर आईं ।
फिर फिर मिलते उनको वे ही, हितकारी प्रभु परम स्नेही ।।४०।।
अनुमति जभी भरत ने पाई, राम की परिक्रमा लगाई ।
सिया अनुज से अनुज्ञा पाई, चले पादुके सीस धराई ।।४१।।
चरण पूज कर माता जी के, प्रेम अतुल पा भ्राता जी के ।
राम ने सुगुरु जन थे जो ही, विदा सचिव सुजन किये सो ही ।।४२।।
सिर पर दोनों पादुक धारे, रथ समीप जब भरत पधारे ।
चले संघ सह थे वे जाते, मुनि-गण के शुभ दर्शन पाते ।।४३।।

भरद्वाज के स्थान पै आके, हुए प्रसन्न दर्शन पाके ।
पथ में ऋषि जन को हर्षाते, जनपद जन के मान बढ़ाते ।।४४।।
अयोध्या में क्रम से आये, उसे देख कर सुजन हर्षाये ।
राज-भवन में मात उतारीं, उसने तीनों अति दुखियारीं ।।४५।।
मंत्रि-मण्डल को वे बोले, वचन गम्भीर बहु अनमोले ।
राजासन नगर का सुहाना, गया राम राजा का माना ।।४६।।
उसे चाहूं न पैर लगाना, मान-स्थान वह मैंने जाना ।
सम्मति दो तो मैं अब जाऊँ, नन्दि-ग्राम में सभा लगाऊँ ।।४७।।
शासन वहाँ से सब चलाऊँ, वहीं सिंहासन नव रचाऊँ ।
भरत-कथन सब ने स्वीकारा, तथास्तु का वाक्य उच्चारा ।।४८।।
सिर पर पादुक धर कर राजा, भरत सुरथ में बैठ विराजा ।
समारोह से पुर से जाता, भूप बहुत था शोभा पाता ।।४६।।
नन्दि-ग्राम में सभा सजाई, उसने उत्तम गद्दी लगाई ।
राज-गद्दी पर पादुक राजे, मृग-चर्म पर भरत विराजे ।।५०।।
बोला, ये पादुक जो दो ही, शोभें राम-प्रतिनिधि हो ही ।
होगा शासन इन से सारा, सेवा होगा काम हमारा ।।५१।।
जो आदेश दिये थे जाते, पादुक ओर से सब कहाते ।
जितनी भेंटें थीं तब आतीं, उन्हें प्रथम चढ़ाई जातीं ।।५२।।
राम-धरोहर है यह भारी, कहता भरत, न मैं अधिकारी ।
मेरा कर्म है काम चलाना, राम-धरोहर बहुत बचाना ।।५३।।
यद्यपि था वह वल्कलधारी, कन्द मूल वनज फलहारी ।
तेजोधाम भानु हो जैसा, राजा था सुरपति हो ऐसा ।।५४।।
नीति न्याय था बहुत सुहाना, भरत-सुयश था सब ने जाना ।
अन्न-वसन सब जन थे पाते, भूखे नंगे नहीं दिखाते ।।५५।।

सुखिया थे सब जन नरनारी, समदृष्टि के आज्ञाकारी ।
गुण यश गीत भरत के गाते, जनपद पुरजन देखे जाते ।।५६।।
{सगे बन्धु हैं बहुत कहाते, बनी बात में साथ दिखाते ।
बिगड़ जाय तो पास न आते, उलटे अपनी बात बनाते ।।५७।।
स्वार्थ सिन्धु सगे स्नेही, गिरते स्वजन गिरायें वे ही ।
विष के कुम्भ मधु मुंह वाले, करते कर्म कुटिल कटु काले ।।५८।।
भावुक भाई होते जैसे, भक्तराज भरत हुए ऐसे ।
अनन्य भाव राम अनुरागी, निरीह निर्दोष निर्मल त्यागी ।।५९।।
राम चरण पर तन धन वारा, उसने सुख सम्पत् तज डारा ।
वंश विनय अनुशासन पाला, सर्व सार श्री राम सँभाला} ।।६०।।

आरण्यकाण्ड
पहला सर्ग

*चित्रकूट के सन्त, चिन्तित देखे राम ने ।
मुनि जन सब गुणवन्त, उद्यत जाने को हुए ।।१।।
रहते राम-समीप, जो थे वे जाने लगे ।
कुटी-स्थान के दीप, सभी तभी थे बुझ रहे ।।२।।
हुआ न हो कुछ दोष, मुझ सीता से लखन से ।
जिस से ये कर रोष, चाहें तजना स्थान को ।।३।।
राम ने यह विचार, पूछा बूढ़े ऋषि से ।
कहिए सहित विस्तार, कारण ऋषि-उद्वेग का ।।४।।
वह बोला हे राम!, दोष नहीं है और कुछ ।
तेरा यहाँ विश्राम, असुर नहीं तो सह सके ।।५।।
रावण का लघु भ्रात, है जन-स्थान का अधिपति ।
करता है उत्पात, जब से आये आप हैं ।।६।।
असुर दुष्ट अति नीच, खाते मानव मांस हैं ।
घुस कुटियों के बीच, काटें बाला बाल तक ।।७।।
कुण्ड में अस्थि डाल, यजन भ्रष्ट करें सभी ।
बड़े क्रूर विकराल, काले कुरूप कुटिल हैं ।।८।।
उन से पाकर त्रास, मुनिवर तजते स्थान हैं ।
अब तो नहीं निवास, सुरक्षित सुखदाई यहाँ ।।९।।

---
* सोरठा।

तुम भी छोड़ो स्थान, कहा ऋषि ने राम को ।
करो अभी प्रस्थान, पत्नी तुम्हारे साथ है ।।१०।।
महर्षि अत्रि विख्यात, है बसता कुछ दूर तर ।
वहाँ न होती घात, कन्दमूल वहाँ हैं बहु ।।११।।
चला हमारा संघ, उस के आश्रम को अब ।
आप चलो भी संग, यदि चाहो रहना वहाँ ।।१२।।
दिया धृति-उपदेश, राघव ने उनको बहुत ।
फिर भी असह्य क्लेश, हैं कह बहुत चले गये ।।१३।।
राम-प्रेमी अनेक, रहे वहीं रघु-राज सह ।
बहुत विचार विवेक, कर के धीर तो न डरे ।।१४।।
*बहुत गये दिन बीत, रहते उसी स्थान में ।
भरत आदि जो मीत, आये, आते ध्यान में ।।
उन के अब तक शब्द, गूँजते रहें कान में ।
सोचा राम ने यह, विघ्न है ध्यान ज्ञान में ।।१५।।
यहाँ रहे थे भरत, यहाँ थीं माता मेरी ।
जनों ने भूमि यही, सेना साथ थी घेरी ।।
खान पान सब हुए, बातें हुई बहुतेरी ।
अश्व हस्ति की लीद, वह है राख की ढेरी ।।१६।।
सर्व सिमर कर बात, बन्धु हैं सिमरन होते ।
दीख पड़े आकार, सामने शोकित रोते ।।
सिमरन होते भ्रात, रात दिन जगते सोते ।
सिमर सुबन्धु वियोग, चित्त है खाता गोते ।।१७।।

* रोला।

ऐसा धार विचार, राम ने कुटिया त्यागी ।
सिया अनुज के साथ, चले वन को बड़भागी ।।
अत्रि ऋषि के पास, तापस आये विरागी ।
वनजन मुनि ऋषि की, शुभ प्रारब्ध हो जागी ।।१८।।
राम पधारे जान, अत्रि ने करके स्वागत ।
अर्घ्य पाद्य कर सब, पूजे तीनों समागत ।।
तीनों अतिथि ने भी, पूजा ऋषि होकर नत ।
अनसूया ने बहुत, वे माने तीन आगत ।।१६।।
अनसूया शुचि सती, सुवृद्धा धर्मचारिणी ।
अत्रि ने कहा राम!, है पत्नी शाप-हारिणी ।।
मेरी संगिनी है, यह धर्म-रता अनुसारिणी ।
कही गई है शुभा, तप से कल्याण कारिणी ।।२०।।
एक बार यह हुआ, वर्ष दश पड़ा न पानी ।
वन-जन मुनि जन बीच, जीवन की होती हानि ।।
कन्द मूल फल साग, उपजा यही मधुबानी ।
रही पालती ऋषि, पुण्य सुकृत की रानी ।।२१।।
स्नान आदि के अर्थ, गंगा जल को बहा कर ।
लाई विधि के साथ, बल से बहाव चला कर ।।
बरसों तपस्या साध, कहाई सिद्धा शुभाकर ।
तुम दो अनुमति सिया, मिले अब इसको जाकर ।।२२।।
देख सिया की ओर, कहा राम ने जाइए ।
सीते! तापसी के, जाकर दर्शन पाइए ।।
बूढ़ी गुण की खान, सेव कर बहु रिझाइए ।
उसका अनुभव ज्ञान, जान कर लाभ उठाइये ।।२३।।

सिया गई उस पास, पति के वचन से प्रेरी ।
देखी उसने सती, अति झुर्रियों ने घेरी ।।
पत्र, पवन से यथा, काँप वह रही घनेरी ।
श्वेत केश से घिरी, बोलते करते देरी ।।२४।।
कर विनीत प्रणाम, सिया ने कहा, कुशल है? ।
वह बोली, हे देवि!, हरि की कृपा अतुल है ।।
आशीर्वाद मम हो, तेरा जीवन सफल है ।
सीते! सुव्रत नेम, तुम्हारा धर्म अचल है ।।२५।।
तज कर सब सुख स्वाद, बनकर पति अनुगामिनी ।
छोड़ भ्रम भय-भार, वन में भ्रमें भामिनी ।।
देकर सब कुछ दान, दमके ज्यों हो दामिनी ।
सीते! पति के संग, तू है स्वर्ग स्वामिनी ।।२६।।
पुण्य प्रेम की पुँज, पावन प्रियतम प्यारी ।
पति प्रीति में पगी, पत्नी कही वही नारी ।।
पाल प्रेम का पंथ, अर्प कर सम्पत् सारी ।
लेवे सुरपद जीत, रह गृह में सुखियारी ।।२७।।
सीते! इस जग बीच, पति-सा संगी नहीं है ।
सगे बन्धु गण बहुत, पति-सा अंगी नहीं है ।।
धन सम्पत् की चमक, पति-सी चंगी नहीं है ।
जिसका पति है साथ, उसको तंगी नहीं है ।।२८।।
मैथिलि! नारी नहीं, बने यथेष्टचारिणी ।
भर्ता साथ को त्याग, हो न उद्यान-विहारिणी ।।
विचरे निज पति साथ, रहे बनी अनुसारिणी ।
धर्म कर्म में रता, स्त्री है कल्याण-कारिणी ।।२९।।

भाग्यवती तू है, आई वन में राम सह ।
घरबार सभी त्याग, सघन वन में रही रह ।।
तेरा धर्म विचार, रही तव करनी है कह ।
जन्म लिया है जीत, तूने किया नहीं विरह ।।३०।।
सीता बोली, देवि!, सत्य है तेरा कहना ।
कहा पत्नी का धर्म, सदा पति-साथिन रहना ।।
सुख दुःख मिल पति संग, सर्वदा सम हो सहना ।
पातिव्रत अनमोल, सती का समझा गहना ।।३१।।
मेरा तो पतिदेव, प्रेम का पुँज परम है ।
कोमल कर्म कलाप, कथन में अधिक नर्म है ।।
वीतराग सम शान्त, कभी न होता गर्म है ।
उसका है यह लक्ष्य, पालना सत्य धर्म है ।।३२।।
पर नारी की ओर, कभी नहीं वह निहारे ।
मातृवत् सब जान, करे वह आदर भारे ।।
किंचित् मिथ्या कठोर, कथन कटु कुछ न उच्चारे ।
मेरे हित के हेतु, उपाय सब वह विचारे ।।३३।।
पर तेरे हे मात!, सुने जो उत्तम कहने ।
उनके ही अनुसार, रहेंगे मेरे रहने ।।
मेरा है यह धर्म, पति-संग संकट सहने ।
भर्ता-चरण मैं त्याग, देखूँ न बायें दहिने ।।३४।।
सावित्री के सदृश, रहूंगी साथिन बन कर ।
क्रोध मान अति लोभ, आलस दोष को हन कर ।।
मांगू कभी न वस्तु, कोई भी इच्छा मन कर ।
पति-धर्म चित्त-धार, रही मैं पक्का प्रण कर ।।३५।।

आशिष देकर उसे, वृद्धा ने भूषण दिये ।
माला सुन्दर हार, सिया गई पति पै लिये ।।
बोले वे, लो पहर, गये सब स्वीकृत किये ।
सीते ! रखना पास, तू जब तक जग में जिये ।।३६।।
नित्य कर्म कर सर्व, राम फिर भोजन भी कर ।
तृण-शय्या पर शयन, किये रहे सब रात भर ।।
प्रातः कर सब स्नान, कर्म कर विधि को अनुसर ।
अनुमति मुनि से मिले, सोच यह हुए अग्रतर ।।३७।।
मुनि-मण्डल ने कहा, राम! मुनि जन को पालो ।
फिरो वनों के बीच, आसुरी संकट टालो ।।
दारुण दशा निहार, आर्यगण को बचा लो ।
ऋषि-रक्षा के हेतु, भूप पद को सम्भालो ।।३८।।
घने वनों के मध्य, फिरना बहुत विचार से ।
दस्यु दुष्ट जन नीच, जीवन हरते मार से ।।
स्वस्त्ययन कर तभी, मुनि जन सब ने प्यार से ।
विदा किये श्री राम, निजकीय कुटी-द्वार से ।।३६।।
सीता लक्ष्मण सहित, घुसे वे वन में चल कर ।
यथा केसरी जाय, वनी में दौड़ा भय-कर ।।
भानु करे प्रवेश, मेघ-मण्डल में संचर ।
फिरते थे रघुराज, तथा वहाँ होकर निडर ।।४०।।

दूसरा सर्ग

* वन वन फिरते राम जी, आश्रम कुटी स्थान ।
देख ऋषि मुनि जनों को, पाते हर्ष महान् ।।१।।
जो थीं नूतन बस्तियां, मुनियों के शुचि धाम ।
सबको राघव देखते, वन-जन के भी ग्राम ।।२।।
सिक्त स्वच्छ आंगन सब, सर्व कुटी घरबार ।
पुष्पित हरित सुवाटिका, कदली सुकुंज क्यार ।।३।।
कुशा चीर से शोभते, आंगन घर मुनि द्वार ।
पुष्प बेल तरु-राज से, शोभित सर्व विहार ।।४।।
होम-कुण्ड की वेदियां, सब उपकरणों संग ।
चित्रित कुसुमों से सर्जी, रखतीं अद्भुत रंग ।।५।।
मृग-चर्म के वस्त्र बहु, वल्कल के बहु रूप ।
स्वच्छ नाना भान्ति के, शुचितर विमल सुरूप ।।६।।
कलश अमल अति राजते, घट नाना प्रकार ।
शुष्क कन्द मधु अन्न से, भरे हुए भण्डार ।।७।।
वीणा और सितार के, होते शुभ झंकार ।
राग रंग हरि गीत का, था वहाँ बहु विस्तार ।।८।।
मुनि-मण्डल मिलकर वहाँ, करते ज्ञान-विचार ।
नित्य-पाठ प्रवचन से, करते वे प्रचार ।।९।।
श्रुतिगीत से पूजते, करके बहु सत्संग ।
दूर देश तक भेजते, विमल विचार तरंग ।।१०।।

---
* दोहा।

उनके आँगन द्वार पर, शुक मैना शुभ बोल ।
मुनि-मन में भरते मधुर, रस रंजन अनमोल ।।११।।
उन के कुटी-उद्यान में, मोहक महा मयूर ।
नाच सहित रच रास को, भरता रस का पूर ।।१२।।
नीम आम की शाख पर, मृदु झूलना झूल ।
कोयल कोमल कण्ठ से, देती रस बहु मूल ।।१३।।
चिड़ियां विविध सुवेश में, करतीं अधिक किलोल ।
वनचर पशु बहु भान्ति के, रहे वहां थे डोल ।।१४।।
चर्वण करते वन-हरिण, कुटी-द्वार के पास ।
मुनि बालक से खेलते, पाते कभी न त्रास ।।१५।।
मिल कर भेड़ें बकरियां, गाय महिष गण साथ ।
करतीं जुगाली मिल सब, देखीं श्री रघुनाथ ।।१६।।
कामधेनु थी घर घर, पुष्ट स्वच्छ विनीत ।
दूध दधि घृत बहुत थे, स्वादु बहुत नवनीत ।।१७।।
मुनि-बालक उन वनों में, पलते बने निर्भीक ।
उनकी शिक्षा दीक्षा का, चलता कार्य ठीक ।।१८।।
धर्मवती मुनि पत्नियां, सत्य शील सन्तोष ।
धारे रहतीं कर्म-रत, कभी न करतीं रोष ।।१९।।
थे जीवन सादे सरल, चारु चरित आचार ।
उन के सद् उपदेश से, होता ज्ञान-पसार ।।२०।।
जांगल जन में ऋषि जन, विद्या धर्म कर दान ।
सभ्यता का विस्तार कर, करते कर्म महान् ।।२१।।
ऐसे स्थानों को निरख, सीता लक्ष्मण साथ ।
पाते हर्ष सुख बहुविध, सत्य पुरुष रघुनाथ ।।२२।।

कहीं एक दिन ठहरते, कहीं एक दिन रात ।
सप्ताह एक निवास कर, पक्ष मास बरसात ।।२३।।
मुनि-जन के सत्संग में, बैठ मनाते मोद ।
सेवा करते आप भी, वार्ता ज्ञान विनोद ।।२४।।

*जहाँ जहाँ श्री रघुपति जाते, मुनि-मण्डल मिल उन पै आते ।
फल फूलों की भेंटें लाते, उन पर माला हार चढ़ाते ।।२५।।
अपनी कुटिया बीच टिकाते, आदर कर सुहर्ष को पाते ।
देख उन्हें सानुज धनुधारी, वीर धीर योद्धा बलकारी ।।२६।।
अस्त्र शस्त्र से सज्जित भारी, तापस बन फिरता वन-चारी ।
ओज तेज का धाम निराला, प्रताप पुँज शुचि गुण वाला ।।२७।।
रूप रंग लख मोद मनाते, बार बार वे वारे जाते ।
अभिनन्दन करके गुण गाते, उनके यश को सर्व सुनाते ।।२८।।
उनका मेल मधुरतम पाके, मोहित मुनि मन मग्न बना के ।
उनके वचन अमीरस पीते, मन मोहन से जाते जीते ।।२९।।
प्रेम भरा अलाप था ऐसा, मन मोहक मिलाप था ऐसा ।
उनका शिष्ट-कर्म था वैसा, आकर्षक अति चुम्बक जैसा ।।३०।।
जिस पथ होता उनका आना, उधर लगा रहता जन-ताना ।
नदियां सागर को ज्यों जातीं, राम ओर त्यों जनता आतीं ।।३१।।
मधुकरियाँ जायें जहाँ रानी, राम पै जनता गई त्यों जानी ।
केन्द्र बन संघ-शक्ति के ही, भाजन बन प्रेम भक्ति के ही ।।३२।।
फिरते राघव हो मुनि वेशी, लेते सुख मुनि जन स्वदेशी ।
धर्म-मेघ बन झड़ी लगाते, असुर ताप को दूर भगाते ।।३३।।

* चौपाई।

घोर जहां थी निपट निराशा, हुई वहाँ उदय उषा-आशा ।
मुनियों ने निश्चय कर माना, शरण-स्थान राघव का आना ।।३४।।
शक्ति रूप होकर वे राजे, बिना छत्र चमर महाराजे ।
प्रिय रूप होकर अति सोहे, जन-मोहक ने मुनि मन मोहे ।।३५।।
वन-वन विचरते वनविहारी, विधु वदन बली विग्रह-धारी ।
बल-बीज वनी जन में बोते, आये विविध स्थान से होते ।।३६।।
शरभंग मुनि रहते जहाँ थे, ऋषि-संघ मिले भी वहाँ थे ।
शरभंग ऋषि शोभा शाली, रखते अपनी आभ निराली ।।३७।।
दिव्य देह उनकी थी ऐसी, अग्नि-शिखा निर्धूम हो जैसी ।
सूर्यसम वे चमक रहे थे, विद्युत् द्युति सम दमक रहे थे ।।३८।।
दीप रहा था रूप सवाया, विधि ने हो ज्यों आप बसाया ।
भक्ति शक्ति का मेल सुहाना, दीखता वहाँ बहुत लुभाना ।।३६।।
थे अनेक सेवक वर शूरे, उनके निकट बली वे पूरे ।
लाल वस्त्र सब ने थे धारे, सभी शस्त्र सह वीर करारे ।।४०।।
मुनि-मूर्ति रघुराज निहारी, दिव्य रूप अति विस्मय कारी ।
बोले लक्ष्मण! सुना यथा ही, देखा ऋषि है यह तथा ही ।।४१।।
मुनि ने देखा रघुपति जी को, लक्ष्मण सहित सीता सती को ।
स्वागत कर उनको बिठलाया, उसे उन्होंने सीस नवाया ।।४२।।
बोले ऋषि सुनो रघुराई, धन्य घड़ी मेरी यह आई ।
फली पुण्य जप तप की खेती, आज प्रभु तव दर्शन सेती ।।४३।।
मधुर मनोरथ फल हैं लाये, जब चल कर प्रभु यहां आये ।
करके दर्शन राघव तेरा, जन्म सफल है अब यह मेरा ।।४४।।
अति ही दीर्घ जीवन पाके, संयम साधन कर्म कमाके ।
ब्रह्मलोक सुगति है पाई, देर गमन में गई लगाई ।।४५।।

सुना आपका वन में आना, महा मनोरथ था यह ठाना ।
दर्शन करके सुरपद पाऊँ, आशा में यह आयु बिताऊँ ।।४६।।
अमृत दर्शन अब कर तेरे, हुए मनोरथ पूर्ण मेरे ।
ब्रह्मलोक महा सुखदाई, उस में है मम सुरति समाई ।।४७।।
वचन यह ऋषिवर जब बोला, त्यागा उसने भौतिक चोला ।
ज्योति मध्य सुशान्त वह हो ही, शुभ लोक को गया तब सो ही ।।४८।।
उत्तर क्रिया उसकी थी जो, की मुनि जन ने भी सब ही सो ।
उसी स्थान में मुनि जन नेता, मिले राम को सब शुभ वेत्ता ।।४६।।

तीसरा सर्ग

*उसी काल के बीच, राम पै आये मुनिजन ।
विद्या वेद में निपुण, ब्रह्मवित् कुशल गुणि-जन ।।
तापस सिद्ध अनेक, शम दम धारी तपोधन ।
फल जल वायु सेवी, साधक योगी यमीगण ।।१।।
दे वे उस को मान, बोले सहित अभिनन्दन ।
हो सर्वत्र विख्यात, जगत् में तुम रघुनन्दन ।।
प्रण सत्य में अतुल, धर्मधर शुचि जग-वन्दन ।
रक्षक धर्म आचार, आप हो कष्ट निकन्दन ।।२।।
वीर धीर गम्भीर, सज्जन योद्धा बड़े हो ।
वर्तमान युग बीच, सभी से बढ़े चढ़े हो ।।
नीति न्याय को पाल, व्रतों में अति कड़े हो ।
ऋषि-रक्षण के काज, हम में तुम ही खड़े हो ।।३।।

* रोला।

विनय अर्थयुत, आप, सुनिए कष्ट क्षमा कर ।
याचक जन की बात, सब यह अधिक कृपा कर ।।
राजा तुम हो नाथ, सब के त्रास भयहर ।
अतुल तेज बलधाम, सच्चे परम धर्मधर ।।४।।
राजा कर ले सर्व, देश जो नहीं बचाता ।
पाकर पातक पाप, पतन कुनरक को पाता ।।
जो जन पालक बने, धर्मी सुरपद को जाता ।
राजधर्म का सार, वेद पथ यही सुनाता ।।५।।
आप हमारे नाथ, होते हुए भी वन में ।
नहीं सुख शान्ति रहे, ऋषि मुनिगण को मन में ।।
रात दिवस ही हनन, रहता बना वन जन में ।
असुर अधिक संहार, करते ऋषि दमन में ।।६।।
आओ, राजन् देव!, स्थान वह तुम्हें बतायें ।
अस्थि खोपड़ी ढेर, गढ़ों में हम दिखलायें ।।
हाड़ पसलियां पड़ीं, दिखाकर कथन सुनायें ।
मुनि-मर्दन हो रहा, ज्यों वह दृश्य दिखायें ।।७।।
पम्पानद तक दौड़, कर रहे मार काट हैं ।
आये दिन वे लोग, कर रहे लूट पाट हैं ।।
खाते मानव मांस, लूटते घाट बाट हैं ।
बहुत असभ्य कुशील, निरे वे पाप हाट हैं ।।८।।
कुटिल कपट की खान, क्रोधी कुरूप कुवेशी ।
काले क्रूर कुढंग, असुर हैं मुनि जन द्वेषी ।।
कलह-कर्म रच आप, रहे हैं मार विदेशी ।
कथा कहें कहां तक, हैं ये बहुत ही क्लेषी ।।६।।

ले जाते हैं बहुत, बालक बाला हरण कर ।
माया मोह रच वे, आते हैं अनुसरण कर ।।
देते धोखा अधिक, रूप रंग-अनुकरण कर ।
करें अकारण हनन, हर्ष करें मुनि-मरण कर ।।१०।।
परदेशी की त्रास, अब हम सह नहीं सकते ।
और अधिक कुछ बात, तुम को कह नहीं सकते ।।
जानो सब संक्षेप, वन में रह नहीं सकते ।
तुम से तो अतिरिक्त, सुशरण गह नहीं सकते ।।११।।
बनो हमारी ढाल, स्थान शरण बन जाइए ।
करो विदेशी दूर, ऋषि-जन को बचाइए ।।
असुर रूप अति भार, भूमि इससे हटाइए ।
भारत का भू भाग, तुम यह शान्त बनाइए ।।१२।।
सुन कर मुनि-जन-कथन, कहा रघुपति ने तब ही ।
आज्ञाकारी राम, है ऋषि मुनि का अब ही ।।
मेरा है यह धर्म, मुनि दुःख हरना सब ही ।
लूँगा सेवा पाल, समय मिला मुझे जब ही ।।१३।।
पितृ-प्रण के हेतु, बसा हूँ वन में आकर ।
मैं रहता हूँ यहाँ, चक्कर वन में लगाकर ।।
लूंगा पुण्य महान्, अब मुनि गण को बचाकर ।
आर्य जनता-पाल, दैशिक सेवा कमा कर ।।१४।।
मुनि दल हर्षित हुए, सुन रघुपति के कथन को ।
साधुवाद के नाद, गूंज गए सब पथन को ।।
हुए निश्चित निश्चिंत, जान मुनि, असुर मथन को ।
बहुत पास ही समझ, असुर-पर-राज पतन को ।।१५।।

मुनि मण्डल से विदा, हुए रघुराज विचरते ।
सुतीक्ष्ण ऋषि पास, आये वन में विहरते ।।
उसने स्वागत दान, करके विधि को सिमरते ।
कुशल क्षेम कहा सब, मधुर तर वचन उचरते ।।१६।।
कहा ऋषि ने, राम!, सुन कर तव आगमन को ।
हुआ मुझे त्यों हर्ष, जल से ज्यों सुमन को ।।
आश्रम यह सनाथ, बना पा विधुवदन को ।
राजा हो रघुराज, दस्यु-दल दुष्ट दमन को ।।१७।।
हो कर नम्र विनीत, रघुपति बोले, ऋषिवर! ।
रहने को शुभ स्थान, बताओ जो हो सुखकर ।।
वह बोला हे देव!, स्थल यही है श्रमहर ।
सुन्दर अति रमणीक, जल फल सहित शुचितर ।।१८।।
मुनि अन्न कर ग्रहण, रात्रि रहे रघुराई ।
प्रातः कर शुचि स्नान, उन्होंने अर्चा निभाई ।।
बोले ऋषि पै आ, विनय से सब सुखदाई ।
मन चाहे मुनि-मेल, वन में सिया सह भाई ।।१६।।
मुनि ने स्वस्ति साथ, दे कर उनको विदाई ।
गले लगा फिर मिला, सुहृद्पन वह दर्शाई ।।
मुनिजन स्थान निवास, भूमि दिशा दिये बताई ।
उसने कर अनुगमन, राम से अनुमति पाई ।।२०।।
*वहाँ से चलते समय में, दो खड्ग धनु वाण दे ।
भर्त्ता देवर को सजाया, सिया ने बहु मान दे ।।

* गीतिका।

दोनों भाई बान्ध शस्त्र, वीरता को पान दे ।
शोभे तीक्ष्ण हो रवि से, रक्षा में जी जान दे ।।२१।।
पति देवर दोनों देखे, सिया ने तब जा रहे ।
गर्म समर को दो योद्धा, हो सन्नद्ध आ रहे ।।
उनके मुखड़ों पर तब थे, वीर भाव दिखा रहे ।
दमन शमन के चिन्ह चक्र, चमक झलक जमा रहे ।।२२।।
स्त्री-सुलभ स्वभाव से, पति! आगे न जाइए ।
कहा सीता ने मधुर तर, चरण नहीं बढ़ाइए ।।
चित्रकूट में चल बसिए, शान्त काल बिताइए ।
वन में तापस बन मन में, द्वेष वैर न लाइए ।।२३।।
कामना से उपजते हैं, दोष ताप त्रय बड़े ।
पर-स्त्री-गमन मिथ्याभाषण, दोष दो ये हैं कड़े ।।
स्वप्न तक में भी कभी न, नयन तव पर से लड़े ।
कामना पर-कामिनी की, तेरे भीतर न गड़े ।।२४।।
कभी आप में नहीं हुआ, असत्य होगा न कभी ।
राम है त्रयकाल सच्चा, जानते हैं जन सभी ।
बिना वैर करना हिंसा, इसके चिन्ह हैं अभी ।।
चलो पीछे लौट कर अब, कह रही हूँ मैं तभी ।।२५।।
आप दोनों शस्त्र लेकर, आज वन को हो चले ।
हाथ में हथियार लेते, वीर-बल उछले हिले ।।
वीर-कर में शस्त्र है ज्यों, अग्नि में इन्धन मिले ।
पकड़ते कृपाण कर में, शूर वीरता न टले ।।२६।।
वन में फिरते वन जनपर, शस्त्र के प्रहार से ।
करोगे भयभीत वनचर, हनन वध अति मार से ।।

वनवासी त्रस्त होंगे, आपके हथियार से ।
इसलिए उपराम बनिए, अधिक वन-संचार से ।।२७।।
बोले राघव, अति उत्तम, वचन तू ने हैं कहे ।
विद्या वंश विचार गुण गण, वचन तेरे कह रहे ।।
है देखा तू ने सीते, मुनि गण मिल नित्य नये ।
हैं कहते असुर-दल-कृत, दुःख जायें न अब सहे ।।२८।।
हैं रहते नित्य कर्म में, ज्ञान ध्यान विचार में ।
वन्य-वस्तु खाते हैं वे, रह धर्म आचार में ।।
कलह-कर्म छल कपट रहित, हैं मृदु व्यौहार में ।
फिर भी शान्ति नहीं पाते, रहते वन विहार में ।।२९।।
क्रूरकर्मी, दस्युदल बली, रहते आस पास हैं ।
नित्य मर्दन दुष्ट करते, उन्हें देते त्रास हैं ।।
भीत रहते रात दिन सब, जितने मुनि-निवास हैं ।
प्रति दिन मुनि कह रहे हैं, पालो हमें, तव दास हैं ।।३०।।
असुरदल दिन रात फिरते, होम यज्ञ बिगाड़ते ।
राह चलतों को घमंडी, दुष्ट जन हैं ताड़ते ।।
कुटी छप्पर द्वार जो कुछ, मिले उसे उखाड़ते ।
लहू पीते ऋषि हन कर, उदर उन के फाड़ते ।।३१।।
मुनि बोले तेरे सम्मुख, जन का रक्षण कीजिए ।
शरण-स्थान बनो हमारे, दीन जन पर रीझिए ।।
पालना का प्रण कर के, वचन हमको दीजिए ।
धर्म-रक्षण का यह बीड़ा, हाथ अपने लीजिए ।।३२।।
दीन दशा देख उन्हीं की, सदय दिल से दे दिया ।
ऋषि-पालन का वचन शुभ, प्रण मैंने है किया ।।

जन दीन रक्षण धर्म हेतु, वीर-कंकण है लिया ।
प्रजा-रक्षा धर्म है शुचि, जानती है तू सिया ।।३३।।
क्षत्रिय जन शस्त्र लेते, दुःख नाद न हो सके ।
दुष्ट दस्यु असुर त्रास से, दीन अबल न रो सके ।।
आततायी अत्याचारी, नहीं सुख में सो सके ।
देश के धनभूमि सम्पत्, पर न कोई खो सके ।।३४।।
जान निश्चय से सती तू, राम का जो वाण है ।
निरपराधी दीन जन के, हरे कभी न प्राण है ।।
उच्च लक्ष्य मम धनु का, दीन जन का त्राण है ।
वीर का इस धर्म से ही, होता पद निर्वाण है ।।३५।।
सत्य वचन सीता कह कर, वाक् बोली सुखकरी ।
करनी कहनी सब पति तव, सत्य शुभ से है भरी ।।
दया दुर्बल दिल में लिये, उस समय थी मैं डरी ।
जाना धर्म-सार सारा, सुनी वाणी जब खरी ।।३६।।
ऐसे वन में रह चिर बहु, ऋषि स्थान निहारते ।
शक्ति-तेज से मुनिजन के, कष्ट सर्व निवारते ।।
रक्षा करते रात दिन वे, पाप जन को टारते ।
जिधर जाते वे उधर से, असुर भगते हारते ।।३७।।
विचरते दस वर्ष बीते, ऋषि-जन सहवास में ।
आये रघुपति फिर, फिर कर, उस मुनि के निवास में ।।
ऋषि सुतीक्ष्ण रघुपति से, मिले रहे सुखरास में ।
तत्त्व धर्म कर ज्ञान चर्चा, मधुर कथन सुहास में ।।३८।।

चौथा सर्ग

* बहुत दिवस तक वास कर, सुतीक्ष्ण ऋषि पास ।
एकदा बोले रघुपति, हे मुनि सुगुण निवास ।।१।।
मैंने सुना है गुण-निधि, ओज तेज-भण्डार ।
अगस्त्य ऋषि हैं शुभ मति, वन में मुनि सुखकार ।।२।।
कौन दिशा में है ऋषि?, कौन स्थान का नाम? ।
रहता कितनी दूर है?, वह बल यश का धाम ।।३।।
कामना मेरी है यह, रह कर उस के स्थान ।
मैं उसकी सेवा करूँ, दे कर आदर मान ।।४।।
हे रघुपति!, मुनि ने कहा, मेरा था हि विचार ।
मिलिए आप अगस्त्य को, जा कर तो इक बार ।।५।।
अन्तर योजन एक पर, रहता उसका भ्रात ।
अति सुन्दर वह स्थान है, वहाँ बिताना रात ।।६।।
आगे योजन एक पर, वह बसता शुभ भाग ।
वीर बली ज्ञानी बड़ा, सहित त्याग अनुराग ।।७।।
बहुत रम्य भूभाग है, पुष्कल हैं फल फूल ।
यदि चाहो जाना वहाँ, तो सब है अनुकूल ।।८।।
सीता लक्ष्मण साथ ले, मुनि को कर प्रणाम ।
स्वस्त्ययन से हो विदा, चले वहां से राम ।।६।।
सायं समय पहुँच कर, नित्य कर्म को पाल ।
अगस्त्य-भ्राता को मिले, रघुपति दीन दयाल ।।१०।।
एक रात रह कर वहाँ, प्रातः कर प्रस्थान ।
दिन रहते मुनि भूमि में, पहुँचे वे महान् ।।११।।

* दोहा।

बोले लक्ष्मण को तभी, देख रक्षित वनराज ।
दीखे स्थान समीप वह, है जहां महाराज ।।१२।।
पत्र पुष्प फल बहुत हैं, हरिण रहे हैं घूम ।
मुनि के बल तप तेज की, है इस दिश में धूम ।।१३।।
जभी से दक्षिण में हुआ, इसका यहां सुवास ।
मार धाड़ होती नहीं, असुर न देते त्रास ।।१४।।
आकर इस मुनि-राज ने, किये असुर सब शान्त ।
तभी शरण-स्थान है, इस वन का यह प्रांत ।।१५।।
बसे चौदह सहस्त्र हैं, इस वन में वे लोग ।
असुर विदेशी क्रूर जो, बन भूमि के रोग ।।१६।।
असभ्य असुर जन हैं सभी, धर्म सत्य से हीन ।
रहित आचार नियम से, दया रहित हैं दीन ।।१७।।
असुर बस्ति का नाम है, दण्डक वन-जन-स्थान ।
वहीं अनार्य वे असुर, रहते पाप निधान ।।१८।।
आश्रम भूमि घेर कर, चार दिवारी डाल ।
दुर्गाकार सुस्थान कर, रहता वहीं दयाल ।।१६।।
जन-स्थान की सीमा पर, रहता ऋषि निर्भीक ।
गौरव बल प्रताप से, रखता पर को ठीक ।।२०।।
पहला है मुनिवर वही, विन्ध्याचल कर पार ।
दूर देश में आ बसा, शक्ति धर्म को धार ।।२१।।
तेज पुण्य प्रताप से, 'अगस्त्य' हुआ विख्यात ।
उसके बल गुण ज्ञान की, फैली वन में बात ।।२२।।
उसका ऐसा तेज है, असुर दस्यु दुःखकार ।
मैली दृष्टि से कभी, इधर सकें न निहार ।।२३।।

वश में करके काल को, रहा मरण को रोक ।
जन-हित हेतु जीता है, रक्षण को सभ्य लोक ।।२४।।
आर्य-गण का हो भला, मुनि जन बने न भीत ।
तप कर उस मुनि राज ने, मरण लिया है जीत ।।२५।।
उसके दर्शन नित्य कर, सेवा कर के आप ।
काल बिताऊँगा यहीं, मैं हे बन्धु अपाप! ।।२६।।
बातें करते परस्पर, देख ऋषि का द्वार ।
बोले राघव अनुज को, दो आप समाचार ।।२७।।
द्वारपाल को जा कहा, उसने विधि के साथ ।
मिलने को मुनि देव को, आये हैं रघुनाथ ।।२८।।
*द्वारपाल ने दौड़ सुनाया, पत्नी बन्धु सह राघव आया ।
मुनिवर को वे देखा चाहें, आज्ञा हो तो भीतर आयें ।।२९।।
सुन कर वचन अमी रस वाला, उठे तब मुनि तज अग्निशाला ।
बोले तब, अहो प्रतिहारी, वचन कहे तूने सुखकारी ।।३०।।
मधुर कामना थी यह मेरी, दें दर्शन राघव इक बेरी ।
चट पट जाओ उनको लाओ, मस्तक आदर सहित झुकाओ ।।३१।।
आदर से वह आकर के ही, मस्तक अधिक झुकाकर के ही ।
बोला, देव प्रभु रघुराई, चलिये आप सिया सह भाई ।।३२।।
राघव भीतर को थे जाते, अगस्त्य मुनि सम्मुख थे आते ।
बीच मिले दोनों बलधारी, विनय आदर से शिष्टाचारी ।।३३।।
उन तीनों ने सीस नवाया, मुनि ने भी बहु मान दिखाया ।
स्वागत कर पूजे गुण गेही, ऋषि-मुनि पालक धर्मी वे ही ।।३४।।

* चौपाई।

बोले मुनि, तुम हो वन राजा, ऋषि-मुनि जन के महाराजा ।
अतिथि प्रिय हो तीर्थ भारे, वनी जनों के हो रखवारे ।।३५।।
वनज वस्तु फल फूल चढ़ाते, अगस्त्य मुनि सहर्ष थे पाते ।
दिव्य धनुष दे रघुपति जी को, कहा ऋषि ने वीर दमी को ।।३६।।
देव धनुष मेरा स्वीकारो, वाण-कोश दैवी सम्भारो ।
सब हैं अमोघ सुरसर ये ही, वार अचूक कहे इन के ही ।।३७।।
लो कृपाण लपलपाती, पैनी धार से चमचमाती ।
दिव्य शस्त्र से राघव त्यों ही, शोभे, किरण से भानु ज्यों ही ।।३८।।
नीति निपुण सुवीर-स्वभावी, देख ऋषि ने घटना भावी ।
राघव जी तब अधिक सजाये, ऋषि जनों के मुखिया बनाये ।।३६।।
{होता है वह ही जन नेता, रहे सज्जित हो शत्रु-जेता ।
वीर धीरवर बहु प्रतापी, मति गति तीक्ष्ण विचार व्यापी} ।।४०।।
कहा ऋषि ने, यह वैदेही, वन में आई सुख तज के ही ।
इसको कष्ट न होवे कोई, करो सब काम रघुपति सो ही ।।४१।।
यहां रहो सीता सह भ्राता, तुम बनकर मुनिजन के त्राता ।
सुन्दर स्थान शुचि है हमारा, दिल बहलेगा बहुत तुम्हारा ।।४२।।
बोले राघव, मुनि! सब ज्ञाता, आर्य जन के अति सुख दाता ।
ऐसा मुझको स्थान बताना, जहां मिलें जल फल सुख नाना ।।४३।।
वहां रह सब काल बिताऊँ, नित्य मुनि जन सेवा निभाऊँ ।
यह सुन कर मुनि हो कर ध्यानी, मौन रहे चिर तक वर ज्ञानी ।।४४।।
नयन खोल मुनि वचन उच्चारे, उत्तर राघव! सुनिए प्यारे ।
योजन एक दूर है ऐसा, आप स्थान चाहो भी जैसा ।।४५।।
पंचवटी वन है अतिनामी, तरु वहां है गगन अनुगामी ।
हरिण के झुण्ड स्वेच्छाचारी, पंछी गण है गगन विहारी ।।४६।।

हरित भरित सुन्दर वनमाला, पत्रित पुष्पित शोभा शाला ।
फलित पेड़ सब बहुत सुहायें, लता सब कुसुमित लहलहायें ।।४७।।
कन्द मूल होते हैं केले, जब चाहे कोई भी ले ले ।
शीतल स्वच्छ शुचि है पानी, जा बसो वहां तुम वरदानी ।।४८।।
सदाचार में रहते पूरे, शक्ति बुद्धि में नहीं अधूरे ।
तुम समर्थ हो रक्षा धर्म में, महा बली हो वीर कर्म में ।।४६।।
संयम से उस स्थान विराजे, पालोगे मुनिजन हे राजे! ।
यह कह कर पथ-चिन्ह बताये, अतिथि जनों ने सीस झुकाये ।।५०।।
मुनि-अनुमति ले सीता-स्वामी, चले उधर सानुज अनुगामी ।
पथ जाते अति दीर्घ देही, उनको मिला नर अधिक स्नेही ।।५१।।
पूछने पर मधुरतर वाणी, बोला रघुपति से वह प्राणी ।
दशरथ का मैं हूँ अति नेही, मित्र सखा सुहृद मन से ही ।।५२।।
अरुण-पुत्र हूँ मैं वनचारी, जटायु नाम गगन-संचारी ।
मेरी माता नाम्नी श्येनी, पतिव्रता सुत को सुख देनी ।।५३।।
नाम संपाती मेरा भाई, वनवासी है सुजन सहाई ।
यदि चाहो तो बन अनुसारी, रहूँ मैं साथ तव आज्ञाकारी ।।५४।।
पितृ-मित्र वन में मिल पाया, उसे राम ने सीस नवाया ।
संगी बनाया वह विश्वासी, अग्र बढ़े रघुपति सुखरासी ।।५५।।
पंचवटी स्थान जभी आया, राघव का मन चित्त हर्षाया ।
कहा उन्होंने, लक्ष्मण! भाई, स्थान रहा है बहुत सुहाई ।।५६।।
भूमि-भाग है बहुत सुहाना, सुपुष्प पुष्करिणी में नाना ।
कमल कुसुम सुगन्धि निसराते, शोभ रहे वन को महकाते ।।५७।।
हरी भरी सोहे वन राजी, तरु पर पुष्पित बेल विराजी ।
हैं हरिण फिर रहे बहुतेरे, वन कुर्कट हैं हंस घनेरे ।।५८।।

गिरि-शिखर भी सोहें छोटे, पेड़ बड़े हैं ऊँचे मोटे ।
वनचर पशु फिरते हैं दौड़े, घास-स्थल सम लम्बे चौड़े ।।५६।।
शुचिकरी गोदावरी ऐसी, चमक रही इन्दु-कला जैसी ।
पर्ण-कुटी तुम यहीं बनाओ, सामग्री सभी वन से लाओ ।।६०।।
हम सब साथ जटायु रहेंगे, सर्व वार समय के सहेंगे ।
कुटी निर्माण में हो न देरी, चतुर! चातुरी चमके तेरी ।।६१।।

पांचवाँ सर्ग

*अनुमति पा कर भ्रात की, लक्ष्मण कुशल महान् ।
पर्ण-कुटी रचने लगा, करके सर्व विधान ।।१।।
भूतल समतल विमल कर, बूटे घास उखाड़ ।
वृक्ष-डाल को काट कर, लम्बे खम्बे गाड़ ।।२।।
लम्बी चौड़ी भूमि पर, सुदृढ़ छप्पर डाल ।
पर्ण-कुटी उसने करी, तैयार तभी तत्काल ।।३।।
गोदावरी जल में तब, कर के वह शुभ स्नान ।
वनज फूल फल को लिए, आया वहां सुजान ।।४।।
बोला तब रघुराज को, स्वस्ति मंगल साथ ।
करिए शुभ प्रवेश अब, कुटिया में रघुनाथ ।।५।।
स्वस्त्ययन वास्तु शान्ति, कर सब सीता संग ।
गये आश्रम स्थान में, पालन कर विधि-अंग ।।६।।
गले लगा कर अनुज को, हो हर्षित कर प्रीत ।
बोले राघव प्रेम से, बन्धो! बड़े विनीत ।।७।।

* दोहा।

मुझे हुई प्रसन्नता, इतनी आज अपार ।
यह आलिंगन भेंट है, मेरा तुझको प्यार ।।८।।
वीर धीर अति चतुर तू, जब है मेरे पास ।
जीवित है मेरा पिता, करता निकट निवास ।।९।।
तेरे होते वीर वर, मुझे कष्ट है कौन ।
तेरा बाहु बुद्धि-बल, कर रहा कुदिन गौण ।।१०।।
रहने लगे ऐसे तब, रघुपति दीन दयाल ।
हंस सरोवर में रहे, वन में मोर मराल ।।११।।
निर्भय जैसे केसरी, यूथाधिप गजराज ।
बसते सीता अनुज सह, तथा श्री महाराज ।।१२।।
*एकदा प्रातः श्री रघुराई, जब ऋतु शुभ हेमन्त आई ।
सीता लक्ष्मण सहित नहाने, जा रहे थे सुकर्म निभाने ।।१३।।
कहा अनुज ने, राघव! भाई, समय तुझे है यह सुखदाई ।
जब हेमन्त ऋतु थी आती, मन तेरे को क्रीड़ा भाती ।।१४।।
जाते थे तुम नित्य सबेरे, होते नदी पर खेल बहुतेरे ।
खेत बने हैं श्वेत सुहाने, रजत रूप हैं बहुत लुभाने ।।१५।।
जड़ी रजत में नीलम जैसे, खेत फभें कोरे में ऐसे ।
उस पर सूर्य-किरण सुहाती, नील रत्न में लाल बसाती ।।१६।।
ओस की बूँदें लहलहायें, आभा मोती की दिखलायें ।
आर पार किरणें कर जातीं, सुवर्ण तारें शोभा पातीं ।।१७।।
हरे भरे हैं खेत सुहाते, जब गोधूम बढ़े मन भाते ।
खेत धान के झूल रहे हैं, कुसुम्भा शष्प फूल रहे हैं ।।१८।।

* चौपाई।

झलमल करती झूले खेती, हरियाली है तृप्ति देती ।
ठिठुर रहे हैं, जीव बिचारे, पशु पक्षी अति शीत के मारे ।।१६।।
गिरि शिखर सब श्वेत सुहाते, हिम लदे हैं मन को लुभाते ।
हिमाचल सा दृश्य दिखाते, रजत रूप हो शोभा पाते ।।२०।।
चिट्टी चादर हिम की लगाये, सम स्थल रहे शोभा पाये ।
तुषार भार लिए वन राजी, चहुँ ओर है बहुत विराजी ।।२१।।
पानी पीने गज हैं आते, हिम-हत फिरें सूँड लौटाते ।
तृषित पंछी चूँच चलाते, हिम के होते उदक न पाते ।।२२।।
नारी नर सब अंग सिकोड़े, काँप रहे हैं नाक मरोड़े ।
कुहरा सब स्थलों पर छाया, धुआँ धार जग गया बनाया ।।२३।।
ऐसे शीत समय में प्रातः, पला सुख में भरत वर भ्राता ।
सरयू नदी में कैसे नहाता, होगा उस में गोते लगाता ।।२४।।
पुर में रह बन तव अनुयायी, उसने निज गति उच्च बनाई ।
व्रत नियम सब कर्म निभाता, चरण चिन्ह पर चलता जाता ।।२५।।
जिसका सुत इतना गुणगेही, बनी कलह-घर क्यों कैकेयी ।
जिसका पुत्र है परम प्रेमी, उसने क्यों तोड़ी शुभ नेमी ।।२६।।
बोले रघुपति लक्ष्मण प्यारे, उचित नहीं ये वचन तुम्हारे ।
निन्दो नहीं मध्यमा माता, भरत-कथा कहिये मुनि त्राता ।।२७।।
भरत-कथा की मीठी बानी, बोलो बहु अमृत बरसानी ।
उसके यश के वर्णन जेते, हैं मम मन तन को सुख देते ।।२८।।
तू मैं भरत शत्रुघ्न भाई, कदा मिलेंगे गले मिलाई ।
धन्य घड़ी होगी कब ऐसी, भरत मेल की अमृत जैसी ।।२६।।
यह कह वे आँखें भर लाये, राघव ने बहु अश्रु गिराये ।
स्नान ध्यान सब करके वे ही, आ कुटी पर सहित वैदेही ।।३०।।

त्रयी विद्या सम तीनों राजे, शोभे कुटिया बीच विराजे ।
नित्य नियम में रत थे सो ही, एक चित्त मन से वे हो ही ।।३१।।
चित्रा चन्द्र ज्यों मिले सुहाते, सिया राम त्यों शोभा पाते ।
चारु चरित से थे चमकाते, चर्म-चक्षु चहुँ ओर फिराते ।।३२।।
मुख मोहक था रघुपति जी का, महा मधुर लगता अति नीका ।
उस पर तेज था झलमलाता, उदित रवि का दृश्य दिखाता ।।३३।।
नयन कमल थे अधिक रसीले, रूप रंग उनके चमकीले ।
मोहिनी मूर्ति महा प्यारी, मधुर मनोहर लगती सारी ।।३४।।
चुम्बक सम आकर्षण कारी, विद्युत् वत् दिव्य द्युति धारी ।
मुनिवेश में फभे वे त्यों ही, बाल-रवि नभ नील में ज्यों ही ।।३५।।
ऐसे एक समय में नारी, आ निकली वहाँ एक बारी ।
वृद्धा अभद्रा बहुत कुरूपा, वक्रभाषिणी कुटिल विरूपा ।।३६।।
कुलटा काम-हता कुकठोरा, बाल बखेरे लगती घोरा ।
राघव-रूप रंग ने मोही, वासना वश विवश बन सोही ।।३७।।
बोली, कौन कहो हो कैसे, वन में तुम रहते हो वैसे? ।
फिरते हो क्यों जटा बढ़ाये, पत्नी साथ तुम क्यों हो लाये? ।।३८।।
हैं असुर इस स्थल के वासी, बसते यहाँ विदेश निवासी ।
उसके सुन कर वचन करारे, उत्तर स्वयं राम-उच्चारे ।।३६।।
'रामचन्द्र' नाम मैं नामी, वह लक्ष्मण भ्राता अनुगामी ।
भार्या मेरी है यह सीता, पतिव्रता है बड़ी विनीता ।।४०।।
बड़ा पुत्र दशरथ का मोहे, मानो यदि निश्चय हो तोहे ।
पितृवचन से मैं मुनिवेशी, बसता हूँ वन में स्वदेशी ।।४१।।
मैं भी तो अब जाना चाहूँ, नाम गाम पहचाना चाहूँ ।
कौन आप हो ऐसे आर्ती?, एकाकिनी विचर विलसार्ती ।।४२।।

वासना-वश वह तब बोली, कामरूपिणी हूँ अनमोली ।
शूर्पणखा मैं हूँ सुहानी, असुरी शक्तिमती वन-रानी ।।४३।।
यदि सुना हो मेरा घराना, लंका द्वीप है मम ठिकाना ।
बड़ा बन्धु है रावण मेरा, कुम्भकर्ण है बली घनेरा ।।४४।।
कहा विभीषण धर्मानुरागी, वैर द्वेष का है वह त्यागी ।
खर-दूषण हैं बन्धु निराले, हैं बड़े अति शक्ति वाले ।।४५।।
जन स्थान में बस्तियां डाले, रहते हैं बल में मतवाले ।
मर्दन मुनि का है मन भाता, आर्य संघ उन्हें न सुहाता ।।४६।।
तुझे देख मैं हुई तुम्हारी, मंत्र-मुग्ध बनी रति-मारी ।
रखिए पास मुझे ज्यों जानो, अपनी कर के मुझ को मानो ।।४७।।
बनी स्वच्छन्द विचर रही हूँ, किसी जन के अधीन नहीं हूँ ।
मेरे संगी तुम बन जाओ, मन माना वन में सुख पाओ ।।४८।।
मुझे अपने योग्य विचारो, प्रेम भाव से मुझे निहारो ।
सीता है कुरूपा कराला, लम्बोदरी वृद्धा विकराला ।।४९।।
अभी इसे तो मैं हूँ खाती, लक्ष्मण का भी भोग लगाती ।
फिर तो कभी न जाऊँ छोड़ी, होगी सुख में मम तव जोड़ी ।।५०।।

छठा सर्ग

* निकल अचानक आ खड़ी, बहुत बड़ी वाचाल ।
तुच्छ वासना में पड़ी, लाज शर्म को टाल ।।१।।
अपर पुरुष की कामना, करती तज संकोच ।
खाने को सीता अनुज, हत्यारी रही सोच ।।२।।

* दोहा।

काली कुरूपा जो अति, वर्णन कर निज रूप ।
सर्व सुन्दरी सिया को, कहती बहुत कुरूप ।।३।।
कैसी वास्तव में यह, कौन कर्म है ढंग? ।
इसका क्या आचार है, इस में कौन तरंग? ।।४।।
कोई कुलटा है कड़ी, कुटिल कर्म की कुँज ।
कामिनी कलुष काम से, बनी पाप की पुँज ।।५।।
उसके भीतर क्या भरा, लखने को रघुराज ।
उसको बोले वचन बहु, रचकर व्यंग व्याज ।।६।।
सीता मेरी पत्नी यह, रहती है मम संग ।
मैं एक पत्नीव्रत को, कभी न करता भंग ।।७।।
पत्नीवान् पर-पुरुष की, तुझे हुई क्यों चाह ।
तू ने तो सोचा नहीं, दुःख सौतीला डाह ।।८।।
प्यारी पत्नी का व्रती, मुझको ले तू जान ।
मेरे भाई अनुज से, क्यों न करो पहचान ।।६।।
काम-कामना से हता, तत्क्षण मुख को मोड़ ।
छोड़ राम को चल पड़ी, गई लखन पै दौड़ ।।१०।।
बन्धु सैन संकेत से, गए समझ सब सार ।
उसके मन कुल कर्म का, सब आचार विचार ।।११।।
बोली लक्ष्मण को तभी, तू है सुन्दर रूप ।
मुझको रखिए पास अब, मैं हूँ तव अनुरूप ।।१२।।
मुझ सी कोई सुन्दरी, तुझ को मिले न और ।
सभी देश फिर देखिए, ढूँढो सब ही ठौर ।।१३।।
साथी मेरे बन रहो, करो वनों की सैर ।
सुख भोगो निर्भय फिरो, हो स्वच्छन्द निर्वैर ।।१४।।

वचन-चतुर उस पुरुष ने, हलकी हंसी संग ।
कहा उसको, मेरी तुम, तज दो प्रीति-उमंग ।।१५।।
काया मन से वचन से, मैं हूँ राघव-दास ।
दासी बन रहना भला, क्यों चाहो मम पास ।।१६।।
तेरे यौवन रूप पर, किसकी गिरे न लार ।
रघुपति को जा कामना, फिर कहो एक बार ।।१७।।
हंसी को समझी नहीं, काम इच्छा अभिभूत ।
कामिनी कर उतावली, आई ज्यों हो भूत ।।१८।।
उसने राघव को कहा, सिया कुरूपाकार ।
चीर फाड़ इसको अभी, खाती हूँ दे मार ।।१६।।
फिर तो मेरे साथ तुम, लोगे सुख आनन्द ।
यह कह लपकी सिया पर, हनन हेतु मतिमन्द ।।२०।।
ज्यों मृगी पर सिंहनी, लपके दान्त निकाल ।
दशन नखों से नोचने, लगी तथा विकराल ।।२१।।
वन की बिल्ली ज्यों पड़े, देख के शिशु मराल ।
ऐसे सीता पर पड़ी, वह बन करके काल ।।२२।।
तीखे धारा खड्ग से, नखयुत हस्त पसार ।
सीता को हनने लगी, साथ दशन प्रहार ।।२३।।
उसे रोक कर राम ने, कहा लखन को सोच ।
कुपित क्रूरा कामिनी, ले न सिया को नोच ।।२४।।
भूखी मानव मांस की, लिये रक्त की प्यास ।
काम कपट की है कला, कोरी कुकर्म-रास ।।२५।।
तज कर अब परिहास को, इसे बताओ ताड़ ।
इस हिंस्रा की हेकड़ी, अभी दीजिये झाड़ ।।२६।।

आज्ञा पाकर वह बली, आया वहां तत्काल ।
लगा भगाने तब उसे, तीखी खड्ग निकाल ।।२७।।
नाक कान उसके कटे, कर ऊँचा चीत्कार ।
वह भागी जन-स्थान को, करती बहुत पुकार ।।२८।।
*कोप में हुई आग बगोला, लिये रक्त से लत पत चोला ।
कर के ऊँचा हाथ चिल्लाती, असुर-स्थान को थी वह जाती ।।२९।।
वेणुवन में बिजली जैसे, जा गिरी जन-स्थान में ऐसे ।
कोलाहल मचा वहाँ भारा, धधक उठा जन-वन वह सारा ।।३०।।
खर ने देखी अश्रु बहाती, बहिन पड़ी हाहाकार मचाती ।
बोला वह, कह बहिन कहानी, कौन कहां वह है अभिमानी? ।।३१।।
तुझे किसने विरूप बनाया, काल कहो किसका है आया ।
सर्प अंगुलि से किस छेड़ा, किसका डूबा चाहे बेड़ा? ।।३२।।
किसने की तू अंग-विहीना, रुधिर तुझे किसका है पीना ।
किसने तुझ से करके हांसी, डाली अपने गल में फांसी ।।३३।।
है तुझे जिस जन ने सताया, उसकी काटूँगा मैं काया ।
कूकर काक गीध बहुतेरे, लेंगे उसका माँस उधेड़े ।।३४।।
कुपित देखकर वह निज भाई, बोली देती बहुत दुहाई ।
दशरथ के सुत हैं बल-धारी, राघव लक्ष्मण दो वनचारी ।।३५।।
उनके सह तरुणी है नारी, भूषण-भूषित भामा भारी ।
सुन्दर जग में उसके जैसी, मिले न ढूँढे है वह ऐसी ।।३६।।
उसे चाहती थी मैं लाना, असुर-पति के पास ले जाना ।
इस कारण बनी अंग-हीना, करी गई मैं दुखिया दीना ।।३७।।

* चौपाई।

उन तीनों को मार मिटाओ, सारा बदला आप चुकाओ ।
उनका मुझ को रक्त पिलाओ, अपना गौरव मान बचाओ ।।३८।।
यह सुनकर खर ने बल वाले, भेजे जन चौदह मतवाले ।
कहा उन्हें, तुम दौड़े जाओ, उन दोनों को मार सुलाओ ।।३६।।
उन के वध से भगिनी मेरी, हर्षित तो होगी इक बेरी ।
आज्ञा पाकर वे सब धाये, वायु-वेग प्रबल वत् आये ।।४०।।
साथ शूर्पणखा भी दौड़ी, भाल सिकोड़े डाले त्यौड़ी ।
बैठे राघव थे सह सीता, देख रहे थे जाता बीता ।।४१।।
कुटिया बाहर वीर करारा, खड़ा लखन था सज्जित सारा ।
दौड़ा दल असुरों का सो ही, आया भेड़िया दल ज्यों हो ही ।।४२।।
शूर्पणखा ने वे दिखाये, निज जन को सब नाम बताये ।
रघुपति ने देखे वे आते, शस्त्र लिये सभी दनदनाते ।।४३।।
बोले राघव, लक्ष्मण! आना, सीता को यहाँ रह बचाना ।
इनके सम्मुख मैं हूँ जाता, अभी इन्हें हूँ स्वाद चखाता ।।४४।।
कुटी द्वार पर वीर सुहाना, आ डटा वह ले शस्त्र नाना ।
पहुँच रघुपति उनके आगे, बोले वचन मद मान-त्यागे ।।४५।।
दशरथ-सुत हम हैं दो भाई, मेरे साथ सिया है आई ।
दुर्गम दण्डक वन के वासी, बने हुए हैं हम प्रवासी ।।४६।।
वनज वस्तु को हम हैं खाते, नहीं किसी को कभी सताते ।
जीत इन्द्रिय नियम निभाते, जप तप में हैं काल बिताते ।।४७।।
हम तीनों हैं संयमधारी, चलते हैं सत्य धर्म-अनुसारी ।
हमें मारना फिर क्यों चाहो, कोप-कारण हमको बताओ ।।४८।।
उचित नहीं यों वैर बढ़ाना, ईर्ष्या द्वेष क्रोध सुलगाना ।
बहुत बुरी है कलह लड़ाई, हत्या हनन है अति दुःखदाई ।।४६।।

पित्त-कोप पर अन्न न ज्यों ही, भाये वचन न उनको त्यों ही ।
नहीं रुके वे अति अभिमानी, बड़े बोलते वेधक बानी ।।५०।।
बोले राघव उन्हें दुबारा, वीर-तेजयुत वचन करारा ।
ऋषि जनों के तुम हो द्वेषी, अत्याचारी निर्दय विदेशी ।।५१।।
उनको कष्ट सदा हो देते, जन धन तन जीवन हर लेते ।
मैं हूँ मुनि-जन का रखवारा, मैंने शस्त्र तभी है धारा ।।५२।।
बाला बालक तुमने मारे, ऋषि जन के हो तुम हत्यारे ।
कर में वाण लिए मैं पैने, भेजा गया तुम को फल देने ।।५३।।
तुम चाहो यदि प्राण बचाना, भाग जाओ आगे न आना ।
खड़े रहो मैं भी हूँ आता, अत्याचार हूँ सर्व मिटाता ।।५४।।
देते वे बहु बेढब गाली, बने व्याल बढ़े लिये व्याली ।
टूटे रघुपति पर इक बारी, खड्ग वज्र के वे प्रहारी ।।५५।।
राम-धनुष ने सर बरसाये, वज्रपात-हत असुर बनाये ।
विषधर बिम्बी में ज्यों जाते, असुर तनों में वाण बसाते ।।५६।।
हत हुए उन्हें देख हत्यारी, शूर्पणखा कोप की मारी ।
खर पै जाकर अधिक चिल्लाई, बोली पुनरपि मैं हूँ आई ।।५७।।
जितने जन भेजे थे तैंने, हत पड़े देखे सभी मैंने ।
शरण गही है मैंने तेरी, लाज शर्म अब रखना मेरी ।।५८।।
शोक-सिन्धु में डूब रही हूँ, अंग-हीना तो हो गई हूँ ।
राघव-वध यदि देख न लूँगी, तो मैं प्राण यहीं दे दूँगी ।।५६।।
यदि तुम से वे हने न जाते, तो तुम नहीं यहां रह पाते ।
करके भूमि अधीन पराई, बस्ती व्यर्थ तुमने बसाई ।।६०।।
गौरव मान सभी घट जावे, सिक्का असुर का बैठ न पावे ।
ऐसे हो अपमानित जाना, अपना सिर है आप कटाना ।।६१।।

खर तब कोप बहुत में आया, भड़क उठा भगिनी-भड़काया ।
उसने अपने वीर बुलाये, चौदह सहस्त्र सब सजाये ।।६२।।
हत्या-हेतु वह बना अहेड़ी, उसने हिंसक सेना छेड़ी ।
श्वान दौड़ते यथा शिकारी, दौड़ी तथा सेना हत्यारी ।।६३।।

सातवां सर्ग

*रथ में हुआ सवार, खर सभी शस्त्रों से सजा ।
सैनिक सब तलवार, मुद्गर भाला शूल ले ।।१।।
करते मारो मार, वज्र धनुष धारे सर्व ।
टूट पड़े इक बार, राम-कुटी की ओर वे ।।२।।
सहित सर्व सरदार, दूषण त्रिशिरा सुबली ।
खर हो बहुत तयार, आया सम्मुख राम के ।।३।।
जैसे बादल खण्ड, सूर्य सम्मुख हों कभी ।
धारे अधिक घमण्ड, राघव पै आये असुर ।।४।।
जैसे पड़े पतंग, दीपक पर अति वेग से ।
तथा आसुरी संघ, दौड़ा रघुपति पर बली ।।५।।
देख अधिक उत्पात, राघव बोले अनुज को ।
होगा दुर्जन-घात, शकुन सभी हैं कह रहे ।।६।।
तरु शाखाएँ त्याग, रोते पंछी उड़ रहे ।
हिरण रहे हैं भाग, गज वन-पशु हैं त्रास में ।।७।।
भुजा फड़कती देख, मेरी बारंबार है ।
इसमें मीन न मेख, हम विजय को पायेंगे ।।८।।

* सोरठा।

सेना का है नाद, बजते भेरी ढोल हैं ।
इसमें नहीं विवाद, रक्त-पात होगा बड़ा ।।६।।
धनुष वाण आरोप, शस्त्र सर्व को धार कर ।
वीर-भावमय कोप, करके सज्जित हो अभी ।।१०।।
तरु झुर्मट के बीच, गिरि-गुहा में हो सिया ।
जायें असुर न नीच, पहरा दो तुम तो वहां ।।११।।
तुझ को है सौगन्ध, यदि इस में कुछ भूल हो ।
मद-मठ मानी अन्ध, आते मिले म्लेच्छ हैं ।।१२।।
तथा अस्तु कह वीर, सिया रक्षा में लग गया ।
मेरु शिखर सम धीर, रहे राघव वहां खड़े ।।१३।।
मुनि-मण्डल मतिमान्, महामना आर्य सभी ।
मन में अति मुदमान, आन मान से आ मिले ।।१४।।
आर्य देव समान, जो वन में थे बस रहे ।
जाति देश की आन, रखने को आये बहुत ।।१५।।
राम धनुष को तान, चमके रवि मध्यान्ह सम ।
तेजोराशि महान्, दीखे वे दल असुर को ।।१६।।
*कहा खर ने सारथी को, रथ तुरन्त चलाइए ।
बल से वायु-वेगवत् बन, अरि-पास ले जाइए ।।
विविध वाण की बहुत वर्षा, वैर से बरसाइए ।
रघुपति को यम के पुर में, पल में पहुँचाइए ।।१७।।
सारथी ने अश्व छेड़े, वे दौड़े वहां गये ।
सहित सेना देख खर को, वचन राघव ने कहे ।।

* गीतिका।

चूर हो मद मान में तुम, मत्त मानव हो रहे ।
भ्रूण-हत्या अत्याचार सब, अब ये जायें न सहे ।।१८।।
अश्व हस्ति सेना बहु ले, पाप तुमने हैं किये ।
मारकाट खाये मुनि जन, रक्त उन के भी पिये ।।
महर्षि जन साधु सन्त को, घोर कष्ट दुःख दिये ।
आततायी घोरतर तुम, हो कर के कड़े हिये ।।१६।।
पोली जड़ के तरु जैसे, देर तक न रहें खड़े ।
पापकर्मी क्रूर कुटिल नर, तथा कभी तो न बढ़े ।।
सर्व सम्पद् लाभ कर के, गिर जाते बढ़े चढ़े ।
पतन होता पाप से अति, पदक पाकर पर बड़े ।।२०।।
ऋतु पर ज्यों पेड़ फलते, तथा पकते पाप हैं ।
विष-मिश्रित अन्न ज्यों ही, मारते त्यों शाप हैं ।।
अपने किये कर्मों के फल, लगे पाने आप हैं ।
जो तापस ऋषि जन को, दे रहे परिताप हैं ।।२१।।
हे निशाचर! सोच लो तुम, अति करते विरोध हो ।
बुरा चाहते हो सब का, वधिक बहुत अबोध हो ।।
कलह कपट कुकर्म रत हो, क्रूरतामय क्रोध हो ।
आया हूँ मैं फल देने, ज्यों देश-परिशोध हो ।।२२।।
हनन किये मुनि जन जो, ऋषि-गण तुमने हने ।
पाप कर्म पुञ्ज तुम्हारे, मेरु सम ऊँचे बने ।।
विधि-वश फल देने को ये, सर मेरे गये तने ।
आओ आगे बल देखो, चाब लो नाकों चने ।।२३।।
खण्ड खण्ड घमण्ड होगा, दस्यु दल का दण्ड से ।
मेरी वर्षा वाण अति से, भुज दण्ड प्रचण्ड से ।।

छिन्न भिन्न होंगे तुम सब, क्षत्र तेज अखण्ड से ।
टिड्डी दल वत् नाश होंगे, निज कर्म पाखण्ड से ।।२४।।
अति तीक्ष्ण हिंस्र जन को, मारते हैं जन सभी ।
देख तीखा नाग कांटा, कुचल देते जन सभी ।।
बहुत वैरी जन-विरोधी, सुख को पाता न कभी ।
घोर हत्या पाप का तुम्हें, भोगना है फल अभी ।।२५।।
यह कहते जा आगे, रघुपति तब उन्हें मिले ।
नदी-पूर समान वे भी, उधर आते थे ठिले ।।
शक्ति सम त्रिशूल बरछी, खड्ग कर में ले पिले ।
मेरु शिखर सम तो राघव, नहीं कुछ भी तो हिले ।।२६।।
वज्रपात सदृश गिरते, राम पर बहु वाण थे ।
बरछे शूलों से बीन्धे, हुए लहु लुहान थे ।।
मोटे घावों से, पुष्पित, पेड़ ढाक समान थे ।
फिर भी वे अकम्प थे तब, धैर्य शक्तिमान् थे ।।२७।।
बरसते थे शिला पत्थर, पड़े ओले ज्यों गिरे ।
घेरते वे पाश ले कर, पर रघुपति न घिरे ।।
पेड़ शाखा डाल पड़ते, लट्ठ मुद्गर भी निरे ।
पीछे राघव कु-समर से, एक पैर तो न फिरे ।।२८।।
रामचन्द्र चाँद चमके, असुर-बादल भेदते ।
देव-दत्त अचूक सर से, असुर सिर को बेधते ।।
दैवी-शक्ति खड्ग बल से, अरितनों को छेदते ।
अस्त्र-शस्त्र अमोघ से तब, दूर उनको खेदते ।।२९।।
मृग गणों में सिंह जैसे, राम थे उनमें तथा ।
हनन करते मुख्य वैरी, वज्र तरुवर को यथा ।।

बरसते बन वाण बादल, शत्रु-दल जाता मथा ।
भगे काँप वे रघुपति से, असुर कहते कटु कथा ।।३०।।
रामचन्द्र की ओर से जो, वहाँ गिरते वाण थे ।
विषम विषधर बने बहुविध, चूसते पर प्राण थे ।।
दस्यु-दल को दलित करते, हनन में प्रमाण थे ।
असुर अंगों धड़ों से तो, भर गए वे स्थान थे ।।३१।।
जहाँ देखो वहाँ पर ही, मुण्ड मानव थे पड़े ।
हस्त पैर कटे पड़े थे, धड़ के ढेर थे बड़े ।।
भुजा जंघा सिर बहुत थे, पड़े जाते थे सड़े ।
भाग गिरे हत प्रहत से, भर रहे थे बहु गढ़े ।।३२।।
खर दूषण हुए हनन तब, गया मारा त्रिशिरा ।
जो भी था सरदार मुख्य, समर में वह तो गिरा ।।
असुर दल वह मिटा सब जो, टिड्डीदल वत् था घिरा ।
देश दक्षिण भूमि-भाग का, भाग्य-भानु शुभ फिरा ।।३३।।
महा विजय से चमके रघुपति, भानु ज्यों घननाश से ।
पाप कर्मी दूर कर सभी, दुष्ट दस्यु विनाश से ।।
ऋषि मुनि सब हुए हर्षित, जो खड़े थे आश से ।
नाद जय जय हुए बरसे, शुचि पुष्प आकाश से ।।३४।।
महर्षि राजर्षि मुनि सभी, ऋषि अगस्त्य संग ले ।
स्तुति करते मिले उनको, मन में मुद उमंग ले ।।
बोले रघुपति को मुनिवर, जाति-जय का रंग ले ।
इस दिशा में ऋषि लाये, तुमको यही ढंग ले ।।३५।।
आश्रम शरभंग में मिल, जो कहा था तब तुम्हें ।
उसी का यह फल विजय शुभ, मिला मीठा है हमें ।।

यह भूमि हुई स्वतन्त्र, मुनि यथेष्ट अब रमें ।
असुर-संकट मिट गये सब, विघ्न बाधा भी शमें ।।३६।।
मिली बधाई रघुपति को, विजय-माला सुजय से ।
हर्ष पूर में उमड़ सिया, असुर शक्ति के क्षय से ।।
आ पति को मिली गले मिल, जैसे चीनी पय से ।
मिला लक्ष्मण राम को आ, जेता पुरुष अभय से ।।३७।।
स्वस्ति कहते मुनि बोले, रघुपति! स्वदेश को ।
तुमने पाला निज बल से, भेज असुर विदेश को ।।
पवित्र कर ली पितृ भूमि, हरा पाप विशेष को ।
धन्य है तुझ वीर नर को, दिव्य देव नरेश को ।।३८।।
देवासुर संग्राम हुआ, ऋषि जन को सुख मिला ।
वज्ररूप विदेशियों का, गिर गया गहरा किला ।।
जाति-ज्योति ज्वलन्त को ही, दिया तू ने है जिला ।
वीर भाव उत्साह अमृत, दिया मुनि जन को पिला ।।३६।।
भूमि भार सो भाग गये, भ्रम भारी भय हटा ।
तुमने वायु-वेग बल से, छिन्न की आसुरी घटा ।।
था जो भी धर्म-विरोधी, रहा नहीं वही डटा ।
विष भरा परदेशी पेड़, जड़ मूल से है कटा ।।४०।।

आठवां सर्ग

*हनन हुए असुर सब, गठित हुए मुनि-जाग ।
गया अकम्पन असुर तब, लंकापुर को भाग ।।१।।

* दोहा।

बोला रावण को वचन, गये असुर सब हार ।
असुर-संग जन-स्थान का, हुआ सर्व संहार ।।२।।
खर दूषण त्रिशिरा सब, जो थे वीर विशेष ।
सहित सभी सरदार के, रण में हुए निश्शेष ।।३।।
समाचार सुनकर सर्व, रावण कर अतिकोप ।
बोला लालो लाल हो, चाहे कौन विलोप ।।४।।
मेरे उस जन-स्थान का, किसने किया विनाश ।
जाति वंश जड़ मूल का, किस ने मांगा नाश ।।५।।
कौन पुरुष वह है कहो?, किधर कौन तस गाम? ।
बल शक्ति रंग रूप क्या, है क्या उस का नाम? ।।६।।
हाथ बान्ध उसने कहा, देव! सुनो सब बात ।
रामचन्द्र सुनाम है, पुरुष उत्तम विख्यात ।।७।।
सुन्दर सर्व सुडौल है, अतिशय से बलवान् ।
अस्त्र शस्त्र अति दिव्य से, करता कर्म महान् ।।८।।
उसके ही अनुरूप है, लक्ष्मण उसका भ्रात ।
वीर धीर अतिशय बली, सुन्दर कोमल गात ।।६।।
दिव्य देव दो ले द्युति, अति दमक रहे दीप ।
जाना टेड़ी खीर है, उनके अधिक समीप ।।१०।।
उन्हें मारना समर रच, नहीं हमारा काम ।
कृमि कीटवत् कुचल दे, असुरों को वह राम ।।११।।
उस से भिड़ना है तथा, अग्नि से ज्यों पतंग ।
सर्व नाश है माँगना, लड़ना उसके संग ।।१२।।
छल बल से जीतो उसे, रच कर माया-जाल ।
सर्व सुन्दरी है सिया, लाओ उसे निकाल ।।१३।।

राघव विरह वियोग में, बहुत वेदना साथ ।
बिलख बिलख मर जायेगा, बिना समर हे नाथ! ।।१४।।
उसके सुन कर वचन सब, रावण उठ तत्काल ।
होकर रूढ़ विमान में, शस्त्र सर्व सम्भाल ।।१५।।
आ समीप मारीच के, मिला उसे कर नेह ।
उस ने दे आसन अशन, उस से किया स्नेह ।।१६।।
कुशल क्षेम भी पूछ सब, कर सभी शिष्टाचार ।
कहा उसे मारीच ने, सहित बहुत सत्कार ।।१७।।
कथं अचानक आपका, आ-गमन हुआ आज ।
पुर जनपद तो शान्त हैं?, सब कहो महाराज ।।१८।।
वह बोला गम्भीर हो, राघव ने हे तात ।
सब जनस्थान विनष्ट कर, की असुरों की घात ।।१६।।
भारत में था जा बसा, जितना असुर समाज ।
उस को तो वह नाश कर, बल से रहा विराज ।।२०।।
गौरव गरिमा सब गये, गिरा गर्व अभिमान ।
गया राज्य समाज अब, हुआ बहुत अपमान ।।२१।।
उसका बदला लो अभी, मुझसे कर सहयोग ।
सिया को हरण करें हम, रच माया-संयोग ।।२२।।
उस ने कहा, रावण! सुन, बैठो बनकर शान्त ।
सर्प-मुँह में हाथ दे, नहीं उखाड़ो दान्त ।।२३।।
कौन असुर है जो तुझे, रहा कुपथ पर डाल ।
जाना राघव सामने, है मरना बिन काल ।।२४।।
उस तो सोते सिंह को, छल-छड़ी से न छेड़ ।
नहीं तो वह बली शक्ति से, देगा असुर-उधेड़ ।।२५।।

शक्ति नहीं तुझ में प्रिय, करने को यह कार ।
रघुपति का बल तेज तू, सकता नहीं सहार ।।२६।।
लौट जाओ घर को अब, बैठो हो चुपचाप ।
सीता के अपहरण में, नहीं शक्त हो आप ।।२७।।
सुन कर वह मत मारीच का, लौटा पिछले पैर ।
राज काज करने लगा, तज कर करना वैर ।।२८।।
*शूर्पणखा कुलटा हत्यारी, पाप-पोट पतिता वह नारी ।
जन-स्थान सभी भस्म बना के, आसुर-दल-वन सर्व जला के ।।२६।।
जलती भेड़ समा वह भागी, लंका बाड़े को जा लागी ।
देखा उसने रावण ऐसा, सज धज सह सूर्य हो जैसा ।।३०।।
मंत्री-मण्डल मध्य विराजा, सुवर्ण वेदी पर वह राजा ।
मुकुट-रत्न तस बहुत सुहाते, भूषण थे अति शोभा पाते ।।३१।।
वेश केश थे उस के चंगे, ठाठ बाठ थे रंग बिरंगे ।
उच्च सिंहासन पर वह शोभे, देव गणों के दिल को क्षोभे ।।३२।।
कभी किसी से वीर न हारा, उसने जीता था जग सारा ।
हिम पर्वत तक छापा मारा, भयभीत किया जनपद सारा ।।३३।।
धर्म कर्म का बहुत विरोधी, कपटी छली था अधिक क्रोधी ।
बहुत बुरा था वैरी द्वेषी, विविध विषयों का बहु गवेषी ।।३४।।
उसको भगिनी ने भड़काया, असुरनाश का चित्र दिखाया ।
खर-दूषण का मरण सुनाया, अंग भंग अपना दिखलाया ।।३५।।
बोली उसे, सभी सम्पत् तेरी, होगी अन्त भस्म की ढेरी ।
हनन हुए तो तेरे भाई, तो भी तुझको समझ न आई ।।३६।।

* चौपाई।

रहे बना तू विषय-विहारी, बहुत विलासी, मदिराचारी ।
तू तो मत्त रहे दिन राती, शत्रु-शक्ति है बढ़ती जाती ।।३७।।
ऐसी भगिनी की सब बातें, बोला वह सुन कर सलवातें ।
रामचन्द्र पुरुष है कैसा, जाना चाहूँ वह है जैसा ।।३८।।
बोली वह विष-वाण बहाती, बहुत विषम बहु द्वेष बढ़ाती ।
रामचन्द्र लखन हैं दो ही, वीर धीर अतुल्य नर सो ही ।।३९।।
रामचन्द्र की पत्नी जो है, रूपराशि की सम्पत् सो है ।
परम सुन्दरी शशि सम गोरी, कमलसमा कपूर की पोरी ।।४०।।
हरिण नयना महा-मधुर-बैना, चन्द्रमुखी सुरूप-सुसेना ।
लक्ष्मीरूपा है वह ऐसी, नारी-लोक में न उस जैसी ।।४१।।
उसके अंग हैं बहुत सुहाने, हाव भाव हैं बड़े लुभाने ।
जिसकी पत्नी हो वह सुशीला, अतिशय सुखी हो वह रसीला ।।४२।।
तेरे तो वह है अनुरूपा, प्रियरूपा वह परमसुरूपा ।
पत्नी बनाने उसको तेरी, मैं गई लाने एक बेरी ।।४३।।
मैं जब उसे फुसला रही थी, चातुरी से बहका रही थी ।
अधिक कोप में लक्ष्मण आया, उसने मुझे विरूप बनाया ।।४४।।
सच समझो यह कारण तेरे, नाक कान कटे जभी मेरे ।
तो भी तुझको समझ न आती, माने नहीं जो मैं हूँ सुनाती ।।४५।।
यदि तुम सीता लाना चाहो, तो तुम दहिना पैर उठाओ ।
इसी समय भारत को जाओ, राघव को हन सीता लाओ ।।४६।।
उष्णमापक का ज्यों ही पारा, चढे उष्ण में बन कर धारा ।
विषय-लालसा उसकी भारी, बढ़ी चढ़ी कर बहुत सवारी ।।४७।।
जैसे जन हो भूतावेशी, ऐसे बना वह बहुत क्लेशी ।
विषय-वासना बहुत विषैली, उसमें बढ़ी बहु बुरी मैली ।।४८।।

ज्यों डसे अति विषधरी काली, उसको डसी त्यों बहिन व्याली ।
विषम विषय-विष में वह कामी, बहु व्याकुल बना कुपथगामी ।।४६।।
कालकूट विष का आहारी, खो देता यथा चेतना सारी ।
मदिरा मत्त यथा अविचारी, उसने सुधबुध तथा बिसारी ।।५०।।
वह उठा तब अति झुँझलाता, मद मोह-मत्त बहु बल खाता ।
चिन्तित क्रोधी शोकी मोही, रथशाला में आया सो ही ।।५१।।
उसने सारथि धीरे बुलाया, ''रथ जोड़ो'' आदेश सुनाया ।
रथ जुतने पर असुर कुचारी, उस में बैठ चला अपकारी ।।५२।।
पार सिन्धु कर अपर किनारे, आया वह मन में छल धारे ।
जटाजूट बैठा मुनि-वेशी, देख मारीच निजकुल देशी ।।५३।।
उसको मिला फिर प्रेम दिखाता, उस पर वह प्रभाव जमाता ।
उसने भी आदर से माना, पूछा उससे पुनरपि आना ।।५४।।

नौवाँ सर्ग

*बोला रावण तब उसे, है तुझको सब ज्ञात ।
रामचन्द्र ने है सब, किया असुर-विनिपात ।।१।।
जन-स्थान को उजाड़ कर, असुर दलों को मार ।
स्वतंत्र स्व-देश कर, वह पुज रहा अपार ।।२।।
बाहू-बल बहु शक्ति से, उसने सब मुनि लोग ।
निर्भय वन में कर दिये, अद्भुत किया उद्योग ।।३।।
गया निकाला गृह से, जो उसने कर कोप ।
भारत के भू-भाग से, किया हमारा लोप ।।४।।

* दोहा।

अहित असुर का वह सदा, करता है बलवान् ।
उससे मेरी बहिन के, कटे नाक दो कान ॥ ५ ॥
देश-भक्ति के भाव से, आर्य्य जन के काज ।
ऋषि मुनि दल सुगठित कर, बल से रहा विराज ॥ ६ ॥
सीता उसकी पत्नी है, रूप रंग भण्डार ।
लाऊँगा हर कर उसे, तेरा हो सहचार ॥ ७ ॥
भाई देवें योग जो, तू हो मेरे पास ।
मैं दे सकता हूँ अभी, देवों को भी त्रास ॥ ८ ॥
कौन काम जो हो नहीं, जब तू देवे योग ।
बनो सहायक हे बली, तज कर आलस रोग ॥ ९ ॥
समर-शक्ति सामर्थ्य में, तुझ सा वीर न और ।
छल माया संमोह का, तू अतुल्य है ठौर ॥ १० ॥
आशा से मैं तो यहाँ, आया हूँ मम मीत ।
मोह माया रच कर छल, लो राघव को जीत ॥ ११ ॥
जो कुछ करना है तुम्हें, उसे सुनो धर ध्यान ।
बन जाओ माया-मृग, मोहक मधुर महान् ॥ १२ ॥
सुन्दर रूप सुवर्ण सम, चम-चम रच अनमोल ।
राघव-कुटी उद्यान में, करना खेल किलोल ॥ १३ ॥
आकर्षण कर सिया को, मन दृष्टि कर बंद ।
छलना छल-छवि छटा से, छद्म रूप स्वछन्द ॥ १४ ॥
मोहित रघुपति को तथा, करके अधिक असार ।
तेज शक्ति से दीन को, मैं दूँगा तब मार ॥ १५ ॥
रावण के प्रस्ताव से, उसके काँपे अंग ।
मुंह नयन सूखे तभी, पीत पड़ा मुख-रंग ॥ १६ ॥

शुष्क होठ को चाबता, बोला तब मारीच ।
मुझ को कभी न डालिए, मृत्यु-मुख के बीच ।।१७।।
विरले जन हैं जगत् में, जो कहते हित बात ।
अहितकरी मीठी सभी, कहते हैं दिन-रात ।।१८।।
मीठी वस्तु कुपथ्य का, करे रोग, अति भोग ।
कड़वी वस्तु सुपथ्य जो, हरती है बहु रोग ।।१६।।
कर्ण-कटु पर पथ्य कथन, मेरे सुन धर कान ।
रामचन्द्र को यों तू, नहीं तुच्छ नर मान ।।२०।।
गया निकाला देश से, पर फिर भी गम्भीर ।
क्रोध लोभ से रहित है, सुखी शान्त वह धीर ।।२१।।
पितृ-प्रण को पालना, अर्पण कर निज प्राण ।
परम प्रण जिसने किया, उसको अल्प न जान ।।२२।।
कामी लम्पट वह नहीं, नहीं रहित आचार ।
जितेन्द्रिय शुचि पुरुष है, पण्डित रहित विकार ।।२३।।
उद्यमी उद्योगी बड़ा, उत्तम तप मतिमान् ।
सदा सजग रहता सबल, जगती जोत निधान ।।२४।।
सती पत्नी उसकी सिया, सूर्य-ज्योति समान ।
बहुत सुरक्षित आप है, उसकी बने न हान ।।२५।।
अग्नि-शिखा प्रचण्डवत्, सिया रही है शोभ ।
उस के हरण स्पर्श का, तू तज दे सब लोभ ।।२६।।
*बात कहता हूँ तुझे मैं, सुनो धर निज कान को ।
फिर रहा था एकदा मैं, लिए गौरव मान को ।।

* गीतिका।

नील मेघ समान भयकर, कर ऋषिजन हान को ।
करता भक्षण मांस उनका, पाते वे न त्राण को ।।२७।।
होता दण्डक वन में मुझ से, नित्य मुनि जन मारना ।
मैं जाता जहाँ वहीं तो, उन्हें पड़ता हारना ।।
बहुत विधि से वे चाहते, मुझे नित्य निवारना ।
इधर असुर दल सबल सभी, पग चाहें पसारना ।।२८।।
विश्वामित्र ऋषि वर, गये दशरथ पै बली ।
उसे बोले, मारीच भयकर, है वनों में अति छली ।।
हनन करता रात दिन है, ऋषि-मुनिगण को दली ।
घोर विपदा वनी जन से, सकती टाले न टली ।।२६।।
पर्व-दिवस में ले दीक्षा, हम रहेंगे हो शमी ।
रामचन्द्र रक्षा-हित दो, जो सूरमा है दमी ।।
बोले भूप, है युवक वह, यही भारी है कमी ।
सबल सेना, मुझे माँगो, जड़ उखाड़ें जा जमी ।।३०।।
बहुत वाद विवाद हो कर, मान मुनि के कथन को ।
रामचन्द्र दिया उसने, असुर दल-बल मथन को ।।
आर्य-गण के सुगठन को, जन-मुनि के ग्रथन को ।
आ आश्रम में ऋषि ने, सोच शत्रु विमथन को ।।३१।।
मौन विधि से यज्ञ रचकर, शान्त सब मुनिवर हुए ।
रामचन्द्र सहित लक्ष्मण, रक्षा में तत्पर हुए ।।
एक वस्त्र पहने सुन्दर, पहरिए वे नर हुए ।
ओर वेदी उस समय हम, दौड़े अग्रसर हुए ।।३२।।
मुझे आता देख कर तब, धनुष में धर वाण को ।
कर सीधा सर वह मेरे, लगा हरने प्राण को ।।

दूर गया मैं तो फैंका, पाता न परित्राण को ।
हुआ गिर कर अति चकित, देख पुरुष पुराण को ।।३३।।
भ्रान्त चित्त उसी समय से, मान, मैं हूँ हो गया ।
मस्तक मज्जा जाल मेरा, तभी से तो सो गया ।।
वीरता का भाव सारा, है सर्वथा खो गया ।
बहुत मोहक वाण बाँका, भय-बीज है बो गया ।।३४।।
जहाँ जाऊँ वहीं पर वह, दीख पड़ता है मुझे ।
रामाकार देख सहस्रों, भीत हो मम मन बुझे ।।
दौड़ पड़ता हूँ चिल्लाता, भागते न स्थल सुझे ।
होता है अति भय मुझको, वह बताऊं क्या तुझे ।।३५।।
जाता हूँ जब मैं वन में, भ्रम होता है कभी ।
दीख पड़ती वृक्ष-माला, राम रूपा तो सभी ।।
मृग-चर्म चीर देहधर, धनुष ले दौड़े अभी ।
आते हैं रघुपति शत-शत, मुझे हनने को तभी ।।३६।।
स्वप्न में रघुपति-मूर्ति, देखता हूँ भय-करी ।
चौंक पड़ता भागता हूँ, देख मैं वह धनुधरी ।।
रकार-युक्त नाम सुन मम, देह जाती है ठरी ।
चेतना सब लुप्त होती, जीवनी जाती हरी ।।३७।।
मैं गया हूँ जान उसका, जो अतुल प्रभाव है ।
उसकी पत्नी हरण करना, बुरा बहुत बनाव है ।।
जाति कुल के नाश का यह, दुष्ट दारुण दाव है ।
वैर-वृक्ष का बीज बोना, बहु व्यर्थ कुचाव है ।।३८।।
कुकर्म से यदि तव भगिनी, अंग-भग्ना है बनी ।
अपराध कौन रघुपति का, है? कहो लंका-धनी ।।

खरदूषण ने व्यर्थ ही, की उनसे तनातनी ।
कौन है अपराध इस में, यदि सेना गई हनी ।।३६।।
हितकाँक्षी हूँ मैं तेरा, कथन मेरा मान ले ।
दिव्य-शक्ति बलमय राघव, अजय नरवर जान ले ।।
विषय वासना के वश हो, विषम वैर न बान ले ।
शान्त होकर बैठना अब, चित्त में तू ठान ले ।।४०।।
मरण-मुखिया रुग्ण मानव, सेवन औषध न करे ।
कुपथ्य करके ज्यों आतुर, अपने कर्मों से मरे ।।
त्यों ही उसके कथन पर न, कर्ण उसने तो धरे ।
उलटा होकर बहुत कुपित, वचन बोला किर किरे ।।४१।।
जो मारीच तूने कही, विषमयी यह बात है ।
वीर भाव न रहा तुझमें, नहि विचार उद्दात है ।।
जिस प्रवासी रघुपति ने, किया आसुर घात है ।
उसकी पत्नी हरण में तो, मेरा बल विख्यात है ।।४२।।
बहुत ही विपरीत है यों, उलट बातें बोलना ।
भूप से अति उलट चलना, मुँह बढ़कर खोलना ।।
कथन नहीं तुरन्त करना, चित्त में विष घोलना ।
विनय शिष्टाचार सभी तज, व्यर्थ युक्ति-तोलना ।।४३।।
माननीय भूपति है, सर्व को सब काल में ।
अग्नि सम प्रचण्ड है वह, चतुर है शुभ चाल में ।।
देवरूप दिव्य भूप है, शक्ति तेज विशाल में ।
रुष्ट करना उसे है ही, पड़ना काल-गाल में ।।४४।।
भूप मैं हूं अतिथि तेरा, दे मुझे अति तोष को ।
निजू अवगुण नहीं पूछे, नहीं पूछा दोष को ।।

कथन करे यदि तू मेरा, पायगा परितोष को ।
आज्ञा भंग से नहीं तो, सहेगा मम रोष को ।।४५।।
मार डालूँगा तुझे मैं, यदि अब तू नहीं चले ।
तुझे तो कर हनन दूंगा, सीता को यदि न छले ।।
खो देगा तू जी जीवन, यदि हठ से नहीं टले ।
अभी मेरे कोप से तव, अंग जायेंगे दले ।।४६।।
बलात्कार से है करना, तुझे मेरा काम तो ।
रघुपति पै भय होगा, यहाँ पर यम-धाम तो ।।
राज-वचन न मानना है, त्यागना आराम तो ।
मेरे लिए दुःख सह कर, पायगा सुख नाम तो ।।४७।।

दसवाँ सर्ग

*सुन सब रावण के वचन, बोला वह मारीच ।
सीता हरण की सम्मति, तुझे कौन दे नीच ।।१।।
सचिव कौन है जो तुझे, करना चाहे नाश ।
किस के मन में है बसा, आसुर-वंश विनाश ।।२।।
मंत्री हनन योग्य हैं, जिन्हें न सूझे रोक ।
इस पथ पर चल कर तुझे, होगा दुःख अति शोक ।।३।।
तुझ से अधम नर को यदि, सकें मंत्री न टाल ।
तो समझो है आ गया, कुल का अन्तिम काल ।।४।।
जिनका राजा तू बना, उन असुरों का वंश ।
होगा राघव-हस्त से, शीघ्र नष्ट निरंश ।।५।।

* दोहा।

कुटिल कुमति कटु कामना, तव कलुषित कुविचार ।
काले कर्म कठोर अति, निज कुल देंगे मार ।।६।।
मरना तो है ही मुझे, इस जग में इक बार ।
मित्र-अपेक्षा से भला, मरूँ शत्रु के द्वार ।।७।।
मैं तो मर कर ही रहूँ, राघव के जा पास ।
चिन्ता मुझे है तू अब, भोगेगा दुःख रास ।।८।।
चलो चलें अब चपल नर, चलें चातुरी चाल ।
चकमा देवें चतुर को, चित्त चेतना टाल ।।६।।
पर दण्डित होगा कभी, जो तू बड़ा उद्दण्ड ।
घमण्ड खण्ड होगा तव, मुझे मरण भी दण्ड ।।१०।।
भावी है अति बलवती, तुझ पर हुई सवार ।
मेरे वश अब कुछ नहीं, तुझमें नहीं विचार ।।११।।
मारीच-मुख से सुन सब, रावण हर्षित गात ।
मित्र-भाव अति स्नेह से, बोला उसको बात ।।१२।।
सुहृद् स्नेही तू सखा, सच्चा बड़ा हित कार ।
मेरा भेदी है भला, चिर का शुभ सहकार ।।१३।।
बैठो रथ में हे सखे, ऐसा रचना ढंग ।
सीता रामचन्द्र का, यथा संग हो भंग ।।१४।।
ताटका सुत! चल करअब, सीता को लो मोह ।
रामचन्द्र का छल से, करना बहुत विछोह ।।१५।।
हर लूँगा सीता तभी, मैं बदल आकार ।
कार्य-सिद्ध से सुहृद!, पाओगे उपहार ।।१६।।
ऐसी बातों बीच वे, गिरी नदी सम स्थान ।
लांघ कर पहुँचे वहाँ, नर थे जहाँ महान् ।।१७।।

उतरे रथ से वे तभी, पकड़ मित्र का हाथ ।
बोला तब रावण उसे, यह है स्थान सनाथ ।।१८।।
करिए कदली कुँज में, मोहन माया-काम ।
उसी समय उस ने रचा, मृग-रूप अभिराम ।।१९।।
क्रीड़ा में फिरने लगा, उछल कूद सब ठौर ।
सिया-कुटी के पास जा, गया दौड़ दिश और ।।२०।।
पुष्प रही थी चुन तभी, सीता सायं काल ।
उस ने मृग देखा तब, सुन्दर बहुत विशाल ।।२१।।
चकित चित्त निज चक्षु से, शुचि चंचल चित्त चोर ।
देखा चतुरा ने हरिण, चल चरता चहुँ ओर ।।२२।।
भर्ता देवर को सिया, बोली, बहुत पुकार ।
आओ देखो यह हरिण, है कोई चमत्कार ।।२३।।
मुख से रही पुकार थी, सुमृग रही निहार ।
निर्निमेष निज नयन से, निरन्तर एक तार ।।२४।।
मोहन वशता में सिया, बोली, हे श्रीराम ।
मन मोहक मृग सुमृदुल, महा मधुर मुद धाम ।।२५।।
लगता है कैसा भला, लिए सुनहला रूप ।
चम चम चमके चित्र से, चारु विचित्र सुरूप ।।२६।।
कुसुमवाटिका में विविध, खेल रहा है खेल ।
सुवर्ण लालिमा से वह, करता सन्ध्या-मेल ।।२७।।
कुसुम-कुंज कलि क्यारियां, कोमल क्रीड़ा साथ ।
कैसी लगती हैं ललित, निरखो तो रघुनाथ! ।।२८।।
इधर उधर वह दौड़ कर, मोह रहा है भाव ।
उसको रखना पकड़ कर, है मम मन में चाव ।।२९।।

कुटि में रक्खूँगी उसे, मन-रंजन के काज ।
इसलिए इसे पकड़िये, जा आप महाराज ।।३०।।
पूर्ण चौदह वर्ष कर, जब जायेंगे देश ।
विस्मय कर यह भरत को, देगा हर्ष विशेष ।।३१।।
मेरी सखियां सहेलियां, अद्‌भुत पशु अवलोक ।
मोद मनावेंगी मिली, देखेंगे सब लोक ।।३२।।
*लक्ष्मण ने कहा, अहो भाई, वन में असुर बड़े हैं मायी ।
मुख्य मारीच की है माया, महा मोहिनी छल की काया ।।३३।।
उसकी रचना दीखे सारी, माना है वह मायाधारी ।
उस ने बहुत छले हैं राजे, मृगया में बहु महाराजे ।।३४।।
कृत्रिम रूप सर्व वही है, उसकी आकृति कह रही है ।
दीख रहा जो हरिण अनोखा, केवल है आँखों को धोखा ।।३५।।
ऐसे मृग न देखे जाते, चलें तथा नहीं मन को लुभाते ।
जानो छलिया रच छल-छाया, छलने हम को है वह आया ।।३६।।
{विषम दिवस जिस जन के आते, मनन ज्ञान उसके छुप जाते ।
काम विवेक विचार न देते, उलटे पड़ते पासे जेते ।।३७।।
जब होना हो उलटा होना, सूझे आध न पूरा पौना ।
घटना घटिका घोर घिराती, मोह-घटा मति पर छा जाती} ।।३८।।
माया-मोहित सीता राणी, सुन कर तब देवर की वाणी ।
आग्रह सहित पति को बोली, भावी वशता में पड़ भोली ।।३६।।
प्यारे पति! अब ही तुम जाओ, वर तर हरिण पकड़ कर लाओ ।
पकड़ न पाओ जीवित जो ही, तदपि लाना हनन कर सो ही ।।४०।।
आसन होगा शोभा वाला, जब बिछेगी वह मृगछाला ।
उसके पीछे ऐसे दौड़ो, पकड़े बिना उस को न छोड़ो ।।४१।।

* चौपाई।

हरिण रत्न जो मैं ले पाऊँ, उसे अयोध्या में ले जाऊँ ।
सुजन सर्व को जा दिखलाऊँ, बन्धु-वर्ग का हर्ष बढ़ाऊँ ।।४२।।
बार-बार का कहना ऐसा, बनकर मंत्र मोहन जैसा ।
राम चित्त पर छाया ऐसे, चन्द्र रवि पर राहू जैसे ।।४३।।
चिदाकाश राघव का सारा, मोह-घन से घिर गया भारा ।
बोले, सौम्य! हरिण सुहाना, अद्‌भुत है मन-चित्त लुभाना ।।४४।।
चाहती है सीता सुशीला, देखे उसकी क्रीडा लीला ।
तीन लोक में ढूंढे कोई, ऐसा मृग नहीं पावे सोई ।।४५।।
कैसा सुन्दर देखो सोहे, किस पुरुष के मन को न मोहे ।
सर्व जनों को विस्मय-कारी, हरिण अपूर्व है वनचारी ।।४६।।
उस को निरख अति मनोहारी, चाह रही है सीता प्यारी ।
अभी धनुष ले मैं हूं जाता, पकड़ तुरन्त उसे हूं लाता ।।४७।।
पकड़ा गया न वह यदि जीता, तो हत-हरिण पायगी सीता ।
रहना तुम कर के सावधानी, हो सके नहीं कुछ भी हानी ।।४८।।
वीर जटायु यथेच्छा चारी, सियारक्षण में हो सहकारी ।
कहते तथा चले रघुराई, कर्म-फल ने रचना रचाई ।।४६।।
{सदा सजग रहते जो ज्ञानी, वीर धीर उत्तम सेनानी ।
कर्म-निशा आई अन्धेरी, माया पीछे हुए अहेरी} ।।५०।।
खड्‌ग धनुष दो सर ले तीखे, वे पड़े मृग पीछे दीखे ।
मृग बहुत था दौड़ लगाता, लुक छुपकर रघुराज लुभाता ।।५१।।
समीप हो वह दूर दिखाये, चमक प्रकट कभी छुप जाये ।
ऐसे नाना खेल रचाता, गया उन्हें ले दूर भुलाता ।।५२।।
निकट निशा थी आती जाती, घनी वनी थी बहुत दिखाती ।
जभी पकड़ना कठिन विचारा, रघुपति ने सर उसको मारा ।।५३।।

ऊँचा उछल गिरा उत्पाती, हा हा करता वह मुनि-घाती ।
रावण तक निज नाद पहुँचाता, "हा! सीते" कह ध्वनि गुँजाता ।।५४।।
राघव सम बोला वह बानी, "हा! लक्ष्मण, हा! सीते रानी" ।
उसी-समय राघव ने जाना, छला गया अपने को माना ।।५५।।
लक्ष्मण का कहना था जो भी, सर्व सत्य हुआ अभी सो भी ।
भ्रम पड़े ने बाजी हारी, भूल हुई मुझ से यह भारी ।।५६।।
उलटे पैर फिरे वरदानी, पवन गमन सम वा ज्यों पानी ।
दीखा उन्हें तब दाल में काला, बिखर गई विचार की माला ।।५७।।

ग्यारहवाँ सर्ग

*रामचन्द्र का सुर सुन, हा का आर्तनाद ।
कहा सिया ने लखन को, पाकर बहुत विषाद ।।१।।
भाई तेरा है घिरा, हा हा रहा पुकार ।
जाओ दौड़े वेग से, ले कर सब हथियार ।।२।।
असुर दाव में है पड़ा, फंस गया है वीर ।
सिंह-हस्त में बैल ज्यों, है हो रहा अधीर ।।३।।
जा बचाइए बन्धु को, करो न किंचित् देर ।
वायु-वेगवत् दौड़िए, होती जाय अबेर ।।४।।
राघव-आज्ञा सिमर कर, चला न वह जिस काल ।
बोली सीता कोप कर, हो कर लालो लाल ।।५।।
मित्र-रूप में शत्रु तू, बस रहा बन्धु-पास ।
तुझ से तो मुझ को लगे, भयकर भारी त्रास ।।६।।

* दोहा।

तुम तो करते हो नहीं, निज भाई से स्नेह ।
राघव बिन मैं जानिए, भस्म करूँगी देह ।।७।।
अनुचर बन कर तू यहां, आया है उस साथ ।
संकट में अब क्यों नहीं, दौड़ बटाता हाथ ।।८।।
यह कहते वह रो पड़ी, मोहन-मोह अधीन ।
व्याकुल हो थी तड़पती, यथा बिना जल मीन ।।६।।
सीता देखी अति डरी, मृगी घिरी समान ।
बोला लक्ष्मण तब उसे, डरो न धृति निधान ।।१०।।
देव नर सुरासर सभी, शक्ति से एक बार ।
तेरे पति को समर में, सके नहीं दे हार ।।११।।
वह तो वीर अवध्य है, अतुल शक्ति भण्डार ।
उस को तीनों लोक में, सके न कोई मार ।।१२।।
स्वस्थ चित्त देवि! रहो, धैर्य से हो शान्त ।
जगत् विजेता है बली, तेरा पति एकान्त ।।१३।।
मृग मार कर वे अभी, आते हैं तव पास ।
निश्चय से तू धर धृत्ति, किंचित् हो न उदास ।।१४।।
नहीं वही तो हरिण था, नहीं तव पति-पुकार ।
आसुर-माया है सर्व, संशय भ्रम निवार ।।१५।।
छल है मृग-तृष्णा सम, पुर गन्धर्व सुरूप ।
मोहन-माया असुर की, भरती बहुत विरूप ।।१६।।
सौंप गये धरोहर सम, तुझको रघुपति आप ।
तज तुझे न मैं जा सकूँ, सोचो सही अपाप! ।।१७।।
खरदूषण के हनन से, हम ने बान्धा वैर ।
देवी जानो इसलिए, उठे न मेरा पैर ।।१८।।

विविध बोलियाँ बोल कर, रच कर नानाकार ।
हमें हनन के हेतु हैं, हिंसक हुए तयार ।।१९।।
{हानि जब होनी हो तब, मति पर छाता मोह ।
महा मुग्ध बन मन तभी, करे मित्र से द्रोह ।।२०।।
कष्ट-घड़ी आती जभी, काल बने विपरीत ।
शंका हो स्व-सुजन में, शत्रु लगे निज मीत} ।।२१।।
माया-मोहित फिर सिया, बोली कर कटु कोप ।
संमोहन प्रभाव में, सत्य मर्यादा लोप ।।२२।।
लक्ष्मण! तू तो है बड़ा, घृणित घातक घोर ।
दुष्ट-हृदय निर्दय अति, बन्धु-रूप में चोर ।।२३।।
रामचन्द्र-विनाश को, नित्य रहा है ताक ।
मम हित भेजा भरत ने, वैरी सुचारु-वाक् ।।२४।।
तेरा और न भरत का, फले मनोरथ नीच ।
रघुपति बिन मैं तन भस्म, कर दूँगी वन बीच ।।२५।।
एक पल नहीं जी सकूं, बिना प्रभु रघु-नाथ ।
मेरी देह को न छू सके, अपर पुरुष का हाथ ।।२६।।
यह कह वह रोने लगी, सिर माथे को पीट ।
तड़प पड़ी वह तो तथा, ज्यों काटे विष-कीट ।।२७।।
*सीता की सुनकर कटु बानी, लक्ष्मण की काया कम्पानी ।
हाथ बान्ध बोला, हे मेरी, देवता रूप आप घनेरी ।।२८।।
पूजनीया हो यथा मम माता, तुझ को हूँ मैं सीस झुकाता ।
मोहन माया ने हो घेरी, देव-हस्त है सुरक्षा तेरी ।।२९।।
यह कह उसे चला आवेशी, खेद खिन्न व्याकुल मुनिवेशी ।
ज्यों लक्ष्मण ने पीठ फिराई, विप्र सिया को दिया दिखाई ।।३०।।

* चौपाई।

पैर खड़ाऊँ सिर पर चोटी, कर में कमण्डल लिये सोटी ।
वस्त्र कषाय देह पर धारे, आया रावण कपट पसारे ।।३१।।
{जग में होते छल बल जेते, जो जन जिसको धोखा देते ।
वेश वचन से बन बहु नीके, करते कर्म कुटिल कटु फीके ।।३२।।
चोर छली घातक जन द्रोही, कामी वंचक लोभी जो ही ।
देते धोखा बहुत शिकारी, सज्जन साधु वेश के धारी} ।।३३।।
सीता को त्यों उसने घेरा, शशि बिन सन्ध्या को अन्धेरा ।
आया सीता पै बन साहू, ज्योत्स्ना पर जैसे हो राहू ।।३४।।
ब्राह्मण-वेश देख सियानी, अर्घ्य अर्चा का देकर पानी ।
आदर से उसको बिठलाती, दर्शन कर सुहर्ष थी पाती ।।३५।।
कहा कपटी द्विज ने देवी!, तू ने कुटिया क्यों यह सेवी? ।
वन-पशु हैं जीवन हर लेने, बसते असुर यहां भय देने ।।३६।।
कुटी योग्य नहीं है तेरे, उचित तुझे हैं महल बसेरे ।
अद्भुत जग में है तू नारी, सुन्दरता की सम्पत् सारी ।।३७।।
एक बार जो देखे तोहे, रूप तेरा जन चित्त को मोहे ।
रंग रूप यौवन की रासी, भोगे क्यों तू यहाँ उदासी ।।३८।।
सर्व सुन्दरी तू अलबेली, क्यों यहां है रहती अकेली ।
गति मति अपनी बतलाना, वन बसने का भेद बताना ।।३६।।
कहा सीता ने, प्रिय! ज्ञानी, सुनो वन बसने की कहानी ।
यह कह अथ से इति तक जेती, कही कथा उस ने उस सेती ।।४०।।
बोली, उसे पके फल खाओ, ये लो सुख से भोग लगाओ ।
वन से अभी रघुनाथ हैं आते, कन्द मूल वन-भोजन लाते ।।४१।।
वनज-वस्तु का भोजन नाना, बहुविध का दूँगी मैं खाना ।
क्यों फिरते हो कहो अकेले, कौन नाम किसके हो चेले ।।४२।।

मोह-मुग्ध लख राम-महेषी, छद्म असुर, ऋषि-जन विद्वेषी ।
लक्ष्मण दूर गया लख के ही, बढ़ कर हरने लगा विदेही ।।४३।।
बोला, सिया! असुर हूँ राजा, सब दिश बजता मेरा बाजा ।
भीत रहे मुझ से त्रिलोकी, जाती न शक्ति मेरी रोकी ।।४४।।
मोहक मूर्ति मधुर तुम्हारी, निरख-रूप छटा एक बारी ।
मोहित हूँ मैं तव अनुसारी, पत्नियाँ न लगें मुझे प्यारी ।।४५।।
मैंने रूपवती बहु बेरी, हरण नारियां की बहुतेरी ।
उन से अधिक गई तू मानी, होगी उन पर तू पटरानी ।।४६।।
लंका नामक नगरी मेरी, जनपद जन सह होगी तेरी ।
मेरी साथिन अब बन जाओ, विचर रमण कर सब सुख पाओ ।।४७।।
भूषण-भूषित शत शत दासी, सज्जित सब ज्यों पूर्णमासी ।
बनें सेविका तेरी वे ही, पाकर मुझ को अपना स्नेही ।।४८।।
व्याध पंजे में पक्षी ज्यों ही, फंसी असुर-हस्त में त्यों ही ।
ज्यों श्वान से मृगी घिराती, त्यों वह थी अपने को पाती ।।४९।।
विद्युत् सम कड़क वह बोली, थाम शाटिका भुज से चोली ।
रामचन्द्र की पत्नी ऐसी, जान मुझे शशि-ज्योत्स्ना जैसी ।।५०।।
अतिशय सुन्दर है मम स्वामी, सत्य शील शुभ पथ अनुगामी ।
बहुत बली है वीर निराला, उस सा अन्य न शोभा वाला ।।५१।।
सिंह-पत्नी को गीदड़ छेड़े, यथा मृत्यु अपनी सहेड़े ।
त्यों ही तू है मुझे लुभाता, निज मृत्यु है आप बुलाता ।।५२।।
रवि प्रभा को चाहे छूना, पावेगा दुःख दाह दूना ।
सिंह सर्प मुख में कर डाले, चाहे उसके दान्त निकाले ।।५३।।
काल कूट विष खाना चाहे, जो तू कर मम ओर बढ़ाये ।
तीखी शूलों पर तू सोना, चाहे आंख में सुई चुभोना ।।५४।।

छुरा जीभ से चाहे चाटा, तुझे प्राण का होगा घाटा ।
अन्तर तुझ राघव में सो ही, है श्रृगाल सिंह में जो ही ।।५५।।
काक गरुड़ में अन्तर जैसा, तुझ रघुपति में है वह वैसा ।
गीध हंस के सम हो कैसे, राघव तुल्य न हों तुझ जैसे ।।५६।।
सीता के सुन वचन करारे, छटपटा कर क्रोध के मारे ।
रावण ने निज हस्त पसारे, पकड़े केश कर वाम सहारे ।।५७।।
दहिने कर से पकड़ी जंघा, उसकी उसने कर अति दंगा ।
पकड़ी गई वह उससे तथा ही, फँसे जाल में मृगी यथा ही ।।५८।।
व्याध हंसनी को ज्यों फांदे, सिया अंग त्यों भुज से बाँधे ।
उठा गोद में रथ में डाली, रोती, सुख में रहने वाली ।।५९।।
अज्ञात दिशा को थी वह जाती, कोसती उसको बहु चिल्लाती ।
कहती हंस, मोर, शुक मैना, पिक सारस सन्देश हि देना ।।६०।।
कहना रघुवर से दुःख देनी, तुम कटु-कथा प्राण हर लेनी ।
शाल शिंशपा जब वे आयें, मुझको न देख जब घबरायें ।।६१।।
हरण-कथा तब उन्हें बताना, दुर्दशा दारुण दुःख सुनाना ।
हरिण गवय बन्दर वन-चारी, व्यथा कहना उनको सारी ।।६२।।
देव सिद्ध मुनि उत्तम ध्यानी, गगन गमन में जो वरदानी ।
होनी हुई जिन्हों ने जानी, कहियो उनको करुण कहानी ।।६३।।
गोदावरी सहित स्व-धारा, कहना उन्हें कष्ट यह भारा ।
नमस्कार तुझे भूमि माता, हो तुझे मम विरह है आता ।।६४।।
उसी समय जटायु नामी, बहु वृद्ध नभ भू का गामी ।
सीता-हरण देख घबराया, बल से रावण-सम्मुख आया ।।६५।।
उसे बोला, न हरना सीता, धर्मवती सती है विनीता ।
निन्दित कर्म है यह तुम्हारा, पाप घोर कहा गया सारा ।।६६।।

बारहवां सर्ग

*सीता रोती देख कर, हुआ क्रोध में लाल ।
दौड़ा जटायु असुर पर, बना वेग से काल ।।१।।
बोला उसको, ठहरिये, अरे निशाचर नीच ।
अभी गिराता हूं तुझे, मैं इस वन के बीच ।।२।।
अधिक कुपित होकर असुर, दौड़ा ले बल वेग ।
लड़े परस्पर वे तभी, ज्यों नभ में दो मेघ ।।३।।
वीर जटायु वृद्ध ने, मार मुष्टि नख लात ।
रावण को घायल किया, असुर-रक्त कर पात ।।४।।
हनन सारथी को किया, रावण कवच मरोड़ ।
फेंका उसको भूमि पर, और धनुष को तोड़ ।।५।।
रावण ने भी बाण से, किये उसे बहु घाव ।
जिन से था तब हो रहा, बहुत रुधिर का स्राव ।।६।।
बल से खड्ग निकाल कर, करके फिर प्रहार ।
काटे अंग जटायु के, बहुत बार कर वार ।।७।।
अधमुआ होकर वह नर, गिर गया उसी काल ।
सांस साथ था सिमरता, राघव दीन-दयाल ।।८।।
{सेवक संगी बहुत हैं, सुख स्वार्थ के मीत ।
सिर दे जो सेवा करे, जाय जगत् वह जीत ।।९।।
सच्चा सेवक सो ही है, जो स्वामी हित देह ।
करे दान बलिदान कर, कभी न तोड़े नेह} ।।१०।।
जटायु को मर्दित मथित, सीता तभी निहार ।
हा हा करती रो उठी, फिर फिर उसे पुकार ।।११।।

* दोहा।

कहती जाती रुदन कर, अहो लक्ष्मण सभ्रात ।
कैसे जटायु है गिरा, तुम्हें नहीं है ज्ञात ।।१२।।
मुझे बचाने के लिए, लड़ा दौड़ कर वीर ।
नाथ साथ से हीन अब, दीखे छिन्न शरीर ।।१३।।
आप नहीं हो जानते, कैसे मेरे काज ।
प्राण अर्प कर है पड़ा, प्रभु-भक्त यह आज ।।१४।।
मुझ दुखिया अति दीन को, कुदशा दुर्गति साथ ।
दैत्य निर्दय हर रहा, जान विहीना नाथ ।।१५।।
पिछले पाप विपाक से, पाकर मैं पर-पाश ।
तड़प तड़प हूँ पीटती, रोती हुई निराश ।।१६।।
परम प्यारे पति देव हे, मेरे जीवन प्राण ।
पर-पंजे में हूँ पड़ी, करियो मेरा त्राण ।।१७।।
फूट फूट रो वह सती, करती बहुत विलाप ।
उसका आर्तनाद वह, गया सभी दिश व्याप ।।१८।।
कदलीवत् थी कांपती, नयन किये अति लाल ।
झर रही गिरि ज्यों झरे, पाकर वृष्टि-काल ।।१६।।
केश रहे थे बिखर तस, वस्त्र रहे थे झूल ।
भूषण पड़ते खिसक कर, कम्पित था जड़ मूल ।।२०।।
दश दिश दीखे दुःख उसे, दशा निशा नैराश ।
दुष्ट दस्यु के हस्त में, थी वह बहुत हताश ।।२१।।
बरसती बदली बन वह, बहुत वेदना-नीर ।
व्यथा विरह वियोग के, बहते वचन अधीर ।।२२।।
घन बन उसके नयन दो, तापित बूँदें गेर ।
करते वन-जन-नयन को, उन्नत मुख इक बेर ।।२३।।

संग मिली हाकार के, उसकी लम्बी आह ।
मिलकर विस्तृत वायु में, लेती लहरें अथाह ।।२४।।
उसके मुख से वचन सह, निकल विषाद अगाध ।
गगन अन्त तक वेग से, जाता व्याप अबाध ।।२५।।
उसकी मानस वेदना, कर कम्पित सुर लोक ।
तरल तरंग अभंग से, उन में भरती शोक ।।२६।।
असुर पिंजरे में पड़ी, कोयल हंस समान ।
अन्तःस्थल तक वेदना, पा वह रही महान् ।।२७।।
नभ पथ से था जा रहा, सिया लिये वह व्याध ।
बहुत वेग से वह असुर, करके अति अपराध ।।२८।।
पम्पा-वन को लांघते, गिरि शिखर पर शूर ।
देख सिया ने पाँच जन, नीचे बैठे दूर ।।२९।।
भूषण रत्न उतार कर, दुपट्टे बीच लपेट ।
फेंके नीचे को तभी, पोटली कर सिमेट ।।३०।।
मोह-मद्य मद मत्त था, महा मुग्ध उस याम ।
जान न पाया असुर तब, सीता का वह काम ।।३१।।
ले कर भूषण वे सभी, धर कर सुरक्षित स्थान ।
लगे देखने पांच वे, नभ से जाता यान ।।३२।।
रोती नारी जा रही, करती आर्तनाद ।
जान न पाये कौन है, जो कर रही विषाद ।।३३।।
*रावण साथ सिया थी जाती, दुखिया रोती बहुत चिल्लाती ।
आसुर-भुजा भुजग ने घेरी, फंस रही थी वह बहुतेरी ।।३४।।

* चौपाई।

अग्नि-शिखा धूम्र से ज्यों ही, घिरी असुर से थी तो त्यों ही ।
चन्द्र-कला पर राहु आता, असुर था सिया साथ दिखाता ।।३५।।
काले घन में बिजली जैसे, गोद असुर में थी वह ऐसे ।
पद्मकमल पर नागिन काली, भुजा असुर ने उस पर डाली ।।३६।।
लांघ नदी नद सर सब नाले, ऊँचे पर्वत शिखरों वाले ।
कर के सिन्धु-पार वह दोषी, गया लंका में अधम रोषी ।।३७।।
अन्तःपुर में यान टिकाया, उस ने वहाँ उसे बिठलाया ।
असुरियाँ पहरे पर लगाईं, आज्ञा पाकर जो थी आईं ।।३८।।
बोला उन्हें, कोई न आवे, इसे यहां जन देख न पावे ।
जो मांगे वह इस को देना, सार सम्भार तुम सब लेना ।।३९।।
निकल वहां से बाहर आये, उसने योद्धे आठ बुलाये ।
कहा उन्हें, तुमने अब जाना, राघव को अब मार मिटाना ।।४०।।
मैंने हर ली उसकी सीता, नहीं बचे वह तुमसे जीता ।
हनन करो जा कर खर-घाती, बदला लो कर पालन जाती ।।४१।।
पुनः लौट रच बहुत बहाने, सीता को वह लगा लुभाने ।
अतिशय सुन्दर सदन दिखाने, ऋद्धि-सिद्धि सम्पत् बतलाने ।।४२।।
बोला, सीते! सुन मम बातें, यहाँ रहो सुख से दिन रातें ।
धन जन रत्न सर्व जो मेरे, हुए आज से वे तो तेरे ।।४३।।
बनो स्वामिनी सब की राणी, तेरा है अब तो यह प्राणी ।
भार्या आज बनी तुम मेरी, फिर नगरी जनता है तेरी ।।४४।।
हो प्रसन्न मुझे सुखदेनी, मधुरभाषिणी मन हर लेनी ।
हठ छोड़ो मेरी बन जाओ, हर्ष करो मम हर्ष बढ़ाओ ।।४५।।
राघव मेल की न कर आशा, तुझे इससे होगी निराशा ।
रामचन्द्र अनुज सह सीते, अब तू जान नहीं हैं जीते ।।४६।।

मेरे वीर गये हैं भारे, होंगे अवश्य उन्हों ने मारे ।
रमण करो मुझ से अब प्यारी, मैं तो हूँ तेरा अनुसारी ।।४७।।
कथन धर्म को हनने हारा, सुन सीता ने उसे धिक्कारा ।
बोली वह, सुन असुर हत्यारे, पके पाप अब सर्व तुम्हारे ।।४८।।
फल देने राघव हैं आते, तुम्हें पाप का स्वाद चखाते ।
बरसेंगे जब बाण निराले, तुम्हें प्राण के होंगे लाले ।।४६।।
रामचन्द्र की पत्नी हरी है, तू ने अवज्ञा घोर करी है ।
वे आकर तव प्राण हरेंगे, तव जीवन का अन्त करेंगे ।।५०।।
सिंह-पत्नी को श्वान यथा ही, चाह रहा तू मुझे तथा ही ।
खर-दूषण का हन्ता भारा, लेगा बदला आ कर सारा ।।५१।।
राजहंस सह करती लीला, हंसनी शुचि विचरे सुशीला ।
कुर्कुट कृमि-कीट आहारी, कैसे हो उसका अधिकारी ।।५२।।
महा मलिन म्लेच्छ तू मोही, मेरा संगी सके न हो ही ।
मैला मूढ़ तू मति-विहूना, चाहे शुचि वेदी को छूना ।।५३।।
पतिव्रता हूँ आर्या नारी, सती-धर्म मैं जानन हारी ।
दस्यु अनार्य नीच विदेशी, छू सके नहीं राम-महेषी ।।५४।।
टूक टूक कर काटो काया, दो तुम कष्ट कठोर सवाया ।
मुझे नहीं है देह बचानी, आन बान है मुझे निभानी ।।५५।।
बोला फिर वह नाक चढ़ाता, महा कोप में मुँह फुलाता ।
सुना उन्हें जो रक्षण वाली, भयकरी कुरूपा काली ।।५६।।
सीधी करो इसे इस बेरी, इसका गर्व हरो बिन देरी ।
जैसे हथिनी सधै बनैली, ठीक करो यह अधिक कसैली ।।५७।।
उसे वाटिका में वे लाईं, पकड़ घेर कर गौ की नाईं ।
उन से सीता घिरी दिखाती, कुत्तियों से ज्यों मृगी घिराती ।।५८।।

यद्यपि वनिका थी रमणीया, पर सिया से न जाता जीया ।
हो रही थी प्राण से रीती, भीतर ही जाती वह बीती ।।५६।।
ताड़न तर्जन पाती जो ही, दिल अदम्य से सहती सो ही ।
निज पति देवर को वह ध्याती, सिमर सिमर अचेत हो जाती ।।६०।।
आशा बीच सांस थे आते, राम-भरोसे क्षण कट जाते ।
रामचन्द्र-चरण के ताले, उस के मन के थे रखवाले ।।६१।।
{सती वही जो धर्म विचारें, धृति धरें सब कष्ट सहारें ।
पर वश पड़ीं न मन को हारें, प्राण तजें पर आन न मारें ।।६२।।
वज्र समा जो बनें हठीली, लोभ-ताप पा बनें न ढीली ।
पातिव्रत में होवें ऐसी, अचल अकम्प जो मेरू जैसी ।।६३।।
जाति की ज्योति वही कहातीं, जननी जग में पूजन पातीं ।
नाम काम उन के शुचि नीके, जीवन बनते जग जन जी के} ।।६४।।

तेरहवाँ सर्ग

*राघव बहुत उतावले, दौड़े उलटे पैर ।
आते थे चिन्तित हुए, सिमर आसुरी वैर ।।१।।
दुर्घट घटना यदि घटे, घड़ी बीच जो घोर ।
तो घर घाट का न रहा, मैं आज इसी ठौर ।।२।।
ऐसी बातें सोचते, सीता का कर ध्यान ।
रघुपति चिन्तामग्न हो, चलते पवन समान ।।३।।
इतने में ही सामने, आया लक्ष्मण वीर ।
उसे देख शंकित हुए, व्याकुल बहुत अधीर ।।४।।
बोले, बन्धो! आप से, हुई बड़ी है भूल ।
सिया अकेली छोड़ना, नहीं नीति-अनुकूल ।।५।।

* दोहा।

कुशल न मुझको दीखता, बने शकुन विपरीत ।
कोई घटना घोर तर, वहाँ न जावे बीत ।।६।।
मृग-मोह जिसने रचा, वह माया रच आज ।
कौन कहे क्या कर गया, अब तक कुटिल कुकाज ।।७।।
लक्ष्मण ने उनको कही, आदि अन्त तक बात ।
सुनकर श्री रघुराज के, काँप गये सब गात ।।८।।
शीघ्रतर चलकर तभी, मन से वे उद्भ्रान्त ।
गये कुटी में वेग से, हो कर अधिक अशान्त ।।६।।
भीतर सीता है नहीं, देख जान रघुराज ।
बोले इत उत भटकते, कहाँ गई हो आज ।।१०।।
अस्त-व्यस्त आसन सब, बिखर रहे सामान ।
सूने स्थान देख सभी, हुए दुःखी महान् ।।११।।
लगे सोचने चित्त में, किसने दी वह मार ।
भक्षण क्या की असुर ने, करी गई अपहार ।।१२।।
अथवा छुप बैठी कहीं, करने को उपहास ।
लेने को जल-कुसुम क्या, कहीं गई है पास ।।१३।।
वायु-वेग बने रघुपति, वन उपवन में आप ।
फिरने लगे उतावले, करते बहुत विलाप ।।१४।।
ऊँचे शाल विशाल हे, ताड़ कदम्ब उतुंग ।
कहना सीता है कहां, तज कर मेरा संग ।।१५।।
शाल्मली हे शिंशपे, मुझे बताना राह ।
जिससे सीता है गई, दे मुझे दुःख अथाह ।।१६।।
सब पेड़ों से पूछते, जाकर उनके पास ।
कलि कुसुमों से पूछ वे, होते बहुत उदास ।।१७।।

उड़ते पंछी देख कर, रघुपति पड़ते बोल ।
मरण हरण उसका कहो, निर्भय हो दिल खोल ।।१८।।
फिरते चरते देख पशु, कहते उन्हें निराश ।
पता सिया का हो तुम्हें, कह बन्धाना आश ।।१६।।
नदी नाले वन उपवन, ऊँचे नीचे स्थान ।
थे फिरते उन्मत्त सम, पूर्ण प्रेम-निधान ।।२०।।
हा! सिया है कहां गई, मुझे अकेला छोड़ ।
कौन बतावे है कहां, बैठी अंग सिकोड़ ।।२१।।
परम प्यारी वह प्रिया, मेरी प्राणाधार ।
परवश तापों से तप्त, कहाँ तड़पे अपार ।।२२।।
मेरे विरह वियोग में, विषम वेदना साथ ।
बाधा विघ्न विषाद में, होगी बनी अनाथ ।।२३।।
शत्रु बन्धन से विवशा, बहुत बिलख कर दीन ।
विविध वचन-वध है कहीं, पाती मुझ से हीन ।।२४।।
अमल कमल सम कोमला, अबला लीला-धाम ।
सरला मृदुला सुशुभा, कहां गई तज राम ।।२५।।
मधुर महा मनमोहिनी, रमणी अति अभिराम ।
मोहक मुख की माधुरी, कहां गई गुण-ग्राम ।।२६।।
चन्द्रमुखी चतुरा अति, चारु चरण शुचि-अंग ।
चित्त-चेतना चमक मम, आशा और उमंग ।।२७।।
कहां गई वह आज तो, राजहंस की चाल ।
मृगनयनी शोभा शुचि, विमल मृदु मृणाल ।।२८।।
विधुवदनी सजनी सदा, सरस स्नेह संचार ।
करती मुझ में जो सिया, कहां गई इस बार ।।२६।।

मेरे दिल को दर्द दे, दे कर दारुण दाह ।
दु:ख देह को दान कर, सिया गई किस राह ।।३०।।
मम तन-वन को दहन कर, रही विरह की आग ।
सांस पंख से उड़ रहे, प्राण-पक्षी तन-त्याग ।।३१।।
*कहना लक्ष्मण मेरे भाई, कहां आज है तव भौजाई ।
कमल-नाल सम कोमल काया, खा ली असुरों ने रच माया ।।३२।।
कोमल कोंपल कलि-दल जैसे, उसके अंग मृदु हैं ऐसे ।
असुरों ने होंगे सब तोड़े, बहुत चबाये बहुत निचोड़े ।।३३।।
हा! प्रिये हा! सुन्दर सीते, हा! शोभे हा! बहुत विनीते ।
सुखदे वरदे सुशुभे शान्ते, परम सुशीले कमले कान्ते ।।३४।।
पतिव्रते अनुरते विशाले, हाय! विमले वल्लभे बाले ।
प्राणाधारे जीवन रूपे, प्रेममयी! हा! प्रेमसुरूपे ।।३५।।
कहो कहां हो मेरी प्यारी, देह की जीवन-ज्योति सारी ।
पति कह कर इक बेर बुलाना, मोहक मुख इक बार दिखाना ।।३६।।
राघव रोते बहुत चिल्लाते, भ्रान्त सम थे दौड़ लगाते ।
इधर उधर फिर फिर थे जाते, हाय हा की पुकार मचाते ।।३७।।
डगमगाते ठोकरें खाते, व्याकुल व्यथित बहु दिखलाते ।
बोले लक्ष्मण को फिर वे ही, कहीं मिली न मुझे वैदेही ।।३८।।
देखो चाहे भूतल सारी, मुझसा मिले न दुष्कृतकारी ।
शोक पर मुझे शोक सताते, मेरा मन दिल मथित बनाते ।।३९।।
निश्चय पाप किये हैं कोई, मैंने तन्मय होकर सोई ।
जिन के फल आ बारी बारी, दे रहे मुझे दुखड़े भारी ।।४०।।

* चौपाई।

मरण पिता का बिछड़ी माता, बन्धु मित्र बिछुड़ गए भ्राता ।
उस पर घोर वनों में आना, सीता-हरण यहां हो जाना ।।४१।।
इस से मेरे मन की ज्वाला, दग्ध करती है देह-शाला ।
चिन्ता चित्त को चूर्ण बनाती, निराशा नदी है उमड़ी आती ।।४२।।
बोला लक्ष्मण, हे रघुराई, तजो शोक की यह अधिकाई ।
वीर धीर बन धैर्य धारो, मोह खेद को दूर निवारो ।।४३।।
उत्साह साहस मन में लाओ, सिया-खोज में ही लग जाओ ।
जो जन जग में हो उत्साही, उनको दुष्कर काम न भाई ।।४४।।
उत्साह है बलवान बताया, उत्साह में बल सभी समाया ।
उत्साह सब को सफल बनाता, उत्साहवान् नहीं घबराता ।।४५।।
दुर्गम गुहा गिरि गहराई, सम विषम गढ़ गर्त ऊँचाई ।
उत्साह सहित खोज कर सारी, पा लेंगे हम जनक-दुलारी ।।४६।।
दूर निकट घन वन है जो ही, खोजो आप बहुत उनको ही ।
बन उत्साही सुधीर अशोकी, मथन करो मिल तुम त्रिलोकी ।।४७।।
व्रत यजन रचकर जो पाया, दशरथ ने सुतवर मनभाया ।
उसका शोकित चिन्तित ऐसे, होना है अघटित हो जैसे ।।४८।।
तुझ में शोक न शोभा पाता, निराशपना नहीं खेद सुहाता ।
साहस उत्साह धैर्य आशा, लेकर करिये नाश निराशा ।।४६।।
{पति पद को बहु जन हैं पाते, कितने हैं जो धर्म निभाते ।
पत्नी-व्रत में जो नर पूरे, पति-पद-योग्य हैं वे शूरे ।।५०।।
पत्नी-परायण जो घरबारी, संयम शील धर्म के धारी ।
चाहें नहीं अपर की नारी, कहे वे गये ब्रह्म-चारी ।।५१।।
एक पत्नी जिसने मानी, अपर इच्छा वा तजी बिरानी ।
पत्नी-विरह में व्याकुल जोही, पति यति पुरुष कहा है सोही ।।५२।।

पति पुरुषोत्तम पूर्ण प्रेमी, एक पत्नी के पूरे नेमी ।
पति आदर्श रघुपति माने, पावन पुरुष गये जग-जाने ।।५३।।
सिया विरह में उनका रोना, ढूंढ देखना कोना कोना ।
पति पद पालन परम सुहाना, अनुपम था पर प्रेम निभाना} ।।५४।।

चौदहवाँ सर्ग

*लक्ष्मण के सुनकर वचन, मन में धैर्य धार ।
सावधान हो सम्भल कर, मन में सोच विचार ।।१।।
सिया-खोज में लग गये, रघुपति सह निज भ्रात ।
गिरी गुहा को देखते, लता पेड़ वन पात ।।२।।
गये वहाँ वे बन्धु मिल, जो था वह भू भाग ।
वीर जटायु जहाँ पड़ा, प्राण रहा था त्याग ।।३।।
टूटा धनु रथ देख कर, कवच सहित हथियार ।
देख सारथी हत पड़ा, राघव ने निर्धार ।।४।।
कहा अनुज को यहाँ पर, कौन लड़ा संग्राम ।
किस जन का यह कर्म है, कौन युद्ध का काम? ।।५।।
ऐसे कह कर वचन तब, किंचित् जा कर दूर ।
मर्दित देखा उन्होंने, व्याकुल जटायु शूर ।।६।।
एक बार आवेश में, समझे श्रीरघु-राज ।
भक्षण कर यह सीता को, रच रहा पड़ा व्याज ।।७।।
बोले, लक्ष्मण! देखिये, कैसा है यह क्रूर ।
सीता को खा यह असुर, है मद में अति चूर ।।८।।

* दोहा।

उसके पास उतावले, गये जभी वे वीर ।
लत पत लहू लुहान सब, उसका देख शरीर ।।६।।
ठीक उसे पहचान कर, जान पिता का मीत ।
संगी अपना समझ कर, बन कर बहुत विनीत ।।१०।।
रघुपति ने पूछा उसे, बहुत दया के साथ ।
रुधिर-लिप्त हत क्यों हुए, वह बोला, रघुनाथ! ।।११।।
जीवन-जड़ी ज्योति परम, आप रहे जो ढूँढ ।
रावण ने है वह हरी, होकर मद में मूढ़ ।।१२।।
उसने ही मेरे हरे, समर बीच ये प्राण ।
जब मैं था लड़ता समर, करता सीता-त्राण ।।१३।।
जब रावण था जा रहा, रथ में सीता डाल ।
देख लिया मैंने तभी, उसको तो तत्काल ।।१४।।
सीता के परित्राण में, किये असुर पर वार ।
मैंने रथ तोड़ा कवच, दिया सारथी मार ।।१५।।
निज सारथि हत देख कर, त्यौड़ी डाल ललाट ।
खड्ग से रावण ने तब, अंग दिये मम काट ।।१६।।
लम्बा साँस निकाल तब, कर ढीले सब अंग ।
गया जटायु स्वर्ग को, चढ़ आकाश-तरंग ।।१७।।
दीन दशा तस देख कर, रघुवर दीन-दयाल ।
गले लगा उसको मिले, सके न दिल-सम्भाल ।।१८।।
मूर्च्छा खा कर गिर गये, हो अचेत इक बार ।
हो सचेत रोने लगे, बान्ध अश्रु का तार ।।१६।।
बोले, लक्ष्मण जानिए, मेरा कर्म दुर्भोग ।
पदभ्रष्ट मैं वन बसा, इस पर पत्नी-वियोग ।।२०।।

मेरे कारण यह मरा, सखा समर में आप ।
पीड़ित प्राणों सह करे, मुझ को यह सन्ताप ।।२१।।
*सब जग फिर कर देखो जो ही, मुझ सा अभागी जन न हो ही ।
मेरे कर्म की कटु कहानी, अन्य किसी में गई न जानी ।।२२।।
कर्म कुटिल ने पलटा खाया, सखा मित्र गया भी गिराया ।
भूमि पर यह पड़ा है ऐसे, क्षत्रिय वीर समर में जैसे ।।२३।।
हाथ जोड़ कर श्री रघुराई, देते थे उस काल दुहाई ।
भक्त-राज कुछ भी तो बोलो, मधुर स्मित सह मुख तो खोलो ।।२४।।
वृत्त सभी मुझे आप बताना, सिया-कष्ट की कथा सुनाना ।
सुनता कैसे राघव-वाणी, प्राणरहित तो था वह प्राणी ।।२५।।
राघव बोले, हे लघुभ्राता, बहुत वृद्ध सुना यह जाता ।
रहा आलस्य हीन सदा ही, उद्यम रहित हुआ न कदा ही ।।२६।।
निद्रारहित रहा सदा जो भी, सुप्त पड़ा मौनी जन सो भी ।
काल-गाल से बचा न कोई, अवश्य मरे जनमें जन जो ही ।।२७।।
मेरा है यह अति उपकारी, सच्चा संगी प्रेम का धारी ।
मेरे हित तन इसने त्यागा, मरा समर में वीर न भागा ।।२८।।
सिया-हरण से दुःख न ऐसा, यह हत देख मुझे है जैसा ।
पिता मुझको पूज्य यथा ही, पूज्य रूप था यह तथा ही ।।२६।।
ईन्धन चयन करो इस से ही, इसका दाह करें जिस से ही ।
चिता-चयनकरउसपरकाया, धर कर अनुज ने वह टिकाया ।।३०।।
अन्तिम शय्या-शयन के होते, बोले समीप रघुपति रोते ।
वीर धीर सुद्विज अति शूरे, प्रेम सत्य में नर वर पूरे ।।३१।।

* चौपाई।

मेरे कर से क्रिया पाओ, उत्तम सुरलोकों को जाओ ।
दान यजन जो कर्म कमाते, समर में जो न पीठ फिराते ।।३२।।
ऐसे जन जिस गति को पाते, शुभ कर्मी जन जहां हैं जाते ।
उसी लोक को तुमने जाना, उत्तम पद स्वर्ग को पाना ।।३३।।
यह कहते तब चिता जलाई, राघव ने ही आग लगाई ।
दाह करके बन्धु की नाईं, शोकित हुए जग के गुसाईं ।।३४।।
पुनः फिरने लगे वे ऐसे, जड़ी ढूँढने योगी जैसे ।
वन पर्वत झीलें नद नाले, सभी उन्होंने देखे भाले ।।३५।।
ढूँढ़ते सिया कहीं न पाई, उस पर उन्हें दुर्घटना आई ।
असुर कबन्ध मिला कुरूपी, महाकाय अति स्थूल विरूपी ।।३६।।
लम्बी भुजा उस ने पसारी, घेरे वे दोनों इक बारी ।
बाहु-बन्धन में वन-विहारी, बन्ध गये बहु बल के धारी ।।३७।।
बोला कबन्ध, देह तुम्हारी, खा डालूंगा अब तो सारी ।
मुझे भूख ने बहुत सताया, भोजन स्वादु हाथ है आया ।।३८।।
अचानक फंस अति घबराये, दोनों ने बल बहुत लगाये ।
अन्त में अपनी खड्ग निकाली, भुजा काट उसकी तब डाली ।।३६।।
निर्भुज असुर गिरा उस वेला, जैसे कट कर गिरता केला ।
पड़ा भूमि पर रुधिर बहाता, निजू किये पर अति पछताता ।।४०।।
पूछ सर्व उसने वे जाने, रामचन्द्र लखन पहचाने ।
उसमें उस समय सुमति व्यापी, विनय सहित बोला अनुतापी ।।४१।।
श्री राघव मैं तो यह चाहूँ, तव हस्त से भस्म हो जाऊँ ।
भानु-अस्त से पूर्व मेरी, करना देह भस्म की ढेरी ।।४२।।
पर तुम्हें यह हूँ मैं बताता, सिया-मिलन की युक्ति सुनाता ।
समदुखिया जन से मिल जाना, सन्धि प्रेम से काम बनाना ।।४३।।

विपदा में अब तुम हो ज्यों ही, घिरा हुआ सुग्रीव है त्यों ही ।
सुनिए उसकी करुण कहानी, उस की हरी गई है रानी ।।४४।।
उस का बड़ा बन्धु है बाली, बुद्धि बल युत अति शक्तिशाली ।
सुग्रीव-राज्य हरकर सारा, उस ने निकाला वह बेचारा ।।४५।।
ऋष्यमूक गिरि का वासी, अब हो रहा है वह उदासी ।
धन सम्पत् खोकर निज नारी, सह रहा है कष्ट भी भारी ।।४६।।
तेज कान्तियुत वीर निराला, धृतिवान् है शोभा वाला ।
उस से जाकर मेल बढ़ाओ, उस को अपना मित्र बनाओ ।।४७।।
चाहिए वह उसे भी साथी, महाबली पर-पक्ष प्रमाथी ।
अवश्य बनेगा वह सहाई, बनकर सच्चा सखा सुखदाई ।।४८।।
कहकर बातें सुन्दर ऐसी, शुद्ध भाव भरी सुधा जैसी ।
वह प्राण तज स्वर्ग सिधारा, रघुपति का शुभ लिए सहारा ।।४६।।
देह दहन कर उसकी स्वामी, रामचन्द्र जगत् में नामी ।
पम्पा वन को चले वियोगी, आशावादी सुकर्मी योगी ।।५०।।

किष्किन्धाकाण्ड
पहला सर्ग

*वन उपवन सब देखते, नद नाले सर झील ।
मिलते मुनिजन को तथा, देखते सुवन नील ।।१।।
चलते क्रम से रघुपति, पम्पा - पश्चिम - तीर ।
पहुँचे बन्धु सहित वे, जहाँ विमल था नीर ।।२।।
आश्रम शबरी का शुचि, रम्य मनोहर स्थान ।
देखा राघव ने वहाँ, सुन्दर शोभावान् ।।३।।
तरु-माला से सज रहा, लता पुष्प का पुँज ।
था वहां अति सुहावना, सुन्दर कदली कुँज ।।४।।
भील-वंश की भामिनी, भक्ति भाव में लीन ।
सुशिष्या ऋषि मतंग की, साधना में प्रवीण ।।५।।
थी सिद्धा शबरी नाम्नी, वनी जन में विख्यात ।
जप तप में रत तापसी, रखती भाव उद्दात ।।६।।
आदर से वे तो गये, दोनों शबरी पास ।
ज्ञान ध्यान में जो रता, करती वहां निवास ।।७।।
उसने आते देव दो, देखे जिस ही काल ।
आदर सहित उत्थान दे, हो गई वह निहाल ।।८।।
आचमनीय पाद्य दे, कर आतिथ्य सत्कार ।
शबरी ने पाया तभी, हर्ष-उत्कर्ष अपार ।।९।।

* दोहा।

पूछा रघुपति ने उसे, श्री सिद्धे! कहो आप ।
योग क्षेम सुख शान्ति से, करती हो तप जाप ।।१०।।
विघ्न रहित हैं चल रहे, क्या साधन के काम ।
वृद्धि तप में हो रही, बाधा रहित विराम? ।।११।।
संयम में वृत्ति सभी, रहती हैं क्या ठीक ।
नियम सिद्ध क्या हो गये, रह कर यहां निर्भीक? ।।१२।।
खान पान तो युक्त है, नियमित कर्म-कलाप? ।
गुरु-पूजन क्या सफल है, जय कर तीनों ताप? ।।१३।।
बोली वह कर जोड़ कर, विनय भाव के साथ ।
हुए मनोरथ सिद्ध सब, तुझे देख रघुनाथ ।।१४।।
तप जप शम दम सर्व ही, सिद्ध हुए हैं आज ।
तव दर्शन से हे प्रभु, सुधर गये सब काज ।।१५।।
गुरु-पूजा सफला हुई, चरण कमल तव पूज ।
दर्शन अमृत पान से, चढ़ी चांदनी दूज ।।१६।।
मैं शिष्या हूँ मतंग की, ऋषि वचनानुसार ।
भव सागर से हो गया, मेरा आज उद्धार ।।१७।।
जाऊँगी शुभ लोक को, मैं तो अब बिन रोक ।
पाप ताप परिहरण कर, दूर दुःख कर शोक ।।१८।।
*भक्ति भाव से फिर वह बोली, सिद्धा तापसी सरला भोली ।
भोजन मेरा, रघुवर! पाओ, वन-बेरों का भोग लगाओ ।।१६।।
राघव ने वे वन-फल खाये, भाई सह मिल भोग लगाये ।
चख चख शबरी बेर चढ़ाती, मधुर पके उन्हें दे हर्षाती ।।२०।।

---
* चौपाई।

रुचि से थे राघव फल खाते, बार बार रस स्वाद सराहते ।
बोले, शबरी! बेर रसीले, महा मधुर हैं अति स्वादीले ।।२१।।
{भक्ति भाव का रस है ऊँचा, कहा मधुरतम प्रेम समूचा ।
भेद-भित्ति को भंजन हारी, भगवद्भक्ति सुशक्ति उच्चारी ।।२२।।
भिन्न भेद भ्रम भ्रान्ति भारी, भक्ति भस्म करे एक बारी ।
प्रेम भक्ति का ऊँचा नाता, मधुर मधु सम है कहा जाता} ।।२३।।
शबरी पूजन पा रघुराई, आगे चले लिये निज भाई ।
पम्पा सरोवर-तीर सुहाना, देखा उन्हों ने अति लुभाना ।।२४।।
कमल महा मकरन्द बहाते, थे उसमें सुगन्धि फैलाते ।
महा मत्त मधुकर गूँजाते, पक्ष पै पद्म-पराग बसाते ।।२५।।
हरी भरी वल्ली लहलहार्ती, सर तट पर र्थी शोभा पार्ती ।
खिल रहे शुचि कुसुम थे नाना, मधुकरियों का होता गाना ।।२६।।
पम्पा वन को देख तथा ही, वसन्त सहित सुरवन यथा ही ।
विरह-वायु के खा झकझोले, रामचन्द्र अनुज को बोले ।।२७।।
खिले कमल हैं अति सुखकारी, सब सौन्दर्य है मनोहारी ।
पत्रित पुष्पित विकसित नीला, शोभ रहा वन करता लीला ।।२८।।
उसमें पक्षी चहचहाते, शोभें वन में रास रचाते ।
मधुमास है महा मदधारी, माना मन में मद संचारी ।।२६।।
पूरे यौवन में है आया, रूप रंग मद लिए सवाया ।
यद्यपि रम्य रूप हैं नीके, सिया बिना नीरस हैं फीके ।।३०।।
कलरव पंछी गण का होना, मुझको लगता ज्यों हो रोना ।
कोयल-कूजन कोमल कैसा, कर्णकटु है मुझे विष जैसा ।।३१।।
सब वन नवदल-लाली वाला, लगता मुझे है दहकती ज्वाला ।
कलि कुसुम कमल मन भाते, मुझको बन अंगार जलाते ।।३२।।

बसा वसन्त है बहु सुहाता, सीता बिना मुझे मूल न भाता ।
राग रंग रस रमण विहीना, सिया बिना मेरा है जीना ।।३३।।
पंछी दम्पति मिलकर जाते, करते क्रीड़ा दिल बहलाते ।
प्राण-प्रिया सिमरन कराते, हैं मम मन तन तप्त बनाते ।।३४।।
कहां गई रमणी वह भामा, स्नेहलता सुन्दर शुचि वामा ।
कल्प बेल सम कोमल काया, है कहां मम मोहिनी माया ।।३५।।
सिया बिन निज देश को जाना, मुझे दीखता मरण समाना ।
पत्नी बिना कैसे घर जाऊँ, स्व पर जन को क्या बतलाऊँ ।।३६।।
पूछेगी जब माता मेरी, कहो कहाँ है भार्या तेरी ।
यह सुन कर मेरे उस बेरी, होंगे प्राण भस्म की ढेरी ।।३७।।
अहो! विरह दावानल भारा, दहन रहा कर मम तन सारा ।
सूख रहा जीवन-जल सोता, सुख विश्राम कहीं नहीं होता ।।३८।।
कहा अनुज ने, भाई मेरे, सुने वचन मैंने सब तेरे ।
होवे मंगल कुशल तुम्हारा, पार करो संकट नद-धारा ।।३९।।
स्थिर कर बुद्धि बहुत विचारो, विलाप रोदन सर्व निवारो ।
विमल बुद्धि के जन तुझ जैसे, दुःखी न व्याकुल होते ऐसे ।।४०।।
स्नेह-शीलता से मन मोड़ो, शोक-ताप को दिल से छोड़ो ।
तेल सहित बत्ती जले ज्यों ही, तन दग्ध हो स्नेह से त्यों ही ।।४१।।
वस्तु गई जो कर से खोई, मिले न यत्न किये बिन सोही ।
यत्न शील को जग में कोई, दुर्लभ वस्तु कुछ न हो ही ।।४२।।
उद्यम उत्साह के अवलम्बी, उचित समय कार्य-आरम्भी ।
धृति सहित स्वकर्म निभाते, अन्त अवश्य सफलता पाते ।।४३।।
जो जन हो पूर्ण उत्साही, बली नहीं जन उस सम भाई ।
उत्साही जन नहीं घबराते, विपदा विषम-नदी तर जाते ।।४४।।

पता सिया का पहले पाना, हमें चाहिए भेद लगाना ।
पीछे उसको है छुड़वाना, असुर दुष्ट को मार मिटाना ।।४५।।
महापुरुष जग में हो जाने, बुद्धिमान् हो सबने माने ।
वीर धीर हो नर प्रतापी, बनो न ऐसे तुम अनुतापी ।।४६।।

दूसरा सर्ग

* भ्राता का सुन कर कथन, धैर्य धर रघुनाथ ।
साहस उत्साह से चले, आगे लक्ष्मण साथ ।।१।।
शोकित व्याकुल बन्धु को, बुद्धि युक्ति बल संग ।
शान्त करता था अनुज, भर कर भाव तरंग ।।२।।
सावधान होकर सजग, रहता सब दिन रात ।
बड़े बन्धु की वेदना, हरता कर शुभ बात ।।३।।
मत्त फिरे गजराज ज्यों, केसरी अति निर्भीक ।
ऐसे भाई साथ वह, फिरता मन रख ठीक ।।४।।
पर्वत ऋष्यमूक की, गये तलेटी पास ।
उस गिरि पर सुग्रीव का, था हो रहा निवास ।।५।।
शस्त्र अस्त्र धारण किए, देखे उसने वीर ।
अति शंकित उद्विग्न हो, बन वह बहुत अधीर ।।६।।
बोला संगी सुजन को, देखो दो बलवान् ।
भेजे बाली ने यहां, लेने को मम प्राण ।।७।।
नहीं हमारे वंश के, नहीं असुर-आकार ।
वेश बदल कर फिर रहे, करने को संहार ।।८।।

* दोहा।

देव तुल्य हैं दीप्ते, दोनों दीप्तिमान् ।
दिव्य देह दैवी द्युति, रखते पुरुष महान् ।।६।।
बाली के ये मित्र हैं, हमें देने विश्वास ।
आते हैं मुनि वेश में, चले हमारे पास ।।१०।।
अपरिचित जनको न कभी, निकट दीजिए वास ।
विश्वास भरोसा न कभी, उस पर करे न आस ।।११।।
कपट-वेशी विश्वास दे, देश काल को देख ।
विषम वार प्रहार में, करता मीन न मेख ।।१२।।
बाली ऐसे काम में, सिद्धहस्त है भूप ।
उस ने अपने दूत दो, भेजे हैं मुनि-रूप ।।१३।।
चर की चक्षु से चतुर जन, चले चातुरी चाल ।
पर चर के मन चित्त का, लेवे भेद निकाल ।।१४।।
जाओ तुम हनुमान् अब, बदल रूप निज वेश ।
बुद्धि नीति बहु ढंग से, जानो उन्हें विशेष ।।१५।।
बात-चीत आकार से, चेष्टा नाना जान ।
भाव-भंगी मुख चक्षु से, करना सब अनुमान ।।१६।।
मुख कर मेरी ओर तुम, सहित सैन संकेत ।
मुझे बताना भेद सब, यथा तथ्य अभिप्रेत ।।१७।।
*यह पाकर आदेश, चला नर वर गुणधारी ।
अति विद्वान् हनुमान्, निपुण नीति में भारी ।।
भिक्षु रूप को धार, किये आकृति न्यारी ।
राम, अनुज के पास, आया वह मनोहारी ।।१८।।

* रोला।

सहित नम्र प्रणाम, लगा प्रशंसा करने ।
मृदु मधुर कह वचन, लगा उनका मन हरने ।।
सरस सार सह स्वाद, शब्द-सुख उनमें भरने ।
शब्द-शक्ति के साथ, मोहे वे बन्धु नर ने ।।१६।।
बोला यों हनुमान्, विनय सहित कर शुश्रूषा ।
पम्पा वन के बीच, शोभते हो बन पूषा ।।
कान्ति तेज प्रताप, आपकी सजती भूषा ।
उस पर वल्कल चीर, निराली वेश विभूषा ।।२०।।
महाबली हो वीर, सिंह सम रख कर दृष्टि ।
वन जन में बहु विचर, करते हो सुबल वृष्टि ।।
पुरुष-सार हो सुजन, सर्व-श्रेष्ठ हो सृष्टि ।
धर्म धृति को धार, तुम्हीं पुण्य-रूपा इष्टि ।।२१।।
चारु चिन्ह शुचि चरण!, चमको चन्द्र-वदन से ।
कोयल केकी कण्ठ, कोमल वाक्य नदन से ।।
मोहक मोहन महा, मधुरतम रूप मदन से ।
निसरो नवरस सार, सुरीले स्वर-सदन से ।।२२।।
अमल कमल सम नयन, भुजा तव हाथी कर सी ।
दैवी दीप्ति लिये, देह है सुन्दरता सी ।।
मानव तन में सजे, अतिशय शोभा अमर सी ।
बने हो ज्योतिर्धाम, शक्ति अति धार समर सी ।।२३।।
रूप राशि के पुंज, आप अवतरण हुए हो ।
पराक्रम के रूप, यहां अनुसरण हुए हो ।।
जटाजूट मुनिरूप, कथं मनहरण हुए हो ।
किस कारण के आप, वेश भर करण हुए हो ।।२४।।

नहीं जड़ित है मुकुट, सीस पर शोभा पाता ।
उचित राजसी वेश, देह पर नहीं दिखाता ।
भूषण-भूषित भुजा, नहीं क्यों, मन में आता ।।
हो राजपद योग्य, चित्त में यही समाता ।।२५।।
मुझे रहा है दीख, आप हैं सज्जन नागर ।
शूर वीर नर धीर, विद्या गुण गण के आगर ।।
हो समर्थ नरसिंह, शासन में भू ससागर ।
कारण वश धर वेश, फिरते हो अति उजागर ।।२६।।
तुम दोनों के धनुष, सुवर्ण सुरंग मढ़े हैं ।
सभी, कोश के वाण, नुकीले पान चढ़े हैं ।।
प्राण-घात को सांप, विषैले विषम खड़े हैं ।
रक्त-पान को खड्ग, निकले मानो पड़े हैं ।।२७।।
चम-चम चमकते सब, शस्त्र चक चौन्ध मचाते ।
चमक दमक से चक्षु, हैं सब के चुन्धियाते ।।
लप लप लहकें खड्ग, बिजली बन कुन्धियाते ।
इस में भारी भेद, भरा है यह बतलाते ।।२८।।
बुद्धिमान् हनुमान्, चतुर था चिन्ह ज्ञान में ।
लक्षण देख आकार, लाता पर-मन भी ध्यान में ।।
उसने सच्चे विशुद्ध, जाने वे अनुमान में ।
बोला पुनरपि निपुण, चुप्पी क्यों गुण निधान में ।।२९।।
वानर कुल का प्रिय, नाम सुग्रीव नरेश है ।
उस का भाई बड़ा, बाली बली विशेष है ।।
छीन लघु का राज्य, अधिक रहा कर क्लेश है ।
छुप बैठा गिरि पर, यह सब जिसका देश है ।।३०।।

मैं हूँ उसका सचिव, नाम हनूमान् कहाऊँ ।
पवन-पुत्र प्रसिद्ध, इच्छा से आऊँ जाऊँ ।।
बदलूँ रूपाकार, जभी मैं मन से चाहूं ।
करो सखा सुग्रीव, चलो परिचित करवाऊँ ।।३१।।
हुए मौन हनूमान्, कहा राघव ने लक्ष्मण ।
है यह सचिव सुजान, है रखता सर्व सुलक्षण ।।
सुग्रीव भूप का यह, है करता सदा सुरक्षण ।
पक्ष विपक्ष में है दक्ष, दक्षिण में विलक्षण विचक्षण ।।३२।।
ओज तेजयुत वाक्, शुचि है इसकी रसीली ।
शुद्ध सार सह सरस, बोलता यह रंगीली ।।
सरल साधु सह स्वाद, भूषित भाषा सजीली ।
सज्जन नवरस रसिक, है साहित्य अनुशीली ।।३३।।
ऋग्, यजु और साम, सीखे इसने वेद हैं ।
व्याकरण, श्रुति, छन्द, जाने भाष्य-भेद हैं ।।
सभी विद्याएं जान, बीते इसके खेद हैं ।
निश्चय से हैं हुए, इसके संशय छेद हैं ।।३४।।
कहता दोषविहीन, वाणी मन को हारिणी ।
महा मधुर अति सरल, शब्द-ज्ञान अनुसारिणी ।।
सहित हर्ष सुख मोद, सार्थ कल्याण-कारिणी ।
भ्रम भूल से रहित, संशय सर्व निवारिणी ।।३५।।
जन मन ले यह मोह, कोमल कविता कला से ।
करे शत्रु को मित्र, शुभा शैली अमला से ।।
स्नेह-सनी शुचि सुधा, झरे वाणी विमला से ।
यह है अति धनवान्, कला कथनी कमला से ।।३६।।

कौन पुरुष है चतुर, जिसे यह तुरत न मोहे ।
विकसित वचन विलास, इसका बहुत ही सोहे ।।
वचन विद्युत् से यह, दुष्ट का दिल भी दोहे ।
इसका सुन कर कथन, तजे अरिजन भी लोहे ।।३७।।
बोले यह सुन, अनुज, अहो! नर अतिशय बलधर ।
अतिशय सुन्दर रूप, रसिक शुभ वक्ता मधुरतर ।।
सुग्रीव ही की खोज, हैं कर रहें हम फिर कर ।
होगा मेल मिलाप, देख मिल जुलकर वरनर ।।३८।।
मान मनोरथ सिद्ध, पुनः वह बोला उन से ।
मुनिवेश मृगचर्म, लिया तुमने किस धुन से ।।
आपका सुन्दर तन, घुना जाता किस घुन से ।
घिरी घटा घन घोर, घटे क्यों इस घट तन से ।।३६।।
लक्ष्मण ने तब उसे, कही वनवास कहानी ।
वर्णन हरिण सुवर्ण, हरी गई सिया रानी ।।
विरह-वेदना विषम, भोगते राघव ज्ञानी ।
कहा समीप सुग्रीव, रहे हैं जा वरदानी ।।४०।।
कष्ट-कथा कटु करुण, कहते अति कुम्हलाये ।
शोक अश्रु के तार, लखन ने बहु बरसाये ।।
दीन-दशा वह देख, सचिव वर भी पिघलाये ।
दिल द्रवित को थाम्भ, बोले फिर समय पाये ।।४१।।
सुलक्षण लक्ष्मण दक्ष, लक्ष पक्ष एक बनाइए ।
स्नेह सन्धि सम्बन्ध, साथ सुग्रीव बढ़ाइए ।।
परस्पर सहित सहाय, सफल सिद्धि मिल पाइए ।
मिलें उसे चल अभी, मम सहचर हो जाइए ।।४२।।

साथ सैन संकेत, सचिव ने भूप चिताया ।
संकट-संकुल समझ, उसे यह भेद बताया ।।
आते हैं तव पास, लेकर साहस सवाया ।
सखा सुहृद् इन्हें जान, नहीं है इन में माया ।।४३।।
{होता नहीं मिलाप, मिलें जब जन सम सुखिया ।
चलते मिलकर संघ, हों जब जन एक रुखिया ।।
मिलते लाखों लोग, बनें जब वे सम दुखिया ।
भेद भाव को त्याग, विपद् में मिलते मुखिया} ।।४४।।
उत्तम पुरुष विशेष, राघव वीर महान् है ।
योद्धा शूर सुधीर, सुग्रीव सुजन सुजान है ।।
विपदा विरह वियोग, अहर्निश इन्हें समान है ।
इन में सन्धि मिलाप, सुगम है विधि-विधान है ।।४५।।
बोला लक्ष्मण वीर, उसके सुगुण बखान कर ।
पवन-पुत्र यह भ्रात!, कह रहा सत्य ध्यान कर ।।
है ही अर्थी सुग्रीव, समझिये सत्य जान कर ।
सन्धि मेल उस संग, करिये सुहृद् मान कर ।।४६।।
तब चल तीनों साथ, आये उस गिरि वर पर ।
जहाँ रहता सुग्रीव, विषम विपदा में घर कर ।।
परिचित किये उस से, वे हनुमान् ने नरवर ।
उन के कह गुण-ग्राम, चारु चरित चित्तहर ।।४७।।

तीसरा सर्ग

*कह कर कथा कलाप, राघव के वनवास का ।
विपदा विरह विलाप, वन में वनिता-हरण का ।।१।।
परिचय कराया सब, उसने वानर-राज से ।
गुण वर्णन संग तब, उनका करके चातुरी ।।२।।
होकर अति प्रसन्न, बोला वानर-राज तब ।
जाकर अति आसन्न, शुभ स्वागत हो आपका ।।३।।
रामचन्द्र सुधीर, दया धर्म धर आप हैं ।
धृति तेजयुत वीर, पराक्रम-अवतार हो ।।४।।
है सर्व सौभाग्य, मेरा मैं हूँ मानता ।
जो आप महाभाग, सच्चे सखा मेरे बनो ।।५।।
चाहो यदि तुम देव!, मैत्री करना साथ मम ।
चित्त से तो सत्यमेव, मैंने पसारा है कर ।।६।।
मेरा पकड़ो हाथ, राघव अपने हाथ से ।
बनो सदा का साथ, निश्चल बन्धन बान्ध कर ।।७।।
मंगल हस्त पसार, रघुपति ने उस काल ही ।
उसके कर को धार, प्रीतिपरक पीड़न किया ।।८।।
मिले गले से लगा, राघव उसको प्रेम से ।
मीठा मेल मिल पा, मन में मधुमत्तम हुए ।।९।।
अरणी मथन कर दो, उसी समय हनुमान् ने ।
ज्योति ज्वलित की जो, उज्ज्वल जोत जगी जभी ।।१०।।

* सोरठा।

पूज पुष्प से आग, स्थापी उसने मध्य में ।
वे करके अनुराग, परिक्रमा करने लगे ।।११।।
दोनों मित्र नवीन, कर प्रदक्षिणा आग की ।
स्नेह सबल में लीन, हर्षित विकसित नयन थे ।।१२।।
प्रण प्रतिज्ञा नेम, करके सुहृद् वे बने ।
बन्धुभाव सह प्रेम, उनमें तब स्थापित हुआ ।।१३।।
मीठे वचन उच्चार, बोले तभी सुग्रीव जी ।
राघव सृष्टि-सार, प्रिय सखा मम मीत हो ।।१४।।
सुख दुःख अब से एक, मेरे तेरे हो गये ।
यही मेल की टेक, हमने पकड़ी चित्त से ।।१५।।
बोले रघुपति आप, सुखासुख शत्रु मित्र सब ।
समझो एक, अपाप!, तेरे मेरे हैं बने ।।१६।।
हैं हम भाई चार, तुझे मिला अब पांच हैं ।
पारस्परिक यह प्यार, हो पूर्ण पावन परम ।।१७।।
बोला वानरराज, हृत-पत्नी मैं हूं दुःखी ।
रखना मेरी लाज, कष्ट निवारण कर सभी ।।१८।।
सब भय संकट टार, निर्भय करिये अब मुझे ।
विपदा से हो पार, सच्चा सहायक मैं बनूं ।।१९।।
किंचित् हंसी साथ, राघव बोले तब उसे ।
अहो दक्षिण-जन नाथ!, मैं हूँ संगी आप का ।।२०।।
पत्नी-हरण का दाह, मैं कर दूंगा शान्त तव ।
बन्धु-वैर दुर् दाह, दूर, दुष्ट दल दमन कर ।।२१।।
शाण-शाणित सुवाण, शत्रु शोणित, प्राण हरण ।
देंगे वे प्रमाण, पूर्ण प्रण प्रणय का ।।२२।।

बहुत बुरी जो बान, बाली में बल छल बनी ।
बाहू-बल से हान, उसकी करूँगा मैं अब ।।२३।।
हो उत्साहित भूप, मन में साहस हर्ष ला ।
सुग्रीव सुन्दर रूप, बोला श्री रघुराज को ।।२४।।
ऐसा करो उपाय, पाऊँ पत्नी राज्य मैं ।
बाली-बल मिट जाय, मेरा पद मुझको मिले ।।२५।।
*अपनी पत्नी अपहरण की, न अति चिन्ता कीजिए ।
मेरा कहना है यह अब, ध्यान बल पर दीजिए ।।
अत्याचारी हनन होगा, सिया पीछे आयगी ।
दस्युदुष्ट-कुदल दलित हो, विजय शोभा लायगी ।।२६।।
सहित विष तो अन्न जैसे, न कभी किसे पच सके ।
सीता का अपहरण-कर्ता, मुझ से त्यों न बच सके ।।
ढूँढ खोज लाऊँगा मैं, उसे नभ पाताल से ।
निकाल काल की गाल से, जटिल जाल कुचाल से ।।२७।।
कौन थी, नहीं कह सकता, पर एक थी जा रही ।
नभपथ से रोती नारी, बहुत पीड़ा पा रही ।।
अति भयकर असुर के संग, जाती थी चिल्ला रही ।
परिताप अनुताप के वश, थी भूषण गिरा रही ।।२८।।
रोती थी हा हा करती, बहुत चीखें मारती ।
बड़े सुर से राम लक्ष्मण, बार बार पुकारती ।।
भुज-बन्धन में बन्धी वह, विवशा तो अपार थी ।
तड़पती बहु मीनवत् थी, सके न पा निस्तार थी ।।२६।।

---

* गीतिका।

देख कर हमें जो भूषण, थे उसने गिरा दिये ।
उठा कर उस काल वे तो, सर्व हम ने रख लिये ।।
मैं ले आता हूँ उन को, आप ही पहचानिए ।
क्या सीता के हैं भूषण, ध्यान धर कर जानिए ।।३०।।
कहा राघव ने, सखे! अब, दौड़ शीघ्र जाइए ।
पास मेरे वे सभी तो, अभी ही ले आइए ।।
वे लाकर सुग्रीव बोला, ध्यान आप टिकाइए ।
जानिए हैं सभी किसके, हमें भी बताइए ।।३१।।
देख वस्त्राभरण वे सभी, हाथ में लेकर तभी ।
नयन-वारि अविरल बरसा, बने व्याकुल वे जभी ।।
शशि मुख पर चिन्ता बादल, छा गए गहरे सभी ।
रामचन्द्र-स्मरण शक्ति, अधिकतर उस से दबी ।।३२।।
बोले वे विलाप करते, लखन देखो तो सही ।
क्या भाभी तेरी के हैं, कहो गहने तो यही ।।
शोक-जल से नयन उमड़े, मुझे जांच भी न रही ।
धृति चेतना बुद्धि शक्ति, देह से जाती बही ।।३३।।
कर—कंकण ले कर उसने, कहा, मैं नहीं जानता ।
कण्ठ-भूषण कर्ण-कुँडल, मैं नहीं पहचानता ।।
भुजा सिर के न जान सकूँ, कर अति सावधानता ।
पद-वन्दन से नूपुर ये, सिया के हूँ मानता ।।३४।।
अंग उन के नहीं देखे, अन्य मैंने ध्यान से ।
पद-वन्दन किया प्रतिदिन, विनय आदर मान से ।।
इस लिए ये चरण-भूषण, सिया के पहचान से ।
कहता हूँ मैं हैं समझो, आप भी इस ज्ञान से ।।३५।।

{शुभ चरित चारु शुचि ऐसा, पले जिस परिवार में ।
सम्बन्ध सुन्दर होवें ऐसे, जाती जिस घर बार में ।।
उच्च उन्नत जन वहां हो, सदाचार विचार में ।
सभ्य शिक्षित सब समाज हो, सुखी जग व्यापार में} ।।३६।।
चकित चित्त आश्चर्य में, सुग्रीव तब रहा खड़ा ।
आर्य जाति के कर्म का, असर अति उस पर पड़ा ।।
कहा राघव ने उसे तब, शोक करते ही बड़ा ।
किधर को ले गया था वह, सिया को दिल का कड़ा ।।३७।।
दिशा देश विशेष दर्शित, मुझे आप कराइए ।
स्थान कोट किला असुर का, मुझे तो दिखलाइए ।।
प्रिया पत्नी हरण की मम, जिसने वह बताइए ।
उसे आज मेरे बल से, अपर लोक दिखाइए ।।३८।।
आर्त वचन सुने उनके, सभी उस ने शोक से ।
आंसू भर कर बोला वह तब, अटक वाष्पी रोक से ।।
नहीं विज्ञ हूँ मैं उस के, प्रान्त जन कुल लोक से ।
मैं वध कर दूँगा उसका, वाण की इस नोक से ।।३६।।
धीर! धैर्य धारिए अब, धर्म-धुर! यह मानिए ।
अधम अधर्मी धरा पर से, हत मृत ही जानिए ।।
आप को प्रसन्न करना, कर्म मेरा हो गया ।
समझिए अब शत्रु-नाशन!, अरि सर्वथा सो गया ।।४०।।
महापुरुष जन न कभी यों, हुए अधिक अधीर हैं ।
साहस पौरुष कर धारण, स्थिर रहते वीर हैं ।।
प्राण-पीड़ित परम पर भी, वे न जानें पीर है ।
क्षत्रिय जन ह्रदय मन सह, कहे सबल शरीर हैं ।।४१।।

मित्रपन से कह रहा हूँ, शान्ति धैर्य धारिए ।
विनय करता हूँ प्रभु मैं, शोक चिन्ता टारिए ।।
सभी कार्य सिद्ध होंगे, नहीं मन से हारिए ।
वंश वर्ण के कर्म धर्म, वीर वर्य विचारिए ।।४२।।
शान्त स्थिर मन हो रघुपति, पोंछ आँसू नयन को ।
अति हितकर महा मधुरतर, लगे कहने बयन को ।।
मीत मीठा अति स्नेही, सखा सुजन सराहिए ।
करे कर्म जो सुहृद् को, सदा करने चाहिए ।।४३।।
मन तन से बने सहायक, कठिन आवे जब घड़ी ।
सखा सच्चा नहीं सुलभ है, बने जो जीवन-जड़ी ।।
मित्र गति मति मित्र की है, पड़े विपदा जब कड़ी ।
मिलें मित्र मन मिले जभी, दुःख लड़ी न रहे खड़ी ।।४४।।
आप मेरे मित्र मीठे, आज निज मन से हुए ।
सर्व कार्य सिद्ध समझो, सखे! इस जन से हुए ।।
पतित पापी पुरुष पामर, पतन मन तन से हुए ।
शत्रु-दल पर वाण-वर्षण, इस धनुष घन से हुए ।।४५।।
वज्र से ज्यों गिरि गिरते, शत्रु तब गिर जायगा ।
निजू किये कुकर्म का वह, कष्ट-कटु फल पायगा ।।
बहुत वैर विरोध बढ़ कर, पास उसके जायगा ।
वृक्ष बीज बोया विषमय, विषम विष-फल लायगा ।।४६।।

चौथा सर्ग

*सुन कर कथन कलाप, राघव का उत्साह कर ।
कर सुग्रीव अनुताप, बोला रघुपति को वचन ।।१।।
करुण कथा धर कान, करुणा करके मम सुनो ।
राघव! पुरुष महान्, मेरे तो तुम एक हो ।।२।।
नदी-वेग सम धार, आँसू की थी बह रही ।
पाता कष्ट अपार, कहने लगा निज वार्ता ।।३।।
बाली बहु बलवान्, बान्धव मेरा है बड़ा ।
उच्च उसे मैं मान, विनय सहित था पूजता ।।४।।
यह हुआ एक बार, बाली था जब सो रहा ।
कर के वैर-विस्तार, दुन्दुभी पुत्र आ गया ।।५।।
मायावी था नाम, उस राक्षस विकराल का ।
करता काले काम, क्रूर कड़े कड़वे बड़े ।।६।।
बाली को ललकार, उसने उठाया तो तब ।
सका न तभी सहार, वह उसके तिरस्कार को ।।७।।
घर से निकला दौड़, बाली बल से वेग से ।
असुर भगा जी छोड़, उस को आता देखकर ।।८।।
मैं भी था तब साथ, भाई के अनुचर बना ।
असुर न आया हाथ, गहरी बिल में घुस गया ।।६।।
कहा मुझे हे भ्रात!, उस ने यों उस काल ही ।
यहां रह तू तात!, मैं गुफा में जाऊँगा ।।१०।।

* सोरठा।

दूँगा इसको मार, पीछे फिरूँगा मैं तब ।
रोक शक्ति से द्वार, तब तक तू तो रह खड़ा ।।११।।
काल अति गया बीत, बाली को बिल में घुसे ।
जान समय विपरीत, मैं समझा वह मर गया ।।१२।।
रक्त-चिन्ह को देख, मुझको यह निश्चय हुआ ।
बाली जीवन रेख, मिटी यहाँ से सर्वथा ।।१३।।
किया द्वार-मुख बन्द, मैंने शिला विशेष से ।
मरे यथा मति-मन्द, असुर हत्यारा बीच ही ।।१४।।
कर सब उत्तर काम, उसके मैं शोकित हुआ ।
मिल सम्मति कर साम, मंत्रि-मण्डल ने तभी ।।१५।।
मुझे बनाया भूप, विधि से शुभ अभिषेक कर ।
समझ बहुत अनुरूप, शासन कार्य के मुझे ।।१६।।
शुद्ध नीति कर न्याय, शासन मैं करने लगा ।
सुरक्षित कर जन आय, हर्षित जन मैंने किये ।।१७।।
कालान्तर के बीच, असुर मार बाली फिरा ।
मार लात पग खींच, उसने खोल लिया मुख ।।१८।।
सचिव बान्ध कर ताड़, वैरी बन मेरा बहुत ।
देकर मुझको झाड़, कोपाकुल वह तो बना ।।१९।।
बनकर बहुत विनीत, सिर धर उसके चरण पर ।
मैं बोला कर प्रीत, क्षमा करो अपराध सब ।।२०।।
कुशल सहित हैं आप, इससे मुझको हर्ष है ।
मुझे है पश्चात्ताप!, भ्रान्ति भूल मुझसे हुई ।।२१।।
कर राज्य भूपाल!, मैं हूँ सेवक आपका ।
सब कुछ लो सम्भाल, अनुचर मुझको जानिए ।।२२।।

धरोहर सम नरेश!, ज्यों का त्यों है सर्व कुछ ।
हूजिए रहित क्लेश, कृपा मुझ पर तो करो ।।२३।।
* विनय अनुनय सर्व सुन भी, वह नहीं कुछ भी हिला ।
कट कटा कर दाँत अति तब, वेग से मुझ पर ठिला ।।
मुझे उसने कहा फिर यह, धर तू ने वहाँ शिला ।
रोका बिल मुख को जिससे, मार्ग मुझको न मिला ।।२४।।
वध करना चाहा तू ने, मेरा, मिथ्या काम से ।
मुझे झूठे बन्धु अब तो, डर लगे तव नाम से ।।
एक वस्त्र मात्र ले कर, निकल जा घर गाम से ।
हो गया तू रहित अपने, देश धन जन धाम से ।।२५।।
उसने मेरा सहित पत्नी, धन हरा आवेश में ।
फिरा भटका बहिष्कृत मैं, इधर उधर विदेश में ।।
काल काटा अधिक मैंने, कष्ट कड़वे क्लेश में ।
वह न आता इस गिरि पर, मुनि-रक्षित प्रदेश में ।।२६।।
सखे! सहोदर वह बाली, वीर है माना हुआ ।
उसका पराक्रम सब ने, बहुत है जाना हुआ ।।
इसी से मम संगियों ने, अधिक भय खाना हुआ ।
तुच्छ है वह आप आगे, यही बतलाना हुआ ।।२७।।
शक्ति का प्रमाण दे कर, निश्चय इन्हें कराइए ।
उस सा और न है कोई, यही बात मिटाइए ।।
यह सुन कर बोले राघव, देखिए अब आइए ।
परिचय शक्ति तेज बल का, नयन-निरखा पाइए ।।२८।।

* गीतिका।

साखू वृक्षों की माला, जो खड़ी थी सामने ।
धनुष तान उस ओर बाण, तुरत छोड़ा राम ने ।।
बीन्ध साखू वृक्ष सात, जा वह भूमि में धसा ।
ऊर्ध्वमुख निकल वहां से, कोश में फिर आ बसा ।।२६।।
वाह वाह कह उठे वहां, देखते थे जो जभी ।
कुशल, पूर्ण पुरुष है यह, कह रहे थे वे सभी ।।
अन्य ऐसा लक्ष-वेधक, नहीं देखा जन कभी ।
निज बल से बाली को तो, जीत सकता है अभी ।।३०।।
सिक्का रघुपति-शक्ति बल का, वानरों में जम गया ।
रामचन्द्र नाम उनके, विमल मन में रम गया ।।
निकल बाली-शक्ति का सब, भय भारी भ्रम गया ।
कांपता दिल दहलता अति, सबल बनकर थम गया ।।३१।।
सुग्रीव बोला, हे राघव!, साथ मेरा दीजिए ।
आप बाली-दमन में अब, सब सहायता कीजिए ।।
बहुत अच्छा कहके राघव, उसे बोले रीझिए ।
सब तुम सहायता मुझ से, चित्त चाही लीजिए ।।३२।।
किष्किन्धा में वे पहुँचे, चलते अति उतावले ।
तरु पीछे ठहरे राघव, ओट का ही भाव ले ।।
गर्जता सुग्रीव बढ़ा अति, निज विजय का दाव ले ।
गर्जा बाली नाद वह सुन, बन्धु-वध का चाव ले ।।३३।।
दौड़ा बन्धु पर यथा वह, अस्ताचल से रवि फिरे ।
गिरा वह सुग्रीव पर यथा, वज्र पर्वत पर गिरे ।।
परस्पर वे लगे लड़ने, कोपमय बन कर निरे ।
कर मार पीट लात मुक्के, शत्रुता में थे घिरे ।।३४।।

समरूप दोनों थे बन्धु, भेद समझ न आ सके ।
इसी भ्रम में श्री राघव, नहीं बाण चला सके ।।
बाली ने सुग्रीव पीटा, जीता ज्यों न जा सके ।
भाग कर वह जा पहुँचा, जहां अरि न समा सके ।।३५।।
शाप-भय से वहाँ बाली, गया पर्वत पर नहीं ।
लहूलुहान सुग्रीव था अति, शान्त कुछ भी नर नहीं ।।
बोला रघुपति को दुखिया, क्यों चलाया सर नहीं ।
क्या मेरे मरने का तो, था आप को डर नहीं ।।३६।।
यदि सहायक नहीं होना, था वहां पर आपने ।
तो तपाया क्यों मुझे यों, घोरतर इस ताप ने ।।
आप पर पूरा भरोसा, है कराया पाप ने ।
काम मेरा कर दिया था, मार पीट उत्ताप ने ।।३७।।
सुग्रीव की सुन वार्ता सब, कहा राघव ने उसे ।
एक से तुम बन्धु दीखे, मारता मैं तब किसे ।।
नहीं निर्णय कर सका तो, दोषी समझो न इसे ।
काम कैसे करे सोचो, लक्ष सूझे नहीं जिसे ।।३८।।
यदि छोड़ता धनुष से सर, भ्रम वश लगता तुझे ।
कितना कष्ट क्लेश होता, मीत! मानो तब मुझे ।।
हम दोनों के देह-दीप, प्राण से रहते बुझे ।
क्या यह सुग्रीव! तुझ को, विषम बात भी न सुझे ।।३६।।
अच्छा अब की बार चलिए, उसे चल ललकारिए ।
भेद करने को लता यह, अब गजपुष्पा धारिए ।।
कहा लक्ष्मण को उन्होंने, वह सपुष्पा उखाड़िए ।
गले इस के में इसे तो, हार ज्यों सिंगारिए ।।४०।।

चले मिलकर वे दुबारा, लिए विजय-विचार थे ।
आगे था सुग्रीव चलता, तदनु राज कुमार थे ।।
नल नील हनुमान पीछे, और योद्धा तार थे ।
तरुमाला हरी भरी में, कर रहे संचार थे ।।४१।।
पुष्प-माला से सुशोभित, लांघते पगडंडियाँ ।
पुष्पिता सब बेल-शाखा, झूलती बन झण्डियां ।।
कुसुम फल बहुरूप से तो, शोभतीं बन-खण्डियां ।
सह सुगन्धि समीर बहतीं, मन्द सुखदा ठण्डियां ।।४२।।
शान्त शोभा निरखते वे, पथ पड़े आगे बढ़े ।
पहुँच पुरी की सीम में सब, तरु-आड़ में हो खड़े ।।
लगे बल से गर्जने तब, स्वर ऊँचे कर बड़े ।
बाली को पुकारते थे, कथन कह कर कटु कड़े ।।४३।।
रघुपति-गुहाश्रित सुग्रीव, बना सिंह दहाड़ता ।
मधु-मास में मत्त-हाथी, तथा था चिंघाड़ता ।।
तीव्र तारस्वर उसका, नभस्तल को फाड़ता ।
कुटिल कायर जनों के तो, था पैर उखाड़ता ।।४४।।
नाद सुन कर दौड़ बाली, आ गया उस ओर को ।
धम धमाता धुरा धरणी, धारे क्रोध घोर को ।।
पत्नी तारा ने उसे तब, कहा तजो न ठौर को ।
भूल हार को है आया, कर सहारा और को ।।४५।।
सुग्रीव-नाद कह रहा है, मिला काला दाल में ।
कुमार अंगद ने देखे, थे युवक वन-जाल में ।।
रामचन्द्र लखन हैं वे, फिरते देख-भाल में ।
रह रहे सुग्रीव के संग, सखापन की चाल में ।।४६।।

वीर शक्ति तेजोमय हैं, अतुल बल के वे धनी ।
ज्ञानविद्या में हैं पूर्ण, उन्हीं से उसकी बनी ।।
सुग्रीव के हुए सहायक, है इससे तना तनी ।
इसी लिए सुग्रीव भीतर, बात लड़ने की ठनी ।।४७।।
अब सुनो पति देव मेरी, बात जो हूँ कह रही ।
स्व-घर की फूट कलह से, जाति नगरी दह रही ।।
दोनों बन्धु मेल करिए, बचे सम्पद् बह रही ।
रामचन्द्र से मिलो तुम, रक्खो जो है रह रही ।।४८।।
अजय राघव है जगत् में, वीर जेता है बड़ा ।
देव दिव्य दैवी बल से, धर्मी नेता है बड़ा ।।
ज्ञानविद्या का है सागर, वेद-वेत्ता है बड़ा ।
भारी भूल भय भ्रम का, भेद-भेत्ता है बड़ा ।।४६।।
मधुर मेल मनाइए अब, आप उससे जा मिलो ।
मान दान महापुरुष को, दे, प्रीति पा मिलो ।।
अनुज को युवराज पद दे, गले बन्धु मिला मिलो ।
एक जननी जाये बन्धु, जाति ज्योति जगा मिलो ।।५०।।
मरण मुखिया मनुज जैसे, पथ्य औषध से डरे ।
दैव-हत ज्यों हित कथन पर, कभी कान नहीं धरे ।।
अग्नि जल में कूद विष खा, बिना आई ज्यों मरे ।
बीच गंगा भी बहाया, जैसे पत्थर न तरे ।।५१।।
ऐसे किया नहीं उसने, कहना पत्नी का भला ।
बहुत विनय अनुनय पर भी, कड़ा हठीला न टला ।।
तिलमलाता झुंझलाता, कोप की लेकर कला ।
सुग्रीव सम्मुख वह तुरन्त, आ गया दौड़ा चला ।।५२।।

पति के चरणों को छूती, रो रही थी वह सती ।
पति-तन से लिपटी दुखिया, हो रही थी वह सती ।।
पति-छाती आँसुओं से, धो रही थी वह सती ।
तरुण-तारा नयन-तारा, खो रही थी वह सती ।।५३।।
कर प्रदक्षिणा वह लौटी, वेदना सह घर गई ।
दोनों बन्धु भिड़ गये तब, प्रीति उनकी मर गई ।।
उनमें वैर विरोध-बुद्धि, द्वेषता अति भर गई ।
कोप कलह से बन्धु-बुद्धि, कूच उनसे कर गई ।।५४।।
नाग जैसे लड़ें मिलकर, बैल जैसे दो लड़ें ।
मत्त-हस्ति ज्यों दो मिलकर, परस्पर ही पिल पड़ें ।।
बली बनैले दो भैंसे, परस्पर ज्यों ही अड़ें ।
ऐसे लड़ते थे वे दोनों, भारे भालू ज्यों भिड़ें ।।५५।।
रक्त से हो लाल लतपत, परस्पर थे पिल रहे ।
बड़े गहरे घाव से वे, ढाक सम थे खिल रहे ।।
बने बिजली कूदते थे, वेग से थे हिल रहे ।
हटते बढ़ते हनन काल, गुत्थमगुत्था मिल रहे ।।५६।।
अनेक बार पिटा बाली, सुग्रीव कई बार भी ।
लट्ठम लट्ठा हो रहे थे, मार गहरी मार भी ।।
मसलते थे अंग ऐसे, शत्रु जावे हार भी ।
समर द्वन्द्व से सूरमे, पा पाते न पार भी ।।५७।।
क्षीण-बल सुग्रीव हो गया, लगा दृष्टि फेरने ।
उसे बाली दाव बल से, हुआ तत्पर घेरने ।।
धक्के मुक्के मार मार ही, लगा उसको गेरने ।
रामचन्द्र को समय उस, प्रेरा मित्र मेर ने ।।५८।।

धनुष तान सुबाण कस कर, उन्होंने सीधा किया ।
लक्ष बाली को बना कर, विद्ध उसको कर दिया ।।
बाण बाली वक्षस्थल से, गया छेदन कर हिया ।
उसी समय मूर्छा खा कर, भूमि पर वह लिट लिया ।।५६।।
{सखासच्चास्नेही सुख कर, सरल सज्जन हो सदा ।
विषम वादी बहु विवादी, बने विषादी न कदा ।।
सत्य-पालक सन्धि-साधक, सहित सेवा सम्पदा ।
सीस तक दे साथ देवे, समय आवे तो यदा} ।।६०।।

पाँचवाँ सर्ग

*पड़ा भूमि पर देखकर, बाली को रघुनाथ ।
उसको मिलने को गये, लक्ष्मण को ले साथ ।।१।।
मृदुल दिल सदय ह्रदय, दो देव दयावान् ।
दीन दुःखी के दुःख हरण, गुणी सज्जन विद्वान् ।।२।।
समवेदना प्रकट कर, खड़े हुए जब पास ।
सहित दया नय न्याय के, राघव धर्म निवास ।।३।।
बाली बोला व्यंग से, उनको वचन विशेष ।
कोपमय उपालम्भ से, पाता व्यथा क्लेश ।।४।।
रामचन्द्र तुम हो अति, ज्ञानी गुणी कुलीन ।
तुमने ऐसा क्यों किया, कर्म न्याय से हीन ।।५।।
रहित पाप अपराध के, जन की कर के घात ।
तू ने तज कर न्याय को, किया घोर उत्पात ।।६।।

* दोहा।

साम दाम धैर्य क्षमा, सत्य धर्म ये जान ।
पराक्रम, जन दुष्ट को, करना दण्ड विधान ।।७।।
ये सब गुण हैं भूप के, इन सब को ही छोड़ ।
तुम ने मेरा हनन कर, धरी धर्म-धुर तोड़ ।।८।।
भूमि सोना द्रव्य वश, हरते जन पर-प्राण ।
तू ने मेरा वध किया, क्यों तज धर्म पुराण ।।९।।
नीति सुनम्रता निग्रह, अनुग्रह यही चार ।
पाले राजा धर्मवर, उचितानुचित विचार ।।१०।।
स्वेच्छाचारी भूप तो, होवें कहे न वेद ।
मेरा स्वेच्छा से किया, तू ने प्राण-विच्छेद ।।११।।
हो तृण-ढके कूप सम, करके द्रोह अनेक ।
तुम तो सज्जन वेश में, हो धर्म-ध्वज एक ।।१२।।
धर्म-धारी धरणी पर, बन फिरते हो आप ।
छद्म रूप छल कपट कर, करते हो अति पाप ।।१३।।
वैर विरोध बिना बली, वीर न मारे बाण ।
बहुत बुरा है कर्म यह, छुप कर करना हान ।।१४।।
चरित-रज्जु को तोड़कर, बिना वैर कर वार ।
राघव हाथी ने मुझे, दिया आज है मार ।।१५।।
तटस्थ जन पर ज्यों किया, तू ने बल-उपयोग ।
दोषी पर करते तथा, तो यश देते लोग ।।१६।।
*बाली ने जो वचन उच्चारे, राघव ने वे सर्व विचारे ।
बोले रघुपति, सुनिए बाली!, सत्य वार्ता जो न्याय वाली ।।१७।।

* चौपाई।

बिना लोकाचार के जाने, बिन धर्मार्थ काम पहचाने ।
तू ने मुझे है जो धिक्कारा, चपल कर्म का किया विस्तारा ।।१८।।
सहित गिरी वन भूतल भारा, सूर्य कुल का है यह सारा ।
वनचर थलचर जलचर जोही, खेचर जीव जगत् है सो ही ।।१६।।
उन पर शासन के अधिकारी, वंश रवि के हैं कर्मचारी ।
उसी वंश के बन अनुयायी, हम सब रहते हैं हो न्यायी ।।२०।।
इस समय भूमि का स्वामी, भरत भूप है कुल-अनुगामी ।
आर्य धर्मी है सत्यवादी, न व्यसनी कामी प्रमादी ।।२१।।
नीति न्याय में निपुण बखाना, चमक रहा है भानुसमाना ।
उसके शासन में सब राजे, करते काम सब महाराजे ।।२२।।
मैं भी उसका बन अनुसारी, रहता हूँ हो आज्ञाकारी ।
उसकी आज्ञा को सिर धारे, होते हैं सब कर्म हमारे ।।२३।।
उसके अधीन वन में आना, है कर्तव्य सुरीति चलाना ।
सो हम करते हैं विधि से ही, पक्षपात सब द्रोह तज के ही ।।२४।।
लघु भाई के जीते जी जो, पत्नी हरी उसकी तूने सो ।
राज-धर्म तज हो कर कामी, लम्पट पतित बना तू नामी ।।२५।।
हो कर राजा लम्पट होना, धर्म न्याय है सर्व डुबोना ।
बल छल चल हरना पर नारी, होना बहुत फिर अत्याचारी ।।२६।।
उसका दण्ड कहा है ऐसा, दिया गया तुझको है जैसा ।
नीति न्याय को मन में धारो, राज-धर्म तुम आप विचारो ।।२७।।
अनुज-पत्नी को जो हर लेते, प्राण दण्ड भरत उन्हें देते ।
धर्माचार है उनको प्यारा, तदनुकूल है कर्म हमारा ।।२८।।
कारण और सुनो बलधारी, है सुग्रीव से प्रीति हमारी ।
लक्ष्मण सम मुझको है सोई, भेद भाव रहा नहीं कोई ।।२६।।

स्नेह संधि बन्धन के नाते, हम दोनों हैं एक कहाते ।
सत्य कर सम्बन्ध दिखलाते, हम उसे थे तुझ से बचाते ।।३०।।
इससे हनन हुआ है तेरा, दोष नहीं इसमें कुछ मेरा ।
मैंने तो है धर्म निभाया, सच्चा स्नेह सम्बन्ध बनाया ।।३१।।
तू ने काम किया अति काला, सत्य सनातन धर्म न पाला ।
पत्नी रुमा सुग्रीव की छीनी, न्याय तुला उलटी कर दीनी ।।३२।।
मैंने किया उचिततर जो था, दिया दण्ड उचित वही तो था ।
उचित तुझे है इसको माने, आप अपना पाप तू जाने ।।३३।।
मुझ क्षत्रिय कुलीन से ऐसे, देखे जायें पाप न वैसे ।
होवे भूप जो आततायी, देवे दण्ड उसे जन न्यायी ।।३४।।
इस विषय में मनु ने बताया, दण्ड-धर्म है खोल दिखाया ।
राजविधि से दण्ड जो पाते, वे जन सुर-पुर को हैं जाते ।।३५।।
घोर चोर अथवा जन पापी, हो जिसे अनुतापता व्यापी ।
भूपति को यदि पाप सुनाये, जा कर अपना कर्म बताये ।।३६।।
पाप-कर्म से यदि मुख मोड़े, भूप दे दण्ड चाहे छोड़े ।
होता अपाप वह अपराधी, उसकी मिटती कुकर्म व्याधी ।।३७।।
एक श्रमण ने पाप कमाया, जैसा तू ने कर दिखलाया ।
मान्धाता था पुरुष हमारा, प्रजा-जन का ही रखवारा ।।३८।।
उसको मुनि ने पाप सुनाया, घोर दण्ड स्वयं जा पाया ।
पाप कर्म कर के जो जाते, गुरु जनों को पहुँच सुनाते ।।३६।।
प्रायश्चित्त सहित पछताते, वे जन शुद्ध विमल कहलाते ।
तुम को भी तो उचित यही है, राज-दण्ड को कहो सही है ।।४०।।
तुम हमें स्वतंत्र न जानो, क्षत्र-धर्म में बन्धे ही मानो ।
धर्माधीन जो भी है धारा, दण्ड गया है तथा निर्धारा ।।४१।।

छुपकर हनते जन बहुतेरे, जाल बिछाकर डाले घेरे ।
खोद गढ़े तृण बहु बिछाये, रहते छुपकर ताक लगाये ।।४२।।
खड़े लिटे बैठे हों सोते, वधनीय के नित्य वध होते ।
राजर्षि जन धर्म के ज्ञाता, नियम न्याय नीति के विधाता ।।४३।।
दोषी का वध करते आये, व्यूह समर बहु दुर्ग रचाये ।
तुझे समर में मैंने मारा, सखा-शत्रु स्व-शत्रु विचारा ।।४४।।
समर में शत्रु हनिए ज्यों ही, नीति न्याय माने वह त्यों ही ।
दृष्टि-बिन्दु है लक्ष बखाना, उत्तम लक्ष है धर्म समाना ।।४५।।
उद्देश दण्ड, समर में देना, दाव पेंच साधन गिन लेना ।
होवे भला उद्देश यदा ही, रहते साधन शुद्ध सदा ही ।।४६।।
पितृ-पितामह के पथ जाना, मैंने लक्ष परम है माना ।
इस से समझो मुझे अदोषी, रहिए शान्त न बनिए रोषी ।।४७।।
बाली ने सुन राघव वाणी, भूल त्रुटि अपनी सब जानी ।
नीति न्याय के कर सब लेखे, शुचि निर्दोष रघुपति देखे ।।४८।।
हाथ जोड़ वह उनको बोला, कहना धर्मतुला में तोला ।
भूल भ्रान्तिवश होकर मोही, कामी लम्पट लोभी हो ही ।।४६।।
मैंने दोष दिये जो तोहे, क्षमा करो वे रघुपति मोहे ।
गद्गद् वचन कहे उस ने जो, रघुपति ने धर ध्यान सुने सो ।।५०।।
वह बोला, फिर हे रघुराई, अब तो बनिए आप सहाई ।
मुझे मरण अब नहीं सताता, तारा का तो ध्यान न आता ।।५१।।
सगे सखा सब सम्पत् खोना, देख न मुझ को आता रोना ।
सोच मुझे अंगद की होती, यही धृति मेरी को खोती ।।५२।।
मुझे न देख वह बहुत दुलारा, तड़प उठेगा पा दुःख भारा ।
जल से हीन यथा सर क्यारा, सूख जायगा युवक बिचारा ।।५३।।

उस की सुरक्षा करियो ऐसी, करनी उचित पिता को जैसी ।
लक्ष्मण सम हों ये दो मेरे, सुग्रीव अंगद प्यारे तेरे ।।५४।।
दोनों में सम भाव बनाना, तारा का भी मान बढ़ाना ।
वह मम दोष से हो न दुखिया, ऐसे करना बन कर मुखिया ।।५५।।
रामचन्द्र जन चन्द्र प्यारे, मम बन्धु हैं अधीन तिहारे ।
मैं हूँ स्वस्थ शांत अक्रोधी, मेरी गति मति तुम ने सोधी ।।५६।।
करुण कथन सुन राघव जी ने, किये कथन करुणा रस भीने ।
बाली! इस समय तुम न सोचो, बन्धु जन धन कुछ न आलोचो ।।५७।।
बन्धु सगे जो सर्व तुम्हारे, हुए वे बन्धु आज हमारे ।
उनकी चिन्ता सर्व निवारो, सुमति सुगति अपनी संवारो ।।५८।।
सुग्रीव अंगद मेरे अंगी, समझो स्नेही सुहृद् संगी ।
सुख में होगी तारा राणी, कर प्रतिष्ठा प्राप्त पुराणी ।।५९।।
क्षत्रिय कर्म धर्म कटु कैसा, कड़ा कहो कितना है वैसा ।
पालन करते उसे तुझे ही, हुआ कष्ट, है खेद मुझे ही ।।६०।।

छठा सर्ग

*राघव के सुन शुभ वचन, कर नारायण ध्यान ।
सर्व शान्त बाली हुआ, तज कर जीवन-स्थान ।।१।।
अंगद भागा तब गया, पुर में सेना साथ ।
जैसे भीरु मृग भगे, देख केसरी-हाथ ।।२।।
तारा ने जाना तभी, भर्त्ता गया पर लोक ।
वियोग-वेदना में वह, व्याकुल हुई सशोक ।।३।।

* दोहा।

तारा-तारा नयन का, हुआ तत्क्षण लोप ।
डूबा हर्ष सुहाग का, पा कर काल कुकोप ।।४।।
तारा-तारा तो गिरा, उलका-पात समान ।
तारा-तरुण उमंग को, देकर कष्ट महान् ।।५।।
तारा-तार तुरन्त तब, टूट पड़ी इक बार ।
अश्रु-मनके उतावले, गिर पड़े लगातार ।।६।।
नयन उस के बादल बन, विषम विरह उत्ताप ।
पाकर बरसे वारि बहु, व्यथा रुदन विलाप ।।७।।
उसके नयनों से झड़ी, बड़ी लगी इक तार ।
झरने बन सब जन झरें, हो कर शोकाकार ।।८।।
रोती बिलखती दुःख में, दौड़ गई उस स्थान ।
पति उसका था जहां पर, पड़ा हुआ बिन प्राण ।।९।।
देख उसे वह गिर गई, मूर्च्छा सहित अचेत ।
दुःखित दर्शक सब हुए, राघव लखन समेत ।।१०।।
जब कुछ हुई सचेत वह, लिपट गई पति-संग ।
देते गोते सभी को, उसके शोक-तरंग ।।११।।
नव विधवा अबला बिलख, वर को बहुत पुकार ।
सब जन में बहु वेदना, करती थी संचार ।।१२।।
दश दिश में था गूँजता, उसका आर्त्त-नाद ।
देता गहरी वेदना, बहुत व्यथा विषाद ।।१३।।
उस के रोदन नाद से, गूँजे सब के कान ।
मानव-मन मुर्झाये सब, मुख कमल हुए म्लान ।।१४।।
निसरा उस के नयन से, इतना रोदन-नीर ।
जिसे निरख नर वीर वर, व्याकुल बने अधीर ।।१५।।

बोली लेती हिचकियां, गद् गद् कर विलाप ।
विरह-दाह देकर मुझे, कहां गये हो आप ।।१६।।
मुझे अकेली छोड़ कर, किधर सिधारे नाथ ।
आज अनाथा कर गये, त्याग हाथ तज साथ ।।१७।।
क्यों पधारे स्वर्ग में, मुझे नरक दे वास ।
प्यारे प्राण-प्रिय पते!, मेरे जीवन-रास ।।१८।।
वियोग दावानल दहक, दहन करे मम देह ।
दारुण दुःख में दग्ध हो, सूखेगा तन नेह ।।१६।।
मद माते मधुमास में, महा मनाती मोद ।
किस से मिल मैं सुरभि से, पाऊँगी प्रमोद ।।२०।।
कमल कुसुम के कुँज में, किस के संग किलोल ।
करूँगी क्रीडन सुरमण, कल्पना-पार अमोल ।।२१।।
मेरे मानद सुखद हे, मन मन्दिर के चन्द ।
सिर मस्तक की महा मणि, सुख सम्पद् आनन्द ।।२२।।
मुझे बिलखती देख कर, आप न आओ दौड़ ।
इस अभागिन को पति, कहां गये हो छोड़ ।।२३।।
जन-जेता जो जगत् में, था नेता भूपाल ।
भू पर यों है गिर रहा, कारण है कटुकाल ।।२४।।
ऐसे थी वह रो रही, दारुण दुःख से दीन ।
करुण-क्रन्दन करती अति, हो कर नाथ विहीन ।।२५।।
तुरन्त, तारा नभ पतित, यथा होता निस्तेज ।
तरुणी तारा थी तथा, भूतल को कर सेज ।।२६।।
दुःखी देख निज भावजा, हुआ सुग्रीव उदास ।
डब डब करते नयन ले, गया राम के पास ।।२७।।

कह कर मानस वेदना, करके अति अनुताप ।
बोला, मैंने है किया, घोर बन्धु-वध पाप ।।२८।।
तारा-कष्ट अपार है, विरह वियोग अपार ।
फूट फूट है रो रहा, अंगद प्रिय कुमार ।।२९।।
इच्छा मेरी है अब, बैठ आग के बीच ।
भस्मी भूत कर देह निज, तज दूँ जीवन नीच ।।३०।।
सुग्रीव-शोक निहार कर, तारा-विरह विचार ।
शोक खेद में घिर गये, राघव वर बहु बार ।।३१।।
बोली तारा तब उन्हें, जो मार महा बाण ।
मारा मेरा नाथ है, उस से हन मम प्राण ।।३२।।
उसी लोक को भेजिए, मुझे अभी ही मार ।
भर्ता मेरा जहां गया, मेरा जीवन प्यार ।।३३।।
विरह वेदना है तुझे, जैसे सिया वियोग ।
बाली त्यों मेरे बिना, पावेगा अति सोग ।।३४।।
सीता से ज्यों बिछुड़ कर, तुझे न भाते भोग ।
होगा दुखिया वह तथा, पा कर सुर संयोग ।।३५।।
जिस दारुण दुःख दाह से, होता तुझे उत्ताप ।
डाल मुझे उस आग में, तू ने दे सन्ताप ।।३६।।
भस्म किये हैं सर्व सुख, जीवन के रस स्वाद ।
मेरे गति मति लोक भी, सब कुछ रहित विवाद ।।३७।।
स्त्री-वध का दोष तो, होगा तुझे न मूल ।
उसे पति-पास भेजना, कहा धर्म अनुकूल ।।३८।।
माना गया श्रेष्ठतर, दानों में स्त्रीदान ।
मुझे भर्ता को दान कर, करिए कर्म महान् ।।३९।।

कुछ अपराध न मानिए, कर के मेरी घात ।
पति-आत्मा का अंश ही, भार्या कही विख्यात ।।४०।।
मैं बाली का भाग हूँ, समझो निश्चय धार ।
मार उसे मारा मुझे, एक साथ कर वार ।।४१।।
रामचन्द्र नरवर! तुम, अभी देर को त्याग ।
हन कर जीवन प्राण मम, मुझे लगाओ भाग ।।४२।।
*तारा सागर शोक, उत्ताल तरल तरंग से ।
कम्पित करता लोक, विरह विषम लहरें लिये ।।४३।।
भार्या-भाव उद्गार, किये व्यक्त उसने वे ।
उच्च पत्नी इक बार, करे कहीं ऐसे समय ।।४४।।
†बोले रघुपति, सुनिए तारे!, हैं दुखड़े तेरे अति भारे ।
सोचो शान्त बनो वर वीरे!, धारो धैर्य धीरे धीरे ।।४५।।
जग का स्वामी ईश विधाता, योग वियोग सुखासुख दाता ।
उसके वश में है त्रिलोकी, आज्ञा उसकी जाय न लोपी ।।४६।।
जन्म मरण का आना जाना, मेल विरह का ताना बाना ।
रचना-जाल जगत् का जेता, उसका चालक है वह नेता ।।४७।।
विधि-विधान में बन संयोगी, जाते बिछुड़ जन बन वियोगी ।
जो विधान विधाता बनाया, किसी से भी न टले टलाया ।।४८।।
वीरपत्नी जब दुखिया होतीं, व्याकुल बन कभी नहीं रोतीं ।
विधि-विधान विचार से रानी, थाम्भो चित्त नयन का पानी ।।४९।।
सज्जन सुग्रीव अंगद तारा, शोक बढ़ा है अधिक तुम्हारा ।
पर सोचो था ऐसा होना, धृति धरो तज रोना धोना ।।५०।।

* सोरठा। † चौपाई।

नियत काल में है सब सृष्टि, ऐसी रखिए सम्यक् दृष्टि ।
कारण कर्म काल का देखा, कटे कभी न काल की रेखा ।।५१।।
जीते मरते जो भी प्राणी, कही कालकृत विधि पुराणी ।
ईश्वर-नियम काल कर माना, उसके वश हैं कार्य नाना ।।५२।।
कहते काल हैं नियम रूपी, है दैव वह ईश-स्वरूपी ।
उसे लांघ सके नहीं कोई, नियम अखण्ड अटल है सो ही ।।५३।।
काटे वह जैसा जो बोता, पक्षपात न उसमें होता ।
शक्ति वहां पर काम न आती, बनें न साथी गोती नाती ।।५४।।
इसलिए जो जन हों विवेकी, छोड़ें चिन्ता मरे जिये की ।
दैवाधीन कर्म-फल देखे, युक्ति वाद के तज कर लेखे ।।५५।।
जाने जगत् सर्व परिणामी, परिवर्तन विनाश-अनुगामी ।
धर्म अर्थ शुभ काम कमाये, लोकाचार भी सब निभाये ।।५६।।
प्रारब्ध कर्म वश हो बाली, जो था दानी शोभाशाली ।
उच्च गति को है वह सिधारा, धैर्य का हो तुम्हें सहारा ।।५७।।
वचन सच्चे वे रघुपति जी के, धैर्य ढार्स देने नीके ।
सान्त्वना सुन सब ने पाई, शान्ति धृति फिर उनमें आई ।।५८।।
{एक जीभ बन जनता सारी, बोली राघव है अवतारी ।
वीतराग समदृष्टि ऐसा, मिले नहीं जन रघुपति जैसा ।।५६।।
रोष द्वेष इस पास न आता, है सब स्नेही सुहृद् त्राता ।
विमल विचार सार रस भीने, कहे सत्य श्री राघव जी ने ।।६०।।
राम मेघ-वचन वारि धारा, पा कर हुई शान्त मन तारा ।
ज्ञान-नयन निर्मल विकसाये, सद्भाव उसके जग आये} ।।६१।।
लक्ष्मण तब सुग्रीव को बोले, रुदन रोकिये भाई भोले ।
दाह-कर्म की करो तयारी, उत्तर क्रिया विधि अनुसारी ।।६२।।

राम-वचन भी हैं सब ऐसे, करिए कृत्य उचित हैं जैसे ।
सनातन वैदिक विधि विचारो, वंश रीति भी मन में धारो ।।६३।।
शिविका गई तब मंगवाई, शिल्पी जन ने जो थी सजाई ।
चित्र चित्रित थी चमचमाती, माला मण्डित बहुत सुहाती ।।६४।।
कुसुम वसन से भूषित जो थी, मणि मोती झालर युत सो थी ।
उस पर वह शव गई लिटाई, सुग्रीवादि ने आप उठाई ।।६५।।
नदी तीर पर उसको ला के, चिता पर, शोकित थे टिका के ।
अपसव्य करके विधि यथा ही, अंगद ने दी अग्नि तथा ही ।।६६।।
मंत्रों से हुत कर वह काया, सभी सुजन में शोक समाया ।
किये विधि रीति उपवीती जेते, नद-जल से थे जलांजलि देते ।।६७।।
दी जलांजलि राम ने ऐसी, बन्धु सखा भी देते जैसी ।
पित्र्य जप जपा अंगद जी ने, थे सगे सब शोक से भीने ।।६८।।
तारादिक थे व्याकुल होते, उन्हें देख कर पशु भी रोते ।
शोकाकुल अतुल कल्पाते, विह्वल व्याकुल बहु बिलखाते ।।६६।।
घर पर आये वे दुखियारे, लिये बहते नयन फंवारे ।
सचिवों ने सुग्रीव जी घेरे, राज-काज करने को प्रेरे ।।७०।।
राघव पास उसे ले आये, खड़े हुए वे पान्ति लगाये ।
विनय भक्ति आदर से ज्ञानी, पूजे गये राम वर दानी ।।७१।।
भक्तराज गुण बल का धारी, विनयवान् सभ्य शिष्टाचारी ।
हनूमान् बोला वह वानी, यथा समय पर जो है मानी ।।७२।।
राघव देव दीन दुःखहारी, दानी उदार सब सुखकारी ।
सुग्रीव वानर जन का नेता, तव कृपा से बना विजेता ।।७३।।
पुरी किष्किन्धा में अब जाना, इसका है आवश्यक माना ।
राज-सिंहासन पर बिठलाओ, आप इसे चल तिलक लगाओ ।।७४।।

बोले रघुपति, वचन तुम्हारे, हैं उचित जो तुमने उच्चारे ।
वर्ष चतुर्दश बीच कहीं मैं, पुर में जाऊँ कभी नहीं मैं ।।७५।।
आप सभी मिल पुर में जाओ, श्री सुग्रीव को भूप बनाओ ।
अंगद तो युवराज कहावे, पक्षपात कुछ होने न पावे ।।७६।।
राम कथन से पुर में आये, अभिसिंचन उपकरण सजाये ।
वेदी विधि से गई बनाई, अग्नि मथन कर गई जलाई ।।७७।।
बिछा था आसन शुचि कुशा का, सजा सुन्दर दृश्य उषा का ।
मंत्रों से बुध मंत्र ज्ञाता, देते हवि ज्यों वेद बताता ।।७८।।
पूर्वमुखी सुग्रीव सुहाये, मंत्र पढ़ कर गये बिठाये ।
मुख्य पुरोहित ने विधि से ही, मंत्राभिषिक्त किया सुस्नेही ।।७६।।
हो राघव-सम्मति अनुसारी, सज्जा उन्हों ने करके भारी ।
सुग्रीव जी को भूप बनाया, युवराजा अंगद ठहराया ।।८०।।।
नगर ग्रामों के जन हर्षाते, अपने में थे नहीं समाते ।
कहीं नहीं थी आपा-धापी, शान्ति सुषमा थी दशदिश व्यापी ।।८१।।
{दल-दलदल सब दूर कराई, कलह कलकल कलि रूप मिटाई ।
कुल से कटुता सकल हटाई, मेल सुमाला मधुर सजाई ।।८२।।
रघुपति ने वे दो दल जोड़े, भेद भाव नहीं रक्खे थोड़े ।
राघव की थी बड़ी बड़ाई, वानर वंश की बिगड़ी बनाई ।।८३।।
वन-वंश में एकता आई, बन्धु भावना सब में छाई ।
सुग्रीव अंगद पक्ष हुए त्यों ही, क्षीर नीर मिल रहते ज्यों ही ।।८४।।
रामचन्द्र के सुगुण गाते, वानर जन थे देखे जाते ।
जय जय राम नाद का गाना, सब दिश होता बहुत सुहाना ।।८५।।
राम बसा था वानर तन में, राम राम था वन-जन मन में ।
मानव मुख में राम सुहाया, जन जीभों में राम रमाया ।।८६।।

राम राग रंगे रंगीले, राम-स्नेही सजे सजीले ।
राम सुधा रस रसिक रसीले, राम तेज से अति चमकीले ।।८७।।
फिरते तरुण तरंगित ऐसे, सागर लेता लहरें जैसे ।
नवता वन-जन जग में राजी, नव युगता भी बहुत विराजी ।।८८।।
वीर-भाव उन में विकसाये, बाहू में वर बल विलसाये ।
राम संग से बन बलशाली, शोभे वे यथा अंशुमाली ।।८९।।
धन्य वही जो बिछड़े जोड़े, वैर कलह के सब दल तोड़े ।
बने नहीं वह तो पक्षपाती, न्याय शीलता जिसको भाती } ।।९०।।

सातवां सर्ग

*गये पीछे सुग्रीव के, लक्ष्मण जी के साथ ।
गिरी वर प्रस्रवण पर, गये तभी रघु-नाथ ।।१।।
एक कन्दरा देख कर, बोले, मेरे भ्रात ।
स्वच्छ शुचि यह स्थान है, रम्य सुखद हे तात! ।।२।।
वर्षा ऋतु बसिए प्रिय!, सुख से इस ही स्थान ।
हरित भरित नीला घना, वन है यहां महान् ।।३।।
शाल तमाल विशाल हैं, ताड़ झाड़ बहु भान्त ।
आम कदम्ब जम्बू तरु, शोभित करते प्रान्त ।।४।।
शुद्ध सलिल में स्नान कर, सज कर सब सिंगार ।
मुनि-जन मम सम अमल हो, विलसें वृक्ष अपार ।।५।।
घास पात सह विमल बन, नीले पहर पहरान ।
बेलें सब हैं नाचतीं, पा कर पर्व-नहान ।।६।।

* दोहा।

पपीहा पीउ पीउ कर, पतले पक्ष पसार ।
पवन-अश्व पर चढ़ चला, करने घन-सत्कार ।।७।।
पंछी नाना चित्र के, पक्ष के पहने वेश ।
रूप संग सुन्दर सजे, करते हर्ष विशेष ।।८।।
आ गया वर्षा काल अब, घन-घटा उठी घोर ।
घन-गर्ज गम्भीर संग, बोल नाचते मोर ।।९।।
घटा, घटा पर त्यों सजे, शिला पर शिला विशाल ।
हो गिरि पर गिरी यथा, लहर पै लहर उत्ताल ।।१०।।
मोटी चौड़ी घन घटा, लगती यथा चट्टान ।
घूमें घन नभ नील में, जैसे बड़े विमान ।।११।।
घिरे घने घन घोर हो, शोभित पन्थ समान ।
गिरि—चढ़ने को ज्यों पथ, सुरपद को सोपान ।।१२।।
दमक दमक कर दामिनी, दश दिश करती द्योत ।
चमक चमक कर कौन्धती, चिट्टी चारु शुचि जोत ।।१३।।
बादल नाना रंग के, नाना कर आकार ।
नभ में फिरते दौड़ते, वायु पर हो सवार ।।१४।।
जलधर छम छम बरस कर, भूतल का हर घाम ।
धरणी धर की धूल धो, धारें अधर-विश्राम ।।१५।।
धवल—धूम हो धरा से, इधर उधर दिश चार ।
हिम सागर सम शोभते, होकर एकाकार ।।१६।।
वन-पथ जलमय हो गये, नाले पा पय-पूर ।
उछल उछल कर गर्जते, करते तट को चूर ।।१७।।
लहरें लड़ती परस्पर, आतीं दौड़ी भाग ।
करतीं धक्कम पेल वे, फैंक रहीं हैं झाग ।।१८।।

नदियाँ ठाठें मारतीं, बहतीं डांवां डोल ।
करते तरुण उतावले, तरल तरंग किलोल ।।१६।।
पानी पवन-मिलाप पर, झल मल कर झक झोल ।
बड़े वेग बल बहुत से, रहा किनारे घोल ।।२०।।
पानी-पृष्ठ पर पड़ चले, नाना प्राणी पेड़ ।
घाट बाट घर गाम भी, जल ने लिए उखेड़ ।।२१।।
जहाँ तहाँ मींडक फिरें, करते कर्कश घोष ।
उन पर नागों का हुआ, बढ़ी भूख से रोष ।।२२।।
जल कुर्कट ले डुबकियाँ, खींच रहे आहार ।
वक बाँकी ग्रीवा किये, तार्के खड़े शिकार ।।२३।।
जीव जन्तु अनगिनत अब, सर सर सरकें साँप ।
जिन को मानव देख कर, जाते भय से कांप ।।२४।।
गीली सीली हो गई, भूमि सब स्थल ठौर ।
जल ही जल है दीखता, इधर उधर सब ओर ।।२५।।
मार्ग सब अब बंद हैं, दुर्गम है भू-भाग ।
यात्रिजन ने है किया, गमनागम का त्याग ।।२६।।
सौम्य! सिया वियोग तो, मुझ से सहा न जाय ।
उसकी खोजना का अब, कोई करो उपाय ।।२७।।
जकड़ी जा किस जाल में, कहां जानकी आज ।
वर्षा ऋतु है काटती, तज निज सुजन समाज ।।२८।।
मेरी जीवन जोत जो, जाया जग का सार ।
किस जन के वश में पड़ी, सहती होगी मार ।।२६।।
यह कह वे व्याकुल हुए, विरह वेदना-संग ।
उन की आंखें बन गईं, दोनों, यमुना गंग ।।३०।।

धृति धर्म के धुरा धर, यति धर्म प्रतिपाल ।
आदर्श पति सुवीरवर, रो पड़े दीन दयाल ।।३१।।
रघुपति को यों देख कर, चिन्तित दुःखी सशोक ।
लक्ष्मण बोला धीर बन, निज व्यथा को रोक ।।३२।।
व्यर्थ व्यथा बन्धु वर, बहुत बुरी लो जान ।
विरह-वेदना विषम में, बनती बल की हान ।।३३।।
शोक-योग्य न आप हो, उत्तम पुरुष विख्यात ।
क्रियाशील उदार हो, नर उद्योगी उदात्त ।।३४।।
पौरुष साहस धारिए, धैर्य और उत्साह ।
आप तरोगे इसी से, सागर कष्ट अथाह ।।३५।।
अभी तो वर्षाकाल है, शरत् की देखो बाट ।
शरत् में शत्रु, शक्ति से, देना नर वर! काट ।।३६।।
करता हूँ उद्दीप्त मैं, तव तेज, महाभाग ।
हवि उद्दीप्त यथा करे, भस्म ढकी जो आग ।।३७।।
*अनुज-वचन धृति शक्ति देने, सुने प्रभु ने मन हर लेने ।
गिरि-गुहा में बसते योगी, राघव राजा वीर उद्योगी ।।३८।।
रहते तन पर भस्म रमाये, मृगचर्म को वेश बनाये ।
कोमल कुंचित चिकने काले, केश कभी थे जो घुंघराले ।।३६।।
उनकी किये दीर्घ जटायें, भस्म मिली सु-लम्बी लटायें ।
अर्द्ध ढके सुन्दर तन वाले, निज-शोभा रखते सम्भाले ।।४०।।
तिनके कंकड़ सेज सजाते, सम विषम स्थल पर सो जाते ।
रज पत्थर कीचड़ हो जो भी, सुख से सोते उस पर तो भी ।।४१।।

* चौपाई।

पानी पड़ता मूसल धारा, जल बहता जैसे नद भारा ।
हो सदा सम भाव में वे ही, रहते बने विरक्त विदेही ।।४२।।
डस कर मच्छर बिच्छू जगाते, दाह जलन कर रक्त बहाते ।
कीट दशन होते बहुतेरे, पर वे रहते शान्त घनेरे ।।४३।।
सर सर करते कीड़े आते, राघव-तन को पन्थ बनाते ।
जगते कटतीं काली रातें, वे न कहते कष्ट की बातें ।।४४।।
इष्ट अनिष्ट समय जो आता, यदि मिलता भाता अनभाता ।
समता में रहते बड़भागी, कर्मयोग में पूरे त्यागी ।।४५।।
गड़ गड़ाती घटा घिर आतीं, घड़ी भर में जल स्थल कर जातीं ।
भूमि भीग के होता गारा, लत पत बनता आसन सारा ।।४६।।
ऐसा होते नींद न आती, आंखों में रात्रि कट जाती ।
पर राघव थे तापस पूरे, सहनशील जितेन्द्रिय शूरे ।।४७।।
सुख दुःख में सम रहते ऐसे, भूमि गिरि भी होते जैसे ।
वीतराग सब काल समाना, रह कर सहते दुखड़े नाना ।।४८।।
कन्द मूल उस दिन जो लाते, वन्य पदार्थ जो भी पाते ।
कच्चा भुना जो हो वे खाते, आगे का न संचय बनाते ।।४६।।
परिग्रह रहित वर वैरागी, अनिकेतन थे गुण-अनुरागी ।
पंछीवत् सब अंग सिकोड़े, रहते रातें संग्रह छोड़े ।।५०।।
यद्यपि टिकते दूर किनारे, गाम नगर जन से भी न्यारे ।
पर इतने पावन थे प्यारे, उन के वानर बने दुलारे ।।५१।।
आकर्षक मोहक जन के ही, अद्भुत चुम्बक जन-मन के ही ।
महा शक्ति के कोश कहाते, क्षण भर में जन-मन अपनाते ।।५२।।
नयन बयन से बहुत लुभाते, मधुर मिलन से थे वे भाते ।
विधु-वदन-सुख सदन से स्वामी, कर लेते जन-मन-अनुगामी ।।५३।।

आते जो जन दर्शन पाने, गद्‌गद् हो गाते गुणगाने ।
लगते उन्हें सच्चे सुखदायी, बन जाते उनके अनुयायी ।।५४।।
आती जनता दिन दिन जेती, राघव की बनती मन सेती ।
वानर-वन जन की आ टोली, भर लेती प्रभु प्रेम की झोली ।।५५।।
राघव-दर्शन को नर नारी, आ जाते जो भी इक बारी ।
उन पर मोहित होते त्यों ही, चन्द्र पर चकोर हो ज्यों ही ।।५६।।
शुभ शुचि चित्त चरित्र कला से, बुद्धि अमला सुमति विमला से ।
राघव ने वानर सब मोहे, दश दिश में वे रवि सम सोहे ।।५७।।
संघ-शक्ति थी उनमें भारी, थी वन जनता उनकी सारी ।
दिनदिनमिलकरराघवजीने, जन-मन-तन अपने कर लीने ।।५८।।

आठवाँ सर्ग

*शान्त शरत् शीतल सुखद, आया जब शुभ काल ।
नीरज निर्मल नील नभ, निखरा बहुत विशाल ।।१।।
बादल खण्ड कहीं कहीं, बिखरा रूई समान ।
दूर दूर थे दीखते, जैसे भग्न विमान ।।२।।
प्रखर सूर्य किरण से, होते जाते लोप ।
लघु शिखर से वसन्त में, हिम हो यथा विलोप ।।३।।
पर्वत माला पर पड़े, दीखें खण्ड विशेष ।
धुली चादरें हों बिछीं, ज्यों हो हिम कुछ शेष ।।४।।
पर्वत शिखरों पर कहीं, दीखें घन इक बेर ।
काले अंजन पुँज सम, श्वेत रुई के ढेर ।।५।।

* दोहा।

धुले धुलाये नील वन, पवित्र शुचि तरुराज ।
पंछी-गण सह शोभते, सुन्दर बहुत विराज ।।६।।
गमनागम होने लगा, जन का तब दिश चार ।
रथ गाड़ी चलने लगे, फिरते अश्व-सवार ।।७।।
ऐसे शोभन शरत् में, बोले रघुपति वीर ।
लक्ष्मण! सिया वियोग में, मन हो रहा अधीर ।।८।।
चिट्टी चारु चांदनी, चमके चहुँ ओर ।
शुचि चन्द्र की चारुता, करती चकित चकोर ।।९।।
शोभित है शशि शारदी, शीतल सुन्दर शान्त ।
रजनी तारागण सहित, शोभित है बहु भान्त ।।१०।।
नीलमणि के सदृश नभ, विमल रहा है शोभ ।
पर मम मन में विरह से, विषम बड़ा है क्षोभ ।।११।।
मृगनयनी वदनी विधु, मेरे सुख का सोत ।
सिया सुखदा कहां गई, मम जी जीवन जोत ।।१२।।
मन्द मधुरतम हासिनी, राजहंस की चाल ।
कौन कहे वह है कहाँ, क्या है उसका हाल ।।१३।।
कमल नाल सम कोमला, कुसुम मृदुल समान ।
कल्पलता काया लिये, कहां रही कर स्थान ।।१४।।
सीता सिमरन इस समय, सबल वेदना संग ।
मेरे सर्व शरीर को, मथ कर करता भंग ।।१५।।
मेरा आत्मा ओर उस, सब बाधाएं तोड़ ।
जाया चाहे वेग से, एक सांस से दौड़ ।।१६।।
सौम्य! जा समझाइये, वानरपति को आप ।
कहिये बल से तो उसे, अपना मम सन्ताप ।।१७।।

मृदु वचन से वीरवर!, करना उसे तयार ।
कथन कर्म में हो नहीं, कुछ भी कटु व्यौहार ।।१८।।
उसे स्मरण कराइए, हो कर मृदु निर्भीक ।
प्रण प्रतिज्ञा पालना, कहने करना ठीक ।।१६।।
सन्धि स्मरण कराइये, मैत्री मेल मिलाप ।
पर मन में रखना नहीं, परुष वचन का पाप ।।२०।।
मैत्री की जिस हेतु से, वह पूर्ण हो जाय ।
वानर-पति को उचित है, ऐसा करे उपाय ।।२१।।
रम कर हास विलास में, सुख में हो लवलीन ।
प्रण-पालन से वह अब, क्यों होता है हीन ।।२२।।
प्रतिज्ञा कर के जो नर, करे न तद् अनुसार ।
अधम मानव माना वह, निरा भूमि पर भार ।।२३।।
कार्य अपना साध कर, करे न प्रत्युपकार ।
तन उस नर कृतघ्न का, रुलता गली बाजार ।।२४।।
कहना उस को हे प्रिय!, करे न ऐसा काम ।
जिस से उस को भी मिले, बाली का ही धाम ।।२५।।
प्रण वचन जो है दिया, उस ने तो इक बार ।
जान सनातन धर्म वह, पाले निश्चय धार ।।२६।।
*राघव की व्याकुलता भारी, देखी लक्ष्मण ने उस बारी ।
धनुष बाण लेकर तद् वेला, चला कोपाकुल वह अकेला ।।२७।।
मत्त हस्ति सम था वह जाता, पथ में भूतल को कंपाता ।
वेगवती आंधी की नाईं, तज कर दृष्टि दहिनी बाईं ।।२८।।

* चौपाई।

पेड़ पन्थ में जो भी आते, लक्ष्मण उन्हें उखाड़ गिराते ।
जाते जन भी बहुत धकेले, भय से खाते ठेलम ठेले ।।२६।।
भागड़ में भागे जन त्यों ही, सिंह देख भीरु मृग ज्यों ही ।
थर थर करते डर के मारे, जाते दौड़े दूर किनारे ।।३०।।
लाल नयन थे उनके ऐसे, जगते दीपक होते जैसे ।
भाल लाल हुआ तमतमाता, उनका तेज न देखा जाता ।।३१।।
लम्बे उष्ण सांस था लेता, दर्शक जन को अति भय देता ।
जा रहा था वह धम धमाता, हौंठ चबाता दान्त पिसाता ।।३२।।
शेषनाग क्रोधी हो जैसा, वह दीखा कालाग्नि जैसा ।
सुग्रीव-सदन-सुसुन्दर द्वारे, आया यों धनु खड्ग उभारे ।।३३।।
अंगद उस ने वहां निहारा, "आओ" कह कर उसे पुकारा ।
कहा, वत्स तुरन्त ही जाओ, भूपति को आगमन बताओ ।।३४।।
समाचार दे पीछे आना, मुझे उनका वृत्त सुनाना ।
आज्ञा पा वह दौड़ तथा ही, गया बिजली जावे यथा ही ।।३५।।
भूपति मग्न भी हो रहे थे, सुख शय्या पर सो रहे थे ।
चरण छू कर उस ने जगाये, उनको सब सन्देश सुनाये ।।३६।।
खड़ी पास तो वहां रुमा थी, सुग्रीव पत्नी मानो उमा थी ।
उसी समय पर आई तारा, रूप रंग का संचय सारा ।।३७।।
द्वार लाँघ तब लक्ष्मण आये, जैसे बादल में रवि जाये ।
जाय केसरी वन में ज्यों भी, वानरों में गये वे त्यों भी ।।३८।।
वानर जाते पथ से भागे, रोक टोक हुई नहीं आगे ।
सुग्रीव-आँगन बीच विराजे, ग्रीष्म-सूर्य सम वे राजे ।।३६।।
धनुष-ध्वनि उस ने गर्जाई, भूतल नभ दश दिश कम्पाई ।
सुन कर जन वह नाद करारा, समझे आया है भय भारा ।।४०।।

बिना बुलाये भीतर जाना, लक्ष्मण ने तब उचित न माना ।
सभ्य सुशील जो शिष्टाचारी, तुरत न जाय जहाँ हो नारी ।।४१।।
आर्य पथ पर चलने हारा, खड़ा रहा वह ताक किनारा ।
सुग्रीव तब तारा को बोला, देवी! दिल मेरा अति डोला ।।४२।।
धनु का सुन कर के टंकारा, काँप गया मेरा तन सारा ।
जिस लक्ष्मण ने नाद सुनाया, कर वह कोप यहाँ है आया ।।४३।।
इस का होगा कारण कोई, जिस से कुपित हुआ नर सोई ।
सो तुम जाओ उसके आगे, कोप कलह जिससे वह त्यागे ।।४४।।
सहज मृदु कोमल है प्यारा, शुद्ध चित्त है गुण का क्यारा ।
देख तुझे वह रहे न क्रोधी, बने कभी नहीं बहु विरोधी ।।४५।।
आर्य-वंशी जो कहलाते, नारी जन पर कोप न लाते ।
करते आगे नयन न ऊँचे, हो जाते वे शान्त समूचे ।।४६।।
मधुर वचन सुन कर वह तेरे, होगा शान्त ज्यों रवि सबेरे ।
तब मैं भेंट करूँगा जा के, क्षमा सभी अपराध कराके ।।४७।।
यह सुन तारा बाहर आई, उसे देख वह अति घबराई ।
पर उसने देखी जब रानी, बंद हुई उसकी तब बानी ।।४८।।
लक्ष्मण-नयन बने अधमींचे, सिर मुख सहित हुए वे नीचे ।
उन पर छाई अधिक उदासी, लज्जित हुए अयोध्या-वासी ।।४६।।
तारा बोली वचन रसीले, मोहक मीठे सरल सुरीले ।
दशरथसुत में कोप न सोहे, महा मधुर मुख जिसका मोहे ।।५०।।
किसने कथन न किये तुम्हारे, कौन पुरुष दोषी हैं भारे ।
सूखे वन को अग्नि लगाना, चाहता कौन भस्म बनाना ।।५१।।
यह सुन लक्ष्मण हुए लजीले, मैत्री से वे अति ही ढीले ।
बोले, सोचो तुम ही तारे!, कितने कटु हैं कर्म हमारे ।।५२।।

सुग्रीव रहता सुख में माता, हास मोद में अहर्निश राता ।
मित्र की ओर चित्त न लाता, उसके कष्ट नहीं लख पाता ।।५३।।
{जिसके पैर न होती पीड़ा, उसको सूझती कन्दु क्रीड़ा} ।
जब से कार्य उसने साधा, रहता रमण में वह निर्बाधा ।।५४।।
रघुपति सा पाकर उपकारी, वह बना क्यों कर अनाचारी ।
राघव पास नहीं फिर आया, सीता का कुछ भेद न लाया ।।५५।।
प्रेमी जन की सार न लेना, दुःख में उसका साथ न देना ।
तजना जन जो हो अनुग्राही, है बन जाना गुण-वन-दाही ।।५६।।
गुणवाली को यों समझाना, दीपक को है दीप दिखाना ।
सार सर्व है काल न बीते, सिया-खोज हो देवि विनीते! ।।५७।।
बोली तारा, शमता धारो, अपने जन से कोप निवारो ।
बहुत सुगम है जन अपनाना, महा कठिन है प्रेम निभाना ।।५८।।
तुम से सुन्दर सोम सियाने, प्रिय रूप हो शान्त सुहाने ।
आर्य जन जब नाता जोड़ें, जीवन जाय न उसको तोड़ें ।।५६।।
भूल चूक जो भी हो पाई, सुग्रीव समझो अपना भाई ।
क्षमा करो उसको अब के ही, रह कर सौम्य स्निग्ध स्नेही ।।६०।।
कथन मानिए लक्ष्मण! मेरा, न सुग्रीव आलस्य ने घेरा ।
यत्न युक्त है मन तन से ही, सहित सहस्रों सुजन जन से ही ।।६१।।
पराक्रमयुत काम सुरूपी, शत शत वानर चंचलरूपी ।
उसके पास अभी हैं आये, चलो देखिये सजे सजाये ।।६२।।
बन्धु-गृह में आते जाते, भाई कदापि नहीं लजाते ।
भीतर चलिए इस ही नाते, यहां रहो क्यों तुम सकुचाते ।।६३।।

नौवाँ सर्ग

*लक्ष्मण तारा सहित तब, भीतर कर प्रवेश ।
वानरपति को देख कर, दीखे कुपित विशेष ।।१।।
स्वागत कर के भूप तब, नत शिर बना विनीत ।
पर थे उसके कर्म कुछ, प्रेम सन्धि-विपरीत ।।२।।
हास विलास विहार में, उसे देख कर लीन ।
लक्ष्मण आ आवेश में, बोले कटु बन दीन ।।३।।
सत्य धर्म तू ने किया, राग मोह वश भंग ।
भूपति हो पाला नहीं, न्याय नीति का अंग ।।४।।
उपकारी जन का नहीं, जो करता उपकार ।
कहा गया कृतघ्न वह, बना हुआ भू-भार ।।५।।
हनन परकृत कर्म का, जो करता जन नीच ।
न कर प्रत्युपकार को, कृतघ्न वह जग बीच ।।६।।
वध-योग्य कृतघ्न है, कहते सभी विद्वान् ।
ऐसे अधम का न कहीं, होता आदर मान ।।७।।
आत्म-घाती वह कहा, उस की रहे न साख ।
मिथ्यावादी कुकर्मी की, रुलती रहती राख ।।८।।
ब्रह्मा के ये वचन हैं, गोघातक नर चोर ।
मद्यप भग्नव्रती जन, पाप करें जो घोर ।।६।।
सब के प्रायश्चित हैं, कहा उनका निस्तार ।
नीच पुरुष कृतघ्न का, होता नहीं उद्धार ।।१०।।

* दोहा।

अधम कृतघ्न तुम बने, मिथ्या वक्ता जन और ।
पहले हो कर उपकृत, लखो न राघव ठौर ।।११।।
सच्चा आप का धर्म था, अपना कार्य साध ।
लगते सीता-खोज में, सहित उद्यम निर्बाध ।।१२।।
पर तुम तो निश्चिन्त हो, अपनी बाजी मार ।
सीता के तो खोज का, करते नहीं विचार ।।१३।।
बाली-पन्थ पर न चलो, प्रण सत्य लो पाल ।
दयावान् रघुदेव से, चलो न टेढ़ी चाल ।।१४।।
रघुपति की पत्नी प्रिया, सब सृष्टि का सार ।
पता नहीं वह है कहाँ, सहती कष्ट अपार ।।१५।।
यह कह कर आवेश में, व्याकुल बहुत कुमार ।
दीखे रवि मध्यान्हवत्, तीक्ष्ण तेज पसार ।।१६।।
*चित्त-वेदना उन की सारी, जानी तारा ने उस बारी ।
आन बान की जलती ज्वाला, देख डरी भीतर से बाला ।।१७।।
रूठे को वह लगी मनाने, संशित को सुविश्वास दिलाने ।
कुपित परुष को शान्त बनाने, निराशी को आश बंधाने ।।१८।।
मृदु मधुर मन मोहक बानी, बोली महा प्रीति बरसानी ।
समझो, सौम्य! भूप न ऐसा, हो कृतघ्न पतित जन जैसा ।।१९।।
है न उद्यम हीन प्रमादी, विषयासक्त नहीं उन्मादी ।
है वह अति राघव-अनुरागी, सच्चा सखा हितकर बड़भागी ।।२०।।
चिर तक रहा हो कर निर्वासी, विरही वियुक्त बन वन-वासी ।
क्षीण थका घर पर है आया, उसने आ कुछ दिन सुख पाया ।।२१।।

---
* चौपाई।

प्रिय जनों का बहुत बिछोड़ा, माना दुःख गया नहीं थोड़ा ।
रहा रुमा से जो अति दूरे, जिसके अंग गये हों चूरे ।।२२।।
उस का ऐसे विश्रान्ति पाना, सहज उचित सबने है माना ।
नहीं सखा तव झूठा दोषी, सौम्य! बनो न यों ही रोषी ।।२३।।
वर्षा ऋतु ने पथ थे रोके, जाते जन किस मग से होके? ।
इसलिए कुछ कर वे न पाये, पता सीता का कुछ न लाये ।।२४।।
दिग् पथ नभ सब अब हैं ऐसे, गमनागम योग्य हों जैसे ।
भूप ने जाति-जन अब लाखों, बुलवाये हैं देखो आँखों ।।२५।।
शान्त बनो प्रिय! शत्रु-हारी, शक्ति तेज शुभ बल के धारी ।
बन्धु-भाव की भावना भारी, भर भीतर भय भेदनकारी ।।२६।।
तारा ने जो वचन उच्चारे, थे धृत शान्ति देने हारे ।
प्रभाव उन का हुआ भारा, लखन कोप का उतरा पारा ।।२७।।
कोमलता उस में फिर आई, सहजा शोभा फिर विलसाई ।
वानरपति तब सम्मुख आया, उसे मिलकर वह अति हर्षाया ।।२८।।
बोला, बन्धो! बहुत दुलारे, सच्चे सुहृद् स्नेही हमारे ।
मैं हूं राघव का आभारी, कृतज्ञ रहूंगा आयु सारी ।।२६।।
कौन अधम जो उसे भुलाये, उसके गुण गण को बिसराये ।
सब जनता उसके गुण गाती, सब दिश में है उसकी ख्याती ।।३०।।
अपने कर्म से जो है सुहाता, जिसका सुयश फैलता जाता ।
तेज शक्ति का पुंज अनोखा, जिसने आसुर सर सब सोखा ।।३१।।
जो है सब का संगी प्यारा, उसको देगा कौन सहारा ।
पर हूँगा उसका अनुसारी, केवल सेवक मैं सहकारी ।।३२।।
जब सेना ले प्रभु चलेंगे, शत्रु-दल वे तुरन्त दलेंगे ।
हम होंगे उन के अनुगामी, अनुचर दास नाम से नामी ।।३३।।

यदि दोषी मुझको तुम जानो, क्षमा करो अपना कर मानो ।
प्रेम रीति विश्वास से जो भी, अनुचित किया गया हो सो भी ।।३४।।
ऐसा नहीं जिसे हुई न व्याधी, मिलता न मानव निरपराधी ।
मनुष्य नहीं निर्दोषी दीखे, क्षमा योग्य हैं मुझ सरीखे ।।३५।।
भूप-कथन सुन सुख के देने, अरि जन के भी मन हर लेने ।
लक्ष्मण शान्त हुआ तब यों ही, पूर्ण शशि होता है ज्यों ही ।।३६।।
बोला, राजन् जब तुम साथी, तब सदा रघुपति है सनाथी ।
तुम को पाकर मेरा भ्राता, होगा सफल विजय यश पाता ।।३७।।
आप कृतज्ञ धर्म के ज्ञाता, हो प्रतापी वीर विख्याता ।
आप बन्धु जब यान करेंगे, असुर समूह अवश्य मरेंगे ।।३८।।
राघव, तुम सा ऐसा नेता, मिले नहीं नीति न्याय वेत्ता ।
करने सहाय तुम हमारी, देवदत्त हो बल भण्डारी ।।३६।।
कृपा कर चलो संग मेरे, इसी समय राघव के डेरे ।
विरह युक्त को मिल समझाओ, शोकातुर को शान्त बनाओ ।।४०।।
बन्धु-व्यथा मुझे अकुलाती, उसकी चिन्ता बहुत डुलाती ।
उनकी पीड़ा अधिक सताती, इस से मुझ में कटुता आती ।।४१।।
परुष कथन कहे गये जो जो, क्षमा सखे कर देना सो सो ।
अपनों के बल बुद्धि-सहारे, मान गर्व होते हैं भारे ।।४२।।

दसवाँ सर्ग

*पास खड़े हनुमान्, देखे वानरराज ने ।
बोले हे बलखान, सैनिक सज्जित हों सभी ।।१।।

* सोरठा।

यद्यपि तुम ने दूत, पहले भेजे हैं सही ।
अहो पवन के पूत!, और अधिक अब भेजिए ।।२।।
दीर्घ-सूत्री लोग, होते हैं बहु कर्मरत ।
बने न यह संयोग, नहीं समय पर आ सकें ।।३।।
बुलवाओ जन वीर, वानर नर निर्भय निरे ।
जिनके सबल शरीर, युद्ध-कुशल जो शूर हैं ।।४।।
दस दिन के ही बीच, सब आ जावें जन यहां ।
पावेंगे दुःख नीच, आवेंगे जो तो नहीं ।।५।।
पा कर यह आदेश, सहस्रों जन तब दौड़ कर ।
योद्धा वीर गणेश, मिले भेंट ले भूप को ।।६।।
शिविका हुई तयार, उस पर लक्ष्मण सहित तब ।
भूपति हुए सवार, चले संग सेना लिए ।।७।।
वानरपति का यान, बाजे गाजे से सजा ।
उमड़ी सरित समान, राघव सागर को चला ।।८।।
रामचन्द्र समीप, उतर पालकी से तुरत ।
वानर कुल का दीप, हाथ जोड़ उनको मिला ।।९।।
हर्षित श्री रघुराज, गले लगा उसको मिले ।
देखा सेना-साज, महा मोद से देव ने ।।१०।।
कुशल प्रश्न पश्चात्, बैठे वानर राज जी ।
लगे चलाने बात, रामचन्द्र जी स्वयं ।।११।।
सखे! सबल गुणवान्, समझो सारे सार को ।
समय पर कार्य-विधान, करे भूप सो हो सुखी ।।१२।।
करके समय-विभाग, कार्य करते जो प्रभु ।
वे बनते बड़भाग, धर्मार्थ और काम में ।।१३।।

अरि-दल-दलन में जो, क्षत्रिय उद्यत हों सदा ।
मित्र संग्रही हो, वे सुख पाते हैं विजय ।।१४।।
दस्यु-दमन! हे भूप, है यह समय उद्योग का ।
देश काल अनुरूप, करो काम मिल सचिव से ।।१५।।
बोले वानर-पाल, यश सुख जो मुझको मिला ।
राघव दीन-दयाल!, तेरा सब प्रसाद है ।।१६।।
लखन आप से आज, मैं इस पद पर रूढ़ हूँ ।
सच समझो रघुराज!, मैं आभारी हूँ बड़ा ।।१७।।
सहस्रों वानर वीर, विधिवत् वीर विशेष बहु ।
गणनायक अति धीर, ये हैं सेनापति कुशल ।।१८।।
इन्द्र-सदृश शूर, सैनिक सज्जित हैं बड़े ।
असुर-गर्व कर चूर, ले आयेंगे ये सिया ।।१६।।
*सुग्रीव के सु-वचन सुन्दर, सुने राघव ने जभी ।
प्रेम से हो बहुत गद् गद्, उठ मिले उसको तभी ।।
बोले स्नेही सुहृद् से, कर्म सम्भव हैं सभी ।
आपसे शुभ सखा पाकर, कार्य रुकते न कभी ।।२०।।
मानिए आश्चर्य नहीं, भानु यदि तम को हरे ।
कौन विस्मय कहा इसमें, शशि निशा शीतल करे ।।
हो सहायक सखा सज्जन, मित्र अवश्य ही तरे ।
सच्चे सुहृद शूर को मिल, कष्ट होते हैं परे ।।२१।।
कष्ट घोर कठोर में अब, है भरोसा आपका ।
सुघड़सज्जनकुशलकोमिल, भय गया अरि-ताप का ।।

---

* गीतिका।

मुझको चिन्तन रहा न कुछ, असुर-वैर विलाप का ।
निश्चय है समीप आया, समय सिया-मिलाप का ।।२२।।
करते थे जब वे बातें, घिर गया नभ धूल से ।
बढ़े आंधी वेग से ज्यों, तरु गिराती मूल से ।।
आया भारी हो भूचल, चलता अचल-चूल से ।
आ रहे थे मिले वानर, भरे मन अनुकूल से ।।२३।।
देखे रघुपति ने लाखों, वीर सम्मुख मनचले ।
बल पराक्रम मूर्ति थे, तेज जिन पर झलमले ।।
युद्ध जीते थे जिन्होंने, शत्रु दल थे बहु दले ।
ज्वलित दीपक नयन लिये, शोभते वे नभ-तले ।।२४।।
सुग्रीव बोला अब जो राजन्!, आपका आदेश हो ।
कार्य किया जाय वह तो, देर कुछ न विशेष हो ।
बोले राघव, इसमें हम से, तुम्हीं चतुर नरेश हो ।।
दशा दिशा सब देश वेश, समझते भी अशेष हो ।।२५।।
एक हो तुम मित्र मेरे, पराक्रमी वीर हो ।
तीसरे हो चतुर पण्डित, विचारवान् सुधीर हो ।।
हित में तत्पर हो पंचम, बड़े विज्ञ गम्भीर हो ।
अर्थपर हो सातवें तुम, मुझे प्रिय शरीर हो ।।२६।।
करण कारण कुशल हो तुम, करो जो भावे तुम्हें ।
जलस्थल सम विषम वन के, पथ नहीं आते हमें ।।
विनत नामक गणपति तभी, अग्र आकर अति नमे ।
बोले सूरमे वीर नर ये, खड़े हैं सब ही जमे ।।२७।।
कहा उसे सुग्रीव ने तुम, अग्नि दिश को जाइए ।
खोज करिए सब स्थल में, देर नहीं लगाइए ।।

पता सीता का वहाँ यदि, आप कुछ भी पाइए ।
तो यहाँ पर सर्व आकर, हमें तुरत बताइए ।।२८।।
देखना आश्रम सब ही, भील बासे ग्राम को ।
नगर कुटिया झोंपड़े सब, घाट तीर्थ धाम को ।।
ऊंच नीच सम विषमस्थल, गर्त गहरे वाम को ।
गिरी गुहा शिखर वनी वन, खोज करना काम को ।।२६।।
ऐसे ही सहस्रों वानर, दिशा पश्चिम को गये ।
भेजे उत्तर को उस ने, वीर योद्धा सब नये ।।
दक्षिण को जो लगे जाने, उन के अग्र हो रहे ।
नील अंगद जाम्बवान, हनूमान् वरतर कहे ।।३०।।
सुषेण गज गवाक्ष मुखिया, आदि सर्व तयार थे ।
महाबली थे नर उत्तम, लिये सब हथियार थे ।।
उन में तो हनुमान् अधिक, कला कौशलधार थे ।
सुग्रीव के थे अति स्नेही, सचिव हित सुखकार थे ।।३१।।
उसे कहा सुग्रीव ने तब, मुझे निश्चय है यही ।
वीरवर बहुविज्ञ वानर, गति तव अनाहत कही ।।
कर्म करने में कुशल हो, सफल रहते हो सही ।
परम पटुतर! पता पाना, कहां सीता रह रही ।।३२।।
देख कर अति चतुर योद्धा, उसे श्री रघुराज ने ।
नामांकित दी अंगूठी, तब श्री महाराज ने ।।
कहा मोहित किया मुझको, सोम! तेरे काज ने ।
कार्य-सिद्धि है दिखाई, आज सज्जित साज ने ।।३३।।
मिलो सिया को यदि तो, मुद्रिका पहचान को ।
उसे देना वीर वर तब, लिये आदर मान को ।।

यथावत् सन्देश देना, मेरे प्रिय प्राण को ।
कहना रक्खो धृति आते, समझ राघव-यान को ।।३४।।
ले अंगूठी सिर मस्तक, पर धरी हनुमान् ने ।
प्रणाम किया रघुपति को, तीव्र बुद्धिमान ने ।।
किया हर्षित सर्व जनको, तुरत उस प्रस्थान ने ।
जय जय स्वस्ति वचन कहे, सुजन संघ महान् ने ।।३५।।
टिड्डी दलवत् बढ़ी सेना, सर्व पथ अवलोकती ।
गमागम को देखती वह, जन संदिग्ध रोकती ।।
पूछती थी भेद सब से, खल जनों को टोकती ।
दुर्ग कोट महा विषम में, प्राण तक भी झोंकती ।।३६।।
झाड़ झाड़ी वृक्ष-झुर्मट, लता बेल निहारती ।
घने नीले विषम वन में, देख भाल पुकारती ।।
घोर सघन घास में घुस, घाम कष्ट बिसारती ।
जाती सेना थी मानो, नदी ठाठें मारती ।।३७।।
विन्ध्याचल की सब चोटी, ऊँच नीच सम स्थली ।
गिरी गहरी गुफा घाटी, खाई खड्डे फिर तली ।।
गई खोजती वह सेना, सभी भूमि बुरी भली ।
सिंह सम थे वीर वानर, बढ़े जाते बहु बली ।।३८।।
गड़हे गहरे मार्ग सब ही, घाटियाँ पेचीलियां ।
गिरी माला महा लम्बी, विषम वनियाँ नीलियां ।।
देखते तराइयां सभी, सीधी कंकरीलियां ।
कठिन काली कन्दरायें, कीटयुत अति सीलियां ।।३६।।
भील कोल किरात जनके, गये गृह निहारते ।
ऋषि मुनिवरों की कुटिया, पर दृष्टि पसारते ।।

तापसों को देखते वे, पूछ जान विचारते ।
चतुर-चक्षु से चतुर्दिश के, चित्र चित्त-उतारते ।।४०।।
छद्मवेशी छुपे जन को, पूछते बहु बार थे ।
कपट कौशल कर्मियों का, तुरत पाते पार थे ।।
चपल चर के चित्त का भी, काढ़ लेते सार थे ।
मेल जोल बात चीत में, सर्व कुशल अपार थे ।।४१।।
पथिक जन से पूछते वे, भ्रान्त भटके जनों से ।
यात्री प्रेषक घातकों से, निकलते जो वनों से ।।
घर घाट विहीन जनों से, नग्न जो थे तनों से ।
सदा के प्रवासियों से, दस्यु डाकू गणों से ।।४२।।
अजापालों गड़रियों से, गाये भैंस पाल से ।
बहु व्याधों अहेड़ियों से, ग्वाले ऊँट वाल से ।।
जड़ी बूटी खोजियों से, लदे जन जो माल से ।
पूछते वे सर्व से ही, पूरी देख भाल से ।।४३।।
पत्ता पत्ता वन का देखा, उन्होंने अति ध्यान से ।
कोना कोना सब खोजा, चतुर-चक्षु पहचान से ।।
चप्पा चप्पा देखी खोजी, भूमि अपने ज्ञान से ।
एक एक जन से पूछा, नीति रीति विधान से ।।४४।।
फिसले लुढ़के बार बहुत, भूमि पाकर फिसलनी ।
उलझे अटके छिले अधिक, पा कटीली बहु वनी ।।
कटे कंटक वनों में वे, गिरे घायल हो गणी ।
सभी साहसवान् पर थे, सूरमे बल के धनी ।।४५।।
ढूँढ़ खोज करते करते, वे गये उस प्रान्त में ।
सिन्धु लहरें मारता था, जहाँ पर एकान्त में ।।

असीम सिन्धु देख आगे, रहे चित्त न शान्त में ।
अन्त हुई चिन्ता उन में, दशा ऐसी श्रान्त में ।।४६।।
लगे सोचने वे वानर, लौट घूम जहां तहां ।
भूमि-सीमा आ गई, अब खोज करिए जा कहां ।।
कार्य-सिद्धि बिना पीछे, कथं जायें हम वहां ।
प्रायोपवेशन कर मरें, बैठ बालू पर यहां ।।४७।।
व्यर्थ जीना है जग में, कार्य-सिद्धि के बिना ।
असफल हताश निराश का, न स्थान ऋद्धि के बिना ।।
आन बान न बने शोभा, मान वृद्धि के बिना ।
दीन होते देश के जन, बल समृद्धि के बिना ।।४८।।
बोले अंगद हो अधीर, अब हमारा मरण है ।
असफल जा सुग्रीव संनिधि, नहीं हमको शरण है ।।
भूपति के कोप-कलह से, नहीं कदापि तरण है ।
क्रूर-कर्मी कठोर क्रोधी, काल का वह करण है ।।४६।।
बैठे मरते हैं यहां हम, लौट जायेंगे नहीं ।
रहेंगे अनशन व्रत कर, अन्न खायेंगे नहीं ।।
सगे सम्बन्धी सब तजकर, मोह लायेंगे नहीं ।
निराहारी बनेंगे तब, प्राण आयेंगे नहीं ।।५०।।
रुदन सहित उदास वानर, प्राण तजने के लिए ।
अंगद-आज्ञा से बैठे, सर्व उपवास ही किये ।।
उस समय संपाति ने आ, उन्हें दर्शन शुभ दिये ।
दीर्घ आयु जटायु-बन्धु, वह रहता सुधा पिये ।।५१।।

ग्यारहवाँ सर्ग

*वानर बहुत उदास, बैठे करते बात थे ।
राघव का वनवास, वर्णन वे थे कर रहे ।।१।।
सिया हरण की बात, कही उन्होंने परस्पर ।
जटायु का विनिपात, करुणाकर वर्णन किया ।।२।।
रावण ने की घात, जैसे द्विजवर की तब ।
रामचन्द्र विख्यात, खिन्न हुए उस काल ज्यों ।।३।।
सुन यह वार्तालाप, सोचा संपाति ने यह ।
होता है परिताप, बन्धु-वध इनसे सुन ।।४।।
प्यारा प्राण समान, लघु भ्राता मेरा सुजन ।
जी जीवन कर दान, चला गया परलोक को ।।५।।
ऐसा सोच विचार, गद्‌गद् बोला वह उन्हें ।
नीचे मुझे उतार, जटायु-वध वर्णन करो ।।६।।
कैसे वह बलवान्, मम बन्धु गुणी ज्ञान युत ।
करिए मरा बखान, मुझ शोकित को कह कथा ।।७।।
करके वीर विश्वास, पर्वत-चोटी पर चढ़े ।
जाकर उसके पास, आदर से उसको मिले ।।८।।
जरा-जरित जन जान, द्विजराज को वे जभी ।
दे अवलम्बन मान, लाये अंगद पास तब ।।६।।
स्वागत कर सम्मान, उसको अंगद ने दिया ।
निजू वंश का ज्ञान, उसे कराया वीर ने ।।१०।।

---

* सोरठा।

राघव-कथा कलाप, कहा उसे कुमार ने ।
जटायु-वध का पाप, विस्तर से वर्णन किया ।।११।।
सुन कर सब वृत्तान्त, बहुत खेद संपाति कर ।
बना अधीर नितान्त, फूट फूट रोने लगा ।।१२।।
बोला धैर्य धार, रावण ने मारा जिसे ।
मेरा था अति प्यार, उस लघु निज भ्रात से ।।१३।।
{जो करे अत्याचार, दल बल छल अति शक्ति से ।
उस का है उपचार, बदला लेना बन बली} ।।१४।।
मैं वृद्ध हूँ क्षीण, रहित शक्ति सामर्थ्य से ।
रोता हूँ हो दीन, और अधिक अब क्या करूँ ।।१५।।
*वचन सुन संपाती के तब, कहा अंगद ने उसे ।
ज्ञानी हो तुम दूर-दर्शी, कहो देखा हो जिसे ।।
कौन अधम है वह रावण, पता उस का है किसे ।
कर लेगा खोज यह संघ, मिले भेद यदा इसे ।।१६।।
खेद से बोला संपाति, एक दिन की बात है ।
आभरण-भूषित एक स्त्री, जिसका कुल न ज्ञात है ।।
जा रहा था लिये रावण, राजा जो विख्यात है ।
वह रोती पुकारती जो, स्मरण मुझे, तात! है ।।१७।।
कहती थी वह हा लक्ष्मण!, करो मेरी त्राण आ ।
रामचन्द्र देव जी तुम, करिए रक्षा बल लगा ।।
दुष्ट के वश में पड़ी मैं, रो रही हूँ हरी जा ।
दौड़ कर बहु वेग से आ, लीजिए मुझको बचा ।।१८।।

---
* गीतिका।

फेंकती आभरण को थी, अवयव थी सिकोड़ती ।
माला मुक्ता रत्न की वह, फैंकती थी तोड़ती ।।
पीले वस्त्र किये धारण, नयनों को निचोड़ती ।
कुकर्मी काले असुर ओर, मुख नहीं थी मोड़ती ।।१६।।
पीत चादर सिया की उड़, असुर तन पर हिल रही ।
श्याम गिरि पर ज्यों दीखे, पीत-प्रभा खिल रही ।।
धृति-नाव उसकी थी तब, शोक जल में ठिल रही ।
सिया थी पहचान उसके, हा नाद से मिल रही ।।२०।।
पता उसका जानिए यह, कहा रावण नाम है ।
महाद्वीप का है राजा, नाम लंका धाम है ।।
महाबली है अति कुकर्मी, कटु कर रहा काम है ।
जिस पुर में है वह बसता, कोस चतुशत ठाम है ।।२१।।
पुरी शोभाशालिनी है, असुर जिसका भूप है ।
राजमहल सब हैं उसके, जिनका चारु रूप है ।।
वहीं रहती है सिया अब, जो अतिशय सुरूप है ।
बन्धुविहीना बहु दीना, सहती सब दुःख धूप है ।।२२।।
द्वीप सागर से घिरा है, पुर उसमें महान् है ।
जाय यहां से सौ योजन, पाय सो वह स्थान है ।।
देखे सिया सती को जो, धर्म मूर्तिमान् है ।
जाओ देखोगे उसको, सत्य मेरा ज्ञान है ।।२३।।
समाचार सीता का दे, विदा वह तब हो गया ।
हर्ष देकर वानरों को, दुःख उनका खो गया ।।
उत्साह साहस का नवतर, बीज उनमें बो गया ।
दीन भाव उदासता की, धूल उनसे धो गया ।।२४।।

हर्ष के आवेश में वे, सिंह सम थे गर्जते ।
उनके नाद आह्लाद से तब, वन गिरी थे लर्जते ।।
वीर-वचन विनोद उनके, वनचरों को तर्जते ।
उछल कूद करते वे सब, नव तेज थे अर्जते ।।२५।।
सिन्धु-तट पर दौड़ आये, पार करने को बली ।
सुप्त सागर सम कहीं था, लहर आती थी चली ।।
उत्तुंग तरल तरंग तरुण, समा तड़ित उतावली ।
दौड़ी आती थीं तट को, भयकरी वे अनटली ।।२६।।
असीम सिन्धु सामने लख, सभी भय खाने लगे ।
जल-राशि आकाश सी से, बहुत घबराने लगे ।।
भय भीत संघ को अंगद, आप समझाने लगे ।
बलवर्द्धक वीर-वचन से, अधिक उकसाने लगे ।।२७।।
युवराज ने कहा उनको, भय, भाई! न कीजिए ।
अपने मन से विषाद को तो, अभी ही तज दीजिये ।।
सर्पवत् घातक इसे अति, जान मन में लीजिए ।
बल पौरुष हन्ता है यह, नहीं इसमें भीजिए ।।२८।।
हो गये उत्साहित वे सब, कहना सुन कुमार का ।
सोये सुख से रात वहीं, तोड़ तार विचार का ।।
मिले उठकर दिन चढ़े पर, सोच करते पार का ।
कहा अंगद ने उन्हें यह, कथन सुन्दर सार का ।।२९।।
कौन हम में वीर है जो, पार जलनिधि कर सके ।
नील सिन्धु विशाल गहरा, धृति बल से तर सके ।।
मुख्य जन का सर्व संकट, कुशल नर वर हर सके ।
सत्य वचन सुग्रीव के कर, जाता जो न डर सके ।।३०।।

कौन शक्ति-शाली है जो, हमें मीत मिला सके ।
पत्नी पुत्र पिता आदि सब, सगे बन्धु दिखा सके ।।
सुग्रीव राघव के सम्मुख, बहुत मान दिला सके ।
कहो नर वर कौन है जो, सिन्धु तर कर जा सके ।।३१।।
वचन सर्व कुमार के सुन, मौन-मुनि थे सब बने ।
कोई उत्तर न उन्होंने, दिया हो कर अनमने ।।
बोले अंगद पुनरपि तब, सुनो सैनिक सब जने ।
कहो शक्ति अपनी अपनी, कर्मविधि जिससे ठने ।।३२।।
कहे वचन सुषेण ने, मैं, अस्सी योजन जा सकूं ।
यदि आज्ञा हो राजन्, बल अपना बता सकूं ।।
जाम्बवान् बोला मैं यदि, बड़ी दौड़ लगा सकूं ।
नव्वे योजन तुरत जाऊँ, पार इतना पा सकूं ।।३३।।
आप अंगद ने कहा मैं, सकता हूं सौ योजन जा ।
कह सकूँ पर नहीं ऐसा, सकूँगा मैं लौट आ ।।
कहा जाम्बवान् ने उसे, जाय न तव गमन सहा ।
बिना आप यहां हमारा, समझो कुछ भी न रहा ।।३४।।
उसे कहा कुमार ने फिर, ऐसी यदि अनुमति है ।
तब तो मरण अनशनबिना, नहीं हमारी गति है ।।
बोला सविनय जाम्बवान्, भूखे मरना अति है ।
करता हूँ उत्साहित उसे, वज्र-अंग जो यति है ।।३५।।
जाम्बवान् बोला हनुमत्, गरुड़ सम बलवान् हो ।
सुग्रीव राघव सम योद्धा, शास्त्र में विद्वान हो ।।
बल बुद्धि तेज से तो तुम, वीरों में महान् हो ।
अंजना-सुत,क्योंहो चुप जब, सफलता का स्थान हो ।।३६।।

बाल-काल की लीलालय में, लपक उछले तुम बड़े ।
उदयकाल का लाल भानु, पकड़ने को हो खड़े ।।
साहस सहित उड़े नभ को, भूमि पर फिर गिर पड़े ।
हनु टेढ़ी हुई जिससे, नाम से तुम हो कड़े ।।३७।।
बालपन से हो साहसिक, वज्र अंगी मनचले ।
सिंह सम तो सूरमे हो, वायुवत् बल वेग ले ।।
वीर धीर सुचतुर हो तुम, कभी काम से न टले ।
निराश ये सब हैं वानर, नेत्र तेरे के तले ।।३८।।
वीर वानरवर बली बहु, सर्व के सरदार हो ।
दिव्य दैवी वेग बल से, सिंधु तरनेहार हो ।।
निजू बल वैभव बताओ, उठो वीर! तयार हो ।
परिचयदोनिजगतिमतिका, रघुराज की कार हो ।।३९।।
शक्ति भक्ति सुरूप नरवर, आप ही अब जाइए ।
खोज लंका-द्वीप नगरी, भेद सब तो लाइए ।।
अपने बुद्धि-बल वेग का, चमत्कार दिखाइए ।
सीता का ले समाचार, लौट शीघ्र आइए ।।४०।।
* पाठ किष्किन्धा-काण्ड का, देता बल उत्साह ।
सन्धि सुमेल मिलाप के, भरता सुगुण अथाह ।।४१।।

---

* दोहा।

सुन्दरकाण्ड

पहला सर्ग

*सदा सफल सब कार्यकारी, बली वीर महा शक्तिधारी ।
मतिगतिवेगअतुलजनजाना, हनूमान् गुणवान् बखाना ।।१।।
सिद्धिसदन विधुवदन सुशूरा, कर्मकुशल ज्ञानीवर पूरा ।
जावे जहाँ सफलता पाये, बिगड़े काम तुरन्त बनाये ।।२।।
संकट नाशी विघ्नविनाशी, कामना कल्पतरु सुखराशी ।
राम भक्त संगी सुखदायक, सच्चा सुहृद् समर्थ सहायक ।।३।।
धर्मधुरीण धीर धरा-सा, निर्मल विद्वान् विद्या परा-सा ।
निर्भय सूरमा असुर विजेता, नीति निपुण नर जन गण नेता ।।४।।
पवनपूत पावन उपकारी, सिद्ध हस्त सब जग संचारी ।
महामना मुद मंगल दाता, प्रेम परायण का परित्राता ।।५।।
†ऐसा नरवर वीरतर, प्रेरित किया विशेष ।
जाम्बवान् ने उस समय, ज्यों हो काम अशेष ।।६।।
जाम्बवान् के सुन वचन, पवन-पुत्र अति शूर ।
सज्जित सर्व शरीर कर, बना वीर-रस-पूर ।।७।।
भाल लाल विशाल सहित, भानु सम दिव्य रूप ।
परम हर्ष को धार कर, उठा वह बल सु-रूप ।।८।।
बोला बहुत गम्भीर बन, होकर नम्र विशेष ।
तरता हूं भुज-शक्ति से, मैं यह सिन्धु अशेष ।।६।।

---

* चौपाई। † दोहा।

जाऊँगा निर्विघ्न मैं, सागर के उस पार ।
देव असुर जन लोक से, सकूं नहीं मैं हार ।।१०।।
रोक टोक को काट कर, सब बाधा कर बाध ।
लहरी लोलित लवण जल, लूँ मैं लांघ अगाध ।।११।।
पूर्ण, मम मन बुद्धि में, बसा ऐसा विश्वास ।
आऊँगा मैं लौट कर, जा सीता के पास ।।१२।।
मन में मोद मनाइए, तुम सब चिन्ता छोड़ ।
आता हूँ मैं सफल हो, असुर-गर्व को तोड़ ।।१३।।
ऐसा जन जग में नहीं, जो मुझ को ले रोक ।
मेरा मार्ग है खुला, दश दिश तीनों लोक ।।१४।।
वीरवर्य के सुन वचन, वीरोचित बहु वार ।
वानरवर तब वे बली, हर्षित हुए अपार ।।१५।।
देखा पर्वत शिखर सा, सब ने वह उस काल ।
तेजोमय रवि-बिम्ब सा, वज्रावयवी विशाल ।।१६।।
बोले वानर वीरवर, यह राघव के काज ।
तरने लगा है वारिधि, भुज से बलधर आज ।।१७।।
अंग सुसज्जित कर सभी, कूदा सिंह समान ।
जाता जल को चीरता, वह ज्यों हस्ति महान् ।।१८।।
वह जाता था वेग से, सीधा जैसे बाण ।
महा पोत जैसे बढ़े, नभ में ज्यों रवि-यान ।।१९।।
ग्रह चक्र सब मत्स्य गण, पाकर मृत्यु-त्रास ।
भगे भीरु भय-भीत हो, भूले भूख निवास ।।२०।।
देख वीर हनुमान की, अति भयकरी कुदान ।
महा मच्छ थे भागते, सर्व नाश ही मान ।।२१।।

काँप रही जलराशि थी, उठती लहर उत्ताल ।
होती जल की गर्जना, देती प्राण निकाल ।।२२।।
उस के भुज प्रहार से, जल छींटे नभ ओर ।
चढ़ते इन्द्र-धनुष ले, धार वेग अति घोर ।।२३।।
उन में सूर्य-बिम्ब आ, करता बहुत किलोल ।
लहरों में बहु रूप बन, होता डांवां डोल ।।२४।।
उस के पद-फटकार से, ताड़ित जल के संग ।
हत होते जल-हस्ति भी, लिये भंग निज अंग ।।२५।।
उस की छाती से छिला, जाता सागर-पाट ।
उसका तन हिम खण्ड सम, देता लहरें काट ।।२६।।
निर्मल नीले सलिल को, तरता वह बलवान् ।
ज्यों नभ नील विशाल को, लांघे महा विमान ।।२७।।
पर्वत हिरणयनाभ को, लांघ गया कर वेग ।
वायु-वेग वश ज्यों गिरी, लांघे भारा मेघ ।।२८।।
स्थल गिरि जल पार कर, परले पहुँच तीर ।
गया गिरी त्रिकूट पर, वह नर-वीर सुधीर ।।२९।।
*उस ने लंका पुरी, खड़े हो वहां निहारी ।
मण्डित कलश सुवर्ण, सहित उद्यान फुलवारी ।।
राज-मार्ग विभक्त, सर्व से शोभित भारी ।
नन्दन वन के तुल्य, अति रमणीया सारी ।।३०।।
कूप वापिका सहित, वाटिका वन उपवन भी ।
देखे उस ने पेड़, सहित फल छाया सुमन भी ।।

* रोला।

नाना विहग विचित्र, विचरते रमते जन भी ।
सैनिक वीर विशेष, बांके सुहर्षित मन भी ।।३१।।
कोट दुर्ग के सहित, रक्षित बहु सेना सेती ।
दीखी उसे विशाल, पुरी उल्लास हो लेती ।।
सुदृढ़ तोरण द्वार, सहित वह शोभा देती ।
सुरपुरी के सदृश, सजी शुचि सुन्दर ऐती ।।३२।।
उत्तर फाटक पास, गया वह धीर धृति धर ।
ऊँचा ज्यों कैलाश, देख कर उसको नरवर ।।
लगा सोचने यही, इस को लांघे कौन नर ।
दुर्गम है यह स्थान, पुरी में जाना दुष्कर ।।३३।।
सोच समझ कुछ काल, यही उस ने निर्धारा ।
असुर-रूप को धार, करूँ मैं कार्य भारा ।।
बदलूँ वानर-वेश, भरूँ मैं सुरूप न्यारा ।
सीता की कर खोज, बनूँ रघुपति का प्यारा ।।३४।।
{विषम समय हो देश, जन सब हों भी पराये ।
बुद्धिमान् जन धीर, तथापि नहीं घबराए ।।
दाव पेंच रच रूप, काम स्व सिद्ध बनाये ।
नीति-निपुण अति कुशल, चतुर वह सफल कहाये} ।।३५।।
{बनें रात में काम, जहां न होवे उजाला ।
चलते चाल विशेष, काल हो गड़बड़ वाला ।।
भीतर बाहर रहे, अन्धेरा जब निराला ।
करते अपने काम, चतुर चुप चल कर चाला} ।।३६।।
सूर्यास्त के समय, निशा जब दश दिश छाई ।
बुद्धिमान हनुमान्, कोट गढ़ लांघे खाई ।।

घुसे नगर के बीच, चाल चल कर चतुराई ।
फिरते बाटों बाट, दिये वे असुर दिखाई ।।३७।।
लुक छिप कर रच ढंग, करते अनुसन्धान थे ।
देखते ऊँचे घर, राज-घर जो महान् थे ।।
चित्रित चारु सुरूप, चमकते शशि समान थे ।
सज्जित रजत सुवर्ण, रत्नयुत सुर-विमान थे ।।३८।।
भव्य भवन बहु भान्ति, भूमि पर भूषित भाते ।
धवल पीत शुचि श्याम, आठ खन नभ को जाते ।।
खोजे सब एकैक, उसने दृष्टि टिकाते ।
उसको मिला न भेद, सिया का चक्कर खाते ।।३६।।
उसने देखे गृह, बज रहीं जहां सितारें ।
वीणा तंत्री नाद, करते जहाँ झंकारें ।।
ताल सुरों के साथ, माधुरी हिलती तारें ।
गाते गायक राग, झूलते शब्द उच्चारें ।।४०।।
घर स्वस्तिकाकार, निहारे उसने नाना ।
नारी जन का जहाँ, रहा हो आना जाना ।।
भूषण भूषा भव्य, विभूषित भासित बाना ।
वे थीं सह सिंगार, शोभतीं चाँद समाना ।।४१।।
देखे उसने असुर, खेल में मन बहलाते ।
खान-पान में मग्न, नर्तक मोद में गाते ।।
करते हास विलास, रसिक रस रास रचाते ।
जप स्वाध्याय रत, मंत्र सुसिद्ध बनाते ।।४२।।
उसने देखे लोग, काले कुरूप भंयकर ।
क्रोधी क्रूर कठोर, पर नारी धन-धान हर ।।

डेवड़ी पर अनेक, खड़े राजा के अनुचर ।
भाला खड्ग कटार, गदा दण्ड त्रिशूल धर ।।४३।।
देखता नाना जन, गया वह हलके पद से ।
बचता चलकर चाल, निकला जन के नद से ।।
राज-भवन में गया, भरा जो माया मद से ।
लगा खोजने वहां, बुद्धि बल नीति विशद से ।।४४।।
देखा राज निवास, उसने सुगिरी शिखर पर ।
जिसका था प्रकार, चारों ओर सुदृढ़तर ।।
वेष्टित खाई बीच, खिले थे जहां कमल वर ।
ऊँचा सज्जित भवन, दीखता शोभा-आकर ।।४५।।
सुन्दर रथ थे वहां, थे घोड़े हिन-हिनाते ।
हस्ति-शाला बीच, करी वर सूंड हिलाते ।।
शोभित सब गजराज, झूमते कान झुलाते ।
मणि मोतीमय साज, महा शोभा थे पाते ।।४६।।
उसी महल के मध्य, घुसा वह चुप चुपाता ।
धीरे धरता पैर, फिरा फिर नयन फिराता ।।
कोण कोटरी सभी, ध्यान दृष्टि में लाता ।
नारी गण पर अधिक, खोज के नयन जमाता ।।४७।।
उसने देखी वहां, रावण जिन्हें हर लाया ।
देश जाति गृह से, असुर ने जिन्हें भगाया ।।
दाव-पेंच रच स्वांग, शक्ति से जिन्हें उठाया ।
नारी-रत्न अनेक, हरीं उस रचकर माया ।।४८।।
खान-पान कर नाच, थकी थीं मोद मनाती ।
हास विलास विशेष, बीच रह रमती गाती ।।

निद्रा बीच वे सभी, पड़ी बेसुध सुख पाती ।
तज भूषण पहरान, सुप्त थीं मुद मद माती ।।४६।।
सब मुखड़ों पर नयन, फिराता अनुसन्धानी ।
मन में रख यह बात, कहीं हो राघव-राणी ।।
कृत्रिम कुसुमों से, हटे ज्यों षट्पद प्राणी ।
तथा हटाता आँख, सिया नहीं जान ज्ञानी ।।५०।।
फिरता वह तब गया, दिव्य वर एक स्थान में ।
जड़े हुए थे रत्न, विभूषित उस मकान में ।।
सुवर्ण चित्र अद्भुत, सजे थे शुचि दलान में ।
थीं माला बहु भांति, शोभित स्थान महान् में ।।५१।।
सजा सुवर्ण पलंग, सुन्दर मृदु बिछान से ।
मोती झालर साथ, बढ़िया देव-विमान से ।।
दीखा उस पर उसे, सुप्त नर आन बान से ।
समझा रावण वह, है लगता अनुमान से ।।५२।।
पास सेज पर पड़ी, लखी जो उसने नारी ।
रूप रंग की राशि, सौन्दर्य था तन धारी ।।
समझा कर अनुमान, सुबुद्धि अन्वेषणकारी ।
है पटराणी यही, शुभ मन्दोदरी सारी ।।५३।।
महिला मण्डल वहां, देख कर उसने ऐसे ।
सोचा निज मन बीच, जाऊँ बच पाप से कैसे ।।
नारियां देखना यों, सुप्त जो ऐसे वैसे ।
है निरा अनाचार, कर्म अधम कहा जैसे ।।५४।।
करते यही विचार, उस के चित्त में आया ।
पाप-बुद्धि से नहीं, लखी मैंने पर काया ।।

मुझ में नहीं कुभाव, देखते लेश समाया ।
मन में नहीं विकार, आया देख ये जाया ।।५५।।
स्त्रीगण को छोड़, खोजता और कहाँ जा ।
नारी जन अतिरिक्त, पता नहीं सकता मैं पा ।।
जैसी जो हो जिनस, खोजिए उस में ही आ ।
मनुजा हरिणों बीच, मिले नहीं बुद्धि बल ला ।।५६।।
साहस उत्साह धार, चला वह चक्कर देता ।
लगा देखने स्थान, विचक्षण भेद का वेत्ता ।।
गुप्त रमण के स्थान, देखता सुध बुध लेता ।
सीता-भेद न जान, हुआ उदास वह नेता ।।५७।।
हुआ चित्त में चूर, चिन्ता शोक से चंचल ।
दृढ़ चट्टान समान, रहा नहीं चतुर अविचल ।।
मरना किया विचार, उसने निज मन के स्थल ।
धिक्कृत जीना जान, जगत् में होकर निष्फल ।।५८।।
उस ने सोचा बहुत, चिता चिन आँच लगाऊँ ।
उस पर चढ़ कर आप, भस्म मैं देह बनाऊँ ।।
अथवा जल में कूद, पुनरपि बाहर न आऊँ ।
खान-पान सब त्याग, कहीं मैं पड़ मर जाऊँ ।।५९।।
मुनि तापस बन रहूँ, वनों में धूनि रमा कर ।
पुष्प पत्र जो मिले, गिरा पड़ा वही खाकर ।।
काटूँ जीवन काल, सीस पर जटा बढ़ा कर ।
पर मैं निरा निराश, मिलूँ न सुजन को जा कर ।।६०।।
ऐसे करता सोच, रहा कुछ काल खड़ा वह ।
बदल विचार तरंग, कर फिर मन को कड़ा वह ।।

उत्साह आशा साथ, कर के साहस बड़ा वह ।
सिया खोज के हेतु, काम में कूद पड़ा वह ।।६१।।
सर्व श्रेष्ठ है यह, तजिए नहीं पुरुषार्थ ।
अन्त समय तक आश, रखकर साधिए स्वार्थ ।।
जी जीवन पर खेल, करिए सिद्ध परमार्थ ।
है ही शक्ति उद्योग, जीवन सार यथार्थ ।।६२।।
होवे नहीं निराश, कष्ट अति काल कड़े से ।
आगे बढ़ता जाय, मनस्वी उत्साह बड़े से ।।
भगें भ्रम भय भूत, उद्यमी वीर खड़े से ।
चूहा बिल्ली न डरे, आलसी लिटे पड़े से ।।६३।।

दूसरा सर्ग

*बुद्धि, शक्ति सम्भाल कर, फिर वह हुआ तयार ।
कूद चढ़ा तब देख कर, पास एक प्रकार ।।१।।
दीखी उसको वाटिका, फूली फली अशोक ।
पथ पेड़ खिले पुष्प से, सुन्दर ज्यों सुर-लोक ।।२।।
उस में कूदा वीर वर, फिरने लगा विशेष ।
उछल फांद सब स्थान में, करता वह प्रवेश ।।३।।
कुसुम क्यारे उद्यान में, दीखे उसे अनेक ।
विमल नीर की वापिका, दीखी तो कुछ एक ।।४।।
अमल सलिल की चल रही, सर सर करती कूल ।
सर जल में दल कमल थे, खिले सुगन्धित फूल ।।५।।

* दोहा।

घनी वनी थी वहाँ पर, झूल रही बहु बेल ।
रंग बिरंगे विहग गण, सोते पक्ष को मेल ।।६।।
लता-मण्डप आसन शुचि, सुन्दर क्रीड़ा-स्थान ।
कुसुम कमल के कुंज थे, कदली भाग महान् ।।७।।
चन्दन चम्पा पेड़ भी, आम नीम तरु शाल ।
उस ने नाना भान्ति के, देखे वृक्ष विशाल ।।८।।
उस वन में बहती नदी, निर्मल जिसका नीर ।
देखी उस ने रात में, था शुचि जिसका तीर ।।६।।
नदी तीर पर घास थी, हरित मृदु सम रूप ।
सुन्दर शिला समान से, तट था बहुत अनूप ।।१०।।
हनुमान् वहां ठहर कर, लगा सोचने बात ।
सीता आवे कदाचित्, यहाँ पर पिछली रात ।।११।।
भ्रमण रमण वनवास में, करती पति के साथ ।
वन-विचरण में मन किये, सिमरन कर रघुनाथ ।।१२।।
उद्यान-गमन अभ्यासिनी, वह तो हुए सबेर ।
आवेगी अवश्य यहां, इसी स्थान इक बेर ।।१३।।
पति-वियोग में व्याकुला, विरह वेदना मान ।
दिल-दुःख रोने के लिए, आवेगी इस स्थान ।।१४।।
सम्भव है आना यहां, उसका प्रातःकाल ।
सन्ध्या करने के लिये, ध्याने देव दयाल ।।१५।।
स्वच्छ जल शुभ नदी पर, नित्य कर्म मन ठान ।
सर्व सुन्दरी आ सिया, सिमरेगी भगवान् ।।१६।।
राज-राणी अनुकूल हैं, शुचि सुन्दर यह बाग ।
जीती है तो आयेगी, वह कर जल वन-राग ।।१७।।

पेड़ पत्र में रह छुपा, वहीं पर वह अवाक् ।
इधर उधर सब ओर ही, रहा लगाये ताक ।।१८।।
अन्धकार में मग्न जन, चाहें ज्यों आलोक ।
आतुर औषध को यथा, अन्न, क्षुधा में लोक ।।१६।।
चन्द्रोदय चाहे हुआ, चंचल यथा चकोर ।
सिया-दर्शन को वह तब, व्याकुल था उस ठौर ।।२०।।
रात शेष है समझ कर, करने को फिर खोज ।
चला चतुर वह घूमता, भीतर भर नव ओज ।।२१।।
गोल गृह दीखा उसे, श्वेत यथा कैलाश ।
मणि-मण्डित सोपानयुत, लांघ रहा आकाश ।।२२।।
सहस्त्र स्तम्भ थे सुदृढ़, उस में शोभावान् ।
सुखासन सुन्दर थे शुचि, नाना वेदी-स्थान ।।२३।।
घर के आँगन बीच तब, उसने नयन पसार ।
देखी देवी दुर्बला, अति क्षीण निराहार ।।२४।।
दूज-चांद सम निर्बला, सहित सहज निज जोत ।
धूम-घिरी ज्यों आग हो, शरद्-सरित् का सोत ।।२५।।
पुष्प-हीन ज्यों कमलिनी, तरु ज्यों पत्र-विहीन ।
वेश विभूषा रहित थी, त्यों वह दुखिया दीन ।।२६।।
वस्त्र पीले जीर्ण से, ढांक रही थी अंग ।
दुबली थी उपवास से, विषम विरह के संग ।।२७।।
सजल नयन नीचे किये, अन्तर्मुख कर ध्यान ।
लेती लम्बे सांस थी, ताडित नाग समान ।।२८।।
गौरी गुण गरिमा भरी, मूर्तिवत् कर मौन ।
बैठी थी मुख मूँद कर, जग-जीवन गिन गौण ।।२६।।

जिस ने दु:ख देखा नहीं, कभी भी कष्ट क्लेश ।
बहुत विवश वह वेदना, पा थी रही विशेष ।।३०।।
चहुँ ओर से घिर रही, असुरी-दल से दीन ।
कुत्तियों से जैसे मृगी, यथा जाल से मीन ।।३१।।
दु:ख-दशा में देखकर, उस को यों हनुमान् ।
सम्भव है हो यह सिया, करने लगा अनुमान ।।३२।।
बार बार की सोच से, चिन्ह सर्व पहचान ।
निश्चय सीता है यही, गया तभी वह जान ।।३३।।
*हनुमत् ने जब सीता जानी, उस की तब काया कंपानी ।
आँखों से बरसा वह पानी, बोला मुँह में मध्यमा वानी ।।३४।।
कष्ट क्लेश कटुतर ऐसे, कोमल-काया सहती कैसे ।
क्यों कर कड़ुवा काल बिताती, जीवित क्यों है दृष्टि आती ।।३५।।
शत शत संकट सह करके ही, फिर भी जीवित है वैदेही ।
वज्रमयी है इसकी छाती, विपद् विद्युत् से जो न फट पाती ।।३६।।
पुत्र-वधू दशरथ की जेठी, सहे ताडना देखे हेठी ।
राघव राज की पत्नी प्यारी, घिर बन्धन में हो दुखियारी ।।३७।।
सुवर्ण घर में बसने हारी, धूल पै बैठे यों वह नारी ।
सुगढ़ सुन्दर दासियों वाली, उसे घेरें असुरियां काली ।।३८।।
कुबड़ी विकला अधिक कुरूपा, दीर्घ दन्त नखा कुविरूपा ।
चिपटी चौड़ी नाक चढ़ातीं, कर्कशकेशा कर फटकातीं ।।३६।।
मुखरी भय करी भद्दी ये ही, घेर रहीं इसको बल से ही ।
कर में लेकर खड्ग कटारी, हा हा हन हन कहें हत्यारी ।।४०।।

---
* चौपाई।

बोलती वचन विषम विषैले, बहुत बुरे वेधक बहु मैले ।
लप लप करतीं जीभ निकाले, मोटे होंठ परुष ले काले ।।४१।।
हनुमती लम्बोदरी बाला, फिरतीं ऊँठ यथा मतवाला ।
राघव-भार्या आर्या राणी, इन में घिरी ज्यों जाल में प्राणी ।।४२।।
देखूं सर्व यहां जो बीते, {करें यत्न जब जन हों जीते} ।
पत्रित तरु पर मैं चढ़ जाऊँ, तरु शाखा में देह छिपाऊँ ।।४३।।
लुक छिप कर निज कार्य साधूं, सफल बनूँ राघव-आराधूं ।
शिंशप पर चढ़ कर तब सो ही, पत्र शाखा में गुप्ततर हो ही ।।४४।।
देख रहा था ताक लगाए, ओर सभी को नयन फिराए ।
देखा तब हनुमान् ने आता, मत्त हस्ति सम नर मदमाता ।।४५।।
मणि मोती युत भूषण धारे, केश वेश विशेष संवारे ।
आता नारी गण का साथी, हथिनी दल युत जैसे हाथी ।।४६।।
लक्षण चिन्ह से उसने जाना, है रावण मन में यह माना ।
दबक सिमट कर लिपटा त्यों ही, तरु शाख से वल्ली ज्यों ही ।।४७।।
अवलोकन कर रावण आया, कांप गई सीता की काया ।
पीपल-पत्र पवन से जैसे, कांपी वह उस से तब ऐसे ।।४८।।
मन रथ पर बैठी भय खाती, भर्ता ओर थी दौड़ी जाती ।
विचार-विद्युत्-वेग बढ़ाती, थी पति को वृत्त पैठाती ।।४६।।
पति की चरण-शरण में लीना, तन मन से थी दुखिया दीना ।
अवयव कछुएवत् सकुचाती, चित्त में पति नाम को ध्याती ।।५०।।
मधुर वचन से लगा लुभाने, उसे असुर निज भाव बताने ।
बोला वह, तू क्यों घबराई, तुझ पर है भयता क्यों छाई ।।५१।।
चाहता हूँ तुझे सुख देना, मैं दुखड़े तेरे हर लेना ।
मुझ से भय करो न कोई, मानो कहना सुन्दरि! सोई ।।५२।।

प्रीति करो मुझ पर तुम ऐसी, करे प्रिया प्रिय पर जैसी ।
क्यों तू यों भूपर है सोती, रख उपवास देह-बल खोती ।।५३।।
प्रेमपरा मेरी बन जाओ, कुसुम सेज पर सो सुख पाओ ।
अश्व हस्ति की करो सवारी, राग रंग सुनो सभी प्यारी ।।५४।।
मानिए कथन करो न देरी, मुझको कहो प्रिय, इक बेरी ।
सुख सम्पत् सब कुछ जो मेरी, उस पल से होगी वह तेरी ।।५५।।
यौवन, जीवन जाते बीते, सुख का समय तू खो न सीते ! ।
फिर लौट कर दिन नहीं आते, सुख के जो हैं छिजते जाते ।।५६।।
करो हार सिंगार सुहाने, भोगो भोग सर्व मनमाने ।
हास रमण से मन बहलाओ, मानव तन को सफल बनाओ ।।५७।।
तजिए राघव वल्कलधारी, वनवासी तापस भिखारी ।
उस मुझ में है अन्तर ऐता, रंक राव में होता जेता ।।५८।।
यहां रामचन्द्र का आना, मुझ से लड़ कर तुझको पाना ।
है असम्भव यह तथा ही, शशक-श्रृंग नभ-पुष्प यथा ही ।।५६।।
है शंकित उसका तो जीना, यदि जीवित हो भी बलहीना ।
तो भी अकिंचित् कर कहावे, यहां नहीं पद-चर आ जावे ।।६०।।
इस लिए कर रमण रमणीये!, भोगो भोग यथेष्ट प्रिये! ।
स्वजन स्नेही जो हैं, तेरे, वे भी पावें धन बहुतेरे ।।६१।।
मेरे नौकर चाकर जो भी, दासी-गण जितना है सो भी ।
राणी गण मेरा भी सारा, सीते! होगा सर्व तुम्हारा ।।६२।।
आज्ञा तेरी सदा चलेगी, वाणी तेरी नहीं टलेगी ।
मानेंगे सब जन तुझको ही, होगी तू प्रिया मुझको ही ।।६३।।

तीसरा सर्ग

*रावण के सुन वचन सब, सीता कर आवेश ।
बोली तब रोती हुई, पाती पीड़ा क्लेश ।।१।।
अपने घर से प्रेम कर, मुझ से तू मुख मोड़ ।
प्रीति लगा निज पत्नी से, पाप पतन पन छोड़ ।।२।।
पापी सिद्धि न पा सके, ऐसे मुझ को आज ।
तू तो पा सकता नहीं, तज दे कुत्सित काज ।।३।।
सु-कुल वंश की पुत्री को, है निन्दित यह काम ।
प्रेमभाव पर पुरुष से, कहा नरक का धाम ।।४।।
मैं इस कु-कर्म घोर में, पडूँ नहीं त्रिकाल ।
फिर मुझे ऐसा न कहो, जीभ वचन सम्भाल ।।५।।
पति-व्रता मैं हूँ सती, तू मुझ से मुख फेर ।
कम्पित हो अति पाप से, सोच धर्म इक बेर ।।६।।
निजू नारियों की यथा, तू रखता है आन ।
लाज धर्म पर-पत्नी के, ऐसे ही तू मान ।।७।।
क्या सन्त यहां हैं नहीं, सज्जन गुणी अपाप! ।
वा तुझ को रुचते नहीं, उनके कथन कलाप! ।।८।।
यदि सज्जन होते यहां, धर्म कर्म-रत लोग ।
तो तुझ में होता नहीं, व्यभिचार का रोग ।।६।।
सुन उनके उपदेश शुभ, पालन कर आचार ।
तजता सर्व कुकर्म तू, मानस नीच विकार ।।१०।।

* दोहा।

तज कर संगति संत की, तज सब सद् उपदेश ।
असुर नाश पर है तुला, पापी अधम नरेश! ।।११।।
कथन न्याय हित धर्म के, नहीं सुने जो भूप ।
सर्वनाश पावे सही, वही समृद्ध रूप ।।१२।।
इस कारण लंका पुरी, धन सम्पत् भरपूर ।
रत्नजड़ित हीरक मढ़ी, होगी चकनाचूर ।।१३।।
तेरे इस अपराध से, धन जन गण का नाश ।
होगा अवश्य समझ ले, तज दे मेरी आश ।।१४।।
तेरी धन सुख सम्पदा, निश्चय से तू जान ।
मेरे लिए तो है सब, हलाहल विष समान ।।१५।।
नर-वर रामचन्द्र की, अनन्य भार्या एक ।
रवि-प्रभा सम संगिनी, समझ मुझे सविवेक ।।१६।।
लोक-नाथ रघुनाथ की, करके भुज उपधान ।
मुझे नींद में भी कभी, अपर का न हो भान ।।१७।।
रामचन्द्र विद्वान की, पत्नी योग्य विनीत ।
हो कर करूँ न भूल से, कर्म धर्म-विपरीत ।।१८।।
स्वप्न में न मेरा मन, सोचे पर का संग ।
टूक-टूक चाहे करे, कोई मेरे अंग ।।१६।।
रामचन्द्र से मैत्री, कर ले तज हठ बान ।
शरणागत-वत्सल बड़े, हैं बहुत दयावान् ।।२०।।
रामचन्द्र धर्मज्ञ हैं, तेज शक्ति बलखान ।
क्षमा करा अपराध निज, करके आदर मान ।।२१।।
मुझे सौंप कर प्रभु को, रक्षित कर स्वप्राण ।
क्षमाशील वे देव हैं, धर्म रूप भगवान् ।।२२।।

एक मात्र उपाय यह, है तेरे अनुकूल ।
नहीं तो होगा तू हत, सहित जाति कुल मूल ।।२३।।
जब तक राघव-वाण की, हो न विषम बौछाड़ ।
तब तक प्राण बचाव का, मार्ग ले तू ताड़ ।।२४।।
रघुपति लक्ष्मण वीर के, जब बरसेंगे बाण ।
कोई न त्रयलोक में, होगा तेरी त्राण ।।२५।।
*सीता ने कह कथन करारे, कर्ण-कटु देह-वेधन हारे ।
रावण को ऐसा भड़काया, उसका मानस-वेग भुलाया ।।२६।।
सीता-कथन उष्ण सुन भारा, चढ़ा उसे कोप का पारा ।
भृकुटी तान नयन तिरेरे, जीभ अधर पर फिर फिर फेरे ।।२७।।
बोला वह उसको भय देने, तीक्ष्ण वचन वाणवत् पैने ।
वध के योग्य है तू नारी, अधिक हठीली बहुत करारी ।।२८।।
मन में आता है इक बारी, काटूँ काया तेरी सारी ।
पर अवधि दो मास की जो ही, दी थी है अब बाधक सो ही ।।२९।।
उस तक तू यदि कहना माने, मुझको अपना पति कर जाने ।
तो पावेगी सुख से जीना, नहीं तो समझ री मतिहीना ।।३०।।
अवधि अनन्तर पाचक मेरे, टुकड़े टुकड़े कर के तेरे ।
भून पका कर उन्हें सबेरा, प्रातराश लायेंगे मेरा ।।३१।।
वाक्य-वज्र से जनक-जाई, मेरु शिखर तुल्य न कम्पाई ।
धर्मधुरी धैर्य को धारे, बोली फिर भी वचन करारे ।।३२।।
निश्चय यहां न जन शुभचारी, है जनपद का कल्याणकारी ।
तुझे निन्दित कर्म से रोके, ऐसे वचनों को जो टोके ।।३३।।

* चौपाई।

तुझ-सा अपर नहीं है पापी, जिसमें कुमति तथा हो व्यापी ।
राघव-भार्या को तू चाहे, अपनी मृत्यु आप बुलाये ।।३४।।
नयन बुरे मुझ मुख पर लाते, क्यों तव कोय नहीं गिर जाते ।
दशरथ सुत-वधू को सताते, प्राण तेरे क्यों न मिट पाते ।।३५।।
वध-वचन जो तूने उच्चारे, मेरे लिये भयंकर भारे ।
कहे वीरता क्यों तू कोरी, जब लाया मुझको कर चोरी ।।३६।।
सिया वचन सुनकर वह खीजा, पसीने से तस तन पसीजा ।
कोपाकुल कर भुजा हिलाता, दान्त पीसता होंठ चबाता ।।३७।।
असुरी गण को वह यह बोला, इसका तन मन करिए पोला ।
डांट डपट कर भीत बनाओ, ज्यों त्यों कर इसको समझाओ ।।३८।।
उलटे सीधे साधन से ही, सीधी करो अब तुम इसे ही ।
मेरे वश में हो यह ज्यों ही, करिए सब उपाय भी त्यों ही ।।३६।।
यह आज्ञा देकर वह क्रोधी, गर्जा बहुत नय-धर्म-विरोधी ।
स्त्री उस समय मालिनी आई, मिली उसको देती बड़ाई ।।४०।।
बोली असुर को वह सजीली, तजिए कृशा विरहिन पीली ।
इच्छारहित को बहुत मनाना, तेज ओज है बल गंवाना ।।४१।।
ऐसे वचनों से बहलाती, ले गई उसे वह हंसाती ।
राजभवन रवि सम चमकीला, उसमें भूप गया हो ढीला ।।४२।।
पीठ असुर ने ज्यों ही फेरी, सिया असुरियों ने आ घेरी ।
कटु कथन करती कल्पार्ती, क्रोधभरी थीं लपकी आर्ती ।।४३।।
भूप की भार्या बन अभागे, कौन कर्म हैं तेरे जागे ।
जो तू राजा के मन भाई, समझ सर्व यह पुण्य-कमाई ।।४४।।
जिस जन ने था शक्र भगाया, जिस ने देव-गण को हराया ।
जग जन नेता जो कहलाया, अब तू उसकी बन जा जाया ।।४५।।

जिस ने वश किये पवन पानी, जिसकी महिमा सबने मानी ।
उस से करो न आना कानी, मूढ़े! बन अब उस की रानी ।।४६।।
बातें कही हैं हित-करी जो, दुःखहरी सुखभरी खरी जो ।
यह कहना जो तू न करेगी, बिना आई अवश्य मरेगी ।।४७।।
तज राघव को जो है योगी, धन जन हीन वन दुःख-भोगी ।
निर्वासित मृगछाला धारे, फिरता वन वन मारे मारे ।।४८।।
त्याग करो उसकी अब आशा, मान हर्ष तज सर्व निराशा ।
असुर-पति की हो रहो री, क्यों वृथा ही कष्ट सहो री ।।४६।।
भूप-सा पति पुण्य से पाना, तुझ को प्राप्त हुआ अज्ञाना ।
उस के अन्तःपुर में जाओ, मनचाहे सब ही सुख पाओ ।।५०।।

चौथा सर्ग

*असुरी जन के सुन वचन, सीता भर कर नैन ।
पतिव्रत में रत सती, उनको बोली बैन ।।१।।
तुम सब मिल कर तो मुझे, कहती हो वह बात ।
अधम कर्म जो पाप है, सती-धर्म की घात ।।२।।
आर्य पुत्री तो न कभी, करे असुर का संग ।
जाय जीवन जड़ मूल से, बनें अंग भी भंग ।।३।।
आर्या नारी पतिरता, जाय नहीं पर-पास ।
स्वप्न में भी भूल कर, सहे न होना दास ।।४।।
रामचन्द्र जी है पति, मेरा प्राणाधार ।
उसकी हूँ अनुगामिनी, मैं विधि के अनुसार ।।५।।

* दोहा।

वन-वासी होवे भले, सुख सम्पत् से हीन ।
धन राज्य से हीन हो, चाहे होवे दीन ।।६।।
मैं उसकी हूँ सहचरी, है वह मेरा नाथ ।
रवि की यथा सुवर्चला, शची शक्र के साथ ।।७।।
ज्यों रोहिणी चन्द्र को, अरुन्धती शुभ भाग ।
चाहे सदा वशिष्ठ को, लिये गाढ़ अनुराग ।।८।।
ऐसा मेरा प्रेम है, पति-चरण में अटूट ।
लोपामुद्रा अगस्त्य से, करती यथा अखूट ।।६।।
यथा सुकन्या च्यवन से, करती प्रेम अपार ।
सावित्री सत्यवान् से, पालती परम प्यार ।।१०।।
त्यों मम प्रीति अनन्य है, राघव में इक तार ।
रात दिवस सब काल में, वच तन सहित विचार ।।११।।
यथा श्रीमती कपिल की, प्रेम पगी थी एक ।
अनन्य प्रेम से रघुपति, त्यों है मेरी टेक ।।१२।।
मदयन्ती सौदास से, जैसा करती नेह ।
त्यों अखण्ड रघुराज से, है मेरा अति स्नेह ।।१३।।
यथा केशिनी सगर की, कही पत्नी शुभरूप ।
राघव मेरे हैं तथा, प्रिय प्राण-स्वरूप ।।१४।।
दमयन्ती नल अनुरता, यथा हुई उपमान ।
त्यों राघव अनुरागिणी, लो तुम मुझको जान ।।१५।।
*सिया के सुन वचन ऐसे, असुरियां क्रुद्धा बड़ीं ।
छुरी कटारी ले सब तब, झुँझलाती हो खड़ीं ।।

* गीतिका।

कह वाक्य कठोर कड़वे, चल कलेजे की कड़ीं ।
दान्त होंठ चाटती हुई, कूद सीता पर पड़ीं ।।१६।।
अब इसको मारो काटो, बात जो माने नहीं ।
भून कर खाओ इसे यदि, भूप-पति जाने नहीं ।।
उधेड़ दो अभी चर्म इसका, सुख इसे पाने नहीं ।
चाहे जीना री यदि तू, कर यों बहाने नहीं ।।१७।।
टेढ़े उलटे सब उपाय, वे सभी करने लगीं ।
त्रास मार से भी उस के, प्राण को हरने लगीं ।।
जीभ होठों पर फिरातीं, झाग तो झरने लगीं ।
क्षुधा पीड़ित यथा गधियां, घास हों चरने लगीं ।।१८।।
कड़ी ताड़ना अति तर्जन, लगी करने भयकरी ।
मुंह उठा आती फिर फिर, ज्यों शूकरी वनचरी ।।
दान्त जीभ लात दिखाती, यथा हो बिगड़ी खरी ।
थीं सीता जो भी किंचित्, व्रत धर्म से न टरी ।।१६।।
अति तपाई असुरियों से, सीता तड़पड़ा उठी ।
उनके अत्याचार से वह, तब तो फड़फड़ा उठी ।।
कहती राघव हा! लक्ष्मण, मुख से बड़बड़ा उठी ।
विरह-वेदना बन बिजली, उस में तड़तड़ा उठी ।।२०।।
असुरियों के कर्म कटु को, देख बोली त्रिजटा ।
दो तज री इसे सताना, कहो कुछ न जला कटा ।।
मैंने देखा है सपना, अशुभ सूचक जो घटा ।
नाश लंका असुर जन का, पुण्य पड़दा है फटा ।।२१।।
सहस्र अश्व जुड़े दीखे, मुझे एक विमान में ।
श्वेत वस्त्र माला धारे, रघुपति उसी यान में ।।

लखन उन के साथ दीखा, पूरी आन बान में ।
सीता मिलती रघुपति से, दीखी उसी स्थान में ।।२२।।
पुनः देखा एक हाथी, जो पर्वताकार था ।
दान्त चार थे तो उसके, सहित सब सिंगार था ।।
श्वेत माला वस्त्र पहरे, सानुज जो सवार था ।
भानु सम वह रामचन्द्र, लिए तेज अपार था ।।२३।।
आये सिया पास रघुपति, साथ भाई को लिए ।
दौड़ कर जा मिली सीता, लगी पतिवर के हिये ।।
चढ़े हस्ति पर वे तीनों, दिखाई पुर पर दिये ।
देखे पुनरपि रथारूढ़, पुरी को वश में किये ।।२४।।
विमान पुष्पक पर बैठे, दिशा उत्तर को गये ।
देखे मैंने वे तीनों, वस्त्र पहरे सब नये ।।
हर्ष से भरपूर थे तब, शान्त शोभित सुखमये ।
सर्व सुन्दर लगी सीता, दुःख जिस ने थे सहे ।।२५।।
देखा रावण को मैंने, मुंह सिर मुँडा हुआ ।
लाल कपड़े किये धारण, पीने में था जुड़ा हुआ ।।
तेल पीता नाचता था, भ्रान्त चित्त कुढ़ा हुआ ।
दक्षिण दिशा को चढ़ खर पर, था जाता उड़ा हुआ ।।२६।।
नग्न, बहुत कुवचन कहता, मत्त तो वह था बड़ा ।
गधे ऊपर से गिर कर, भूमि पर वह जा पड़ा ।।
जिस सर में काला कीचड़, था दुर्गन्धित अति सड़ा ।
उसी में तब असुर राजा, कूद करके जा गड़ा ।।२७।।
देखी ऐसी ही मैंने, दशा कुल परिवार की ।
असुर के सब बन्धु सुत की, सचिव जन घरबार की ।।

थे सब कीचड़ में लत पत, यथा होवें नारकी ।
असुर सुरा मग्न हुए तज, चिन्ता धर्माचार की ।।२८।।
पुरी लंका बनी चूर्ण, डूब सागर में गई ।
उसकी वहां रूप रेखा, पीछे कुछ भी न रही ।।
स्वप्न ऐसा देख तभी, मुझे सूझी यह नई ।
नाश होगा असुर-पुर का, राघव हस्त से सही ।।२९।।
इस लिए तुम तजो तर्जन, और करनी ताड़ना ।
रघुराज की पत्नी को यों, उचित न लगे झाड़ना ।।
हमें चाहिये दें धैर्य, इसे शान्ति उभाड़ना ।
नहीं तो रघुराज को पुर, होगा ही उखाड़ना ।।३०।।
सती सुन्दर शुचि सुशीला, सरला सच्ची है भली ।
पति-व्रत से राई भर, यह है जो नहीं टली ।।
लोभ-लालच में फंसी न, धर्म धृति से न चली ।
अचल-चूल सम है अविचल, चित्त, चतुरा का बली ।।३१।।
सर्व साधन से सभी तुम, अब इसे सुखिया करो ।
न सताओ दो आदर, रामचन्द्र से डरो ।।
इसे पूजा नमस्कार से, अच्छे वर फिर तो वरो ।
व्यर्थ बाधा भय दे कर, कुभार भीतर न भरो ।।३२।।
कमल तुल्य विशाल इसका, नयन फरका वाम है ।
इसकी फरकती वाम भुज, सिद्धि-सूचक काम है ।।
फरक रही बाईं जंघा, बहुत रहित विराम है ।
ऐसे लक्षण चिन्ह का ही, शकुन शुभतर नाम है ।।३३।।
घोंसले में रह वह पक्षी, सुर मृदु है बोलता ।
यहां आंगन वाटिका में, मधुरता है घोलता ।।

इसी से है अनुमान तो, भेद भावी खोलता ।
भला भविष्य भगवती का, पास ही है डोलता ।।३४।।
त्रिजटा के कथन से कुछ, असुरियाँ सकुचा गईं ।
रात भर जगते हुए भी, अधिक कर उकता गईं ।।
तन्द्रा-वश आँखें उनकी, गाढ़ झपकी खा गईं ।
मद्य-मत्ता मूर्छिता मन, नींद वश में आ गईं ।।३५।।
खड़ी सीता उस समय थी, शिंशपा तरु के तले ।
नयन उसके बह रहे थे, प्राण जाते थे चले ।।
चिता चिन्ता पर चढ़े सब, अंग जाते थे जले ।
पकड़शाखअशोक कुसुमित, भाव कहती थी भले ।।३६।।

पांचवाँ सर्ग

*{अहो पतिवर! बली देवर!, कहाँ तुम आज हो मेरे ।
पड़ी हूं पर कुपिंजर में, विकट हैं अति बुरे घेरे ।।
तर्जन त्रास ताड़ना है, तपी जाती उत्तापों से ।
पराये पुरुष के पंजे, पड़ी पुराने पापों से ।।१।।
कहूं किसको कहानी मैं, करुण क्रन्दन करूँ किस पै ।
कलेजा कांप जावेगा, कर्ण कर क्रूर का इस पै ।।
सताती असुरियां मुझको, छुरी तीखी कटारी ले ।
खड्ग खंजर दिखातीं हैं, बड़े हथियार भारी ले ।।२।।
असुरी मिली चबाने को, चली दुष्टा वे आती हैं ।
दहलाती दुःख देती हैं, दशन दलने दिखाती हैं ।।

* विधाता।

निश दिन चैन नहीं मिलता, नयनों नींद नहीं होती ।
निरन्तर हनन काटन सुन, सिर धुन रहती हूं रोती ।।३।।
बरसती कु-वचन विष वर्षा, बदन बादल विषैलों से ।
विषम बहुते बुरे वर्णन, बनते मुखड़ों मैलों से ।।
पर-वशा पापिनी पतिता, परायण अपर पुरुषों से ।
मुझे वे पाप में प्रेरित, करें अपलाप परुषों से ।।४।।
कुटिल कटु कपट से कुटनी, मुझे ले कूट टोले में ।
चल चालें कुचिन्ह चाहें, लगें मम चरित चोले में ।।
वध के वचन जो बोले, असुर ने बिगड़ इस बारी ।
बनें न बातें अब उसकी, विपद् बाधा बड़ी भारी ।।५।।
यदि नहीं आप आ सकते, यहाँ, प्रभु! दो मासों में ।
मरुंगी तो पते! तेरा, सिमरती नाम सांसों में ।।
समझो निश्चय से यह तो, सती का सत्य पालूंगी ।
गले को फांस डालूंगी, अथवा विष को खा लूंगी ।।६।।
शरणागत बनी रहूं मैं, जगत् सब तीन कालों में ।
हनन हो जाय चाहे तन, पिरोया जाय भालों में ।।
पुत्री शुभ वंश उत्तम की, मरूँ पति-नाम को जपती ।
कुल को लगे नहीं कालिख, जलूं चाहे आग पर तपती ।।७।।
रहे दोनों जगत् में तो, मुझे तेरा सहारा ही ।
यही है कामना मेरी, भले हो कष्ट भारा ही ।।
न टूटे यह कभी जोड़ी, मिले रहें भानु-ज्योति से ।
गुणी गुण, वचनों अर्थों वत्, हम हों अखण्ड मोती से ।।८।।
चित्त के चारु चन्द्र हे, चक्षु के चमकते तारे ।
दिल के दिल मृदुल मेरे, प्राण के प्राण अति प्यारे ।।

देह के दीपते दीवे, दिव्य दैवी द्युति धारे ।
जगत् में मीत तुम मेरे, मिलो रघुराज रखवारे ।।६।।
कभी तो दिन फिरेंगे शुभ, घड़ी आ पुण्य की मुझको ।
छुड़ा पिशाच अधम नर से, मिला देगी पते ! तुझको ।।
मधुर मुख निरख कर मैं तो, गले में डाल कर बाहें ।
अश्रु से सींच वर छाती, भरूँगी फिर बड़ी आहें ।।१०।।
विरह की हिचकियां लेती, रह रह रुकती रो रो कर ।
करूंगी देह दिल शीतल, पति का मुखड़ा धो धो कर ।।
विरह की शमन कर ज्वाला, झुकूंगी चारु चरणों पर ।
समर्पण सर्व कर दूंगी, नाथ की शान्त शरणों पर} ।।११।।
{अरे पंछी उड़ोगे कब, हुआ जाता सबेरा है ।
असुर के जाल जादू ने, तुम्हें क्या आज घेरा है ।।१२।।
सजग हो सुर सुरीले से, सहित सब सरस सम्बोधन ।
मिलो साजन सजी सजनी, हिलो जा रहा अन्धेरा है ।।१३।।
समुद्र पार कर जाईयो, गिरी वन लांघते आगे ।
उतरना सहज से तुम ने, जहां प्रिय का डेरा है ।।१४।।
चुगियो प्रचुर तुम चोगा, चपल चंचल चला चूंचें ।
बहुत चूं चीं मचाना मत, समझ राघव बसेरा है ।।१५।।
पूरी तृप्ति पाकर फिर, परस्पर प्रेम से मिलते ।
इधर संकेत कर कहना, बना जो हाल मेरा है ।।१६।।
उड़उड़कर यह दिशा दक्षिण, दिखाना देव मेरे को ।
शकुन शकुनी शुभे! सूचन, करना फेरा तेरा है} ।।१७।।
{अजी तारो निहारो तो, कहां राघव सुहाते हैं ।
सुचारु चन्द्र सम चमकें, चक्षु चित्त को लुभाते हैं ।।१८।।

चमा-चम चमकते फिरना, चपलावत् चालें चंचल चल ।
चले जाना वहां छुपते, जहां वे दिन बिताते हैं ।।१६।।
पड़ना टूट दिशा इस को, कर संकेत मेरी ओर ।
बताना टूटता दिल है, असुर आ जब सताते हैं} ।।२०।।
{शशि शोभित शुचि शीतल, रश्मि शुभ शान्त से जाना ।
निरखना ओट कर बादल, चमकता बदल कर बाना ।।२१।।
अपने आप से प्रियतम, अतिशय सौम्य सुन्दर जो ।
निरख रघुराजमुखमण्डल, सुधा रस-स्वाद को पाना ।।२२।।
कलाधर में कला लय कर, विरह का चिन्ह दिल में जो ।
उसे अंकित किए निज में, यहां फिर लौट कर आना} ।।२३।।
{उषा दौड़ी चली जाओ, अली! लीला ललित वाली ।
लखियो फैल, उस नभ में, मथा जिसने बली बाली ।।२४।।
गुलाबी वेश कर रचना, सरसतर रास उस वन में ।
कर उज्ज्वल शिखर गुहा को, निशा कर नाश भी काली ।।२५।।
सिमटकर घुस गुफा उसमें, कर पहचान चिन्ह इन से ।
पड़े होंगे पड़े पीले, शरत् में पत्र ज्यों डाली ।।२६।।
सुनहली लालिमा लाना, कमल दल नयनपलकों पर ।
जगेंगे जाप करने को, सच्चे शुचि शील शुभशाली ।।२७।।
लखियो ध्यान-मुद्रा में, मग्न उस महा मुनिवर को ।
मधुर विधु-वदन अति फीका, अरसता तन की निराली ।।२८।।
धुले कोमल कपोलों पर, अड़ी! गुलाल हलका-सा ।
लपक कर छिड़क तो देना, रहे न पीलापन खाली} ।।२६।।
{सुगन्धित मन्द शीतलशुभ, पवन! यह मानियो कहना ।
बिजली वेग बड़ा बन कर, उत्तर ओर अभी बहना ।।३०।।

लिटे होंगे गुफा में वे, उष्णतर सांस अति लेते ।
स्वप्न-सुलाप कर इस से, सहते असह्य सब सहना ।।३१।।
विरह से तप रहे तन को, हलके ठण्डे झोकों से ।
सरसता ओज जीवन दे, हित से हिलते ही रहना ।।३२।।
विजय की वायु आवेगी, विघ्न बाधा बड़ी वध कर ।
बताते उस समय उन का, हिलाना नयन भी दहिना} ।।३३।।
बिलखती देख सीता यों, बहुत व्याकुल हुआ वानर ।
कहा उस ने तभी मन में, अद्‌भुत यह तो नारी है ।।३४।।
सुन कर वध की वाणी को, हिली न यह तो कुछ भी तब ।
सती सच्ची सुपथ सत्य का, सर्व स्वरूप सारी है ।।३५।।
धर्म से गिर नहीं पाई, वचन वाणों से विन्ध कर भी ।
बड़े दिल मन कलेजे की, अनुपमा यह निहारी है ।।३६।।
विधि से परिचय मैं दे कर, मिलूं इस से अभी तो ही ।
सिद्ध कार्य करे अपना, कुशल वह कर्मचारी है ।।३७।।

छठा सर्ग

*छिपा हुआ हनुमान, उसी शीशम तरु पर तब ।
बोला बहुत बखान, राघव जी के वंश को ।।१।।
दशरथ राजा एक, धर्म धृति की था धुरा ।
कर यज्ञ दान अनेक, पुजा जगत् में वह बहुत ।।२।।
शूर वीर नर धीर, शत्रु-दमन में अति निपुण ।
उसका सुत गम्भीर, रामचन्द्र विख्यात है ।।३।।

* सोरठा।

पितृ-वचन को मान, लक्ष्मण सीता सहित वे ।
वन में, कर प्रस्थान, आये ले वनवास को ।।४।।
ऋषि मुनि साधु सन्त, पालन करते वे रहे ।
अनेक वर्ष पर्यन्त, उसने तप जप सब किये ।।५।।
पूर्ण साधन साध, करके तपस्या घोर तर ।
सेवा से आराध, लिये उसने मुनिजन सब ।।६।।
खर आदिक खल लोग, बड़े विदेशी दुष्ट दल ।
भारत भू पर रोग, बन, खाते जन मांस को ।।७।।
ऋषि जनों को त्रास, देते वे दिन रात थे ।
करते जाते वास, भारत में बल छल लिये ।।८।।
उनका मार्ग रोक, बल से राघव ने दिया ।
हो हर्षित सब लोक, उसके अनुयायी बने ।।६।।
असुरों ने चल चाल, छल से सीता-हरण कर ।
रघुपति दीन-दयाल, दुःखी किया अन्याय से ।।१०।।
करते बहुत विलाप, वन वन में तो वे फिरे ।
सहित सुग्रीव-मिलाप, सेनाबल उनका बढ़ा ।।११।।
करते अनुसन्धान, हैं वानर फिर सब दिश ।
सागर लाँघ महान, मैं आया हूँ खोज को ।।१२।।
गुणगण कहे विशेष, राघव ने सिया के तब ।
वे तो सभी अशेष, इस में दीख रहे मुझे ।।१३।।
ऐसे वचन उच्चार, मौन हुआ नरराज वह ।
सीता हर्ष अपार, पाया पति की सुन कथा ।।१४।।
इधर उधर वह ताक्, रही थी कहां कौन है? ।
पर खड़ी थी अवाक्, देख न मानव को वहां ।।१५।।

ऊपर दृष्टि डाल, उसने देखा वीर नर ।
मान असुर की चाल, भद्रा भय-भीत हो तभी ।।१६।।
बोली मन में आप, गया ब्राह्मण वेश में ।
वही रूप रच पाप, है आया क्या अब यहां ।।१७।।
अथवा सपने बीच, मैं सब कुछ हूँ देखती ।
असुर अधम नर नीच, छल माया है रच रहा ।।१८।।
ऐसे लिये विचार, रोदन वह करने लगी ।
विनय सहित नमस्कार, कर उतरा हनुमान् तब ।।१६।।
*बोला तब हनुमान् तथा ही, विनयवान् जन कहे यथा ही ।
राघव राजा जी की रानी, गुण लक्षण से दीखो भवानी ।।२०।।
रामचन्द्र की पत्नी प्यारी, हो मूर्ति कह रही तुम्हारी ।
विरह वेदना सहित सुशीले!, अंग हुए हैं तेरे पीले ।।२१।।
अथवा अन्य विपद् की मारी, हो कोई तुम अति दुखियारी ।
कष्ट-कथा कड़वी हो कैसी, करना कथन हुई हो जैसी ।।२२।।
वानर वाक्य सुन वैदेही, बोली वचन धृति-धर के ही ।
जनक-सुता मैं ही हूं सीता, दशरथ की सुत-वधू विनीता ।।२३।।
रामचन्द्र की पत्नी जानो, अनुव्रता निश्चय कर मानो ।
रामचन्द्र सब ज्ञान का ज्ञाता, पति मेरा है आर्य-त्राता ।।२४।।
बारह वर्ष तक रहे गृही, दम्पति हम मिल सुदृढ़ स्नेही ।
पीछे घर पर विपदा आई, विकट बात बनी दुःखदाई ।।२५।।
बना वनों में उससे आना, वन वन फिरना कष्ट उठाना ।
ज्ञात कथा है तुम्हें हमारी, है वही जो तुमने उच्चारी ।।२६।।

---

* चौपाई।

हाथ जोड़ वह बोला माता!, राघव सकुशल हैं सह भ्राता ।
उनकी आज्ञा से हूँ आया, मैं सन्देश प्रभु का लाया ।।२७।।
मैं हूं राघव का अनुगामी, वे हैं मेरे गुरुवर स्वामी ।
रघुपति-चरण-शरण पै वारा, मैंने मन तन अपना सारा ।।२८।।
पूछा कुशल उन्होंने तेरा, समझो सत्य कथन सब मेरा ।
सजल नयन होकर रघुराई, कहते कुशल जनक की जाई ।।२६।।
सच्चा सेवक सदा सहाई, राघव का सुहृद् लघु भाई ।
बन्धु-वत्सल बन्धुसेवी, नमस्कार कहता था देवी! ।।३०।।
समाचार सुन सिया हर्षाई, बोली, यह उक्ति सच्ची गाई ।
चाहे वर्ष शतक भी बीते, पाते सुख जो जन हों जीते ।।३१।।
{जगत् में होते भक्त बहुतेरे, कोप कपट कलि मल के डेरे ।
दम्भ आडम्बर रच दिखाते, वेश केश बहु रूप बनाते ।।३२।।
नव नव रचते मार्ग माया, फिरते पाप कर्म की काया ।
पर जो होते भक्त सियाने, कर्म गुणों से जाते जाने} ।।३३।।
{जो चाहे जन जी को जाना, भीतरी भाव की तह पाना ।
बयन सैन वदन भाव-भंगी, लख समझे व्यक्ति बुरी चंगी} ।।३४।।
महा मधुर मुख मण्डल देखा, हाव भाव चिन्ह चक्र रेखा ।
वचन ढंग सब सरल सुहाना, सिया ने वह सच्चा ही माना ।।३५।।
बोली वह, कह वत्स! कहानी, राघव की अमृत बरसानी ।
कैसे वानर वंशी नेता, मिले उन्हें सब जान विजेता? ।।३६।।
अथ से इति तक वर्णन सारा, विरह-कष्ट रघुपति का भारा ।
यथा सन्धि कर बाली मारा, हनुमान् ने सब ही उच्चारा ।।३७।।
तब ही उसने दी अंगूठी, अंकित राघव नाम, अनूठी ।
सिया को वह विश्वास दिलाता, बोला रघुपति के गुण गाता ।।३८।।

सीते ! सुनो सन्देश प्यारा, धृति शान्ति सुख देने हारा ।
रामचन्द्र हैं तुझे ध्याते, उठते बैठे आते जाते ।।३६।।
पत्नी-विरह की करते बातें, बीतें सब दिन सब ही रातें ।
तेरे गुण-गण गाते गाते, वे थकित नहीं होने पाते ।।४०।।
देश काल वे सभी भुलाते, जब तव वर्णन कथा सुनाते ।
फिर फिर कथा वही दुहराते, गद् गद् कहते ही हो आते ।।४१।।
तव वर्णन में उनकी बानी, बहती यथा वर्षा का पानी ।
आंखों पर बादल आ जाते, टप टप विरह वारि बरसाते ।।४२।।
अधिक और क्या कहिए सीते!, है आश्चर्य राघव हैं जीते ।
खाते भोजन नीरस रूखे, उपवासों से जाते सूखे ।।४३।।
दो दिन का अन्तर कर खाते, फलाहार पर काल बिताते ।
सर्व स्वाद तज रहते ऐसे, घोर तपोधन होते जैसे ।।४४।।
दंश सर्प मच्छर हो कीड़ा, काटे तन को देवे पीड़ा ।
तो भी उसको न हैं हटाते, दाह जलन पर चित्त न लाते ।।४५।।
विरह दाह दिन दिन है दूना, अन्य दुःख उन्हें लगता ऊना ।
सुध बुध निज को सर्व बिसारे, चिन्तन करते कष्ट तुम्हारे ।।४६।।
आंखें रहते वे अधमींची, ग्रीवा दृष्टि करके नीची ।
ध्यान लीन रहते सब वेला, चाहते रहें सदा अकेला ।।४७।।
चिन्ता मग्न अल्पतर भोगी, विरह-वेदना मथित वियोगी ।
रहते अनमने सदा ही, हर्षित होते नहीं कदा ही ।।४८।।
रातों नींद न उनको आती, जगते घड़ियां बीती जाती ।
लगे आंख जभी झुंझलाते, हा! सीते! कह प्रभु चिल्लाते ।।४६।।
देखते वस्तु अद्भुत जो ही, पुष्प लता वन पर्वत को ही ।
सीता! सीता! कह वनवासी, भरते दीर्घ सांस उदासी ।।५०।।

चलते फिरते वे बहु बारी, सीते! स्मृति करते तुम्हारी ।
जभी देखो वे तुझे ध्याते, फिर फिर तेरी कथा चलाते ।।५१।।
सन्धि मिलाप को हैं बढ़ाते, तुझे मिलें यह यत्न रचाते ।
यद्यपि हैं वे अति ही सोगी, तेरे लिये हैं अति उद्योगी ।।५२।।
निश्चय जानो जनकदुलारी, राघव लेकर सेना भारी ।
शीघ्रतर सब जगसुखकारी, आ काटेंगे विपद् तिहारी ।।५३।।
रावण भूप जो अत्याचारी, कपट क्रूरता छल-बलधारी ।
खण्ड खण्ड होगा पाखण्डी, पाप की झंडी घोर घमण्डी ।।५४।।
मैं जाकर हूँ उन्हें सुनाता, दुःख दशा तेरी बतलाता ।
वृत्त सुनेंगे वे जभी ही, इधर दौड़ पड़ेंगे तभी ही ।।५५।।
शान्त रहो धैर्य को धारो, चिन्ता चित्त से सर्व निवारो ।
सहित लखन सुग्रीव हैं आते, असुर हनन कर तुझे छुड़ाते ।।५६।।

सातवाँ सर्ग

*राघव का सन्देश सुन, सीता धैर्य धार ।
बोली, रघुपति आ तुरत, मेरा करें उद्धार ।।१।।
कहना उनको यह कथा, ठीक ठीक हे वीर ।
असुर-कष्ट से हो रहा, पीला यथा शरीर ।।२।।
मैं दिन ज्यों हूँ काटती, तड़प तड़प दिन-रात ।
कहना राघव को सभी, आदि-अन्त तक बात ।।३।।
कैसे दिन हैं बीतते, मेरे असुरों बीच ।
कैसे घोर कठोर कटु, हैं ये जन अति नीच ।।४।।

* दोहा।

मिथ्या-माया महा मोह, रचकर असुर नरेश ।
कैसे कड़वे दे रहा, मुझको अत्यन्त क्लेश ।।५।।
दो मासों के बीच यदि, हुई न मेरी त्राण ।
असुर के पाचक मिल तब, लेंगे मेरे प्राण ।।६।।
टुकड़े मेरी देह के, करके सर्व तयार ।
देंगे क्रूर नरेश को, करने को आहार ।।७।।
भुने हुये मम अंग का, करके वह उपहार ।
होगा शान्त कु-कर्मी नर, लिए तृप्ति अपार ।।८।।
कहियो मेरे नाथ को, जाकर तुम हनुमान् ।
खण्ड खण्ड होऊँ भले, पर दूँ लाज न आन ।।९।।
पातिव्रत स्वधर्म पर, अर्पित कर जी जान ।
सुदृढ़ आर्य चरित में, मैं हूँ मेरु समान ।।१०।।
सत्य सनातन धर्म में, हूँ मैं अचल अडोल ।
आश्रय तेरे नाम का, है मुझ को अनमोल ।।११।।
चरण-शरण रघुनाथ की, एक टेक है ओट ।
उस बल से हूँ सह रही, मैं कु-काल की चोट ।।१२।।
मन वच काया कर्म से, तुझ में हूँ लवलीन ।
जगत् नाथ रघुनाथ जी, पर हूँ तुझ से हीन ।।१३।।
सुग्रीव लक्ष्मण वीर सह, सेना लेकर साथ ।
मुझे छुड़ाना बन्ध से, शीघ्र आ रघुनाथ ।।१४।।
सीता का सन्देश सुन, बोला वानर-वीर ।
आश्वासन दे कर उसे, नयनों भरकर नीर ।।१५।।
माता धैर्य धारिए, सुनकर तव सन्देश ।
सहित अनुज रघुनाथ में, उमड़ेगा आवेश ।।१६।।

महामन्यु मन में लिये, वे बल-मूर्तिमान् ।
आवेंगे अति वेग से, अति शीघ्र कर यान ।।१७।।
पर यदि चाहो देवि! तुम, पाना दुःख से पार ।
दास पीठ पर हूजिए, अभी तुरन्त सवार ।।१८।।
ले जाऊँगा मैं तुझे, बल से, राघव-पास ।
असुर-संघ को कर मथन, दे कर अति भय त्रास ।।१९।।
मेरे पथ को जन नहीं, सकता कोई रोक ।
मेरी गति मति शक्ति को, सके न कोई टोक ।।२०।।
बनें बहुत बाधा विघ्न, विषम बहुत वन बाट ।
विकट विपद् मग में पड़े, तो भी दूँगा काट ।।२१।।
चिन्ता सर्व निवार कर, मन को कर के ठीक ।
बैठो सेवक-पीठ पर, माता हो निर्भीक ।।२२।।
*सुन यह वचन सीता हर्षाई, उसको देती बहुत बड़ाई ।
बोली, सुन्दर सौम्य प्यारे!, सच्चे वचन हैं सर्व तुम्हारे ।।२३।।
हो समर्थ महा शक्ति शाली, रखते दैवी देह निराली ।
तेज अतुल बल देखा जो ही, उस से सत्य है कहो सो ही ।।२४।।
वायु वेगवत् आते जाते, श्रान्त नहीं तुम होने पाते ।
जिस स्थल में विचार जमाओ, जा सकते हो जब ही चाहो ।।२५।।
मुझे पीठ पर लेकर जाना, सागर पार कठिन है माना ।
उसमें गिर कर मर यदि जाऊँ, पति दर्शन मैं कैसे पाऊँ ।।२६।।
वहां डूब हम दोनों जायें, महामत्स्य यदि हम को खायें ।
राघव को जा कौन बताये, कहो कौन संदेश सुनाये? ।।२७।।

---
* चौपाई।

समाचार बिन तब रघुराई, होंगे दुःखी सहित लघु भाई ।
मीन दीन ज्यों हो जल-हीना, ऐसा होगा उनका जीना ।।२८।।
यह अपराध नहीं कर पाऊँ, मैं चाहे तन भस्म बनाऊँ ।
कारण मुख्य हूँ अब सुनाती, जिससे मैं तव साथ न जाती ।।२९।।
उचित नहीं है जाना ऐसे, कहते हो तुम मुझको जैसे ।
इच्छा से पर पुरुष को छूना, है बनाना धर्म को ऊना ।।३०।।
आर्या नारी सती सुशीला, करती नहीं व्रत-बन्धन ढीला ।
अपर पुरुष के संग न जाती, पूर्ण प्रेम पति का निभाती ।।३१।।
{जाति कुल की रीति है जो, उचित यही है पाले सो सो ।
स्व-वश नहीं मर्यादा तोड़े, संकट में भी धर्म न छोड़े} ।।३२।।
प्रेम भक्ति रघुपति में मेरी, रही अखण्ड सदा सब बेरी ।
चाहे काया होवे ढेरी, पर न छूंगी मैं देह तेरी ।।३३।।
रामचन्द्र की पत्नी ऐसी, मैं हूँ प्रभा सूर्य की जैसी ।
अपर पुरुष-स्पर्श का होना, इच्छा से है धर्म का खोना ।।३४।।
राघव आयें मुझे छुड़ाएँ, शक्ति से संग अपने ले जाएँ ।
योग्य यही रीति है मानी, वीरोचित भी यही बखानी ।।३५।।
सिया-कथन सुन कर सुखदायी, दूत चतुर राघव अनुयायी ।
रोमांचित हो विस्मय से ही, बोला वचन उचित नय के ही ।।३६।।
है समुचित जो कहो भवानी, यही धर्म कहते मुनि ज्ञानी ।
राघव-पत्नी को यह सुहाता, जो कुछ कहा आपने माता ।।३७।।
अन्य कौन यह बोले बानी, सती धर्म पतिव्रत दर्शानी ।
देखा सुना सर्व जो मैंने, दिया सन्देश जो देवी तू ने ।।३८।।
जा कर पास प्रभु के सो भी, कह दूँगा सब बीता जो भी ।
दुःख दशा कर वर्णन सारी, कह दूँगा तव विपदा भारी ।।३९।।

ले चलने की बात सुनाते, अपने बल की बात बताते ।
मैंने गर्व न की चतुराई, तेरा हित था मन में माई ।।४०।।
दुस्तर सागर तरना खारा, लंका-गढ़ का देख पसारा ।
प्रिय-करण रघुपति का धारे, मैंने थे वे वचन उच्चारे ।।४१।।
देना देवी! दिव्य निशानी, समझे सत्य जिसे वरदानी ।
दे कर परिचय परम सुधी से, मिलूँ कहूँ सब रघुपति जी से ।।४२।।
वस्त्र में से उसने निकाला, चूड़ामणि अति आभा वाला ।
हनुमान् को सिया देते, बोली वचन हिया हर लेते ।।४३।।
कहना निज गुरुवर से गाथा, मैं पड़ी हूं ज्यों हो अनाथा ।
नाथ! हाथ लघु-साथ बढ़ाना, अपनी को रघुनाथ बचाना ।।४४।।
दीन दुःखी पर दया दिखलाई, देव दलित के हुए सहाई ।
तुमने पापी पतित उद्धारे, दुष्ट दस्यु दुर्जन भी तारे ।।४५।।
करुणा-कर को आज पसारो, अपनी को विपदा से तारो ।
लाज शर्म है हाथ तुम्हारे, सर्व-नाथ रघुनाथ हमारे ।।४६।।
नयन-नीर छम छम बरसाती, बार बार थी रुकती जाती ।
उसने स्वस्ति सहित विदाई, दी तब उसे यथा है गाई ।।४७।।
उसे धृति दे कार्यकारी, चलने की कर सर्व तयारी ।
नमस्कार सह मणि को लेके, सीता को प्रदक्षिणा दे के ।।४८।।
यही धार कुछ करके जाऊँ, असुर शक्ति-भेदों को पाऊँ ।
चला वहाँ से भू कंपाता, दूत-काम की मुहर लगाता ।।४६।।
पुष्प-वाटिका पथ में आई, कुचल मसल कर सर्व मिटाई ।
उसने कदली कुँज उजाड़ा, बेल लता को बहुत उखाड़ा ।।५०।।
मर्दन करता था प्रमाथी, वन को मत्त करे ज्यों हाथी ।
झंझावात वनों में ज्यों ही, वनिका में फिरता वह त्यों ही ।।५१।।

तोड़े उसने जल-फंवारे, कूप जलाशयों के किनारे ।
वनिता-वन मर्दन कर डारा, रमण-स्थान को बहुत बिगाड़ा ।।५२।।
उड़े तब सभी पक्षी चिल्लाते, नभ मण्डल में चक्र लगाते ।
दावानल से विपिन यथा ही, बन रही वनिका थी तथा ही ।।५३।।
पवन-पुत्र उत्पात मचाता, अस्त व्यस्त उपवन बनाता ।
द्वार-तोरण पर आ विराजा, समर-कामना से ज्यों राजा ।।५४।।
{वाद कलह से बढ़े लड़ाई, छेड़ छाड़ से उठे भिड़ाई ।
वेणु वन को है चिंगारी, मार हानि वा देना गारी} ।।५५।।
{बली वीर पर वार चलाना, सुप्त-सिंह है आप जगाना ।
हाथ सर्प-बिम्बी में देना, मग में मृत्यु मोल है लेना ।।५६।।
बुद्धि काम में जो जन लाते, पहले पूरा वार चलाते ।
बनते बहुधा वही विजेता, साहसवान् जनों के नेता} ।।५७।।
पक्षी नाद सुन असुरी सोतीं, जगीं सर्व तब व्याकुल होतीं ।
नष्ट-भ्रष्ट लख कर तरु माला, तितर बितर कुसुमों की शाला ।।५८।।
इधर उधर अति दौड़ लगातीं, लगी देखनें अधिक चिल्लातीं ।
तोरण पर लख वीर विरोधी, महाकाय मार्ग अवरोधी ।।५९।।
अति भय-भीत हुईं घबराईं, दौड़ भाग रावण पै आईं ।
बोलीं, राजन्! पुरुष निराला, वन में हो ज्यों गज मतवाला ।।६०।।
बेल बूटे सब उसने उखाड़े, कोमल कुसुम क्यारे उजाड़े ।
वनिता उपवन कर के सूना, वह तो ऐंठ रहा है दूना ।।६१।।
है कौन वह कहां से आया, नहीं सिया ने भेद बताया ।
वह है दूत किसी का शूरा, निर्भय बल कल छल में पूरा ।।६२।।

आठवाँ सर्ग

*असुरी जन के सुन कथन, रावण कर अति क्रोध ।
बोला वह नर कौन है, जिसने किया विरोध? ।।१।।
ध्वंस वाटिका कर सभी, किसने मांगा काल ।
जाओ किंकर जन अभी, दो तस प्राण निकाल ।।२।।
लेकर मुद्गर कूट सब, दौड़े वे विकराल ।
व्याकुल बहु विष वैर में, विषम विषैले व्याल ।।३।।
होंठ चाबते क्रोध में, पीस रहे थे दान्त ।
त्यौड़ी भौंहें तान कर, आये बान्धे पान्त ।।४।।
शाण-शाणित-कु-बाण ले, भाले खड्ग कटार ।
ले टूटे हनूमान् पर, देने को अति मार ।।५।।
घोर गर्जना साथ तब, बोले श्री हनुमान् ।
जय हो राघव लखन की, जो हैं पुरुष महान् ।।६।।
सुग्रीव भूप की हो जय, रघुपति जी का दास ।
हनुमान् मैं हूँ यह, तुम्हें रहा दे त्रास ।।७।।
पवन-पुत्र मैं आज तो, मथ असुरों का मान ।
शूर वीर नर हनन कर, वन-पुर की कर हान ।।८।।
नमस्कार कर सिया को, सर्व कामना साध ।
तुम असुरों के देखते, जाता हूँ निर्बाध ।।९।।
ऐसी कर के घोषणा, लेकर परिध विशेष ।
उन को श्री हनुमान् जी, करने लगे निश्शेष ।।१०।।

* दोहा।

मूसल से मर्दन किये, उस ने वे ज्यों धान ।
बहुत मरे कुछ भाग कर, गये असुर-पति-स्थान ।।११।।
दे दुहाई दैत्य वे, बोले हे नरराज ।
नौकर गृह उद्यान के, हने गए हैं आज ।।१२।।
उस ने पालक बाग के, सर्व दिए हैं पीट ।
मत्त हस्ति कुचले यथा, मेंडक मूषक कीट ।।१३।।
यह सुनकरअति कोपकर, उसने दलपति एक ।
जम्बुमाली भेजा तब, देकर वीर अनेक ।।१४।।
प्रहस्त सुत दौड़ा तब, लेकर सब हथियार ।
देखा उसने दूत को, बैठा हुआ तयार ।।१५।।
रथ में से उस असुर ने, किये अधिक प्रहार ।
अर्धचन्द्राकार सभी, ले कर सर दुःखकार ।।१६।।
लगा एक हनुमान् के, मुख पर, करता पीर ।
पांच पांच दो भुजा पर, एक भाल पर तीर ।।१७।।
मर्म भेदी पैने अति, खा कर भी वे बाण ।
हनुमान् रहा धृति में, अविचल अचल समान ।।१८।।
उसके मुख पर रक्त के, बने बिन्दु ज्यों लाल ।
शिला पर बीरबहूटियां, बैठें डेरा डाल ।।१९।।
समर-कुशल हनुमान् ने, किया शिला का वार ।
सैनिक जम्बुमाली पर, बल से तो इक बार ।।२०।।
शाल-डाल विशाल लिये, आसुर-दल के अंग ।
बिजलीवत् बल वेग से, किये वीर ने भंग ।।२१।।
क्रोधी जम्बुमाली ने, विद्ध किया वह वीर ।
टेसू फूले सम बना, उसका सर्व शरीर ।।२२।।

हनुमान् ने आगे बढ़, मूसल चारों ओर ।
फेरा सहित उतावली, कर गर्जन अति घोर ।।२३।।
विद्युत् पात समान तब, मूसल ने कर चूर ।
जम्बूमाली सहित असुर, फैंके इत उत दूर ।।२४।।
सैनिक-दल सब कर मथन, बोला वह बलवान् ।
रामचन्द्र की जय हो, वह है शक्ति निधान ।।२५।।
दलपति सह दल-दलन सुन, दानव-देश नरेश ।
तिरेर दोनों नयन-दल, बोला ला आवेश ।।२६।।
जायें अभी तुरन्त ही, सचिवों के सुत सात ।
हड्डी पसली तोड़ सर्व, उसकी कर दें घात ।।२७।।
मंत्री पुत्र सशस्त्र सब, आ पड़े एक साथ ।
अग्र बढ़ा हनुमान् भी, सिमरन कर रघुनाथ ।।२८।।
समर में सचिवों के सुत, मार मुष्टि निज लात ।
थप्पड़ मूसल से हनन, उसने किये निपात ।।२६।।
उन सातों की हार सुन, रावण विस्मय मान ।
सेना-नायक पांच को, बोला जान निदान ।।३०।।
जाओ दल बल साथ ले, लाओ पकड़ उद्दण्ड ।
जो बन घोर घमण्डघर, करता घटना काण्ड ।।३१।।
उसका वध करना नहीं, हो सभी सावधान ।
पकड़ बान्धकर लाइए, असुरों की रख आन ।।३२।।
जैसे भूखे भेड़िए, पड़ें हिरण पर टूट ।
दौड़ें तस्कर धनिक पर, लेने को सब लूट ।।३३।।
ऐसे वे हनुमान् पर, करते मारो मार ।
हाथी घोड़े रथों पर, आये, हुए सवार ।।३४।।

दाव पेंच के समर में, विस्मय-कारी खेल ।
खेला वानरराज ने, करके धक्कम पेल ।।३५।।
बिजली बन वह वेग से, पड़ता बल से कौन्ध ।
चक्कर चारों ओर दे, देता अरिदल रौन्ध ।।३६।।
अद्भुत कौशल कर्म से, असुर-गणों को घेर ।
मार पीट हन मसल कर, उस ने दिया खदेड़ ।।३७।।
चमके श्री हनुमान् जी, बड़ी विजय कर लाभ ।
रवि ज्यों बादल दूर कर, सहित सुनहली आभ ।।३८।।
जय जय हो रघुवीर की, बोला वह कर नाद ।
असुर-संघ के चित्त को, देता हुआ विषाद ।।३६।।
*दूत जानकर अति प्रतापी, रावण-मन में चिन्ता व्यापी ।
इन्द्रजित को उस ने भेजा, कहा सेना साथ भी ले जा ।।४०।।
शूर वीर हो बहुत विजेता, असुर दलों के मुखिया नेता ।
जाकर दमन करो वह ऐसे, सिंह हस्ति को करता जैसे ।।४१।।
बली तेजस्वी हो सुत! मेरे, दश दिश हैं फैले यश तेरे ।
अरि को अपने हाथ दिखाना, निजबल की अति धाक जमाना ।।४२।।
ले आदेश चला सेनानी, योद्धा कुशल बड़ा अभिमानी ।
मेघनाद मेघों सम नादी, मायी, मोहक, बल-पक्षवादी ।।४३।।
उसने ऐसे बाण चलाये, जो हनुमान् में आ समाये ।
पीड़ा करते रक्त बहाते, आर पार थे होते जाते ।।४४।।
धृतिवान हनुमान् न डोला, अपना उसने भी बल तोला ।
मेघनाद को घोटा घेरा, मथन किया फिर फिर बहुतेरा ।।४५।।

* चौपाई।

मेघनाद जब अति घबराया, उसने ब्रह्मास्त्र चलाया ।
हनुमान् में वह घुसा त्यों ही, लोह में बिजली जाय ज्यों ही ।।४६।।
उस पर तब अति मूर्छा आई, गिरा वह वज्र-हत की नाईं ।
असुर दलों ने हर्ष मनाया, लगे पीटने उसकी काया ।।४७।।
रस्से ले सभी लम्बे मोटे, उसके अंग बड़े सब छोटे ।
असुर सुत ने कस के तथा ही, बाँधे, हस्ति बांधे यथा ही ।।४८।।
जब सचेतता उस ने पाई, बन्धन देख बड़े दुःख दाई ।
असुर भूप का मिलना सोचा, भावी का बल भी आलोचा ।।४९।।
मार पीट वे बहुत सताते, कह कुवचन खींचे ले जाते ।
सुबद्ध घोड़े हाथी को ज्यों, उसे ले गये नरपति पै त्यों ।।५०।।
कहता कोई इसको मारो, इस की चमड़ी खींच उतारो ।
जीते को अग्नि में जलाओ, भून कर अभी इसको खाओ ।।५१।।
असुर जनों की सहते गारें, भयंकर कथनी कटु ललकारें ।
राई भर हनुमान् न कांपे, थके डरे नहीं, न तो हांपे ।।५२।।
{डरते जो ही मरते सो ही, वीर जन को डर नहीं कोई ।
जग में दुर्बल दास कहाते, भीरु ही दीन दुःखी दिखलाते ।।५३।।
कूद पड़े जो साहस सेती, विपद् सहे आवे भी जेती ।
जीवन जोखिम में कर डाले, आन बान पर पूरी पाले ।।५४।।
ध्येय-धुरा पर धैर्य धारे, रहते तन मन धन को वारे ।
बन्धन वध ताड़न जो पाते, वे ही बन्धों को अन्त छुड़ाते ।।५५।।
बन्धन मोचन कारण से ही, वीर पड़ा अति बन्धन में ही ।
लड़ना भिड़ना मार हटाना, रचा उसने उपाय बहाना} ।।५६।।
रावण देखा उसने ऐसा, अंजन गिरी नील हो जैसा ।
लम्बे होंठों दान्तों वाला, तीखे दशन नखों युत काला ।।५७।।

लाल किये वह दोनों आँखें, मलता हाथ दबाता काँखें ।
उच्च सिंहासन पर विराजा, मुकुट मणि विभूषित राजा ।।५८।।
कहा नृप ने, सचिव हमारे, प्रहस्त! पूछो भेद न्यारे ।
इसने क्यों है बाग बिगाड़ा, किंकर जन को मारा ताड़ा ।।५६।।
है कौन यह कहाँ से आया, इसने क्यों उत्पात मचाया? ।
बोला वह, निर्भय हो जाओ, उत्तर प्रश्नों के बतलाओ ।।६०।।
सचिव वचन सुन निर्भय सो ही, बोला वीर स्थिर मन हो ही ।
सुग्रीव का शुभ आज्ञा-कारी, राघव का मैं हूँ अनुसारी ।।६१।।
कार्य से मेरा है आना, बल दिखाना भेद को पाना ।
सो कार्य मैं हूँ कर पाया, इससे मैंने समर रचाया ।।६२।।
खोज रहा था मैं तो सीता, देखी यहां वह बड़ी विनीता ।
तव बन्धन में बन्द पड़ी है, सहती ताड़ना अति कड़ी है ।।६३।।
राघव-भार्या जनक-दुलारी, हर लाये तुम आर्या नारी ।
अनर्थ कर्म किया है भारा, तुमने न्यायाचार विसारा ।।६४।।
सुनो सुग्रीव-सन्देश सारा, उसने पूछा कुशल तुम्हारा ।
कहा बनो नहीं अत्याचारी, पर की भार्या का अपहारी ।।६५।।
सदाचार है सब सुख दाता, धर्म अर्थ दोनों का त्राता ।
दोनों लोक में मान बढ़ाता, पाप पतन से बहुत बचाता ।।६६।।

नौवाँ सर्ग

*वानर पति का कथन है, पर नारी अपहार ।
तुम्हें नहीं है शोभता, है न उचित आचार ।।१।।

* दोहा।

होते आसक्त भूप न, पर नारी के बीच ।
उच्च पुरुष करते नहीं, ऐसा कुकर्म नीच ।।२।।
भेजा वानर-राज का, मैं आया हूँ दूत ।
सचिव स्नेही सुग्रीव का, प्रिय पवन का पूत ।।३।।
सिया खोज में घूमता, आया हूं इस पार ।
मैंने लंका के सभी, देखे हैं घरबार ।।४।।
बंदी घर में जानकी, देखी दुखिया दीन ।
दासी-दल अति दुष्ट के, रहती हुई अधीन ।।५।।
तेरे गृह में वह तो, पाती है अति त्रास ।
राज-धर्म विपरीत है, उसका यहाँ निवास ।।६।।
मैंने दर्शन कर लिए, पाया पुण्य महान् ।
अगले समुचित कर्म को, लेंगे रघुपति जान ।।७।।
असुर-राज! सच समझिए, तीन लोक सब ठौर ।
रामचन्द्र के तुल्य न, मिलता नरवर और ।।८।।
तेजोबल में बुद्धि में, पराक्रम गुणवान् ।
रामचन्द्र सम न मिले, वीर भी शक्तिमान् ।।६।।
जग में जन तो है नहीं, सह ले उसका क्रोध ।
जननी ने जाया नहीं, जो कर सके विरोध ।।१०।।
हितकर है तेरे लिए, जाना उसके पास ।
क्षमा मांगना दे सिया, बन रहना अनुदास ।।११।।
विषमय अन्न ज्यों न पचे, त्यों यह समझ विचार ।
सीता के अपहरण से, होगा तव संहार ।।१२।।

*हनुमत् के सुन कथन करारे, क्रोध-अग्नि भड़काने हारे ।
वध-आज्ञा तब उसे सुनाई, रावण ने वह अति दुःखदाई ।।१३।।
कहा विभीषण ने, मम भ्राता!, दूत अवध्य कहा है जाता ।
वध इसका तो उचित नहीं है, ऐसा होता न भी कहीं है ।।१४।।
कहे नहीं वह अपनी वाणी, पराधीन है वह तो प्राणी ।
जो भेजे हो उत्तर दाता, दोषी भी वह ही कहलाता ।।१५।।
अच्छा बुरा होवे भी कैसा, दूत कहे, प्रेरा हो जैसा ।
वह नहीं है इच्छा-चारी, इसलिए है न वध अधिकारी ।।१६।।
तुम चलकर अति गहरी चालें, शत्रु की गलने दो न दालें ।
भेजो अनुचर मोहक मायी, बान्ध पकड़ वे दोनों भाई ।।१७।।
मंगवाओ शक्ति से ऐसे, पक्षी पकड़ कर लाते जैसे ।
जान जायेंगे वन-विहारी, राजन्! इससे शक्ति तुम्हारी ।।१८।।
असुर-पति ने कहा माना, निरपराधी दूत को जाना ।
आग लगा कर उसको छोड़ा, समुचित मान दण्ड यह थोड़ा ।।१६।।
पुर में वह तब गया घुमाया, अपमानित भी गया बनाया ।
हनुमान् ने यह विचारा, शक्ति से पाऊँ मैं निस्तारा ।।२०।।
तोड़े बन्धन बल से भारे, मुख से जय जय शब्द उच्चारे ।
उछल कूद करता बहुतेरी, रवि सम चमका वह उस बेरी ।।२१।।
मुख्य भवन घर देख अटारी, सज धज जिनमें रहती भारी ।
उसने उनको आग लगाई, वानर माया भी दिखलाई ।।२२।।
हा हा कार मचा तब भारा, भीत हुआ जन-मण्डल सारा ।
नभ मण्डल में धूआँ छाया, ज्यों हो घनतर कुहरा आया ।।२३।।

---

* चौपाई।

पुर के सब जन फिरते भागे, काम काज सब कुछ ही त्यागे ।
दूत कथा कह अति घबराते, दान्तों उंगली वे दबाते ।।२४।।
ऐसे करके कर्म अनोखे, धूर्त-धुरीण को देकर धोखे ।
हनुमत् जी पुर बाहर आये, सज्जित उसने अंग बनाये ।।२५।।
कूद सिन्धु में तरता जाता, नभ में रवि-रथ सम था भाता ।
भुज-बल से तर सागर पूरा, इस तट पर आया नर शूरा ।।२६।।
अंगद आदिक उसके साथी, शूर वीर अरिदल-प्रमाथी ।
बालू पर बैठे थे ऐसे, म्रियमाण मानव हो जैसे ।।२७।।
उनसे निकल रही थी आशा, उन पर बढ़ती निपट निराशा ।
मन में रहती दुविधा छाई, हर्ष-चिन्ह न देते दिखाई ।।२८।।
पूर्ण शशि घन से विलसाता, देखा उन्होंने तथा वह आता ।
पूरे विधु से सागर ज्यों ही, देख उसे उमड़े वे त्यों ही ।।२६।।
सहित पूर्ण हर्ष की रेखा, उसका मुख उन सब ने देखा ।
सफल मनोरथ होकर आना, महावीर का सब ने माना ।।३०।।
आगे दौड़ मिले वे प्यारे, लम्बे कर कर भुजा पसारे ।
गले मिले पीड़न कर बाहें, हर्षित लेते सुख की आहें ।।३१।।
छाती दबाते फिर उठाते, बार बार गद् गद् हो जाते ।
प्रेम हर्ष के अश्रु बहाते, मंगल मेल थे मधुर मनाते ।।३२।।
बैठे मिलकर वे सब स्नेही, सब देह में एक बन देही ।
यात्रा-वृत्त सुनते ज्यों ज्यों, सुहर्ष विस्मय पाते त्यों त्यों ।।३३।।
आदि से अन्त तक जो बीता, जैसे देखी देवी सीता ।
जैसे वनिता बाग उजाड़ा, रचा गया ज्यों समर अखाड़ा ।।३४।।
जैसे थी अति मूर्च्छा आई, हुई यथा थी मार पिटाई ।
गई यथा थी आग लगाई, उसने वह सब बात सुनाई ।।३५।।

बहुत देर तक हर्ष मनाते, जय जय राघव की गुँजाते ।
गुण-गीत हनुमान् के गाते, रहे वे सब मोद में माते ।।३६।।
जाम्बवान् की अनुमति सेती, सेना-सरित् फिरी लहरें लेती ।
जिस पथ से वह सेना जाती, जन-मन मुख तन को विकसाती ।।३७।।
वायु-वेग वत् दौड़ लगाते, किष्किन्धा को थे वे जाते ।
जिस उद्यान में ठहरे वे ही, गूंजे नाद विजय जय के ही ।।३८।।
राज बाग था शोभा वाला, सुन्दर थी उस में तरु-माला ।
विकसित थे वहाँ कुसुम क्यारे, महा मधुर फल थे रस वारे ।।३६।।
चुन चुन फल सैनिक थे खाते, हंसी क्रीड़ा अधिक मचाते ।
मधु-वन में जा मधु के दौने, भर भर पीये बहुत उन्होंने ।।४०।।
वन-पालक दधिमुख ने क्रीड़ा, कही भूप को पाते पीड़ा ।
फलों का खाना मधु उड़ाना, सब का मिल जुल खेल रचाना ।।४१।।
सुन, हंसना खेलना गाना, उनका उत्सव मोद मनाना ।
सुग्रीव नरपति ने यह जाना, है सफलता सहित ही आना ।।४२।।
कहा भूप ने दधिमुख जाओ, यहाँ अभी उनको भिजवाओ ।
अंगद को वह बोला जा के, सहित विनय स्व सीस झुकाके ।।४३।।
राजन्! नरपति मिलना चाहें, बैठे हैं राघव की बायें ।
उचित शुभ है जाओ अभी ही, तुरन्त मिलकर आप सभी ही ।।४४।।
अंगद ने तब चलना प्रेरा, दौड़ पड़ा वह सारा डेरा ।
जय जय से भू नभ कम्पाते, वे जाते थे हर्ष बढ़ाते ।।४५।।
हर्ष-नाद सुनकर नर राजा, बोला राघव पास विराजा ।
विजय सफलता नाद बताता, मंगल शुभ है जाना जाता ।।४६।।
शुभ-सूचक यह आज घड़ी है, आशा जाती अधिक बढ़ी है ।
इन बातों में आते दीखे, विकसित मुख वे कमल सरीखे ।।४७।।

आगे थे वे दोनों नेता, हनुमान् अंगद नीति-वेत्ता ।
पीछे सेना सब थी आती, तारा-गण ग्रह सम हर्षाती ।।४८।।

दसवाँ सर्ग

*अंगद श्री हनुमान् जी, दोनों बड़े विनीत ।
राघव लक्ष्मण को मिले, चरण पकड़ कर प्रीत ।।१।।
वन्दना कर सुग्रीव को, बोले श्री हनुमान् ।
नियम धर्म में है सिया, जीवित है बिन हान ।।२।।
'देखी है मैंने सती', कहना सुधा समान ।
सुन कर राघव अनुज में, उमड़ा हर्ष महान् ।।३।।
सजल स्नेहयुत नयन से, अति कृतज्ञता साथ ।
लगे देखने तब उसे, लक्ष्मण सह रघुनाथ ।।४।।
उनके हर्ष अपार से, गूँजा जय जय घोष ।
हर्षित वानर सब हुए, पाकर शुभ सन्तोष ।।५।।
यात्रा की बातें कही, घटना सहित विस्तार ।
कहा सर्व हनुमान् ने, करना सागर पार ।।६।।
वर्णन सीता का किया, विस्तर सहित विशेष ।
उस के कटुतर कष्ट की, कही कहानी शेष ।।७।।
बन्धन में पड़ना कहा, अपना सह उपहास ।
आग लगाना नगर को, जलना मुख्य निवास ।।८।।
बोला श्री रघुराज को, फिर वह वर नर-राज ।
सिमरन करती है सिया, तुम्हें अति महाराज ।।९।।

* दोहा।

प्रेम भक्ति पतिदेव की, उसका है आधार ।
नीरस है राघव बिना, उस का सब संसार ।।१०।।
उस के जीवन की जड़ी, है तेरा शुभ नाम ।
चरण-शरण के ध्यान में, रहती है सब याम ।।११।।
घोर कष्ट है सह रही, बहुत वेदना साथ ।
उग्र तपस्या करती है, बंदीघर में, नाथ! ।।१२।।
सूखी कांटा है बनी, रहीं अस्थियां दीख ।
रक्त-रहित तस अंग हैं, निसृत रस ज्यों ईख ।।१३।।
अति कृशा है हो रही, बनी वर्ण से पीत ।
निराहार में सब समय, उस का जाता बीत ।।१४।।
जीर्ण शीर्ण शाटिका, तन पर रही लपेट ।
नीन्द बिना है काटती, रातें रीते पेट ।।१५।।
राघव-नाम उच्चार कर, लम्बे ले उच्छ्वास ।
मूर्छित हो निर्जीव सी, रहती पड़ी उदास ।।१६।।
झरता उस के नयन से, विरह-वारि बन बूँद ।
विषम वेदना बहुत पर, लेती आँखें मूंद ।।१७।।
पंख नोचने से बने, पंछी व्याकुल दीन ।
तड़पे जल से हीन हो, जैसे कोमल मीन ।।१८।।
ऐसे देव! वियोग में, दुखिया है दिन-रात ।
कमल कलेजा कांपता, उसकी करके बात ।।१९।।
रोते रोते है दिया, उस ने यह सन्देश ।
चूड़ामणि यह चिन्ह है, उसका दिया, नरेश! ।।२०।।
देना राघवराज को, ले सुग्रीव को पास ।
कहना जीवन प्राण की, यह पूँजी थी रास ।।२१।।

दर्शन कर इस रत्न के, होता मुझको भान ।
मेरे बहुत समीप हैं, श्री रघुपति भगवान् ।।२२।।
कहियो, उसने था कहा, देखूंगी तव बाट ।
दो मासों तक फिर असुर, मुझको देंगे काट ।।२३।।
खण्ड खण्ड मम मांस कर, खा जायेंगे पाप ।
पुनः मुझे इस लोक में, पा न सकोगे आप ।।२४।।
कटूं मरूँ मैं तो भले, कभी न दूँगी लाज ।
जीऊँ चाहे सौ वर्ष, जाऊँ मारी आज ।।२५।।
की जाऊँ मैं भस्म भी, छोडूँ तदपि न आन ।
अर्पित हैं पति-प्रेम में, मेरे प्यारे प्राण ।।२६।।
यों कह सर्व विस्तार से, समाचार अति खोल ।
रामचन्द्र को दे दी, उस ने मणि अनमोल ।।२७।।
✱ लेकर वह मणि अति सुखदाई, रघुराज ने हृदय लगाई ।
लक्ष्मण सह राघव जी रोते, बोले बहुतर व्याकुल होते ।।२८।।
सुग्रीव! मणि मुझको अति भाती, सिया-मस्तक पर थी सुहाती ।
विवाह-काल जनक ने दी थी, पितृ देव ने कर से ली थी ।।२९।।
गई सिया को यह पहराई, शशि शोभा सम शान्त सुहाई ।
पिता ससुर हैं सिमरन आते, महा रत्न पर नयन टिकाते ।।३०।।
जब देखे निज बछड़ा गाये, तस स्तन में दुग्ध आ जाये ।
देख तथा यह रत्न सुहाता, हृदय मेरा पिघला जाता ।।३१।।
जब से मणि दृष्टि में आई, मानो मैंने सीता पाई ।
रोम-रोम है हर्षित ऐसा, सिया मिलन पर होता जैसा ।।३२।।
राघव ने तब हाथ बढ़ाया, हनुमान् को छाती लगाया ।
कहा, वनी पै है यह देना, प्रेम-मिलन प्रेमी! ले लेना ।।३३।।

✱ चौपाई।

तव उपकार एक जो ले लूँ, उसके बदले निज तन दे दूँ ।
तदपि न उऋणता पाऊँ, चाहे सब कुछ वार दिखाऊँ ।।३४।।
पर वे तो अनेक हैं तेरे, प्राण ऋणी रहेंगे मेरे ।
असम्भव प्रतिकार चुकाना, जीवन दे भी मैंने माना ।।३५।।
जभी सखा पर विपदा आयें, उस समय बदले दिये जायें ।
नहीं दिया मैं बदला चाहूँ, सहित ऋण चाहे मर जाऊँ ।।३६।।
तू ने राघव कुल को तारा, मुझ को लक्ष्मण सहित उभारा ।
समाचार जो तू है लाया, उस ने मुझे सवंश बचाया ।।३७।।
भीतर से मन तन सब मेरा, बहुत कृतज्ञ सखे! है तेरा ।
शूर वीर उत्तम नर तू ने, कर्म किये आशा से दूने ।।३८।।
पा कर प्रभु-प्रेम-प्रसादी, वह बन गया बहुत आह्लादी ।
गुरु-गले मिला लिपटा त्यों ही, मां से बिछुड़ा बालक ज्यों ही ।।३६।।
गुरु-आँसू अभिषेक रचाते, शिष्य-दीक्षा-दृश्य दिखाते ।
शिष्य के अश्रु थे विलसाते, गुरु-चरणों पर अर्घ्य चढ़ाते ।।४०।।
{प्रेम पगे प्रेमी कहलायें, सिर दे दें पर दाम न चाहें ।
प्रीति भरे पीकर वे प्याले, अर्पण प्राण करें मतवाले ।।४१।।
पीछे पैर नहीं तो मोड़ें, सिर जावे पर साथ न छोड़ें ।
होवें कभी न द्वेषी द्रोही, क्रीत उन्हें कर सके न कोई ।।४२।।
गुरुवर भी होते सुखदाई, बनते जो पिता और माई ।
शिष्य जनों पर जाते वारे, भेद भाव से रहते न्यारे ।।४३।।
उन के होते जन अनुयायी, जो न स्वार्थी मोह-युत मायी ।
अनुगामी पर जीवन देते, मधुर वचन से मन हर लेते ।।४४।।
सरल सत्य से जो अपनाते, बन्धु बनते प्रेम के नाते ।
रघुराज हनुमान् सी जोड़ी, सुगुरु शिष्य की मिलती थोड़ी} ।।४५।।

बोले रघुपति, सोम! सुनाना, सीता कष्ट-कथा बतलाना ।
प्यासे जन को जैसे पानी, ऐसे मुझे है वह कहानी ।।४६।।
उसने पुनरपि कथा उच्चारी, सिया-व्यथा की आदि से सारी ।
देव! देवी न जग में दीखी, दूसरी दिव्य सिया सरीखी ।।४७।।
रहती निरन्न निरन्तर रोती, निश दिन में वह कभी न सोती ।
सती-धर्म में धरणी समाना, रहती सहती दुखड़े नाना ।।४८।।
उस का व्रत नियम है पूरा, कोई कर्म न मिले अधूरा ।
निश्चल निश्चय चित्त तथा ही, अचल-चूल अविचला यथा ही ।।४६।।
व्रत-वेदी पर बलि बनाना, तन मन धन सुख सम्पत् प्राणा ।
उस के लिए तो सुगम बड़ा है, वज्र सम दिल उसका कड़ा है ।।५०।।
तेरी बात सुनते सुनाते, उस के आँसू हैं भर आते ।
इक टक निरखे नभ को ऐसे, आप खड़े हों ऊपर जैसे ।।५१।।
सिर नीचा कर आंखें मूँदे, अटूट टपका आँसू-बूँदें ।
गुन गुन बातें करती जाती, ज्यों हो आपको व्यथा सुनाती ।।५२।।
कहां तक कहूँ कटुतर ऐसी, पीड़े प्राण कथा इस जैसी ।
शीघ्रतर होना रघुराई, प्रिया पत्नी का प्रबल सहाई ।।५३।।
सुन सर्व हनुमान् की वाणी, राघव की काया थर्रानी ।
बोले मुख से गद् गद् होते, सीता-दुःख से छम छम रोते ।।५४।।
सहित सुग्रीव हम यान करेंगे, विपद् सिया की सर्व हरेंगे ।
खल अरिदल-बल छल मथ सारा, करेंगे उसका ही निस्तारा ।।५५।।
बांके वाण लखन के तीखे, वैरी पर बन वज्र सरीखे ।
पड़ेंगे रक्त बहुत बहाते, तन पिंजर को चूर बनाते ।।५६।।
अंगद आदिक आप चलोगे, दस्यु दुष्ट दलों को दलोगे ।
न्याय धर्म स्थापन कर ऊँचा, दिखलाओगे सत्य समूचा ।।५७।।

लंकाकाण्ड

पहला सर्ग

*सीता का पाकर पता, हनुमत् को दे मान ।
उठ जा वानर राज को, बोले श्री भगवान् ।।१।।
गहरे सिन्धु अगाध को, करना जा कर पार ।
सेना ले कर वानरी, है दुष्कर व्यापार ।।२।।
करिए कौन उपाय अब, यह है मुझको सोच ।
कार्य जैसे सिद्ध हो, वह विधि लो आलोच ।।३।।
रामचन्द्र को लख तब, करते शोक विचार ।
बोले वानर-राज जी, करके बहुत विस्तार ।।४।।
सीता का पाना पता, बहुत कठिन था काम ।
अब तो जाना है गया, नाम गाम अरि-धाम ।।५।।
केवल करना शेष है, अरि पर अब तो यान ।
इस में साहस चाहिए, बल उत्साह प्रधान ।।६।।
बल से वानर वाहिनी, पार सिन्धु कर क्षार ।
करेगी शत्रु दमन कर, जानकी का उद्धार ।।७।।
मेरे कहने पर सभी, बांके वानर धीर ।
अग्नि में पड़े कूद कर, दे दें सकल शरीर ।।८।।
कौन कठिन वह कर्म है, जो ये सकें न साध ।
करेंगे सिन्धु पार ये, निश्चय सहित निर्बाध ।।६।।

* दोहा।

उत्साह साहसवान् बन, चिन्ता सर्व निवार ।
क्षत्र कर्म के काल में, उठिए बल-भण्डार ।।१०।।
सोच समझ कर ज्ञान से, ऐसा करो उपाय ।
सागर पर अति दृढ़ पुल, शीघ्र बान्धा जाय ।।११।।
सेतु बन्ध जावे तभी, सेना तब तत्काल ।
दन-दनाती जायेगी, उस तट, देवदयाल! ।।१२।।
शोक न करिए भूपते!, नहीं शोक का स्थान ।
छल-बल-युतखलदलोंपर, करिए क्रोध महान् ।।१३।।
सूक्ष्म बुद्धि विवेक से, मार्ग लो निर्धार ।
हम से मिलकर सोचिए, ज्यों जावे अरि हार ।।१४।।
निश्चय पूरा है मुझे, जावेंगे हम जीत ।
उठो इस लिए हे नृप, तजो सोच विपरीत ।।१५।।
शुभ-सूचक सब शकुन हैं, देश काल अनुकूल ।
मुझे विजय है दीखती, हे शुभ मंगल मूल ।।१६।।
*मान सर्व सुग्रीव-सम्मति, कहा रघुपति ने तभी ।
उस द्वीप के हनुमान् जी, भेद कहिए तो सभी ।।
सुनो देव जी, वह बोला, दुर्ग वर्णन सब अभी ।
जिसे जाने बिना जाना, नहीं सम्भव है कभी ।।१७।।
नाम लंका द्वीप सुन्दर, खारी सिन्धु पार है ।
विशाल सागर है भयकर, तरना अति दुष्कार है ।।
मच्छ कच्छ हैं भय को देने, जीव राशि अपार है ।
द्वीप है वन गिरि-शोभित, जिसका बहु विस्तार है ।।१८।।

* गीतिका।

जन धन से पूर्ण पुर है, उस में हस्ति हैं बड़े ।
घुड़-शाल में सहस्रों अश्व, वेग वाले हैं खड़े ।।
रथ सेना है बड़ी वहां, वीर लाखों हैं कड़े ।
जा कहीं भी जो न हारे, आज तक जब भी अड़े ।।१६।।
पुरी के हैं उच्च तोरण, चार उसके द्वार हैं ।
किवाड़ सब ही सुदृढ़ हैं, लग रहे हथियार हैं ।।
इषूपल नामक कलें तो, रहती सब तयार हैं ।
यंत्र सज्जित बड़े बहुत, दुर्ग वा प्रकार हैं ।।२०।।
चारों ओर मोर्चे बने, दीखते हैं दूर से ।
सैकड़ों हैं यंत्र वहां, सजे सैनिक शूर से ।।
खाई गहरी है चौड़ी, भरी पानी-पूर से ।
सहस्रों सैनिक हैं सज्जित, बने मद में चूर से ।।२१।।
है सुरक्षित नदी-दुर्ग से, दुर्ग दुर्गम है गिरि ।
वन-दुर्ग से वह पुरी तो, सदा रहती है घिरी ।।
चौथे दुर्ग सुकोट किले, भित्ति सब दिश को फिरी ।
ऐसे दुर्ग चार से वह, वज्र रूपा है निरी ।।२२।।
सिन्धु से है दूर पर वह, पन्थ टेढ़े हैं वहाँ ।
भूल भुलैइयों में नहीं, सूझे जाय जन कहाँ ।।
पद पद पर गढ़ किले हैं, बने मोर्चे हैं जहाँ ।
लगे यंत्र खड़े सैनिक, हैं मिलते जहाँ तहाँ ।।२३।।
पुरी का सुन सर्व वर्णन, उसे राघव ने कहा ।
सोम! सुन्दर सत्य समझो, असुर-राज न अब रहा ।।
सहना सीता का दुखड़े, जाता मुझ से न सहा ।
सुग्रीव! करो सब तयारी, लिये दल बल भी महा ।।२४।।

सर्व-सम्मति से सचिव ने, एक होकर हां कही ।
फिर तो कूच में कमी कुछ, इधर उधर से न रही ।।
बोले रघुपति चिन्ह शकुन, सभी शुभ कर हैं सही ।
कर मंगल-कर्म इस समय, समर यात्रा हो वही ।।२५।।
मध्य नभ में है भानु, विजय मुहूर्त है भला ।
नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनी, रख रहा है शुभ कला ।।
विजय-लाभ अवश्य लेगा, इस समय दल-बल चला ।
मान मर्दन साथ रावण, जायगा मसला मला ।।२६।।
कर स्वस्तिक कर्म शुभतर, कहा उसने सर्व से ।
नील सैनिक लाख ले कर, चले आगे गर्व से ।।
मधु जल फल की करे रक्षा, शत्रु सेना खर्व से ।
तेज बल से बढ़े ऐसे, यथा सागर पर्व से ।।२७।।
देखना कहीं आ रावण, जल को विषमय न करे ।
असुरगण आ कर कहीं तो, फूल फल अन्न न हरे ।।
ऊंच नीच विषम स्थल में, छुपा शत्रु न हो परे ।
विषम पथ सम बने, सेना, यथा सुख से अनुसरे ।।२८।।
नामी सेनापति ऋषभ, ओर दाहिनी से चले ।
एक लाख होवें सैनिक, कथन उसके के तले ।।
गन्धमादन चले बायें, लाख योद्धा ले भले ।
यदि शत्रु का विघ्न हो तो, तुरत वह उसको दले ।।२९।।
मध्य में ले अनुज को मैं, सुग्रीव भूप संग में ।
लाखों वानर नर वर तर, भरे बड़ी उमंग में ।।
ले चलूँगा भर आवेश, उनके एकैक अंग में ।
बढ़े सेना, वर्षा में ज्यों, महा नदी तरंग में ।।३०।।

दे तथा आदेश रघुपति, मौन तब ही हो गए ।
सुग्रीव लक्ष्मण भी सहमत, हो तत्क्षण तो गये ।।
मुख्य जन सब हुए सम्मत, वहां थे भी जो गये ।
कहते वीर गर्व ला कर, पार हम हैं लो गये ।।३१।।
बाहुबल पर बलवती वह, बढ़ी वानर-वाहिनी ।
वायु विद्युत-वेगवत् बन, चली सब सुखदायिनी ।।
गर्व गौरव भरी जाती, रघुराज अनुयायिनी ।
जय जय नाद से नभ हिलाती, वीर गीत सुगायिनी ।।३२।।
शस्त्र-सज्जित बहुत विधि से, अरि जनों को त्रासिनी ।
समा सिन्धु लहरें लेती, वीर भाव उल्लासिनी ।।
गिरि-नद सम उछलती थी, महा मन्यु उच्छवासिनी ।
समर नाद पुकार करती, रणक्षेत्र विलासिनी ।।३३।।
रवि शशि सम थे ही शोभित, दोनों बन्धु हर्ष से ।
ग्रह-राशि तारा गण सम, सजे वीर उत्कर्ष से ।।
सुग्रीव शुक्र सम सुहाता, शक्ति तेज स्पर्श से ।
करते निर्णय यदि उलझन, हो तो परामर्श से ।।३४।।
जाती जिस पथ से वह सेना, लोग कहते यह मिले ।
रघुपति के काज ये सभी, पुरुष जाते हैं पिले ।।
इनके भुजबल देंगे कर सम, तोड़ लंका के किले ।
बहुत बांके वीर हैं सब, मुख कमल से ले खिले ।।३५।।
{वन-विहारी वीर बन्धु, सुजन परिजन हीन थे ।
सीता के वियोग में तो, बड़े दुखिया दीन थे ।।
धन जन और वस्त्र तक से, फिरते तब विहीन थे ।
पीत पत्र समान पीले, रहते उदासीन थे ।।३६।।

यह अब है गौरव-गरिमा, इनके सु-गुण ज्ञान की ।
प्रेम वत्सल भाव की शुचि, कर्म धर्म विज्ञान की ।।
नीति न्याय विचार की शुभ, चरित आदर मान की ।
लाखों जन जाते हैं पीछे, मुक्त करने जानकी ।।३७।।
महा मोहिनी मूर्ति हैं, रामचन्द्र जी यथा ।
मोहन मंत्र से वश में, किये जन होवें तथा ।।
इन के संघ, संगठन की, कहे कौन कहो कथा ।
अवश्य इस के तप बल से, जायगा रावण मथा ।।३८।।
केन्द्र शक्ति का बना है, प्रेम का पुतला बना ।
अतुलाकर्षण से सेना, जा रही है दनदना ।।
परम पावन प्रेम से जन, लिये इन्हों ने अपना ।
अप्रतिम प्रतिमा प्रीत की, है यह जाय ही गिना} ।।३६।।
विकट विषम लम्बी बाटें, लांघते थे जा रहे ।
विश्राम लेते अल्प कहीं, मार मार मचा रहे ।।
हनन रावण विजय लंका, यही नाद सुना रहे ।
सिया को कर मुक्त लाना, शब्द थे गूँजा रहे ।।४०।।
नगर सीमा लाँघ जाते, गाम जाते छोड़ते ।
नदी नाले पार करते, रोक पथ की तोड़ते ।।
गिरि वनी घाटी खाई, उन का पग न मोड़ते ।
खाते जाते फल मीठे, मधु पीते निचोड़ते ।।४१।।
विषम समतल भूमि लांघे, वे जाते महाबली ।
घने वन अति घोर अटवी, विकट आती जो थली ।।
खान पान थकान उन की, नीन्द भूख सभी टली ।
सर्व सेना जा रही थी, नदी भर कर हो चली ।।४२।।

रघुपति सह जाते वानर, दौड़ वायुवेग हो ।
जैसे वायुवेग प्रेरा, महा-मण्डल मेघ हो ।।
जैसे जाय मत्त हाथी, जिसे क्रोध उद्वेग हो ।
ग्रह दौड़े रवि संग ज्यों, जिसका अति सुवेग हो ।।४३।।
मलयाचल पर चढ़ उतरे, फिर महेन्द्र पर चढ़े ।
ताल सर वहाँ मत्स्य सेवित, देख कर आगे बढ़े ।।
उतरते तराई तीखी, लांघते गहरे गढ़े ।
गये सागर-तीर पर वे, कवच-आदिक से मढ़े ।।४४।।
रघुपति की पा आज्ञा, सर्व सेना वह बड़ी ।
डाले डेरे वहां उतरी, छावनी स्वच्छतर पड़ी ।।
बान्ध मोर्चे सहित सुरक्षा, सावधानी कर कड़ी ।
व्यूह रचना किले बंदी, स्थाप यंत्रों की लड़ी ।।४५।।
सेना-सागर था शोभित, क्षेत्र को पसारता ।
बल शक्ति आवेश की वह, उच्च लहरें मारता ।।
गम्भीर गर्जन नाद कर, विजय वचन पुकारता ।
एक तनमन-जलमयी थी, वहां एकाकारता ।।४६।।
जल-सागर आता तट को, वह बढ़ा उस ओर था ।
जल का था वहीं किनारा, उसे बढ़ना और था ।।
बल-सागर था रुका, उसे, जाना अपर ठौर था ।
जल-सागर पर से बहना, घोर उसका शोर था ।।४७।।
उमड़ ठाठें मारता जल, लिये लहरी जाल को ।
उछल कूद करता लीला, धार रूप विशाल को ।।
टक्करों से तोड़ता तट, लाता अन्तकाल को ।
डरे वानर देख उसके, लहर माल उत्ताल को ।।४८।।

गर गराता गर्जता था, दौड़ आता तीर को ।
लिये जाता बहुत आगे, गज़ों ऊँचे नीर को ।।
तरंग तरल उतावलों से, भीत करता वीर को ।
फिरे पीछे तभी बल से, खींचता भी धीर को ।।४६।।
आ रही थी रात धीमी, नील सागर था खिला ।
तारागण नभ नील लिये, तीर को पड़ता पिला ।।
नील गिरि ज्यों ले हीरे, चले चम चम कर हिला ।
लहर ऊँची तथा दीखे, नील पत्थर का किला ।।५०।।
ग्रह-गण शशि सहित नभ तो, था सिन्धु में आ रहा ।
नील नभ गम्भीर जल में, था गहरा समा रहा ।।
नीलता में नीर नभ मिल, एकता था पा रहा ।
रहा ऊपर चम चमा वह, नीचे चम चमा रहा ।।५१।।
नभ भूमि एक ऐसे, देख वानर नर डरे ।
नभ भूमि भेद में तब, कौन अन्तर को करे ।।
इस ऊँचे गहरे जल को, कौन जन है जो तरे ।
कह रहे थे वे परस्पर, शिला सेतु कहां धरे ।।५२।।
उलझ विषम समस्या में वे, बने बहुत उदास थे ।
कौन कैसे तरे कह कर, उष्ण लेते सांस थे ।।
कह रहे थे भेद ज्ञाता, खड़े जो भी पास थे ।
देते उन को सब परिचय, जो धैर्य-निवास थे ।।५३।।

दूसरा सर्ग

*राघव सेना साथ, उतरे सागर तीर पर ।
बोले बल के नाथ, सुग्रीव! सुरक्षा हो सभी ।।१।।
बहुत अच्छा कह भूप, बोला द्विविद मैन्द को ।
निज जन का रख रूप, बल सुरक्षण मिल कर करो ।।२।।
मोर्चे बंदी स्थान, व्यूह गुप्त पथ भेद सब ।
हो कर सदा सावधान, जानो देखो रात दिन ।।३।।
सैनिक तम्बू तान, ठहरे साहस से भरे ।
सोहे सिंह समान, उत्साह बल से गर्व से ।।४।।
नायक अन्य अनेक, नियत हुए तब काम पर ।
स्थान नहीं था एक, जहां लगे न यंत्र थे ।।५।।
शस्त्र - अस्त्र - भण्डार, नियत हुआ उस स्थान में ।
पर जन का संचार, सर्व असम्भव था जहां ।।६।।
लगे अन्न के ढेर, खाद्य - पदार्थ - पुँज थे ।
कर सुरक्षित उस बेर, बहुत कड़ा पहरा लगा ।।७।।
जल-स्थान हुआ ठीक, उसको सुरक्षित किया गया ।
वहां वीर निर्भीक, पहरा देने लग गये ।।८।।
औषध संचयवान, स्थान नियत था भी वहां ।
वैद्य बड़े विद्वान्, निपुण नियत थे बहुत से ।।६।।
सब मार्ग उस ओर, आते-जाते बंद थे ।
दल नियत सभी ठौर, किये गये थे ध्यान से ।।१०।।

* सोरठा।

चतुर चरों की चाल, चहुँ ओर थी चपलतर ।
रघुपति देव दयाल, सेना मध्य विराजते ।।११।।
सेनानी नर शूर, रक्षण करते देव का ।
रखते उन से दूर, अपरिचित आता जो जन ।।१२।।
सायं-संध्या जाप, अनुज सहित रघुराज जी ।
विधि से करके आप, स्वस्थ हुए विश्राम ले ।।१३।।
पर सीता का शोक, फिर फिर उनके चित्त की ।
देता गति विधि रोक, अश्रु लड़ी को बान्ध कर ।।१४।।
लक्ष्मण सुग्रीव धीर, धैर्य देते थे उन्हें ।
बार बार वर वीर, वारि बहाते नयन से ।।१५।।
हो सुशान्त रघुराज, सोये निज जन सहित तब ।
दिन चढ़ने पर काज, नव नव फिर होने लगे ।।१६।।
शत्रु-नगर के भेद, सेना दल बल का पता ।
नीति न्याय का छेद, कलह फूट क्या है वहां ।।१७।।
इस ज्ञान के उपाय, करते चर से मिल सचिव ।
गुप्त सभा में जाय, सेनापति भी सोचते ।।१८।।
सेतु-बन्ध की बात, विधि से होती थी वहाँ ।
निपुण लगे दिनरात, संचय करते वस्तु का ।।१६।।
*उधर रावण की सभा में, सचिव जन आकर डटे ।
असुरपति ने कहा उनको, कैसे यह विपदा हटे ।।
हत होवे कैसे राघव, सुग्रीव-दल कैसे कटे? ।
सिया राणी बने मेरी, कार्य सिद्धि तब पटे ।।२०।।

---

* गीतिका।

विजय-मूल विचार माना, गुणीगण मतिमान् ने ।
उत्तम मध्यम अधम तीन, वे कहे गुणवान् ने ।।
कहे ऐसे तीन मन्त्र, ज्ञानी जन विद्वान् ने ।
न्याय नीति में निपुण ने, विमल बुद्धि-निधान ने ।।२१।।
कहा उत्तम तो वही जन, मन्त्री मित्रों में मिला ।
सोचे हानि-लाभ को जो, जाये न हठ में ठिला ।।
कहा मध्यम जो अकेला, बुद्धि तीव्र से हिला ।
सुहित सोचे, पर अधम है, मतिहीन जो बेदिला ।।२२।।
एकमत हो बुद्धि वाले, उत्तम मंत्र वह है ।
वाद करके एक हों जब, मध्यम तंत्र वह है ।।
कलह फूट होवे जिसमें, अधम कुमंत्र वह है ।
जहां अधम मंत्री मंत्र, भू, परतंत्र वह है ।।२३।।
सुग्रीव सेना ले राघव, आ जाय इस पार को ।
उस समय कहो क्या होगा, नगर धन घर बार को ।।
सकें कैसे रोक उसके, अभी से संचार को ।
करो आप उपाय ऐसा, मार पहले वार को ।।२४।।
भूप का सुन कथन मन्त्री, कर विनय बोले उसे ।
हमको कुछ न ज्ञान उसका, शत्रु कहते हो जिसे ।।
आज तक तुमने न छोड़ा, बिना जीते भी किसे ।
कूटनीति तेरी में तो, वीर बांके सब पिसे ।।२५।।
नहीं भय है आज तो कुछ, असुर-भूप विशाल को ।
जिस ने जीते सुर मानव, विजित किया काल को ।।
कैलाश तक देश जीता, और सब पाताल को ।
सोचिए न मन में कुछभी, मन्द मानव माल को ।।२६।।

कहा तब प्रहस्त ने यह, किया जो हनुमान् ने ।
अधिक कटुतर फल दिया था, हमको निज-अज्ञान ने ।।
तुच्छ वानर वाहिनी कर, कहा कोरे मान ने ।
मद में उसकी चपल चाल, हम न पाये जानने ।।२७।।
यदि आज्ञा हो मुझको, देव की, तो मैं करूँ ।
लिये सेना आसुरी को, उस पार को चल तरूँ ।।
सहित बन्धु सुग्रीव वानर, प्राण राघव के हरूँ ।
विजय वानर वाहिनी कर, भूप का मैं वर वरूँ ।।२८।।
इन्द्रजित आदिक योद्धे, बोले गर्व मान से ।
एड़ियों को खड़ा करके, ध्वनि ऊँची तान से ।।
शस्त्र तीखे तो दिखाकर, अपनी आन बान से ।
कहते थे हत है राघव, असुर-बाण कमान से ।।२६।।
घटा-टोप घमण्ड का था, घोर तर उनका घना ।
मारते थे बड़ी डींगें, मान जिनका था बना ।।
चापलूसी हो रही थी, अर्थ जाता था छना ।
दुर्दण्ड दानव दल यों ही, रहा था तब दनदना ।।३०।।
कहा विभीषण ने नत हो, तात! बात विचारिये ।
पराक्रम की बात आप, अब मन से बिसारिये ।।
इस सैनिक दल को व्यर्थ, नहीं आप उभारिये ।
सैनिकों को कहा उसने, बहुत डींगें न मारिये ।।३१।।
पराक्रम तो बने वहां, भ्रान्त अरि उन्मत्त हो ।
जो व्यसनी काम-रत हो, आलसी प्रमत्त हो ।।
रोग विपदा से घिरा हो, भाग्य से जो हत हो ।
यदि वहां भी विवेक बुद्धि, सचिवों की सहमत हो ।।३२।।

रामचन्द्र तो बड़ा भी, सचेत सावधान है ।
व्यसन विषय की बुरी तो, नहीं उसको बान है ।।
उद्यमी नीरोग है वह, तीव्र बुद्धिमान् है ।
क्षत्र-धर्म में है तत्पर, सदा एक समान है ।।३३।।
ऐसे स्थिरमति शूर नरको, कहो कौन डरा सके? ।
अजय योद्धा को जगत् में, कैसे जन हरा सके? ।।
लिये लाखों वीर आया, उसे कौन फिरा सके? ।
मेरुवत् जो अचल नर है, उसे कौन गिरा सके? ।।३४।।
एक दूत जो था आया, कैसे कर्म वह कर गया ।
उसके घोर उत्पात से, देश पुर था डर गया ।।
असुर जन का मान महत्त्व, दिन दहाड़े हर गया ।
दग्ध कर दानव-दिलोंको, पीछे सिन्धु तर गया ।।३५।।
मान नहीं पराक्रम का, बल का कुछ न माप है ।
बढ़ी सेना वानरी का, किया जाय न नाप है ।।
सब सैनिक मनों में रहा, आवेश अति व्याप है ।
प्रताप-भानु शक्ति-सिन्धु, रामचन्द्र आप है ।।३६।।
लाये पत्नी उसकी सिया, कहो तो किस दोष में ।
ऐसे अत्याचार से वह, क्यों न आये रोष में ।।
स्व, सुजन की करते रक्षा, जिन्हें बल तन कोष में ।
पत्नी-हरण पर वह कैसे, रहे चुप सन्तोष में ।।३७।।
धर्म बलयुत वीर नर से, वैर करना छोड़ दो ।
सती पत्नी उसकी अबतुम, उसे नत हो मोड़ दो ।।
प्रीति कर के मिलो उसको, रस्सी हठ की तोड़ दो ।
व्यर्थ का घमण्ड भांडा, स्व हस्त से फोड़ दो ।।३८।।

वाण बरसें नहीं जब तक, पुरी पर सर सर किये ।
हनन हों न नारी नर वर, परस्पर मर मर किये ।।
खड्ग तीखे नहीं पड़ते, गलों पर फर फर किये ।
दे दो सीता रघुपति को, रोकते हो किस लिये ।।३६।।
जब से सिया है यहां पर, विघ्न रहते हैं बने ।
हो रहे उत्पात नव नव, कष्ट आते हैं घने ।।
दे दो सिया कहा मानो, विरोध जिससे न तने ।
वानरों से वैर न बढ़े, समर परस्पर न ठने ।।४०।।
भाई की सब सुन बातें, कहा रावण ने उसे ।
उस प्रवासी रघुपति का, भय है कहो किसे ।।
मैं तो हूँ अजित जगत् में, सके जीत न सुर जिसे ।
सर्वसुन्दरी है सीता, छोडूँगा न मैं इसे ।।४१।।
बात ऐसी परस्पर कर, सभा विसर्जन हो गई ।
युद्ध टाले नहीं टलता, ध्वनि गर्जन हो गई ।।
मारो काटो अरिदल को, घोर तर्जन हो गई ।
हित-सुख-करी शुभा सम्मति, सभी वर्जन हो गई ।।४२।।

तीसरा सर्ग

*अगले दिन फिर कर सभा, बैठा रावण राज ।
असुर-संघ सब उमड़ आ, करने लगे समाज ।।१।।
रत्नजड़ित आसन भला, अतिशय सुन्दर रूप ।
सिर पर मणि-मंडित मुकुट, धारे बोला भूप ।।२।।

* दोहा।

सेनापति! प्रहस्त तुम, ऐसा करो विधान ।
चतुरंगिणी सेना अब, छोड़ शिविर का स्थान ।।३।।
पुर के चारों ओर फिर, करे रक्षा का काम ।
मोर्चे बंदी सर्व कर, हो सशस्त्र सब याम ।।४।।
सब कुछ करके ठीक तब, आकर भूपति पास ।
सेनापति बोला उसे, हुए रक्षित पुर-वास ।।५।।
सेनापति का सुन कथन, कर सम्बोधन भूप ।
बोला, सदस्य गण सुनो, देश काल अनुरूप ।।६।।
हिताहित हानि लाभ को, सुख दुःख अर्थ विचार ।
धर्म काम भी सोचिए, ज्यों हो संकट पार ।।७।।
आप ने किए काम जो, अब तक सर्व महान् ।
सचिव जन से निश्चय कर, फलाफल सब बखान ।।८।।
सुजन जनों की बुद्धि से, मैं जाता हूँ जीत ।
आज तथा ही सोचिए, काम न हो विपरीत ।।६।।
निश्चय जो न किया गया, है कारण यह एक ।
कुम्भकर्ण को मद्य में, बीते मास अनेक ।।१०।।
अभी सजग वह है हुआ, उसके बिना न काम ।
बनते फलते हैं कभी, इष्ट न हों परिणाम ।।११।।
रूप की राशि सुन्दरी, सीता तजी न जाय ।
होवे मेरी वह यथा, ऐसे करो उपाय ।।१२।।
नीरस है सीता बिना, मेरा सुख संसार ।
मुख-मण्डल उस मधुर बिन, सब है मुझे असार ।।१३।।
कामातुर मैं दीन हूँ, पाता हूँ सन्ताप ।
इस मानस परिताप से, मुझे बचाओ आप ।।१४।।

कुम्भकर्ण कर क्रोध तब, बोला, हे नरराज! ।
कर कुकर्म अति घोरतर, पूछ रहे हो आज ।।१५।।
पहले सीता-हरण से, हम से लिया न नाम ।
सम्मति लेते आज हो, हार सर्व कुल धाम ।।१६।।
मनमानी कर आदि से, कड़वे फल के काल ।
शुभ सम्मति हो मांगते, समय सुनहला टाल ।।१७।।
अनुचित कार्य है किया, सीता का अपहार ।
पछताना पड़ता सदा, कर अन्याय अविचार ।।१८।।
पहले करना उचित जो, पीछे करे अजान ।
उचित समय को लांघना, कोरा कहा अज्ञान ।।१९।।
भद्र तो इतना ही है, तीक्ष्ण, राघव-वाण ।
विष-मिश्रित भोजन यथा, ले न गये तव प्राण ।।२०।।
भाई मैं तो हूँ खड़ा, समर को हूँ तैयार ।
तेरे अरिदल का अभी, करता हूँ संहार ।।२१।।
मार काट कर शत्रु-दल, रक्त करूँगा पान ।
देवगणों में न कोई, मेरे गिना समान ।।२२।।
वानर-दल के मांस को, खाऊँगा कर चाव ।
दीर्घकाल पश्चात् यह, फला मनोरथ दाव ।।२३।।
मंत्री महापार्श्व ने, गहरा गर्व बगार ।
उत्साहित कर भूप को, किया बहुत अपकार ।।२४।।
हो उत्तेजित भूपति, बोला, मैं हूँ भीत ।
इस कारण करता नहीं, मैं यह बड़ी कुनीत ।।२५।।
नारी वर पुंजिक-स्थली, रूप रंग की खान ।
जाती ब्रह्मदेश को, मैंने ली पहचान ।।२६।।

वासनावश में हो अति, उसे शक्ति से घेर ।
उसका सतीत्व सुधर्म, नष्ट किया उस बेर ।।२७।।
अपने घर में जब गई, ब्रह्मदेव महान् ।
बिना कहे ही वह कर्म, गये ज्ञान से जान ।।२८।।
बोले आ आवेश में, वचन-वज्र कर पात ।
यदि फिर करे कुकर्म तू, तो होगी तव घात ।।२९।।
विवश कर पर नारी को, यदि मैं करूँ कुपाप ।
मेरा सिर टुकड़े बने, है मुझको यह शाप ।।३०।।
इस लिए मैंने न किया, सिया पर बलात्कार ।
मुझे अन्यथा सुगम था, वह कर्म व्यभिचार ।।३१।।
गिरि-गुहा में सो रहे, दिये सिंह को क्रोध ।
कौन मरण है मांगता, करता बहुत विरोध ।।३२।।
निकले मेरे धनुष से, अग्नि-बाण बन आग ।
राघव तन को कर भस्म, छोड़ेंगे विष-नाग ।।३३।।
सूर्य ज्यों निज तेज से, करता तारे मंद ।
त्यों मैं अरिदल सर्व का, बल कर दूँगा बंद ।।३४।।
*सुन राजा की बात, विभीषण पुनरपि बोले ।
सियारूप यह नाग, लिया क्यों तू ने भोले ।।
गले लपेटा कहो, किस ने, महा विष घोले ।
अब राघव के वाण, गिरेंगे जैसे ओले ।।३५।।
खण्ड खण्ड नहीं हों, जब तक आसुरी सब सिर ।
चहुँ ओर से पुरी, न जावे जब तक तो घिर ।।

* रोला।

दुर्ग कोट गढ़ किले, न जाते जब तक सब गिर ।
दे दो सीता, भूप!, आप ही जा कर तो फिर ।।३६।।
इन्द्रजित् वर वीर, शक्तियुत कुम्भकर्ण हो ।
देव रहें रक्षपाल, तो भी कहीं न शरण हो ।।
सोचो राजन् आप, न जिससे सर्व-मरण हो ।
नगर देश हो शान्त, जिससे विपदा-तरण हो ।।३७।।
विभीषण से चिढ़ कर, कहा तब मेघनाद ने ।
भीतरी भीरु भाव, बोला तेरे वाद ने ।।
सगे बन्धु विपरीत, तुझको किया विषाद ने ।
रामचन्द्र का पक्ष, पोषा बहुत विवाद ने ।।३८।।
असुर-वंश में आप, एक बहुत डरपोक हो ।
कायरपन के वाद, रह कर बने रोक हो ।।
रामचन्द्र का तो, हमें कहो क्यों शोक हो ।
मार करेंगे दूर, अरि चाहे सब लोक हो ।।३६।।
बन्धु-पुत्र की बात, सुनकर कहा तब उसने ।
तुमको यह अविवेक, सिखाया कहिए किसने ।।
बाल-बुद्धि है मूढ़, मुझे कहा भीरु जिसने ।
सबका होगा नाश, बताया कहने इसने ।।४०।।
गर्म गर्म कर बात, परस्पर वे थे लड़ते ।
कह कर कायर डरूँ, दोनों बहुत थे अड़ते ।।
मूर्ख मूढ़ अजान, वचन कह लपके पड़ते ।
वचन-वाण बौछाड़, विविध विधि से थे जड़ते ।।४१।।
पुत्र बन्धु की कलह, देख कहा असुरपति ने ।
बन्धु-वैर में बढ़ी, द्वेष की तेरी मति ने ।।

मुझे किया है तंग, बहुत अब तेरी अति ने ।
घर में डाली फूट, बुद्धि तव कलहवती ने ।।४२।।
विषधर से है बुरा, बन्धु जो बने विरोधी ।
मित्र है अरि समान, कलह-रत जो हो क्रोधी ।।
मिलकर जाति के जन, हैं करते जाति बोदी ।
अपनों की यह रीति, जाय न कभी भी सोधी ।।४३।।
देख बन्धु की विपद्, हर्ष को पाते अपने ।
निज जन के पतन के, देखते अपने सपने ।।
देते अपने नहीं, कदापि अपने पनपने ।
बन्धु विपद् में पड़े, बन्धु मिल जपते जपने ।।४४।।
अपना हो प्रधान, साधक वैद्य निपुणतर ।
धर्मशील गुणवान्, अपने करते अनादर ।।
शूर वीर को कभी, नहीं दें अपने आदर ।
जब आवे अति विपद्, कष्ट की बनते चादर ।।४५।।
अपना स्वार्थ गोप, हों वे मन से भयंकर ।
जैसा होता बहुत, विषैला दुःखकर विषधर ।।
एक पुरानी कथा, सुनकर रखिये चित्त पर ।
पद्मवनों के बीच, गये जब मिलकर बहु नर ।।४६।।
हस्त में रस्से लिये, हस्ति-बन्धन-अनुसरते ।
बोले हाथी उन्हें, नहीं हम तुम से डरते ।।
अग्नि शस्त्र से नहीं, और न रस्सों से मरते ।
अपने पर के साथ, मिले हैं जीवन हरते ।।४७।।
आग लगाये जो, देवे जो विष हत्यारा ।
पड़े शस्त्र को लिये, धान धन हरने हारा ।।

हरण करे जो खेत, नारी-हारी नकारा ।
आततायी इन का, शास्त्र ने नाम उच्चारा ।।४८।।
आततायी कु-पूत, स्वार्थी बन्धु हो जाते ।
अपने स्वार्थ हेतु, वंश को भस्म बनाते ।।
पराधीन हो प्रेत, पतितपन पाप कमाते ।
अपने घर को आग, अपने कर से लगाते ।।४६।।
पद्मपत्र पर बूँद, न रहती जैसे जल की ।
शरत्-वर्षा में यथा, न कीचड़ हो दलदल की ।।
भौरें रस कर पान, सार न लेते कमल की ।
तथा कही है प्रीति, बने बन्धु मित्र कु-खल की ।।५०।।
यथा हस्ति सिर बीच, फैंकता धूल नहा कर ।
ऐसे बन कर मित्र, द्रोह करते हैं आकर ।।
यदि कहता जन अन्य, ऐसी बातें बना कर ।
तो मैं उसे तत्काल, छोड़ता मार मिटा कर ।।५१।।
होवे तुझे धिक्कार, कहा राजा ने जब ही ।
छोड़ो मेरा देश, अभी ही तुम तो अब ही ।।
मुख न दिखाना मुझे, अब से काल तो सब ही ।
जा अब उसके पास, रहा है जिससे दब ही ।।५२।।
चार पुरुष ले साथ, उड़कर नभ में चढ़ा वह ।
बोला कर अति क्रोध, उसे वहाँ हो खड़ा वह ।।
बन्धु धर्म से हीन, बना तू मुझे कड़ा कह ।
व्यभिचार के बीच, अब तू हठ से गढ़ा रह ।।५३।।
मिलते हैं जन बहुत, वचन जो मीठे कहते ।
अप्रिय पथ्य सुवचन, कहें जो शुभ में रहते ।।

दुर्लभ वे नर जान, कथन कटु हितकर सहते ।
करते तद् अनुकूल, नहीं कुपन्थ में बहते ।।५४।।
जो कुछ मैंने कहा, सर्व है न्याय युक्त ही ।
मानो निजहित हेतु, मेरा पूर्व उक्त ही ।।
अपने सुख के लिए, करिए सीता मुक्त ही ।
भाग्य-भाग भयकर, लीजिए न तो भुक्त ही ।।५५।।
लंका का सब नाश, देखना मुझको इष्ट न ।
नर-नारी का हनन, लगेगा मुझको मिष्ट न ।।
करो बन्धु वह काम, कुल वंश होवे पिष्ट न ।
रघुपति से सम्बन्ध, मेरा कोई घनिष्ट न ।।५६।।
तुम हो मेरे भ्रात, इस लिए कही बात है ।
यद्यपि तुम हो बड़े, बड़ा हित यह विख्यात है ।।
मेरा कहना सत्य, न्याय के सहित तात! है ।
चुप रहना इस काल, करना कुल का घात है ।।५७।।
मेरे प्यारे बन्धु!, क्षमा वह कहना करियो ।
कर रक्षित वंश जाति, आप विपदा से तरियो ।।
हो तव मंगल भूप!, पुरी के संकट हरियो ।
मेरा कर बहिष्कार, सदा सुख को अनुसरियो ।।५८।।

चौथा सर्ग

*कर के अधिक क्लेश, वह आया इस पार ही ।
राघव पास विशेष, जाना था उस को तभी ।।१।।

* सोरठा।

देखा उसे समीप, आता सुग्रीव भूप ने ।
वानर कुल के दीप, हनुमानादि सजग हुए ।।२।।
कौन असुर हैं चार, क्यों आते इस ओर हैं? ।
देवें इन को मार, यदि आज्ञा हो तो अभी ।।३।।
इन बातों के काल, वह ठहरा आकाश में ।
कर के स्वर उत्ताल, वह बोला, सज्जन सुनो ।।४।।
असुर-वंश का भूप, दुराचार-रत जो बड़ा ।
बना पाप का रूप, रहता है वह रात दिन ।।५।।
उस का छोटा भ्रात, विभीषण नामक मैं हूँ ।
सीता-पक्ष की बात, कहते झगड़ा हो गया ।।६।।
बन कर बहुत विनीत, मैं कहता था भूप को ।
न्याय धर्म विपरीत, पर नारी का हरण है ।।७।।
जा कर रघुपति पास, इस को दे दो मान से ।
पर उसने दे त्रास, मुझे निकाला देश से ।।८।।
पुत्र पत्नी धन त्याग, आया हूँ मैं ओर इस ।
राघव जी बड़ भाग, शरण त्राण मेरी बनें ।।६।।
निज जन मुझ को मान, प्राण-त्राण देवें मुझे ।
शरणागत ही जान, रक्खें मुझे निज निकट ही ।।१०।।
करो निवेदन आप, जाकर उनको यह सर्व ।
जो भी कहें निष्पाप, मुझे बताना आ यहीं ।।११।।
वानर-राज सचेत, रघुपति पै शीघ्र गया ।
कर शंका-संकेत, सब कुछ उसने कह दिया ।।१२।।
बोला कर कुछ क्रोध, शत्रु, सर्प सम समझिए ।
छुप कर करे विरोध, हने बन्धु बन कर सखा ।।१३।।

यों आकर अकस्मात्, अवसर पर द्रोही बने ।
करे मित्र बन घात, सावधान हो जाइए ।।१४।।
बदल वेश भर रूप, असुर हो जाते हैं अरि ।
बन कर विविध विरूप, घातक चालें वे चलें ।।१५।।
किये कपट प्रहार, सुविश्वस्त को मारते ।
छल से करते वार, माया रचकर असुर जन ।।१६।।
ऐसे करो न काम, फूट फैलावें वे मिल ।
घुस कर हम में वाम, चाल चलें विद्रोही बन ।।१७।।
चाह रहा वह मेल, श्रीमानों का मीत हो ।
है अति टेढ़ा खेल, शत्रु-बन्धु होवे सखा ।।१८।।
होवे यदि स्वीकार, उस को कारावास दे ।
करूं वही व्यौहार, उचित नीति में जो कहा ।।१९।।
*कथन सुन सुग्रीव के सभी, वचन राघव ने कहे ।
हनुमान् जी आदि योद्धा, वहां थे सब सुन रहे ।।
रावण-बन्धु के विषय में, कथन समझे सच गये ।
उचित नीति सावधानता, ज्ञान हित सुख मतिमये ।।२०।।
कहा वानर-राज ने, वह कहते बुद्धिमान् हैं ।
बड़े हितैषी हों जो जन, करते यही प्रमाण हैं ।।
विपद् संकट काल में सब, रहते सावधान हैं ।
यही सम्मति देते मित्र, होते जो विद्वान् हैं ।।२१।।
आप सर्व भी दें सम्मति, यहां जो भी उचित है ।
असुर वंशीय से अब तो, कौन काम अनुचित है ।।

---

* गीतिका।

सर्व समर-सज्जा समय में, क्या करना समुचित है ।
परामर्श बिना किये तो, नीति मत संकुचित है ।।२२।।
अंगद जाम्बवान् आदिक, वचन बोले सब तुले ।
राजनीति देख समय को, सत्य अमृत में घुले ।।
असुर मन से नहीं मिलते, जैसे पत्थर न गले ।
कभी इन की कपट कालिख, धोये से भी न धुले ।।२३।।
भेज भेदिए सुचतुर नर, जानिये सब भेद को ।
उसे ऐसे मिलें सज्जन, सर्व जानें वेद को ।।
देश काल विचार कर सब, हरें गहरे खेद को ।
बातों लम्बी में डालें, पायें छुपे छेद को ।।२४।।
सब सुन कर बोले राघव, मुझे कहना है यही ।
कहे विभीषण हूं सखा मैं, मुझे संशय है नहीं ।।
मित्र बन कर जो भी आये, होती शंका न कहीं ।
विश्वास पात्र हो मेरा, रहेगा तो ही वही ।।२५।।
बोले वानरपति पुनरपि, बन्धु निज जो जन तजे ।
विपद् आपत् काल में जो, सगे से भिड़कर बजे ।।
सखा मित्र सुहृद वह जन, सोचिए कैसे सजे ।
स्व-सहोदर का नहीं सो, अपर को कैसे भजे ।।२६।।
बोले अनुज को स्मित सह, बिना शास्त्रों के पढ़े ।
वाक् वानर-राज की है, तथा किसी की न बढ़े ।।
वचन नीतिमय हैं हितकर, राज-तन्त्र से मढ़े ।
समय के अनुसार हैं सब, चित्त में जाते गढ़े ।।२७।।
परन्तु भेद और इस में, नय नीति अनुसार है ।
दीखता है जगत् में दो, शत्रु का प्रकार है ।।

अरि बनते निकट देश के, जिन्हें ईर्ष्या खार है ।
अपर होते जाति के जन, मेल जिनमें प्यार है ।।२८।।
वे अरि आक्रमण करते, देख विपत्ति काल को ।
अपर से मिले वे चतुर जन, ले गलाते दाल को ।।
देख विपदा में विभीषण, अति घिरा भूपाल को ।
बन गया हो शत्रु उसका, चल चातुरी चाल को ।।२६।।
कैसे ही हों पाप रहित, धर्म धारी-धुर भले ।
पर कुटुम्बी निजी हितकी, ताक रखते सब तले ।।
त्याग बन्धु को आपत् में, दूर जाते वे चले ।
पर-पक्ष में जा तो मिलते, खोल भेदों के किले ।।३०।।
हो सकता यह भी है, शंका कर भूपति ने ।
इसे निकाला हो घर से, समझा शत्रु कुमति ने ।।
दिया कर विरोधी उसको, इसकी शुभ शुचि मति ने ।
बना दिया हो वह, वैरी, नीच उसकी कुगति ने ।।३१।।
राज्येच्छा से है आया, यही मैं हूँ जानता ।
ग्रहण करो सखे! उसको, शकुन शुभ हूँ मानता ।।
स्वार्थ-वश होता ही है, बढ़े खींचा तानता ।
वैर फूट कलह तनातन, करे हठ-प्रधानता ।।३२।।
भरत लखन से सब न बन्धु, सुहृद् तुम से न मिलें ।
पुत्र मुझसे सब नहीं हैं, कर्म-फल अवश्य खिलें ।।
क्या है शक्ति बल जनों में, कदापि इस ओर हिलें ।
देव दानव दैत्य दुष्ट, सभी आयें तो पिलें ।।३३।।
दीन बन जो दया मांगे, शरणागत जाय बना ।
होवे यदि वह घोर शत्रु, तदपि जाय नहीं हना ।।

शरणागत की करे रक्षा, वीर जाय वही गिना ।
कहा पतित है जो न रक्षा, करे हो कर अनमना ।।३४।।
कहे जो 'मैं आपका हूं, शरण में जब आ पड़े ।
मम व्रत है रक्षा करना, कष्ट कैसे हों कड़े ।।
श्रेष्ठ! राजन्! यहां उसे, लाइये कर मन बड़े ।
सुन कथन यह राज वानर, हुए उसी समय खड़े ।।३५।।
कहा वानरपाल ने तब, तुम्हें फबता है यही ।
आर्य सभ्यता है यही, कथन सब का है यही ।।
रहे विभीषण मिल हम में, वचन अब का है यही ।
मेरा भी है यह निश्चय, सुना जब का है यही ।।३६।।
सुग्रीव-संकेत से तब ही, उतर वह आकाश से ।
चार साथी सहित भू पर, बड़ी आया आश से ।।
रघुपति के पैरों पर पड़, बचा वह नैराश से ।
दया दान उसने माँगा, देव उस अविनाश से ।।३७।।
कहा विभीषण ने मिलकर, भाई असुरपाल का ।
मैं छोटा, शरणागत हूँ, आज देव दयाल का ।।
अशरण-शरण आप ही हैं, मेरे विपद् काल का ।
तुझे छोड़ न है आश्रय, जटिल संकट जाल का ।।३८।।
राज्य जीवन धन तनसुख, मेरा तव अधीन है ।
यह जन तो सगे सुजन से, पत्नी सुत से हीन है ।।
दया-दृष्टि देव की हो, दास यह जन दीन है ।
चाहे जैसे पास रक्खो, अथवा जो समीचीन है ।।३६।।
दिया दिलासा रघुपति ने, भाव दिव्य उदार से ।
कहा मुझको करो परिचित, द्वीप पुर व्यापार से ।।

कहा उसने, देव सुनिये, कहना सब विस्तार से ।
असुर-जाति शक्तिमती है, धान धन भण्डार से ।।४०।।
असुर-भूप बड़ा विजेता, जगत् में माना गया ।
कुम्भकर्ण है बली बन्धु, अतुल्य बखाना गया ।।
इन्द्रजित् है वर योद्धा, लोक में जाना गया ।
सेना बल नायक हैं जिनसे, तना बल ताना गया ।।४१।।
वीर जन हैं द्वीप-वासी, रक्त करते पान हैं ।
कच्चा मानव-मांस तकभी, रहें उनके खान हैं ।।
ऐसे शूर वीर ले कर, भूपति किये यान हैं ।
लोकपाल जीते उसने, जिनके बल महान् हैं ।।४२।।
लाखों योद्धा हैं पुर में, जो कभी डरते नहीं ।
शत्रु-शक्ति का तो वे, भय कभी करते नहीं ।।
मार धाड़ में रहते निस दिन, ध्यान कुछ धरते नहीं ।
असुर पति के भक्त पूरे, प्रेम से टरते नहीं ।।४३।।
सुन कर सब वाक्य उसके, कहा राघव ने तभी ।
हनन कर मैं शत्रुओं को, शान्त होऊंगा जभी ।।
असुरपति की बड़ी सेना, विजित होगी तो सभी ।
देखना कर पार सागर, जा चढ़ेंगे हम अभी ।।४४।।
नारी हर्त्ता नीच नर को, सबन्धु दण्ड दे तथा ।
करूंगा मैं साक्षी पक्की, सदा रहे स्थिर यथा ।।
पर नारी हरण की यथा, दूर हो जाय प्रथा ।
असुर भूप-पाप कर्म की, जान जायें जन कथा ।।४५।।
पुरी अयोध्या में पीछे, पैर मेरा जायगा ।
कहा विभीषण ने सुन सब, समर जब हो पायगा ।।

साथ चल यह जन आपको, सर्व भेद बताएगा ।
कोट गढ़ सब दुर्ग मार्ग, भेद सहित दिखायगा ।।४६।।
बन सहायक आपका मैं, लडूँगा उस क्रूर से ।
तोड़ोगे तुम पुर गढ़ को, सबल सैनिक पूर से ।।
घुस जाऊँगा पर दल में, देखना तुम दूर से ।
कर्म होंगे वही मुझ से, उचित हैं जो शूर से ।।४७।।
गले लगाकर मिले राघव, उसको गाढ़ प्यार से ।
बोले लक्ष्मण को, लाओ, सिन्धु-जल इस बार से ।।
राज-तिलक दे दो इसको, वंश-भाव उदार से ।
लंका का यह हो राजा, आर्य-शिष्टाचार से ।।४८।।
शुचि सागर-जल को लाकर, अनुज ने निज हाथ से ।
तिलक दिया असुर-बन्धु को, सुमति ले रघुनाथ से ।।
लंकेश कह किया घोषित, मिले वानर साथ से ।
घी शक्कर बन मिला वह, सियानाथ सुनाथ से ।।४६।।
अभिषेक को देखते ही, वानरी जय नाद ने ।
नभो मण्डल को निनादित, किया शुभ शुभ वाद ने ।।
हर्ष सेना में भरा तब, उमड़ अति आह्लाद ने ।
लोप पाया सर्वथा ही, सब संशय विवाद ने ।।५०।।
सुग्रीव भूप हनुमान् जी, बोले यह विचार हो ।
कहो विभीषण यह क्यों कर, हम से सिन्धु पार हो ।।
कहा उसने अभी रघुपति, चलें सर्व तैयार हो ।
सेतु रचना करें कर से, अथ श्री एक बार हो ।।५१।।
सगर इनका था बड़ा जन, उसने दिया नाम है ।
बोला जाता है सागर, इतिहास अभिराम है ।।

बान्ध सेतु देना इस पर, इन्हीं का अब काम है ।
सब ने कहा बहुत उत्तम, यही मत सुख-धाम है ।।५२।।
प्र-शंसित हुए विभीषण, उस समय सब ओर से ।
मेघनाद जैसे सुनकर, नाद निसरे मोर से ।।
पंछी गण ज्यों हों हर्षित, चांदना पा भोर से ।
जन विकसें ज्यों विद्युत्, चमके सुघन-कोर से ।।५३।।

पांचवाँ सर्ग

*रामचन्द्र जी जा कर, सागर तट पर आप ।
कुशासन पर पूर्वमुख, सुख से लिटे अपाप ।।१।।
निज भुज का उपधान कर, उस पर सिर को टेक ।
हो कार्य निर्विघ्न सब, यही ध्यान धर एक ।।२।।
सिन्धु-थाह को जान कर, पा कर उसका भेद ।
समझ वस्तु स्वरूप को, हुए रहित सब खेद ।।३।।
तीन दिवस लेटे रहे, कर के ही उपवास ।
नल नाम विश्वकर्मा सुत, आ कर उनके पास ।।४।।
बोला दो कर जोड़ कर, दो अनुमति रघुराज ।
रक्खें हम सेतु-शिला, शुभ समय अभी आज ।।५।।
अनुमति दी रघुनाथ ने, नील आदि सब वीर ।
दृढ़ शिला रखने लगे, कुशल कर्मी नर धीर ।।६।।
नाना पेड़ उखाड़ कर, सागर जल में डाल ।
यंत्रों द्वारा ला शिला, रचने लगे दिवाल ।।७।।

* दोहा।

गिरी चट्टानें तोड़ कर, यंत्र से ही पाषाण ।
सागर में थे भर रहे, निपुण पुरुष कर मान ।।८।।
लम्बे सूतों को लिये, बहुत रहे थे नाप ।
हाथों में थे गज़ लिये, जो करते थे माप ।।९।।
रात दिवस यों काम कर, हुआ सेतु निर्माण ।
चौड़ा लम्बा बहुत वह, शत योजन परिमाण ।।१०।।
बान्धा बन्धन से गया, कला रज्जु के संग ।
जुड़े शिला पत्थर तथा, कभी न होवें भंग ।।११।।
नभ में छाया पथ यथा, नील सिन्धु में ठीक ।
महा मनोहर शोभता, लगता अति रमणीक ।।१२।।
सचिव चार को साथ ले, विभीषण उसी काल ।
सेतु से गया पार तक, पहले कर सम्भाल ।।१३।।
लक्ष्मण अंगद हनुमान्, सहित चले रघुनाथ ।
वानरपति भी संग था, वानर-सेना साथ ।।१४।।
वानर जाते दौड़ते, मेघ ज्यों वायु संग ।
पूर्णा दिवस उतावले, बढ़ते सिन्धु तरंग ।।१५।।
सेना सागर पार कर, भूजल पा अनुकूल ।
उतारी श्री सुग्रीव ने, देख अन्न फल फूल ।।१६।।
जल-सागर को लांघ कर, जन-सागर बलवान् ।
शोभा ठाठें मारता, करता नाद महान् ।।१७।।
*मोर्चा बन्दी करके भारी, व्यूह रचना सुग्रीव पसारी ।
लक्ष्मण को बोले रघुराई, हम करें पुर पर ही चढ़ाई ।।१८।।

---

* चौपाई।

धनुष थाम्भ चले लिए सेना, दण्ड दुष्ट को कहते देना ।
सुरक्षित थी सेना वह सारी, शस्त्र-अस्त्र की बहुत तयारी ।।१६।।
पानी-पूर बनी दिखलाती, पुर को प्रबल हो बढ़ती जाती ।
रात समय होते अन्धेरे, सेना डाल रही थी घेरे ।।२०।।
गिरि शिखर समतल जो खाई, वहां वाहिनी गई जमाई ।
उचित स्थल राघव ने ताके, वहीं बनाये अपने नाके ।।२१।।
गमनागम के मार्ग जो भी, मिले तब रोके गये सो भी ।
पुर की हो ज्यों चारदिवारी, सेना सब त्यों गई विस्तारी ।।२२।।
शुक सारण दोनों चर नामी, शक्ति धारी सब स्थल गामी ।
रावण ने भेजे वे भेदी, 'अरिदल जानो' आज्ञा दे दी ।।२३।।
वानर-रूप वस्त्र को धारे, फिरते थे वे नयन पसारे ।
शत्रु-दल की निरख अधिकाई, चकित हुए जब थाह न पाई ।।२४।।
ओर चहुँ सैनिक के घेरे, देख उन्होंने लम्बे डेरे ।
गणनातीत सर्व बल माना, पारावार रहित सब जाना ।।२५।।
भिन्न भेस में भेदी भारे, जब थे फिरते एक किनारे ।
विभीषण से गये पहचाने, गये पकड़े दोनों सियाने ।।२६।।
रघुनाथ पै गये लाये, नाम विभीषण ने बतलाये ।
सचिव चर चतुर हैं ऐसे, मिलते नहीं निपुण इन जैसे ।।२७।।
देख रामचन्द्र को वे ही, कांपे पैर देह सिर से ही ।
मरण दण्ड का माना होना, जीवन बन्धुवर्ग का खोना ।।२८।।
बोले रावण के भिजवाये, भेद लगाने हम हैं आये ।
हँस कहा राघव ने जाओ, देखा जो असुर को बताओ ।।२६।।
देख सके हो न अभी जो ही, देख लीजिए फिर कर सो ही ।
असुर भूप को कहना मेरा, कल देखूंगा मैं बल तेरा ।।३०।।

सिया-हरण का बदला लेना, दण्ड तुझे है मैंने देना ।
है बड़ा तू ही आततायी, पतित अधम जन घोर अन्यायी ।।३१।।
सर सर करते सब सर मेरे, पीडन प्राण करेंगे तेरे ।
यह कह कहा इन को घुमाओ, बाहर सेना से भिजवाओ ।।३२।।
हो कर मुक्त दूत वे दो ही, मिले भूप को आ नत हो ही ।
रामचन्द्र का बल बताते, भीत बहुत थे समझे जाते ।।३३।।
दुर्जय वानरी शक्ति दीखे, पा सकें पार न हम सरीखे ।
असुर जनों का समर रचाना, है जीवन सम्पत् लुटवाना ।।३४।।
सब सुन रुष्ट हुआ वह क्रोधी, धर्म न्याय सुपथ का विरोधी ।
उन को लेकर चढ़ा अटारी, जिधर उस ने दृष्टि पसारी ।।३५।।
देख उधर ही सेना भारी, दुःख हुआ उसे वेदनाकारी ।
सारण चर ने उसे बताया, पर शक्ति का वृत्त सुनाया ।।३६।।
राजन्! वानर बल में पूरे, योद्धा हैं निर्भय अति-शूरे ।
हैं सब अरि पर दान्त चबाते, दावानल बन कर दहलाते ।।३७।।
समर समर हैं कहते आते, अरि-हनन की ध्वनि गुँजाते ।
उत्साह-वर्द्धक गायन गाते, विद्युत् वेग बने दिखलाते ।।३८।।
रामचन्द्र के भक्त प्यारे, उस पर देते तन धन वारे ।
सच्चे पक्के हैं अनुयायी, वह भी हैं उनको सुखदायी ।।३६।।
मित्र सखा बन्धु सगे ज्यों ही, उस को वानर हैं सब त्यों ही ।
उस ने प्रेम-तार फैलाया, मन के मनके उन्हें बनाया ।।४०।।
राघव तर्जनी के सहारे, निश-दिन फिरते वे बल धारे ।
सरस सम्बन्ध है अंगांगी, सुख दुःख में हैं एक ही संगी ।।४१।।
ऐसे पर जन को अपनाना, लाखों जन को बन्धु बनाना ।
मोहनपन राघव का जानो, अतुल तेज तप कारण मानो ।।४२।।

सचिव वचन सुन वह घबराया, शत्रु-बल को देखने आया ।
रामचन्द्र को चन्द्र यथा ही, उस ने देखा वहां तथा ही ।।४३।।
तारागण सम वीर सुहाते, पूर्णमासी बहुत बसाते ।
उन में मुखिया जो सेनानी, उनकी आभा अधिक लुभानी ।।४४।।
उस ने देखा राघव-भाई, स्वयं शक्ति उतर हो आई ।
देखा अंगद उसने शूरा, बल बुद्धि शक्ति में पूरा ।।४५।।
शार्दूल फिर उस ने बुलाया, रावण ने उदास वह पाया ।
कहो, पूछा उदासी कैसी, दीन दशा मुख पर क्यों ऐसी! ।।४६।।
चपल चतुर चर-वचन उच्चारे, राजन्! पलटे काल हमारे ।
चल सके न चाल वहां कोई, जाय जो पकड़ा जाय सोई ।।४७।।
दुर्गति मेरी गई बनाई, मार पीट मैंने अति खाई ।
थप्पड़ मुक्के धक्के भी लातें, खा कर सुन लीं कड़वी बातें ।।४८।।
आ गया हूँ यहां जो मैं ही, दया दिखाई राघव ने ही ।
दीन दुखी जन देख सदा ही, देव! दया वह करे तदा ही ।।४९।।
पर दल पानी पूर बना है, आता नगर को वह बढ़ा है ।
सब कुछ सुनकर वह अभिमानी, बोला वैर भरी विष बानी ।।५०।।
देव दानव यदि यहां आयें, बल से सीता को छुड़वायें ।
तो भी वह तो कभी न दूँगा, सब से मैं भिड़ लोहा लूँगा ।।५१।।
{पड़े ग्रह पर जैसे छाया, नाश समय हो मति पर माया ।
नभ विमल में घटा छा जाती, मोह घटा त्यों मन पर आती ।।५२।।
जभी विषम कुछ होना होता, बुद्धि ज्ञान खा जाते गोता ।
असुरपति का अन्त था ऐसा, जिससे बना दुष्ट हो जैसा} ।।५३।।

छठा सर्ग

*बोला नृप तत्काल, विद्युतजिह्व! मायाधर! ।
चलिए मेरे साथ, करिए जादू सिया पर ।।
धनुष बाण ले हाथ, मिलो मुझे वहाँ आकर ।
राघव सिर-सा सीस, देना आगे तब कर ।।१।।
गया वाटिका बीच, जहां थी सीता रहती ।
बोला वह, तू देख, क्यों कटु कष्ट है सहती ।।
रामचन्द्र की बात, रात दिन तू थी कहती ।
उस का कटा जब तन, रक्त-धारा थी बहती ।।२।।
अब तू तज दे आश, गया कट उसका सब धड़ ।
कव्वे कुत्ते गये खा, रहा है रहा सहा सड़ ।।
भद्रे! निश्चय जान, कटी अब तेरी तो जड़ ।
मान मुझे निज नाथ, रही क्यों व्यर्थ है अड़ ।।३।।
सुन ले सब वृत्तान्त, इधर जब उतरे वानर ।
मेरी सु-सेना ने, मारा छापा उन्हीं पर ।।
काट कूट कर चूर, सिन्धु में फैंके नरवर ।
भाग बचे कुछ एक, गये तो शेष सभी मर ।।४।।
सैनिक विद्युत्जिह्व, पड़ा जा राघव पर फिर ।
सोता था उस काल, गया जब उससे वह घिर ।।
उसने कर प्रहार, गिराया राघव का सिर ।
वह सिर ले तू देख, करियो निश्चय भी स्थिर ।।५।।

* रोला।

देख अनुचरी पास, उसने उसको बुलाया ।
ले आ विद्युत्जिह्व, यही उसको समझाया ।।
पा कर वह संकेत, लेकर सिर वहां आया ।
रामचन्द्र का सिर, सिया को गया दिखाया ।।६।।
सिया सम्मुख रख सिर, सहित चमकीले सर के ।
आप गया वह सरक, मायिक मोह को करके ।।
बोला रावण, सिया, देख सिर दृष्टि धर के ।
अन्तिम दर्शन यही, तुझे हैं तेरे वर के ।।७।।
लहू लिपटा सर यह, किया सिर जिसने छेदन ।
अति तीक्ष्ण हैं बाण, जिससे हो गया भेदन ।।
अन्त दशा ले देख, पति की सहित संवेदन ।
अब तो भोली मान, पहला मेरा निवेदन ।।८।।
मुख-मण्डल तद्रूप, नयन भी मिलते उनसे ।
भृकुटी भ्रू-विभाग, पलक सम तुलते उनसे ।।
जटा लटा युत केश, हिलाये हिलते उनसे ।
रूप रंग लावण्य, चिन्ह सब मिलते उनसे ।।६।।
चौड़ा भाल विशाल, नाक लख उन सी सुन्दर ।
कर्ण अधर सुकपोल, उन से मोह के मन्दिर ।।
राघव का है सीस, कहा उसने मन अन्दर ।
हाय सहित तत्काल, उमड़े सुनयन समन्दर ।।१०।।
वज्र-हता ज्यों बेल, गिरी वह मूर्छा खाकर ।
हुई तुरन्त अचेत, मुख से ध्वनि हा हा कर ।।
सीता रोने लगी, चेतना पीछे पाकर ।
हा! राघव पतिदेव!, कहती रोती चिल्ला कर ।।११।।

कहां गये हो नाथ!, विषम तर दुःखद काल में ।
फंस गये क्यों वीर!, जटिल तर मरण जाल में ।।
पड़े न तुझ सा शूर, सहज से काल-गाल में ।
मुझे रहा है दीख, कुछ तो काला दाल में ।।१२।।
धर्म-चारिणी छोड़, तुझ को जाना नहीं था ।
व्रत-बद्ध हा देव, मुझे भुलाना नहीं था ।।
शोक सागर में यों, इसे डुबाना नहीं था ।
विपद् नदी के बीच, मुझे बहाना नहीं था ।।१३।।
अल्प नहीं थे कष्ट, विषैले पहले मुझ पर ।
उस पर काल कुकोप, पड़ा आ दुःख कर तुझ पर ।।
मेरे मन का दीप, मिटा है सब ही बुझ कर ।
पड़ा वज्र है टूट, आज इस कोमल भुज पर ।।१४।।
सागर लांग महान्, नईया आ इस तट से ।
गढ़े में गई डूब, अहो क्यों इस चट-पट से ।।
जिसने जीते लोक, मरा क्यों कर खट-पट से ।
बार बार कर रुदन, मूर्छित हो इस रट से ।।१५।।
ऐसे रोती सती, करती पुकार पिया को ।
जीवन जड़ से हीन, जाना उसने जिया को ।।
छिन छिन जाता छीज, माना अपने हिया को ।
कार्य वश से असुर, गया तज तभी सिया को ।।१६।।
विभीषण-स्त्री सरमा, सिया पर दयावती थी ।
नारी जन को सुलभ, उसकी शुचि विमल मतिथी ।।
सिया को निश्चय से, मानती सच्ची सती थी ।
उसको सताने में, वह पाती नहीं रति थी ।।१७।।

सखी-स्नेह के सहित, बताने उसे लगी वह ।
भोली! मत कर भूल, सब थी माया ठगी वह ।।
राघव-सेना नहीं, भगाये जाय भगी वह ।
सागर के इस पार, दीख रही जगमगी वह ।।१८।।
फैल रहा है त्रास, नगर के सर्व जनों में ।
व्याकुल हैं सब लोग, अपने हृदय मनों में ।।
भय बिजली फिर गई, मानों सब के तनों में ।
भयभीत हैं त्यों, ज्यों, अग्नि पर विहग वनों में ।।१६।।
मैंने देखा सुना, सर्व जन भाग रहे हैं ।
सुख सम्पत् सब भूल, सभी जन जाग रहे हैं ।।
भगड़ दौड़ के बीच, सगों को त्याग रहे हैं ।
सुध-बुध बहुत बिसार, बने निर्भाग रहे हैं ।।२०।।
सीते! सच सच समझ, भूप है गया इसी से ।
पुर पर घोर आक्रमण, उस ने सुना किसी से ।।
मानो पुर को लगी, आग की दाह इसी से ।
सूझे जन को नहीं, रक्षा की राह इसी से ।।२१।।
सीस नहीं था सत्य, सर्व थी आसुर माया ।
तुझे मोह में डाल, दिखाई उस ने छाया ।।
कभी किसी से नहीं, कटे रघुपति की काया ।
दे राघव को मार, जननी ने जन न जाया ।।२२।।
फिर सरमा जा लौट, लाई भेद भी गहरे ।
रावण के सब वीर, सैनिक वेश को पहरे ।।

सब दिश फिरते दौड़, रहें न क्षण भर ठहरे ।
कोलाहल है अधिक, बनते कान हैं बहरे ।।२३।।
मन में धैर्य धार, डगमग तू तो नहीं हो ।
अश्रु पोंछ धो वदन, चित्त को थाम्भ नहीं रो ।।
आ गये सब समीप, दिवस तव सुख के जो सो ।
भामिनी! भानु-भाग्य, है चाह रहा उदय को ।।२४।।
*सुन सरमा के वचन तभी, सिया हर्षित हो गई ।
उस के शुष्क खेत मन पर, आश वर्षित हो गई ।।
उसकी वृत्ति प्राण-प्रिय, पर सुकर्षित हो गई ।
पति का समाचार सुन वह, सुधा-स्पर्शित हो गई ।।२५।।
असुर पति ने कर सभा तब, नियत सेना-दल किये ।
व्यूह रचना सर्व कर के, सब आदेश दे दिये ।।
सेनापति जन सह सैनिक, शस्त्र तीखे कर लिये ।
दुर्ग दुर्गम पर डटे जा, मत्त मदिरा को पिये ।।२६।।
रामचन्द्र जी धनुष ले, वाण तीक्ष्ण कोष में ।
चले, भर कर, सहित भ्राता, वीरावेश रोष में ।।
कर्तव्य-बुद्धि क्षत्र धर्म, था पुरुष निर्दोष में ।
दुष्ट-दमन नारी-रक्षण, नाद था तस घोष में ।।२७।।
रोक पुर के द्वार मार्ग, मोर्चे सभी बन गये ।
दुर्ग खाई कूदने को, नियत हो सब जन गये ।।
बान्ध पांति सशस्त्र सैनिक, ओर सब तब तन गये ।
लोहा लेने को लपके, सु-लालायित ठन गये ।।२८।।
उसी समय श्री रघुपति ने, सचिव-सभा वहां करी ।
कहा सब को कहो तुम अब, बात जो होवे खरी ।।

* गीतिका।

राज-धर्म समर-नियम में, नीति जावे जो वरी ।
वर्ते उस के साथ वह तो, सिया जिसने है हरी ।।२६।।
सर्व सम्मति से सुनिर्णय, हुआ भेजो दूत को ।
नर वरतर योद्धा अंगद, तरुण तारा-पूत को ।।
कहे रावण को वचन वह, लख समर के सूत को ।
कटु कर्मों के विपाक कहे, कुल कलंकी भूत को ।।३०।।
बोले रघुपति, हे अंगद, प्रियवर! तुम जाइए ।
मेरे वचनों को कह कर, उसे जा बतलाइए ।।
नीति-मत्ता वीर भाव से, सर्व कुछ समझाइए ।
अन्त में कर समर-घोषणा, लौट पीछे आइए ।।३१।।
हे असुर ! हे भ्रष्ट-लक्ष्मी, नष्ट धन बल मान से ।
रामचन्द्र घेर पुर तव, है खड़ा निज आन से ।।
देव आर्य ऋषि मुनि को, दुःख दिया किस ध्यान से ? ।
तू ने सीता-हरण किया, किस गर्व अभिमान से ।।३२।।
देवगण ऋषि मुनि जन को, हनन तू करता रहा ।
परवशा पर नारियों के, धर्म तू हरता रहा ।।
भ्रूण हत्या पाप पर नहीं, ध्यान तू धरता रहा ।
मुनि जन के रक्त माँस से, पेट तू भरता रहा ।।३३।।
घोर उन अपराध का तू, फल विषैला पायगा ।
गरिमा गौरव सहित गर्व, तेरा न रह जाएगा ।।
सीता-हरण का कुफल अब, आज ही तू खायगा ।
बढ़ा वानर वीर वर दल, अभी धूम मचायगा ।।३४।।
कहना अधम-पतिततर को, तुझ को तो धिक्कार है ।
रच माया मेरे पीछे, किया स्त्री-अपहार है ।।

कपटी कायर तू कामी, छली कुटिल मक्कार है ।
आज तुझे नहीं मिलेगा, कहा जो निस्तार है ।।३५।।
शाण-शाणित वाण तीक्ष्ण, प्राण हरणे जो बड़े ।
रक्त तेरा पान करते, पड़ेंगे तुझ पर कड़े ।।
शरणागत हो जा जब तक, समर गर्म न छिड़ पड़े ।
पतन होगा पतित तेरा, समर में यदि तू लड़े ।।३६।।
आ गया हूं दण्ड देने, तुझे तेरे पाप का ।
दैव योग से मैं अब तो, हर्त्ता मुनि-सन्ताप का ।।
फल दाता मैं हूं तेरे, कुटिल कर्म कलाप का ।
भोग लेगा अभी तो तू, फल हत्या वा शाप का ।।३७।।
शरणागत हो सौंप सिया, क्षमा माँगो आ यहीं ।
तीन काल लोक में अन्य, शरण तुझ को है नहीं ।।
यदि न आये शरण में तो, स्थान न पायगा कहीं ।
मान था जिन शक्तियों पर, वे तुझ में न रहीं ।।३८।।
दण्ड ले कर मैं खड़ा हूं, तव पुरी के द्वार पै ।
शस्त्र-सज्जित सभी वानर, पड़ा चाहें मार पै ।।
तेरे पद उखाड़ देंगे, टूटें वे जब वार पै ।
परिणाम अपने किये का, पायगा तू हार पै ।।३९।।
शरणागत हुआ विभीषण, उसी का अब देश है ।
असुर जन का भूप वह है, वही तो लंकेश है ।।
गया माना द्वीप भर का, अधिकारी नरेश है ।
तेरे लिए ओर चारों, कष्ट कटुतर क्लेश है ।।४०।।
भोग ले सुख स्वाद सब अब, शेष जीवन की घड़ी ।
वाण-वर्षा की न जभी तक, लगे गहरी तो झड़ी ।।

बली वानर रूप बिजली, जब तक तो नहीं पड़ी ।
असुर माला की न जब तक, टूट जाती है लड़ी ।।४१।।
पा आज्ञा रघुपति की, तारा-सुत उतावला ।
तम-तमाता वीर पन में, धम-धमाता ही चला ।।
शोभा रावण सम्मुख जो, उदित सूर्य ज्यों भला ।
कहा उस ने कर उचित सब, जो संदेश था मिला ।।४२।।

सातवाँ सर्ग

*उसको अंगद ने कहा, मैं हूँ बाली पूत ।
रघुपति जी के कथन से, आया हूं बन दूत ।।१।।
रामचन्द्र जी को कुछ, नहीं असम्भव काम ।
तीन लोक में गूँजता, है उन का शुभ नाम ।।२।।
कहा उन्होंने है तुझे, हे घातक नर घोर ।
घर में घिर रहना नहीं, पकड़ युद्ध की ठौर ।।३।।
मेरा आना है हुआ, तुझे दान दे दण्ड ।
खण्ड खण्ड कर सर्व दूँ, तेरा घोर घमण्ड ।।४।।
शरणागत हो जा अभी, क्षमा याचना संग ।
नहीं तो भूमि समर में, कटवायेगा अंग ।।५।।
अवज्ञापूर्ण वचन ये, सुन कर आसुर भूप ।
काल-कलेवर बन गया, कुटिल कोप का कूप ।।६।।
बोला कटु कड़कड़ा कर, माथे त्योड़ी डाल ।
काट कूट कर के अभी, इसे दिखाओ काल ।।७।।

* दोहा।

भूप-वचन सुन कर बली, योद्धे सैनिक वीर ।
दौड़ पकड़ उस का तभी, हनने लगे शरीर ।।८।।
पर अंगद अति सूरमा, वीर पुरुष निर्भीक ।
उनको धक्कम धक्का कर, कर देता था ठीक ।।९।।
असुर कोप के काल से, बाल बाल बच आप ।
आया राघव पास वह, कहता कथा कलाप ।।१०।।
उसके कौशल कर्म से, वानर-पति रघुराज ।
हर्षित हुए अपार तब, रच कर मुख्य समाज ।।११।।
आज्ञा दी रघुदेव ने, चलें अभी हथियार ।
पुरी पर आक्रमण कर, करो असुर-संहार ।।१२।।
सेना संचालन हुआ, उसी समय दो ओर ।
जैसे दो सागर बढ़ें, करते गर्जन घोर ।।१३।।
बल से वानर-वाहिनी, सिंह-नाद के साथ ।
असुर-दलों पर जा पड़ी, सहित लखन रघुनाथ ।।१४।।
यथा कुपित हो केसरी, दोनों हाथ पसार ।
हरिण-झुण्ड पर जा पड़े, करने को आहार ।।१५।।
वानर-दल ऐसे पड़ा, असुर दलों के बीच ।
सर्व हनन करने लगा, खड्ग कटारी खींच ।।१६।।
तीक्ष्ण बरछी वज्र से, करते अरिदल चूर ।
वानर बल से शत्रु को, बहुत गये ले दूर ।।१७।।
जैसे सागर-वेल बढ़, नदी को दे धकेल ।
वानर दल त्यों शत्रु से, करता धक्कम पेल ।।१८।।
वेगवती वर वाहिनी, सहित बहुत आवेश ।
बल से वैरी विषम को, देती मार विशेष ।।१९।।

ले गई उसे दूर तर, करके पहला वार ।
बहुत ही वर्षा वाण से, देकर गहरी मार ।।२०।।
असुर-पति की आज्ञा, पाकर आसुर लोग ।
वानर बल को देख कर, करने लगे उद्योग ।।२१।।
करके ताड़न भेरियां, शंख नाद को पूर ।
निकली सेना आसुरी, निर्भय निर्दय क्रूर ।।२२।।
दावानल वत् दहकती, वानर-वन को दाह ।
देने दौड़ी लपकती, पाकर कोप अथाह ।।२३।।
लपकी लपटें मारती, असुर-क्रोध की आग ।
लगी जलाने वेग से, वानर-दल बल बाग ।।२४।।
*घोड़े बढ़े तब हिनहिनाते, रथ अनगिनत भी झनझनाते ।
दौड़े यान तो गड़गड़ाते, चले सैनिक सब धमधमाते ।।२५।।
भूमि पर भूकम्प हो आया, नभ सर्व था धूल से छाया ।
कोलाहल कलकल रव ऐसा, सर्वनाश हो आया जैसा ।।२६।।
चिपटी मोटी नाकों वाले, लम्बी ठोढ़ी युत अति काले ।
स्थूल होंठ अति दशन निकाले, कर्कशकेशी बहु मतवाले ।।२७।।
पीत लाल वे नयन फिराते, अधिक कुरूप असुर थे आते ।
जीभ को थे फिर फिर हिलाते, बार बार निज होंठ चबाते ।।२८।।
कहते थे वे भयकर बानी, वानर रक्त पियेंगे पानी ।
मानव-मांस महा मन माना, होगा आज मनोगम खाना ।।२६।।
रक्त कवोष्ण पान करेंगे, वानर दल के प्राण हरेंगे ।
लाल लहू से कर मुख गीला, लोभ लालसा की हो लीला ।।३०।।

---

* चौपाई।

आते थे वे दौड़ लगाते, हरिण पर ज्यों भेड़िये जाते ।
वानर दल पर ऐसे आये, श्येन चिड़ी पर ज्यों ही जाये ।।३१।।
शूर परस्पर त्यों भिड़ पाते, मींढ़े भैंसे ज्यों टकराते ।
करते वार परस्पर ऐसे, गिरते वज्र भूमि पर जैसे ।।३२।।
लौट पलट कर लेते पँजे, अबल के जाते कसे शकंजे ।
घिर जाता जन भंवर में जो ही, पाता मार अधोगति सो ही ।।३३।।
भागते भीरु पीठ दिखाते, अरिदल उनको अधिक छकाते ।
गिरते गदा अति गड़गड़ाते, गल कन्धे सिर चूर बनाते ।।३४।।
वीर खटाखट खड्ग घुमाते, तीखे शस्त्र अति चमचमाते ।
आर पार करती तलवारें, बिजली-उपम बरसती वारें ।।३५।।
कटते अंग यथा ही केले, जाते योद्धा बहुत धकेले ।
भू पर गिरते सिर मंडलाते, सीसरहित धड़ थे बल खाते ।।३६।।
देखो जहां वहां शव-ढेरी, अंग कटों ने भूतल घेरी ।
रक्त-रंग ने भू सब रंगी, दीखे भयदा भू बेढंगी ।।३७।।
रक्त-मांस रज मिल कर गारा, बना वहां पर कीचड़ भारा ।
हाड़ के ढेर जहां तहां थे, कटे बड़े दल बहुत वहां थे ।।३८।।
घाव सहित थे बहुत कराहते, अंग भंग से अधिक चिल्लाते ।
अर्ध मुए निज आंखें फेरे, लेते लम्बे सांस घनेरे ।।३९।।
मस्तक चूर हुए बहु दीखे, इधर उधर अधकुम्भ सरीखे ।
इस पर भी दोनों दल वाले, दौड़ रहे थे दल सम्भाले ।।४०।।
असुर चाहते हम ही जीतें, वानर नर सब मर कर बीतें ।
जीते रघुपति राघव राजा, बजे विजय का उसका बाजा ।।४१।।
पतित पावन परम अनुरागी, उत्तम पुरुष महा बड़ भागी ।
देव दयालु दीन हितकारी, विजय प्राप्त उसे हो भारी ।।४२।।

जय जय रघुपति राघव स्वामी, धर्म शील शुभ पथ अनुगामी ।
ऐसे उच्च घोष गूँजाते, वानर थे निजू साहस बढ़ाते ।।४३।।
उधर असुर जन भी जयकारे, करते क्रोधी अधिक करारे ।
फिरफिरभिड़तेबनअतिक्रोधी, अपनी जय के बहु अनुरोधी ।।४४।।
मल्ल युद्ध मचा बहुत भारा, दिये परस्पर को ललकारा ।
मेघनाद अंगद की जोड़ी, करती जय की होड़ा-होड़ी ।।४५।।
हनुमान् से जम्बुमाली, लड़ता था काया ले काली ।
नील निकुम्भ लड़े तब त्यों ही, मत्त गजेन्द्र लड़ते ज्यों ही ।।४६।।
सुग्रीव प्रघस भिड़ कर के ही, विस्मय करते थे तब वे ही ।
विरूपाक्ष से लक्ष्मण जी ने, कड़े कर से कुशल पन कीने ।।४७।।
अग्निकेतु तथा रश्मि केतु, मित्रघ्न यज्ञकोप कुसेतु ।
भिड़े रामचन्द्र से ये ही, छलबल की काया बन के ही ।।४८।।
एक दूसरे से कर लेते, सिंह सदृश दिखाई देते ।
बल से मारते शस्त्र जो जो, पड़ते धड़ाधड़ शत्रु पै सो ।।४६।।
लग कर तीखे शस्त्र नुकीले, देह रक्त से करते गीले ।
वीर घाव से लेते झूले, दीखे वे ज्यों टेसू फूले ।।५०।।
हस्ति मत्त हों लड़ें यथा ही, वे परस्पर लड़ते तथा ही ।
वैरी पर वे वार टिकाते, मर्मस्थल पर लक्ष्य जमाते ।।५१।।
कम्पित करते पर तन ऐसे, बिजली पड़ कर तरु को जैसे ।
मसल कुचल मर्दन कर देने, करते वार प्राण हर लेने ।।५२।।
मल्ल समर था भयकर भारा, हड्डी पसलियां चूर्ण हारा ।
पर श्री राघव जी के साथी, बन रहे थे शत्रु-प्रमाथी ।।५३।।
सहित अनुज श्री राघव राई, हो रहे थे सब के सहाई ।
बाण-वारि के वर्षण सेती, सींच रहे थे अरि-तन-खेती ।।५४।।

बार बार बहु बाण बहाते, वैरी तन वदन में बसाते ।
शत्रु देह बन डांवांडोली, घाव से हुई गहरी पोली ।।५५।।
राघव-धनुष से सर निसराते, अग्नि तुल्य बन शत्रु जलाते ।
कौशल से अरि हन कर तो ही, रघुपति चमके सूर्य हो ही ।।५६।।
मेघनाद अंगद से हारा, हनुमान् ने शत्रु को मारा ।
प्रघस, सुग्रीव ने हन डारा, लक्ष्मण ने अरि-सीस उतारा ।।५७।।
विभीषण से शत्रु भागा, अन्त में उसने प्राण त्यागा ।
मल्ल समर का हुआ निबेड़ा, वानरों ने पर दल खदेड़ा ।।५८।।
मुख्य असुर के सब सेनानी, पा गये तो प्राण की हानी ।
रावण-सेना पीछे भागी, राघव दल में जय जय जागी ।।५९।।
रामचन्द्र की जय मनाते, सीतापति के गुण यश गाते ।
उछल कूद कर हर्ष बढ़ाते, वानर फूले न थे समाते ।।६०।।

आठवाँ सर्ग

*जीते दिन के समर में, वानर वर तर वीर ।
विजय लाभ कर आदि में, थे हर्षित सब धीर ।।१।।
सूर्य अस्त हुआ जभी, छिड़ा समर भय मूल ।
वानर-दल के तो लिए, था स्थान प्रतिकूल ।।२।।
पहले देखा जो नहीं, दुर्ग-जाल पर देश ।
बहुत विषम था गुप्त युत, जब था तिमिर विशेष ।।३।।
दुर्घटना घटी घोर यह, जब था तम घन घोर ।
पड़े असुर अति क्रोध से, अरि पर चारों ओर ।।४।।

---

* दोहा।

भयकर तब होने लगा, वह समर घमासान ।
छुपकर छापे मारते, निर्दय असुर महान् ।।५।।
वानर जन को पकड़ कर, देते बहुत पछाड़ ।
नाम पूछ कर मारते, तोड़ तोड़ कर हाड़ ।।६।।
गहरी काली रात में, काली कायावन्त ।
एकमेक थे हो रहे, तमोरूप बलवन्त ।।७।।
नीले वृक्षों बीच तो, तम था एकाकार ।
काला जन पहचानना, था दुष्कर व्यापार ।।८।।
इस से वानर वीर वर, पाते जान न भेद ।
पेड़ पुरुष तमरूप में, सकते कर न विछेद ।।६।।
ग्रह-गणों का चांदना, देता था कुछ संग ।
दिखाता दशन नयन को, और कवच युत अंग ।।१०।।
ताड़ वही स्थल नर वर, करते भर कर वार ।
तोड़ अरि मुंह दान्त सिर, देते अंग उतार ।।११।।
भूखे मानव-मांस के, असुर बने ज्यों काल ।
अंग काट कर चूसते, खाते खींचे खाल ।।१२।।
चर्वण चोषण सुन ध्वनि, वानर उसको ताड़ ।
बल से कर प्रहार तब, देते उन्हें उखाड़ ।।१३।।
कर्कश काया पकड़ कर, है असुर यही मान ।
मर्दन कर देते उसे, वानर नर बलवान् ।।१४।।
हिलती, ग्रह की लौ में, छाया सी कुछ देख ।
कूद काटते असुर कह, पूछें मीन न मेख ।।१५।।
अश्व रथों की चाल पर, लक्ष को कर के ठीक ।
मारते असुरों को तब, वीर वानर निर्भीक ।।१६।।

हस्ति हिलता छाया सा, जब जाता था दीख ।
वानर देते काट ही, यथा शस्त्र से ईख ।।१७।।
अति तामस वे असुर सब, तम में होकर एक ।
फिर भी थे तो मर रहे, पर एक से अनेक ।।१८।।
सर्पाकार स्व वाण से, राघव लक्ष्मण भ्रात ।
करते थे पर दलों का, रात्रि में विनि-पात ।।१९।।
मेघनाद अतिबली का, सारथि बहुत सुजान ।
बल से अंगद ने हना, सहित अश्व प्रधान ।।२०।।
माया से छुप कर बचा, मेघनाद चल चाल ।
नहीं तो तारा-सुत तब, उसे दिखाता काल ।।२१।।
ऐसी करनी देख कर, राघव लक्ष्मण आप ।
सह सुग्रीव कहने लगे, उस का कर्म कलाप ।।२२।।
*बोले राघव तब सब से ही, अंगद नेता है अब से ही ।
विजय लाभ की इस ने भारी, किया परास्त मायाधारी ।।२३।।
जाय लखी न निशाचर माया, कपट छलों की कलुषित काया ।
दाव द्रोह दरी दुःख देनी, कर मोह पर-प्राण हर लेनी ।।२४।।
इन्द्रजित् अंगद से हारा, यह तो हुआ उसको दुःख भारा ।
छुपकर वह फिर वाण चलाने, लगा बनाने बन्धु-निशाने ।।२५।।
राघव लक्ष्मण पर सर तीखे, पड़ते भारी वज्र सरीखे ।
तन छेदन वे करते जाते, घावों से अति रक्त बहाते ।।२६।।
माया-बल से वह अतिमायी, छल बल मार्ग का अनुयायी ।
मोहित करके दोनों भ्राता, कपट-कला से उन्हें सताता ।।२७।।

* चौपाई।

नागपाश से दोनों बांधे, उस ने वे कस करके फांदे ।
फिर वह रहा बाण बरसाता, छलनी उनकी देह बनाता ।।२८।।
दो अंगुल तन-स्थान नहीं था, जहां पर लगा न सर कहीं था ।
यों होकर घायल दो भाई, सोहे समर-शय्या पर शायी ।।२६।।
उन से बही रक्त की धारा, जैसे चलता हो फंवारा ।
वर्षा-ऋतु में झरने होते, ऐसे बने लहू के सोते ।।३०।।
पर बन्धु थे धृति को धारे, तड़पे नहीं वाण सह भारे ।
वीर-वंशज अवध के वासी, विकसित मुख थे रहित उदासी ।।३१।।
मेघनाद ने मन में माना, निश्चय है इनका मर जाना ।
विजय नाद वह अति गूंजाता, पुर में गया तब जय मनाता ।।३२।।
पीछे असुर चले जय गाते, विजय दुन्दुभि बगलें बजाते ।
फले मनोरथ सब मनमाने, गये नगर को सर्व हर्षाने ।।३३।।
जाकर मिला पिता को प्यारा, मेघनाद कह वर्णन सारा ।
युगल बन्धु हत जाने ज्यों ही, असुरपति हुआ हर्षित त्यों ही ।।३४।।
उस ने सुत को गले लगाया, परम हर्ष उस काल मनाया ।
समझ गया वह वैरी मेरा, अन्त-काल ने है अब घेरा ।।३५।।
उधर वानरी सेना सारी, भाग उठी खा मारें भारी ।
सुग्रीव विभीषण ने सभी को, रोक थाम्भ ही लिया जभी तो ।।३६।।
मुख्य पुरुष जो थे सेनानी, बन्धु सुरक्षण की सावधानी ।
कर के खड़े सर्व थे खेदी, आने न देते शत्रु-भेदी ।।३७।।
सर्व देखते आना जाना, पहरे का तन पूरा ताना ।
आहट खटक जभी हो पाती, सैनिक दृष्टि उस पर जाती ।।३८।।
उधर तो असुरपति ने सोचा, सीता हो वश यह आलोचा ।
देख मरा दोनों को सीता, मेरी बनेगी अति विनीता ।।३६।।

भूषण से सज धज कर के ही, वह मानेगी अपना मुझे ही ।
बोला वह, सुत को, तुम जाओ, सीता-रक्षिका को समझाओ ।।४०।।
बन्धु-मरण वे उसे बतायें, समर-भूमि पर जा दिखलायें ।
उसने उनको सब समझाया, सीता को उन्होंने बताया ।।४१।।
बोलीं वे, अब सुन ले सीते!, पति-देवर तव बचे न जीते ।
इन्द्रजित् ने तो संहारे, मरे पड़े हैं पैर पसारे ।।४२।।
पुष्पक नामक विमान द्वारा, देख दृश्य आप चल सारा ।
ले गई उसे नभ पथ जातीं, समर-भूमि वे सब दिखलातीं ।।४३।।
समर-शय्या पर दोनों लेटे, नाग-पाश ने जकड़ लपेटे ।
देख सिया यों दोनों भाई, हा हा कहकर बहुत चिल्लाई ।।४४।।
उसके नयन से अश्रु ऐसे, झरे, सोत से जल भी जैसे ।
पति देवर पर हृदय-पानी, सींच रही थी राघव रानी ।।४५।।
विरहिन बदली बन बहु रोती, ज्यों हो दोनों देह-भिगोती ।
उसकी कटुतर मानस पीड़ा, थी वह असुर कपट की क्रीड़ा ।।४६।।
पति देवर तन धूल रमाये, वाण-बद्ध उसने तब पाये ।
तितर बितर सब दिश को होते, देखे वानर गद्गद् रोते ।।४७।।
असुर गिरे जन को थे खाते, रक्त-पान कर बहुत हर्षाते ।
देख सर्व कुछ वह दुखियारी, हो गई मूर्छित तो इक बारी ।।४८।।
जभी वह ऐसे रो रही थी, फिर फिर मूर्छित हो रही थी ।
बोली त्रिजटा उससे दासी, मरे नहीं ये अवध निवासी ।।४६।।
गुप्त भेद है तुझे बताया, मैंने जो भी है सुन पाया ।
सचेत होवेंगे ये दो ही, सके न हन इनको जन कोई ।।५०।।
तज दे इस से रोना धोना, पति-व्यथा पर व्याकुल होना ।
त्रिजटा ने विमान फिराया, उसे वनी में ला बैठाया ।।५१।।

ज्ञानी गरूड़ गरल गद-हारी, गये तब उधर स्वेच्छाचारी ।
उनके तन पर हाथ फिराते, थे सब विष को दूर भगाते ।।५२।।
अल्पकाल में आलस त्यागे, दोनों भाई सोते जागे ।
स्वस्थ चि त्त हुए विलसाते, मन्द स्मित शुभ रस बरसाते ।।५३।।
रघुपति बोले देव तुम्हारी, हुई दया है हम पर भारी ।
दूर हुआ विष घाव पुराये, अंग सर्व स्वस्थ हो आये ।।५४।।
कहा गरूड़ ने परस्पर हमारा, स्नेह प्रेम तो है ही भारा ।
सच्चा कर्तव्य था यह मेरा, आकर हरना संकट तेरा ।।५५।।
दुष्ट-दमन में तुम हो राते, रात दिवस कर एक बिताते ।
धर्म-धुरा तुमने है धारी, धृति धार मुनि-विपदा टारी ।।५६।।
धर्म-चक्र हो तुम्हीं घुमाते, न्याय कर्म की रीति चलाते ।
सच्चे सुहृद् का होना सहाई, कहा कमाना पुण्य कमाई ।।५७।।
पीड़ित-पालन विरद तुम्हारा, दुखिया दीन के हो सहारा ।
सब सुर सन्त सुजन यह चाहें, धर्म-विजय रघुपति जी पायें ।।५८।।
स्नेह-कथन कर देव सिधारे, निज गति से स्वधाम पधारे ।
वानर थे उत्साह से ऊने, तभी बढ़े साहस ले दूने ।।५६।।
हनुमान् बढ़े तब आगे, धूम्राक्ष को हनने लागे ।
कर प्रहार उसने गिराया, मरण-शय्या पर उसे सुलाया ।।६०।।

नौवाँ सर्ग

* सेनापति का हनन सुन, हुआ कुपित वह भूप ।
वज्र-दंष्ट्र सेनापति, लगा उसे अनुरूप ।।१।।

* दोहा।

उसने भेजा तब उसे, दे कर यह आदेश ।
वानर-सेना कीजिए, हन कर आज अशेष ।।२।।
नरपति के आदेश से, लेकर दलबल क्रूर ।
वह चला बड़े वेग से, हनने को पर शूर ।।३।।
हाथी घोड़े खच्चरें, ऊंटों सहित सवार ।
कवच पहन कर वह चला, अरि को देने मार ।।४।।
खड्ग कटारी बरछियां, चक्र गदा धनु वाण ।
सैनिक लिए जाते सब, हरने को पर-प्राण ।।५।।
सैनिक झण्डे झूलते, जग मगते हथियार ।
चम-चम चमकते सुकवच, भरते शक्ति अपार ।।६।।
तीक्ष्ण नंगे खड्ग सब, लपलप कर हिल डोल ।
सूर्य-किरणों साथ मिल, करते अधिक किलोल ।।७।।
कवच मुकुट सौवर्णमय, बिजलीवत् बहु कौन्ध ।
चर्म चक्षु को चमक से, लगाते चकाचौन्ध ।।८।।
श्यामल बादलवत् बड़े, गर्ज गर्ज बहु बार ।
वानर-बल पर वेग से, दौड़े बहु प्रकार ।।९।।
उनको आते देख कर, वानर जन बलवान् ।
घोर गर्जना साथ ही, बढ़े धनुष को तान ।।१०।।
पर्वत के नद ज्यों भिड़े, घटा परस्पर घोर ।
दोनों सेनाएं भिड़ी, बढ़ी परस्पर-ओर ।।११।।
महा भयंकर समर वह, करता था भयभीत ।
वीरों के भी देख कर, जाते साहस बीत ।।१२।।
महा मथन मर्दन महा, मानव-हनन महान् ।
था मचा महा समर में, तब तो सब ही स्थान ।।१३।।

देखा वानर-हनन अति, अंगद ने कर कोप ।
दौड़ा वज्र-दंष्ट्र पर, वह करने को लोप ।।१४।।
लपक झपट कर छीनकर, उस की ही तलवार ।
अंगद ने उसका तभी, सिर भी दिया उतार ।।१५।।
भागे असुर-दल सभी, पुर को पिछले पैर ।
मरे कटे अनगिनत जन, राघव से कर वैर ।।१६।।
भेजा अकम्पन को तब, रावण ने उस काल ।
कहा उसे, जा मारकर, शत्रु को दो निकाल ।।१७।।

*अकम्पन बहुत कम्पन कारी, चला तभी ले सेना भारी ।
मार्ग भूमि को धम धमाता, जाता जन पशु तरु कम्पाता ।।१८।।
उसने दलबन्दी जो बांधी, चली वेग से वह ज्यों आंधी ।
पशु पंछी लख भागे जाते, दर्शक भी थे थर-थराते ।।१९।।
दोनों दल की हुई भिड़ाई, सर्व हनन अति मार पिटाई ।
सर्व दिशा में थीं रज छाई, पास खड़ा नहीं देता दिखाई ।।२०।।
सर सर बरसते सर नुकीले, अंग अंग पर के कर ढीले ।
फर फर चलती थीं तलवारें, यथा वेग से विद्युत-धारे ।।२१।।
करती कटाकट कटु कटारी, फट फट जाती बरछी मारी ।
तड़ा तड़ गिर रही थीं गोली, वीर-देह को करती पोली ।।२२।।
असुरों ने दी मार करारी, वानर-सेना मन से हारी ।
भाग पड़ी अति चोटें खाती, पीछे फिरी छुपा कर छाती ।।२३।।
तीन तेरह की नौबत आई, हनुमान् हुए तभी सहाई ।
थाम्भ तभी ली उस ने सेना, किया तभी देने का लेना ।।२४।।

---

* चौपाई।

वानर बन कर बहुत उत्साही, हुये परस्पर हाथों बाही ।
पड़ते थे वे अरि पर दौड़े, घोट गले सब नसें निचोड़े ।।२५।।
अकंपन हनुमान् की जोड़ी, विजय लाभ की होड़ा होड़ी ।
करती थी वर हस्त बढ़ाये, वैरी पर बहु वार बिठाये ।।२६।।
हनुमान् ने पेड़ उखाड़ा, उस से अकंपन को पछाड़ा ।
जीवन विगत हुआ सेनानी, करके आसुर दल की हानी ।।२७।।
हनुमान् उसे हन कर ऐसे, चमका शुक्र ग्रह हो जैसे ।
वानर बल की बढ़ी बड़ाई, चारों ओर से आई वधाई ।।२८।।
उस दिन असुर गये बहु मारे, बहुत बुरी मारें खा हारे ।
उन के दलबल के दिल डोले, वैर-वायु के खा झक-झोले ।।२६।।
अगले दिन कर सर्व तयारी, भूप ने सेना अधिक विस्तारी ।
सचिव समूह से मिल विचारा, बलनायक प्रहस्त निर्धारा ।।३०।।
ले आदेश चला सेनानी, घोर घमंडी अति अभिमानी ।
सम्बोधन कर सब अधिकारी, उसने अपनी नीति उच्चारी ।।३१।।
वानर दल सब मार मिटाओ, निष्कंटक निज जनको बनाओ ।
करो देश को अरि से रीता, शत्रु एक नहीं जाय जीता ।।३२।।
रणभूमि में द्वन्द्व मचाओ, दुर्लभ विजय लाभ ले आओ ।
पड़ो अरि पर सिंह ज्यों भूखा, जाने पाय नहीं कोई सूखा ।।३३।।
पर-पिंजर के पुंज रचाओ, धरणी पर धड़ ढेर लगाओ ।
रक्त मांस का कीचड़ होवे, मृत्यु-सेज पर शत्रु सोवे ।।३४।।
यों आज्ञा दे कर मदमाता, जाता था भू को कम्पाता ।
वर्षाकाल की सरिता ज्यों ही, चलती वेग से सेना त्यों ही ।।३५।।
जय जय नाद विविध विधि गाजे, बजे वीरता वर्द्धक बाजे ।
नभभेदी झण्डे बहु झूले, असुर सुरा मद में थे फूले ।।३६।।

आगे वानर सेना आई, छेड़ी गई तुरन्त लड़ाई ।
आसुर-नद की बाढ़ बढ़ी ने, विषम वाण की बड़ी झड़ी ने ।।३७।।
वानर-शक्ति-बान्ध को तोड़ा, जहां जो मिला उसे न छोड़ा ।
मार काट की धूम मचाई, रक्त स्रोत अति दिया चलाई ।।३८।।
गुत्थम गुत्था हुए वे ऐसे, सरित् सिन्धु हो मिलते जैसे ।
महा वायुवश तरु टकराते, त्यों थे दो दल भिड़ते जाते ।।३९।।
तोड़ वृक्षों के डाल डाली, वानर हनते काया काली ।
पीट पीट करते पर-पानी, मार मारते वे मनमानी ।।४०।।
समर सरित् थी वह भयवाली, जिस में वैर थे व्याल व्याली ।
महा मच्छ मत्सर भी दौड़े, फिरें मगर अति लम्बे चौड़े ।।४१।।
दाव पेच भंवर थे भारे, भय संशय थे नक्र हत्यारे ।
लहू मांस रज मिश्रण जो ही, दल दल कीचड़ था तो सो ही ।।४२।।
धारा कटुतर कोप बनी थी, आक्रमण की लहर घनी थी ।
उसमें झाग भागकर जाना, मार हार का फिर फिर खाना ।।४३।।
रक्त-नीर में अंग भिगोते, वीर पुरुष थे खाते गोते ।
सैनिक शूर तारियां लेते, बहते बहुत दिखाई देते ।।४४।।
भयदा समर सरित् थी ऐसी, काल-निशा होती है जैसी ।
उसमें राघव के दल वाले, लड़ते खड्ग गदा ले भाले ।।४५।।
बढ़ा नील लड़ता वर शूरा, करके वार शत्रु पर पूरा ।
उसने हन प्रहस्त गिराया, मुखिया नायक मार मिटाया ।।४६।।
भगे असुर जी साहस छोड़े, गये पुरी में दौड़े दौड़े ।
रघुपति की जय दश दिश व्यापी, बना असुर दल बहुत उत्तापी ।।४७।।
प्रहस्त मरण से अति क्रोधी, हुआ असुर पति धर्म विरोधी ।
दलबल लेकर रण में आया, जैसे सागर हो उमड़ाया ।।४८।।

उसके नयन यथा अंगारे, रहे दहक कु-क्रोध के मारे ।
अंजन पर्वत सम अति काला, विषधर सम बनकर विकराला ।।४६।।
रथारूढ़ वह बाण बहाता, शत्रु दल पर पड़ा बल खाता ।
बरसते बाण ज्यों चिंगारे, जाते वानर बली विदारे ।।५०।।
उसके अस्त्र शस्त्र अति तीखे, दैवी बल बन पड़ते दीखे ।
उसके वार न जाते खाली, हरते जन की जीवन लाली ।।५१।।
कौन्ध कौन्ध कर पड़ता सो त्यों, पड़े वनों पर बिजली भी ज्यों ।
जिस दल ओर वह पग उठाता, उसे मूल के सहित मिटाता ।।५२।।
रघुपति लक्ष्मण दोनों भ्राता, वानर बल के वरतर त्राता ।
सर्व नाश से उन्हें बचाने, आगे बढ़े अरि को हटाने ।।५३।।
वानर-पति अति आवेशी, असुर जनों के बड़े विद्वेषी ।
रावण की करने अगुआई, आगे हुए लिए अधिकाई ।।५४।।
उसने ताक लगा इक बारी, महा शिला रावण पर मारी ।
असुरपति ने करके सपाटा, शस्त्र से ही शिला को काटा ।।५५।।
कोपयुक्त कटु नयन तिरेरा, उसने तब सुग्रीव को घेरा ।
वाण मार कर बहु पेचीले, शत्रु के सब ही अंग कीले ।।५६।।
बहुत वेदना वेधक पाता, सुग्रीव गिरा तब गड़गड़ाता ।
देख अचेत पड़ा यों स्नेही, दहले दिल दल वानर के ही ।।५७।।
राघव लक्ष्मण ने हो आगे, रोके वे जन जो थे भागे ।
वाण लगे वे ही बरसाने, नभ में तनकर ताने बाने ।।५८।।
हो स्वस्थ वानरपति जी ने, वार असुर पर ऐसे कीने ।
घायल करके तो इक बेरी, उसकी बीन्धी देह घनेरी ।।५६।।
हनुमान् ने पास हो ऐसा, मारा मुक्का वज्र हो जैसा ।
असुरभूप पैरों तक कांपा, चक्कर खाता डोला हांपा ।।६०।।

हो सचेत रावण मायी, बना वानरों को दुःखदायी ।
अस्त्र शस्त्र से वे उस वेला, काटे उसने ज्यों तर केला ।।६१।।
सघन वानर जन वन को ही, दहन लगा दावानल हो ही ।
रघुपति ने जब यह अवलोका, उसे वाण बादल से रोका ।।६२।।
वार अचूक शत्रु पर डाले, हाथ दिखाये बहुत निराले ।
रावण-सारथी मार मिटाया, रथ को तोड़ चूर्ण बनाया ।।६३।।
वाण धनुष से ऐसा छोड़ा, असुर मुकुट को तत्क्षण तोड़ा ।
बीन्धा वाणों से बहु वारी, भागा तभी वह अत्याचारी ।।६४।।
दुर्गति पाकर यों बहुतेरी, उसने पीठ नगर को फेरी ।
निकला रण से सीस छुपाता, दुःखित दिल वह अति पछताता ।।६५।।

दसवाँ सर्ग

*मार पीट से खीज, हुआ वह दुखिया जाकर ।
बोला बैठ समीप, कुम्भकर्ण को जगाकर ।।
कहता हूं हे भ्रात, विपदा घोर में आकर ।
बनो सहायक आज, कष्ट में हस्त बटा कर ।।१।।
नायक मारे गये, वीर बली रण-खेत में ।
निज नाव रही डूब, जब अब सूखी रेत में ।।
होना ऐसा नाश, बन्धो! तेरे नेत में ।
है आश्चर्य वीर!, नहीं हो आप चेत में ।।२।।
पकड़ो मेरी बांह, यह निद्रा आलस तज कर ।
असुर कर्म को करो, भ्रातृ-भावना भज कर ।।

* रोला।

पड़ो शत्रु पर टूट, शस्त्र सब से सज कर ।
अरि-रक्त करो पान, मांस भी खाओ रज कर ।।३।।
कुम्भकर्ण वाचाल, तमोगुणी क्रूर अति वह ।
नीति न्याय उपदेश, दे बोला शिथिल मति वह ।।
पहले कर अपराध, भोगो तुम तो कुगति वह ।
जिससे होता नाश, आती नहीं भी रति वह ।।४।।
रावण को फटकार, चला वह वीर महोदर ।
रावण के हित हेतु, भाई उसका सहोदर ।।
भारी भीषण रूप, दीर्घकाय लम्बोदर ।
खान पान परायण, रहा रख लक्ष्य अन्नोदर ।।५।।
रण में कर प्रवेश, बना वह बिजली कड़का ।
वानर बल बहु देख, कोप कर अति ही भड़का ।।
करता था अभिमान, अधिक अपनी बड़बड़ का ।
वानर दल बल बीच, शूल बन तीखी रड़का ।।६।।
काला अधिक कुरूप, दान्तों को कटकटाता ।
कालरूप को धार, बाहू को फटफटाता ।।
जीवित पर जन पकड़, काट उसे कच्चा खाता ।
अर्द्ध अंग को तोड़, रक्त पी मांस चबाता ।।७।।
बना भयानक भूत, भूमि पर पर्वत अंजन ।
ले काया विकराल, करे अरिदल को भंजन ।।
रक्त पान के साथ, रहा कर जो मनरंजन ।
पड़ा शत्रु पर कूद, उसको बनाता मंजन ।।८।।
सर्वनाश को मान, वानर बहुत ही डर कर ।
भागे दिल को छोड़, रहे न खेत में अड़कर ।।

छुपने इत उत लगे, विपदा बहुत में पड़ कर ।
उस समय अंगद ने, कहा उन्हें अग्र बढ़ कर ।।६।।
कहां बचोगे भाग?, रहे यों प्राण नहीं है ।
भीरू बन जग में, जीने को स्थान नहीं है ।।
कायर जन कहीं तो, हुआ प्रमाण नहीं है ।
आन बान के बिना, वीर का त्राण नहीं है ।।१०।।
सु-कुल वंश के पूत, तुम्हीं हो सभी वीर वर ।
जिस के होते पुत्र, योद्धे निर्भय शूर नर ।।
जिस का यशो-विस्तार, फैला सारी भूमि पर ।
है आश्चर्य आज, असुर से जाओ तुम डर ।।११।।
जो जन हैं डरपोक, उन्हीं का होता अपयश ।
भीरू भूल भ्रम से, हो जाते दास परवश ।।
उन का हो अपमान, देश विदेश में दिशदश ।
रहें दीन धन हीन, भीरू नर जग में अवश्य ।।१२।।
कायरों को धिक्कार, जगत् में देते सब जन ।
जाति वंश के बीच, न पाते यश का वे धन ।।
कायर भीरू कुपूत, दें जाति देश वंश हन ।
वैरी बल से भाग, बचे कभी जीवन न जन ।।१३।।
वीरवर्य बड़ भाग, उठिए अब आवेश में ।
जाति वंश की छाप, लगाओ शत्रु-देश में ।।
आज पराक्रम से, करो स्व-शत्रु क्लेश में ।
लाओ हर्ष असीम, विजय कर, निज नरेश में ।।१४।।

*अंगद के सुन वचन सुहाने, सैनिक सब मन में हर्षाने ।
धृति धारे ध्रुव पैर जमाये, धरणी धर सम धीर दिखाये ।।१५।।
निर्भय सिंह बने वे शूरे, भरे आवेश वेग में पूरे ।
अरि दल पर वे ऐसे टूटे, शत्रु के जिस से छक्के छूटे ।।१६।।
कुम्भकर्ण अकरुण कटुकारी, काट कूट करता था भारी ।
मिलता तम को सूर्य जैसे, उसे मिले रघुपति तब ऐसे ।।१७।।
राघव ने रोका वह त्यों ही, गिरि नदी को रोके ज्यों ही ।
समर भयंकर गया मचाया, हुई मन्द असुर की माया ।।१८।।
अर्द्धचन्द्राकार सर तीखे, बरसे उस पर वज्र सरीखे ।
हत होकर गिरा वह तथा ही, भूचल से गिरि गिरता यथा ही ।।१९।।
रामचन्द्र के मीत प्यारे, सेवक सैनिक स्नेही भारे ।
जय जय से नभ भू गूंजाते, हर्ष परम वे सब थे पाते ।।२०।।
रावण की छतिया कम्पाई, शोक रहा असुरों पर छाई ।
असुरपति गद्गद् हो रोया, महा रत्न नर उसने खोया ।।२१।।
त्रिशिरा आदि वीर बुलाये, अस्त्र शस्त्र से बहुत सजाये ।
भेजे उसने शत्रु-दबाने, पर वे खेत रहे बिलखाने ।।२२।।
देख पिता को गद्गद् रोते, शोक-सिन्धु में लेते गोते ।
मेघनाद ने आज्ञा चाही, करे अरि हनन कार्यवाही ।।२३।।
आज्ञा पा कर वीरावेशी, राघव लक्ष्मण का अति द्वेषी ।
विधि-पूर्वक छुप रचकर माया, शत्रु-हनन को रण में आया ।।२४।।
कर उपचार सर्व बल देने, शत्रु-शक्ति मति गति हर लेने ।
अस्त्र सज्जा वह करके ऐसी, मोहक मन को मायिक जैसी ।।२५।।

---
* चौपाई।

वायु वेगवत् दौड़ लगाता, लड़ने लगा वह गर्व में माता ।
छुप कर छल चल छा कर छाया, लड़ता मोह कपट की काया ।।२६।।
चमक अभी फिर तो छुप जाता, चतुर उसे भी देख न पाता ।
बिजलीवत् वह कौंध रहा था, वानर बल को रौंध रहा था ।।२७।।
चपलावत् चंचल चल चालें, वानर दल की दलता दालें ।
जिस पर उसने लक्ष्य जमाया, उसे मूल से मार मिटाया ।।२८।।
भगते मृग ज्यों सिंह के आगे, उसे देख अरि जाते भागे ।
सर्व हनन से वह बलशाली, समर खेत को करता खाली ।।२६।।
वाण बरसते उस के ऐसे, श्रावण-वृष्टि नभ से जैसे ।
उस से पर दल कटता त्यों ही, तर तोरी तरु कटते ज्यों ही ।।३०।।
अंगद नल आदिक सेनानी, वीन्धे उसने कर अति हानी ।
कितने ही नर वीर निराले, उसने मृत्यु मुख में डाले ।।३१।।
उसके कपट क्रोध की ज्वाला, भस्म बनाती जन-वन-माला ।
इधर उधर भी जहां निहारो, दीखें हत वानर दिश चारों ।।३२।।
आर्तनाद सभी दिश होते, अनवरत कटे नर अति रोते ।
फिर भी था वह मारें देता, वानर जन के जीवन लेता ।।३३।।
कर्म क्रूरतर उसके देखे, राघव ने सब कर के लेखे ।
बोले वे हे लक्ष्मण भाई, हो रहा हनन अति दुःखदाई ।।३४।।
अब तो मैं हूँ वाण बहाता, वानर दल को आप बचाता ।
भूतलाकाश में सिर छुपाये, तो भी वाण से बच न पाये ।।३५।।
राघव क्रुद्ध हुआ जब जाना, उसने माया का रच बाना ।
सीता सम मायिक रच नारी, लाया रथ में सुन्दर सारी ।।३६।।
राघव नाम की रट लगाती, ध्यान-मग्न जो देखी जाती ।
उपवासों से दुबली मैली, ले अवलम्बन आर्य-शैली ।।३७।।

वानर वर ने उसे निहारा, सिया सत्य है यही विचारा ।
उन्हें दिखा उसने वह खींची, केश पकड़ ग्रीवा से भींची ।।३८।।
यह देख हनुमान् जी बोले, तू ने पहले अति विष घोले ।
दारुण दिल निर्दय मति हीने, तू ने कर्म क्रूर कटु कीने ।।३६।।
इसे मार नहीं, रे हत्यारे, कोप कपट छल बल के क्यारे ।
अबला हनते, हे नर पापी, तुझ में कुमति बहुत है व्यापी ।।४०।।
पर उसने वह तो तब रोती, हनन करी अति दुखिया होती ।
सिर को काट कर वह गिराई, गिरती हुई माया चिल्लाई ।।४१।।
निरख असुर की काली क्रीड़ा, मानी राघव ने अति पीड़ा ।
वे व्याकुल सचेत हो जाते, हा सीते! कह अति बिलखाते ।।४२।।
लक्ष्मण ने उनको समझाया, धर्माधर्म का भेद सुनाया ।
कहा, उठो नरसिंह अभी ही, मैं शत्रु हन दूँगा सभी ही ।।४३।।
धृतिधर धीर दीर्घ बाहो!, निज महिमा स्वयं लख पाओ ।
अपना बल तुम आप विचारो, स्वस्थ बनो न साहस हारो ।।४४।।
लक्ष्मण के सब वचन सुहाते, सुने प्रभु ने शक्ति बढ़ाते ।
शान्तभाव से बैठ विराजे, सीतापति सब जग के राजे ।।४५।।

ग्यारहवाँ सर्ग

*तब निकुम्भिला स्थान में, सहित पूजोपहार ।
मेघनाद छुप कर गया, करने को उपचार ।।१।।
उसका निश्चय था यही, जभी इष्ट को मान ।
माया रचना मैं करूँ, कभी न होती हान ।।२।।

* दोहा।

विभीषण ने जाना यह, मेघनाद - बल - भेद ।
भावी हानि-शंका से, हुआ उसे अति खेद ।।३।।
सेना की कर योजना, यथा उचित सब स्थान ।
राघव को वह आ मिला, कह कर भेद महान् ।।४।।
जीवित सीता समझिए, था वह माया रूप ।
मेघनाद ने छल किया, रच कर सिया सुरूप ।।५।।
अब देने धोखा तुम्हें, कूट कर्म के काज ।
इष्ट-स्थान में है गया, सजने को सब साज ।।६।।
अस्त्र-शस्त्र वहां पर सज, सर्व पहिर हथियार ।
माया रच कर मोहिनी, पुनः करेगा वार ।।७।।
जब माया रच कर वहाँ, समर करे नर वीर ।
अवध्य अलक्ष्य तब रहे, उस का, बना शरीर ।।८।।
वह यदि आया वहाँ से, रच कर माया-जाल ।
तब तो वानर दलों का, बन जावेगा काल ।।६।।
उस को असम्भव है तब, लेना बल से जीत ।
उस से लड़ना उस समय, है भाग्य-विपरीत ।।१०।।
यदि चाहो सीता मिले, विजय आ जाय हाथ ।
तो लक्ष्मण को भेजिए, अब ही मेरे साथ ।।११।।
शस्त्र-सुसज्जा से प्रथम, उस पर कर प्रहार ।
उस की माया मोहिनी, दी तो जाय निवार ।।१२।।
आप विराजो यहां पर, कर चित्त-समाधान ।
लक्ष्मण मेरे साथ तो, करे अभी प्रस्थान ।।१३।।
कह तथास्तु रघुपति, बोले प्यारे भ्रात ।
असुर-राज सह जाइए, करो शत्रु की घात ।।१४।।

वानर-सेना संग ले, जाम्बवान् हनुमान् ।
मारो मायावी असुर, दिव्य धनुष को तान ।।१५।।
स्वस्ति हो जाओ प्रिय!, किंचित् करो न देर ।
माया-मोहक असुर को, हन देना इस बेर ।।१६।।
भ्राता का आदेश पा, कवच पहन ले वाण ।
राघव को प्रणाम कर, लक्ष्मण ने की यान ।।१७।।
चलते बोला धनुर्धर, मेरे वाण विशेष ।
वैरी पर बहु बरस कर, देंगे उस को क्लेश ।।१८।।
हनन हुआ ही जानिए, कपट कोप की खान ।
वाण मार से करेंगे, उसके प्राण उत्थान ।।१९।।
वानर सेना साथ ले, असुर-राज ले संग ।
लक्ष्मण वीर गया तभी, मन में भरे उमंग ।।२०।।
उस के सुरक्षण को बड़े, तत्पर थे हनुमान् ।
विभीषण जांबवान् भी, अंगद अति बलवान् ।।२१।।
मेघनाद का इष्ट घर, सेना ने तो घेर ।
रक्खा था चहुँ ओर से, दल बल बहुत बखेर ।।२२।।
असुर-राज ने तब कहा, लक्ष्मण! सुनिये बात ।
घेरा तोड़ो आसुरी, करके सर-सम्पात ।।२३।।
तरु झुर्मट तो है घना, उस पर सैनिक-कोट ।
इससे वह दीखे नहीं, पाकर ऐसी ओट ।।२४।।
मायाधर को मारिए, वाण मर्महन मार ।
अस्त्र छोड़ो अमोघ अब, करो शत्रु-संहार ।।२५।।

*विभीषण के वाक्य करारे, उत्साह साहस वर्द्धन हारे ।
लक्ष्मण ने सुन कर सर छोड़े, शत्रु के दल व्यूह भी तोड़े ।।२६।।
लक्ष्मण-सेना की तलवारें, काट रही थीं शत्रु-कतारें ।
असुर भी लड़ते थे तथा ही, हस्ति मत्त लड़ें भी यथा ही ।।२७।।
समर भयंकर था वह ऐसा, भूचल भारा होवे जैसा ।
जब उस पर जन नयन टिकाता, रोमांच तभी हो आता ।।२८।।
पवन-पुत्र ने उसे पुकारा, मेघनाद! आ दल ले सारा ।
किये कर्म के फल कटु खा ले, बने बिगड़ी तो वह बना ले ।।२६।।
द्वन्द्व समर करो बढ़ आगे, मुझ से बचे न आज अभागे ।
पवन-पूत ने यों उकसाया, कोप भरा वह बाहर आया ।।३०।।
कर न सका वह सर्व तयारी, रच न सका था माया सारी ।
यथा तथा कर कर्म अधूरे, उसने धनुष वाण वर पूरे ।।३१।।
चचा लखन उस ने पहचाने, भेद गये खुल सब तब जाने ।
पितृ-बन्धु को लख कर दोषी, बोला बहुत वचन कटु रोषी ।।३२।।
पतित पुरुष ओ अधम हत्यारे, आज देखना हाथ हमारे ।
तुझ समेत सब को हन दूंगा, बन्धु-द्रोह का बदला लूंगा ।।३३।।
असुर वंश का सुत कहलाते, लाज शर्म तुझे नहीं आते ।
बड़े बन्धु के सुत का द्वेषी, आज बना तू अन्न-गवेशी ।।३४।।
धर्म-विदूषक शुभमति-हीने, सत्य सम्बन्ध स्नेह विहीने ।
जाति गोत्र न तेरे नाती, तुझे मित्रता मूल न भाती ।।३५।।
प्रामाणिक पन तुझे न भाता, धर्म लेश न तुझ में दिखाता ।
अपने तज जो पर अपनाये, तू ने वंशज भाव भुलाये ।।३६।।

* चौपाई।

जा मिला तू पर जनों से ही, निन्दनीय है सुजनों से ही ।
दुर्बुद्धे! मुझे शोक है तेरा, तुझे स्वार्थ कुमति ने घेरा ।।३७।।
सोचो, कहां सगों सहवासी, परवश सहना कहां उदासी ।
कहां सगों से मिलकर खाना, पर का कहाँ दास कहलाना ।।३८।।
अपनों का बन रहना भाई, नीचाश्रय पर का दुःखदाई ।
पर हो बड़ा गुणी वर ज्ञानी, अपनों में हो गुण की हानी ।।३९।।
तो भी अपना है सुखकारी, पर है मान-प्रतिष्ठा-हारी ।
पर का किंकर कूकर होना, लाज मान सब कुछ है खोना ।।४०।।
अपना अपना रहे सदा ही, पर अपना नहीं होता कदा ही ।
{अपनों में गति अपनी मानी, दूध दूध हो पानी पानी} ।।४१।।
अपने तज जो पर को सेवे, भेद सर्व अपनों के देवे ।
अपनों का हो नाश जभी ही, पर से मरता वही तभी ही ।।४२।।
{जो अपनों का नाश कराते, उन पर अन्य विश्वास न लाते} ।
अन्त में पर उन्हें हन देते, पर पक्ष छेदन वे कर लेते ।।४३।।
रावण का हो छोटा भाई, निर्दयता यह तुझ में आई ।
अपने से जायें गल घोटे, सके कर्म कर तू ही खोटे ।।४४।।
भतीजे की सुनकर धिक्कारें, व्यंगपन की खा कर मारें ।
विभीषण ने वचन उच्चारे, जाने बिना न दे फटकारें ।।४५।।
चचा मैं तो हूँ प्रिय! तेरा, रक्खो उचित जो गौरव मेरा ।
मुझ को कर्म कठोर न भाते, अधर्मपन तो सहे न जाते ।।४६।।
बन्धु उठ कर बन्धु को मारे, घर से भी बाहर कर डारे ।
कहो, उचित क्या तू ने जाना, मम निर्वासन ठीक है माना? ।।४७।।
बन्धु दुष्ट नहीं तजा जाता, उचित पालना है ही भाता ।
तव पिता के कर्म हैं ऐसे, वैरी जन के होते जैसे ।।४८।।

पाप पुरुष को तजिए त्यों ही, विषधर तजते हैं जन ज्यों ही ।
पतित अधम से रहे किनारे, शुभ इसी में समझे विचारे ।।४६।।
यों प्रबल उपदेश सुनाया, उसे चचा ने तो समझाया ।
पर उस ने कह कड़वी बातें, सुनाई चचा को सुलवातें ।।५०।।
मेघनाद पुनः कड़कड़ाता, बोला वचन कुपित बल खाता ।
आज सर्व तुम बचो न जीते, समझो निज-जीवन-दिन बीते ।।५१।।
मेरे बाण बरस अब के ही, देंगे पथ तुम को यम के ही ।
लक्ष्मण ने कहा यहां आना, अच्छा नहीं बहु बात बढ़ाना ।।५२।।
तेरे प्रिय प्राण तो मैंने, हैं लेने सर चल कर पैने ।
इन्द्रजित् यों गया चिढ़ाया, उस ने सर का जाल बिछाया ।।५३।।
लक्ष्मण को तब लक्ष्य बनाया, बीन्धी उस की सब ही काया ।
लक्ष्मण ने भी सर बरसाते, बान्ध दिये वाणों के तान्ते ।।५४।।
मेघनाद का रक्त बहाया, उस को छलनी यथा बनाया ।
उस के अश्व हने रथ तोड़ा, उस का मायिक भाण्डा फोड़ा ।।५५।।
ऐन्द्रास्त्र तब परम चलाया, लक्ष्मण ने वर लक्ष्य जमाया ।
मेघनाद-सिर पर वह ऐसे, पड़ा पेड़ पर बिजली जैसे ।।५६।।
कुण्डलमुकुटसहितसिरत्योंही, गिरा केसू कुसुम हो ज्यों ही ।
राघव दल में जय जय कारे, गूंजे सब दिश ऊँचे भारे ।।५७।।
रघुपति पै मिल मुखिया आये, लक्ष्मण को आगे कर लाये ।
कहा विभीषण ने रघुराई, जय की होवे बहुत बधाई ।।५८।।
लक्ष्मण ने अरि मार गिराया, मेघनाद को अभी मिटाया ।
समाचार सुन सु-हर्ष कारी, रघुपति ने हो हर्षित भारी ।।५६।।
साधुवाद दिये उसे सो ही, फभें विजेता जन को जो ही ।
अनुज लज्जा-वश तो सकुचाया, राघव ने बढ़ कण्ठ लगाया ।।६०।।

लहू से लत-पत को हर्षाते, बोले राघव कीर्ति गाते ।
कठिन कर्म किया प्रिय! तू ने, असुर किये जो सार-विहीने ।।६१।।
मैंने रावण हत अब जाना, विजय लाभ पूर्ण ही माना ।
फिर सुषेण को बोले आओ, इसको अभी निशल्य बनाओ ।।६२।।
उस ने तब औषध सुंघाई, उस की पीड़ा सर्व मिटाई ।
घाव-रहित किया देह सारा, उस का रंग बहुत संवारा ।।६३।।

बारहवाँ सर्ग

*असुर गये सब भागकर, पुर में करते शोक ।
असुरपति समाचार सुन, हुआ रहित आलोक ।।१।।
उस के दोनों नयन से, अश्रु बन एक तार ।
टप टप टपके टूट कर, लगातार इक सार ।।२।।
मूर्छा खा कर गिर गया, पुत्र शोक के बीच ।
किया गया सचेत तभी, मुख पर जल को सींच ।।३।।
सुत-पतन-पीड़ा प्रबल, उस में कर संचार ।
भीतर भीतर ही उसे, रही अधिक थी मार ।।४।।
पुनः स्वस्थ सचेत हो, कोपाकुल बन लाल ।
वैर-बुद्धि से वह बना, वानर दल का काल ।।५।।
बोला सचिवों को वचन, हने गये जो लोग ।
उनका बदला सर्व ले, मैं काटूँगा रोग ।।६।।
वानर बचे न एक अब, सूर्य-वंशज साथ ।
अरि जन के स्नेही सगे, होंगे आज अनाथ ।।७।।

---

* दोहा।

झंझा वायु प्रबलतर, ज्यों आँधी उत्पात ।
त्यों वह आया वेग से, करने को पर-घात ।।८।।
कट कट जन गिरने लगे, कायर दौड़े भाग ।
कितने भीरु जन भय से, गये प्राण भी त्याग ।।६।।
रामचन्द्र वरतर नर, उसके सम्मुख आप ।
होकर तो लड़ने लगे, बरसा वाणकलाप ।।१०।।
वायु-बल यथा मेघ का, देता बदल झुकाव ।
ऐसे रघुपति ने सर्व, बदले उसके दाव ।।११।।
टक्कर मार चट्टान से, नाले मुख लें फेर ।
राघव ने उसको तथा, दिया धक्का इक बेर ।।१२।।
दोनों वे थे लड़ रहे, बदल पैंतड़े पैर ।
बादल बन थे बरसते, वाण बने विष वैर ।।१३।।
बरसे मूसलाधार बन, धरणी पर घन घोर ।
तथा बाण थे बरसते, बल से दोनों ओर ।।१४।।
जिस पथ से जाते बली, पीछे बाण तरंग ।
सागर लहरों की तरह, जाते उन के संग ।।१५।।
सिन्धु-नीर में वायु-हत, करें तरंग किलोल ।
वीर-बाहू-बल से सर, तथा रहे थे डोल ।।१६।।
राघव-मस्तक पर बने, माला, वाण विशेष ।
मिली पड़ें रवि किरण ज्यों, हैम शिखर के देश ।।१७।।
बार बार बीन्धा बहुत, रघुपति ने वह क्रूर ।
घायल होकर अधिकतर, फिर भी हुआ न दूर ।।१८।।
राघव-वाणों से खिझा, जैसे छेड़ा—नाग ।
देख विभीषण सामने, उसे लगी अति आग ।।१६।।

शक्ति तो बहु भयंकरी, उस ने ली आरोप ।
भाई को हनने लिये, करके कटुतर कोप ।।२०।।
लक्ष्मण ने निज वाण से, महा शक्ति दी काट ।
उसी समय जय नाद का, गूँजा शब्द विराट् ।।२१।।
पुच्छल तारा ज्यों गिरे, ज्यों हो उल्का-पात ।
हुआ भूमि पर चमकता, उस का तथा निपात ।।२२।।
फिर चिड़ कर उस भूप ने, शक्ति दूसरी बार ।
फैंकी अपने भ्रात पर, लखन ने दी निवार ।।२३।।
बोला वह तब हो कुपित, हे लक्ष्मण अनजान ।
अब तुझ को हूँ मारता, भज ले निज भगवान् ।।२४।।
मरता है पर मरण में, जान बूझ कर आप ।
देता हूँ मैं अब तुझे, प्राण-नाशक उत्ताप ।।२५।।
अमोघ शक्ति वह पुनरपि, उस ने कर में धार ।
कोप वैर से चिढ़ बहुत, किया लखन पर वार ।।२६।।
घन घन करती शक्ति वह, जलती आग समान ।
लक्ष्मण-उर में आ धसी, लेने को जी प्राण ।।२७।।
बोले श्री रघुराज जी, देख शक्ति की चाल ।
स्वस्ति शुभ हो भ्रात का, हे हरि दीनदयाल ।।२८।।
शक्ति-वेग प्रहार से, लक्ष्मण गिरा अचेत ।
मूर्च्छित मानो हो सब, गया समर का खेत ।।२९।।
वानर-बल में छा गया, सब दिशि हाहाकार ।
भयभीत हुए सर्व तब, देख अतुल निज हार ।।३०।।
मूर्च्छित बन्धु निरख कर, राघव कर अति खेद ।
अरि के पीछे पड़ गये, जान समय का भेद ।।३१।।

मन-से लक्ष्मण पास थे, तन से कर प्रहार ।
रावण को रघुपति बली, देते गहरी मार ।।३२।।
राघव ने निज वाण से, रावण दिया खदेड़ ।
उसके दल बल के व्यूह, सब तब दिये उधेड़ ।।३३।।
रथ पर रथ उसके तभी, तोड़े करके चूर ।
अनुज जहां था वहां से, किया दुष्ट को दूर ।।३४।।
देख अनुज को पड़ रहा, अचेत अति चुपचाप ।
उसका सिर ले गोद में, राघव किया विलाप ।।३५।।
*बोले राघव, अनुज दुलारे, पहले भी दुःख थे तो भारे ।
इस पर विषम दशा यह तेरी, धैर्य तोड़ रही है मेरी ।।३६।।
विजय समर मुझे नहीं भाता, जीना भी दुब्बर हुआ जाता ।
व्यर्थ काम हुए सब मेरे, देख अंग शिथिल पड़े तेरे ।।३७।।
जो था वन में मेरा साथी, जिसने किया मुझको सनाथी ।
सुख दुःख में जो मेरा संगी, रहता बना सदा अंगांगी ।।३८।।
आज पड़ा जब यह है ऐसे, मेरे सुख हैं दुखड़ों जैसे ।
ये दिन भाग्य ने दिखलाये, निष्फल सब ही यत्न बनाये ।।३६।।
वन में मेरा बन सहचारी, ज्यों तू आया आज्ञाकारी ।
यमपुर को त्यों साथ तुम्हारे, मैं भी चलूँगा बन्धु प्यारे! ।।४०।।
जग में जन मिलते सुखदाई, दुर्लभ मिलते तुझ से भाई ।
अनुज बिना धन संपत् फीके, मुझे राज्य न सूझे नीके ।।४१।।
तुझ बिना यदि अवध में जाऊँ, वहां सुमित्रा को क्या बताऊँ ।
पूछेगी कौशल्या माता, कहां अनुज है तेरा भ्राता ।।४२।।

---

* चौपाई।

भरत शत्रुघ्न दोनों प्यारे, कहें कहां हैं बन्धु हमारे ।
किस मुख से बोलूँगा बानी, कष्टकरी कटु क्लेश-कहानी ।।४३।।
मैंने कर्म किये क्या ऐसे, जिनके फल मिलते इस जैसे ।
हत हुआ तू बन्धु मेरा, मुझको विपदा ने है घेरा ।।४४।।
मुझे छोड़, अनुज! नहीं जाना, अपने को प्यारे! अपनाना ।
उठो निहारो मुख को खोलो, एक बार तो मुझ से बोलो ।।४५।।
पास खड़ा मैं तो हूं रोता, दीन दुःखी अति व्याकुल होता ।
एक बार, राघव! कह देना, पुनः मौन चाहे कर लेना ।।४६।।
पहले जब मैं था घबराता, सिया-विरह में पीड़ा पाता ।
तब तू था मुझको समझाता, क्यों न आज धैर्य बन्धाता ।।४७।।
राघव का यों सुन कर रोना, जल-हीना मीनावत् होना ।
भिषजवर्य सुषेण जी बोले, वचन धैर्य तुला पर तोले ।।४८।।
यह सन्ताप तजो रघुराई, मरा नहीं है तेरा भाई ।
चिन्ह नहीं इस पर है कोई, मृत तनों पर होते जो ही ।।४६।।
भीतर से लक्ष्मण हैं जीते, करो शोक से दिल मन रीते ।
सूक्ष्म सांस तो आ रहा है, हृदय गति भी दिखा रहा है ।।५०।।
ये ऐसे हैं ज्यों हों सोते, मूर्छा में ले गहरे गोते ।
उसने तब हनुमान् निहारा, सोम! सुनो, यह वचन उच्चारा ।।५१।।
गिरि महोदय दहिनी चोटी, उस पर एक जगह है छोटी ।
विशल्यकरणी औषधि गाई, सावर्ण्य करणी है बतलाई ।।५२।।
संजीव करणी शुभ संधानी, चारों औषध वहां बखानी ।
बहुत वेग से नरवर! जाओ, उक्त औषधें लेकर आओ ।।५३।।
सुषेण-आज्ञा सुनकर ऐसी, किये वे गति वर वायु जैसी ।
गये पहुँच वहाँ जब सोई, जड़ी पहचान सके न कोई ।।५४।।

भूमि उखाड़ी कर चतुराई, उस ने दल में ला दिखलाई ।
भिषजवर्य ने वह पहचानी, हनुमत् की वर महिमा मानी ।।५५।।
वैद्य ने विधि से पिसवाई, अति सूक्ष्म चूर्ण करवाई ।
लक्ष्मण को बूटी सुंघाई, चेतनता उस में फिर आई ।।५६।।
दूर हुई कुंवर की पीड़ा, दल में बढ़ी हर्ष की क्रीड़ा ।
जय जय नाद सर्व दिश गाजे, आई बधाई बजे बाजे ।।५७।।
रामचन्द्र चांद सम राजे, सैनिक तारक बीच विराजे ।
बोले मुख से, आओ आओ, वीर! कण्ठ से कण्ठ मिलाओ ।।५८।।
यों कहकर निज हस्त बढ़ाया, रघुपति ने वह गले लगाया ।
बन्धो! मैं तो हूं बड़भागी, देख तुझे जीवित अनुरागी ।।५९।।
पुनर्जन्म तेरा है माना, मैंने निज को जीवित जाना ।
हर्ष-अश्रु वे बहुत बहाते, थे पुनः उसे कण्ठ लगाते ।।६०।।
हो विनम्र लक्ष्मण जी ने, सुन सब वचन प्रेम-रस भीने ।
कहा, प्रभो ! न करिए देरी, अरि को हन दो तो इस बेरी ।।६१।।
सूर्य छिपने पीछे पाये, पहले शत्रु हना ही जाये ।
बड़ी प्रतिज्ञा यह अब धारो, ऋषि मुनियों के दुःख निवारो ।।६२।।

तेरहवाँ सर्ग

* लक्ष्मण के सुन कर वचन, रामचन्द्र विद्वान ।
देव, मुनि ऋषि-त्राण को, उद्यत हुए बलवान् ।।१।।
वृद्ध अबल बाला बहु, निरपराधी विशेष ।
दलन दमन थे देखते, प्रति दिन नए क्लेश ।।२।।

* दोहा।

पीड़ित आर्य लोग थे, उन सब की हो त्राण ।
इस कारण रघुदेव ने, लिए हाथ में वाण ।।३।।
था तो सुरक्षित तब नहीं, किसी का तन सु-प्राण ।
इस से लेकर शस्त्र को, चढ़े आप गुणखान ।।४।।
आर्य-भूमि नहीं रहे, परदेशी के हाथ ।
इस कारण से ले धनुष, चले वीर रघुनाथ ।।५।।
नीति न्याय की पालना, पले धर्म आचार ।
होवें सुरक्षित सर्व जन, दें सब हनन निवार ।।६।।
नारी जन का मान हो, कभी न हो अपहार ।
रामचन्द्र जी ने तब, खड़े किये हथियार ।।७।।
सर फैंके रघुराज ने, रावण पर दुःखकार ।
उस ने भी निज वाण का, बांध दिया तब तार ।।८।।
रथ पर रावण रूढ़ था, राघव थे बिन यान ।
द्वन्द्व युद्ध कारण इस, था नहीं वह समान ।।६।।
अस्त्र वर सभी असुर के, रामचन्द्र समीप ।
निष्फल हो जाते तुरत, पवन-पास ज्यों दीप ।।१०।।
बींधा रामचन्द्र को, सहस्र सर के साथ ।
रावण ने हो अति कुपित, कड़े दिखाये हाथ ।।११।।
शत्रु-वाण के घाव से, राघव रहे अडोल ।
अरि से थे तो लड़ रहे, धनुष वाण को तोल ।।१२।।
जैसे दो हों केसरी, अथवा दो गजराज ।
ऐसे दोनों वे भिड़े, रावण राघव राज ।।१३।।
सागर दो जैसे भिड़े, लेते टक्कर ठीक ।
ऐसे थे वे लड़ रहे, वीर दोनों निर्भीक ।।१४।।

ताना बाना थे बने, ओत प्रोत हो वाण ।
नभ में शक्ति ने स्वयं, जाल दिया था तान ।।१५।।
वाण-जाल की तान से, पंछी गण भय-भीत ।
ऊपर नीचे बट गए, निरख स्थान विपरीत ।।१६।।
जटिल जाल के छिद्र से, छन रवि-किरण-समूह ।
पड़ता था रणखेत पर, चमका सैनिक—व्यूह ।।१७।।
ऊर्ध्वगमन पतन अधः, दो ओर लगातार ।
सर का था जिस से बना, तम्बू उपम विस्तार ।।१८।।
उस के झीने छेक से, रवि बिम्ब बना सोम ।
समर-यजन की मुख्यबलि, लेता सुनता स्तोम ।।१६।।
शस्त्र कवच मणि मुकुट पर, चमक झलक के संग ।
मानो अपने लोक से, बोलता वचन व्यंग ।।२०।।
राघव करते विद्ध जब, रावण का, कर रोष ।
होता वानर दलों में, ऊँचा तब जयघोष ।।२१।।
रावण देता बींध जब, रघुपति को चल दाव ।
विजय-नाद दल असुर में, होता ले अति चाव ।।२२।।
भरे सरोवर को यथा, बहुत उमड़ घन नील ।
वाण-वर्षा से असुर ने, भरी देव-तन झील ।।२३।।
*रघुपति बोले, हे अभिमानी, गई वीरता तेरी जानी ।
चोरी कर हर लाया नारी, है तू पर वनिता-अपहारी ।।२४।।
विनष्ट करी मर्यादा सारी, आततायी हो अत्याचारी ।
पंचवटी में चोर यथा ही, जा कर तू ने तभी तथा ही ।।२५।।

* चौपाई।

हरण करी थी देवी सीता, अब तो बचे न तू जीता ।
कपट कला टूटेगी तेरी, मरण शय्या होगी इस बेरी ।।२६।।
भेस बदल कर रच कर माया, भिक्षु ब्राह्मण-रूप बनाया ।
वनिता, बन में देख अकेली, तू ने हर कर रथ में ले ली ।।२७।।
फिर भी है तू शूर कहाता, कायरपन से नहीं लजाता ।
आज सामने मेरे आया, घेरे दैव तुझे है लाया ।।२८।।
तुझे मृत्यु-पथ हूँ दिखाता, यमपुरी को मैं हूँ पहुँचाता ।
तव आंतें खींचेंगी चीलें, जब ठुकेंगी वाण की कीलें ।।२६।।
गीध नोच खायेंगे छाती, काक डार भी चूंच लगाती ।
गीदड़ फोड़ेंगे तन तेरा, मृत्यु ने है तुझ को घेरा ।।३०।।
महा अस्त्र अगस्त्य का सौंपा, राघव ने वह विधि से आरोपा ।
हाथी रथ को भेदनकारी, शिला भीत को छेदनकारी ।।३१।।
अचूक अमोघ घन घन नादी, हनन देता कर प्रतिवादी ।
दीप्ति रखता सूर्य जैसी, गति उसकी थी बिजली ऐसी ।।३२।।
राघव ने तब खींच चढ़ाया, रावण-हृदय लक्ष्य जमाया ।
चम-चम करता ज्यों वह छोड़ा, उसने जा अरि-हृदय तोड़ा ।।३३।।
रक्त-लिप्त भूतल से होता, आया भय से शत्रु-डबोता ।
राघव-वाण कोष में आया, चुपचाप हुआ शान्त समाया ।।३४।।
भूचल से गिरे गिरि ज्यों ही, असुर गिरा भू पर तब त्यों ही ।
आसुर सेना सब तब हारी, भाग उठी भय की वह मारी ।।३५।।
वानर उनके पीछे दौड़े, करते भूमि पर उन्हें चौड़े ।
राघव का संकेत हि पाते, शांत हुए तभी चुप-चपाते ।।३६।।
लौट पड़े जहां तहां से ही, टेढ़े हुए शस्त्र सब के ही ।
असुर घुसे लंका में रोते, हार-मार से दुःखित होते ।।३७।।

रघुपति-दल में जय जयकारे, गूँजे नभतल छूते भारे ।
देव-गण ने कुसुम बरसाये, देने बधाई ऋषि मुनि आये ।।३८।।
थे हर्ष में सैन्य-समाजी, वर्षा पर हो यथा वनराजी ।
मुखिया फूले तन न समाते, कमलों सम विकसित अति भाते ।।३९।।
चमक रहे थे वानर ऐसे, घन बिन तारागण हों जैसे ।
हर्ष उत्कर्ष उन्होंने पाया, उन पर आया रंग सवाया ।।४०।।
जहां देखो आनन्द वहां ही, मोद मनाते जाय जहां ही ।
झण्डे थे ऊँचे लहराते, विजय हर्ष थे सर्व मनाते ।।४१।।

भरत-मिलाप-काण्ड

पहला सर्ग

*बड़े बन्धु को देख कर, रण में पड़ा अचेत ।
दुःखी विभीषण जी हुऐ, भर कर दोनों नेत ।।१।।
बहुत मग्न हो शोक में, करने लगे विलाप ।
शव के समीप हो खड़े, करते थे अनुताप ।।२।।
पराक्रमी सु—चतुर वर, जगत् में अति विख्यात ।
नीति निपुण प्रवीण नर, बली वीर मम भ्रात! ।।३।।
शय्या सुवर्ण पलंग थी, तुझे सदा अनुकूल ।
लहू में लत-पत हो क्यों, रहे रमा हो धूल ।।४।।
सुवर्ण-भूषित वर भुजा, दोनों आज पसार ।
रज में क्यों हो रम रहे, सिर से मुकुट उतार ।।५।।
फीके क्यों दो नयन हैं, जो थे कमल समान ।
सिर सूना कैसे हुआ, तज कर मुकुट महान् ।।६।।
शस्त्र-धर में श्रेष्ठतर, तेरे गिरने साथ ।
टूटा पुल नय नीति का, धरणी बनी अनाथ ।।७।।
कलह धर्म की मिट गई, पराक्रम है नाश ।
सुगति वीरों की न रही, साहस हुआ विनाश ।।८।।
नरवर तेरा पतन यह, है ऐसी ही हान ।
सूर्य का मानो गिरा, भूमि पर तो विमान ।।९।।

---
* दोहा।

तम में डूबा चाँद है, कीचड़ में रवि-यान ।
ज्वाला उष्मा भी न रही, रहित चेतना प्राण ।।१०।।
हुआ हीन जड़ मूल से, अब तो सर्व उद्योग ।
धरणी विधवा हो गई, तेरा हुए वियोग ।।११।।
जो तू सोया धूल पर, लंका बनी असार ।
जीवन हीना हो गया, असुर-राज-घर बार ।।१२।।
राघव झंझा-वात ने, असुर-भूपवर पेड़ ।
शाखा पल्लव मूल सह, फैंका दूर उखेड़ ।।१३।।
इक्ष्वाकु वंशज सिंह ने, असुर-राज गज-राज ।
हनन किया रणखेत में, बाहू-बल से आज ।।१४।।
रामचन्द्र सुमेघ ने, बरस वाण बहु भान्त ।
दावानल तो आसुरी, सब ही कर दी शान्त ।।१५।।
मरा पड़ा है वीर वर, राघव के खा वार ।
सूना नीरस सर्व है, अब असुर संसार ।।१६।।
शोकाकुल व्याकुल बहुत, विलख विलख दिल घोल ।
लघु भाई था रो रहा, होकर डांवांडोल ।।१७।।
बोले रामचन्द्र जी, हे नरवरतर वीर! ।
करो नहीं रोदन अधिक, बनो न बहुत अधीर ।।१८।।
असुर-राज था शक्तिधर, पराक्रमयुत गुणवान् ।
महापुरुष था देश में, तेज ओज का स्थान ।।१६।।
जो हारा कभी न कहीं, लेता पर दल जीत ।
दैव-योग से है मरा, हुआ काल विपरीत ।।२०।।
जो मरते हैं सूरमे, समर-कर्म आरूढ़ ।
क्षत्र धर्म को पालते, देश-भक्ति कर गूढ़ ।।२१।।

उनका शोक न उचित है, वीर-कर्म अनुसार ।
जन सेवा में वीर वर, पाते हैं भव-पार ।।२२।।
जिसने जीते देश बहु, विजय किया सुर-लोक ।
काल-नियम में वह मरा, तो करो नहीं शोक ।।२३।।
निश्चित विजय न समर में, दो में जीते एक ।
लड़ता मरता आप है, वा पर हने अनेक ।।२४।।
क्षत्रिय जन की यह गति, कहते पुरुष-पुराण ।
अरि को मारे समर में, वा दे देवे प्राण ।।२५।।
समर में सोवे जो नर, रक्षण-व्रत को धार ।
उसका शोक अनुचित है, यह है धर्म-विचार ।।२६।।
कर निश्चय इस कथन पर, मन से शोक निवार ।
उत्तर क्रिया सब करो, दाह-कर्म संस्कार ।।२७।।
*राघव के सुन कथन सुहाने, वीतराग पन रस सरसाने ।
उदार चित्त बुद्धि दर्शाने, वीरवर्य के शोक मिटाने ।।२८।।
कहा विभीषण ने रघुराई!, तव कथन है पूरी सचाई ।
रावण था योद्धा वर भारा, वह तो कभी भी न था हारा ।।२९।।
तुझ से शान्त हुआ है ऐसे, तट पर सागर लहरें जैसे ।
पर वह था पर नारी-हारी, मम बन्धु शत्रुपन कारी ।।३०।।
मेरा शत्रु था वह तथा ही, कोई किसी का हो यथा ही ।
सब जनों के अहित में राता, रहता निशदिन मद में माता ।।३१।।
हम दोनों का वैरी भारी, सब का शत्रु अत्याचारी ।
मानव मण्डल को दुःख दाता, ऋषि मुनि जन को था सताता ।।३२।।

* चौपाई।

इस कारण जन शत्रु सरीखे, जलें अग्नि में उचित न दीखे ।
उचित नहीं इसे दाह देना, ज्वाला में इसको रख लेना ।।३३।।
{भाव विभीषण के पहचाने, राघव ने वे उचित न जाने ।
उनको न थी वह भक्ति भाती, चापलूसी जो कही जाती} ।।३४।।
भाव गम्भीर से वे बोले, वचन उदार चित्त से तोले ।
मुझे उचित है तुझे बताना, सार मर्म धर्म का सुनाना ।।३५।।
गिरा जभी से तेरा भाई, रहे नहीं कुछ वैर लड़ाई ।
शान्त हुआ है झगड़ा सारा, अब प्रयोजन है न हमारा ।।३६।।
है यथा यह बन्धु तेरा, वैसा ही अब है तो मेरा ।
महापुरुष था बल में पूरा, बड़ा विजेता जग में शूरा ।।३७।।
पुरुषार्थ युत अति उद्योगी, वीर धीर था गुणी निरोगी ।
करो दाह-कर्म कहा जैसे, सविधि जन किया करते ऐसे ।।३८।।
{हुए जगत् में बहुत विजेता, जाति धर्म के योद्धा नेता ।
पर-धन धरणी जन के जेता, कहे गए भी आत्मवेत्ता ।।३९।।
पर राघव सा और न दीखा, वैरी जिसको बन्धु सरीखा ।
जो नहीं लोभी नहीं द्वेषी, पर सम्पत् का जो न गवेशी ।।४०।।
रक्त की बह रही जब धारें, कोशों में न पड़ी तलवारें ।
उस समय शत्रु-शव सिरहाने, वैर रहित राघव ही जाने ।।४१।।
जय का लाभ जिन्होंने पाया, विजित जनों पर सिक्का जमाया ।
ऐसे वे जन हुए हत्यारे, पर जन दास किये दुखियारे ।।४२।।
राघव ऐसे थे गतरागी, कर्तव्य योगी परम त्यागी ।
भेद-भाव उन्हें नहीं भाया, उसने रावण बन्धु बताया} ।।४३।।
राघव-आज्ञा से उस बारी, दाह-कर्म की हुई तयारी ।
रोदन करती थीं वरनारी, पति वियोग में अति दुखियारी ।।४४।।

उनमें थी जो मुखिया मानी, मन्दोदरी नाम पटरानी ।
रुदन लगी करने पतिहीना, जलहीना मीनावत् दीना ।।४५।।
वह बोली यों रोती रोती, पति-वियोग में व्याकुल होती ।
देव असुर जिससे भय खाते, जिस सम्मुख मनुज न आते ।।४६।।
ऋषि मुनि सब जिससे भागे, आश्रम-स्थान जाते त्यागे ।
पड़ा धूलि पर वह है सोता, काल नियम के वश में होता ।।४७।।
जिस ने मारे वीर निराले, दिव्य दैवी शक्ति भी वाले ।
उसको मारे जन वन-चारी, काल गति विपरीत है भारी ।।४८।।
राघव ने तुझको है मारा, मुझसे जावे नहीं विचारा ।
राघव की ले करके छाया, है आप यमराज ही आया ।।४९।।
हत हुए हो वाण से प्यारे, घाव-घिरे हैं अंग तुम्हारे ।
अंग बने हैं तेरे नीले, कांटे लगे हैं सर नुकीले ।।५०।।
जिन पर भूषण शोभा पाते, वाण-विद्ध वे हैं दिखलाते ।
लग रही हैं वाण की मेखें, सर-शूल बिना स्थान न देखें ।।५१।।
चाहती हूँ गले मिल जाऊँ, सर बिन अंगुल अंग न पाऊँ ।
मेरे प्राणप्रिय रखवारे, मुझे त्याग तुम कहां सिधारे ।।५२।।
राघव ने आश्वासन ऐसा, दिया उचित उस वेला जैसा ।
जग में जन-वश मरना जीना, होना बान्धव मेल विहीना ।।५३।।
माना नहीं सुनो गुणवाली, काल-नियति है सबल निराली ।
निमित्त मात्र मानव माना, विधि के नियम नियति हैं नाना ।।५४।।
उसमें है यह विश्व पिरोया, कटे वही जो होवे बोया ।
शान्त बनो धैर्य को धारो, होना यही था यह विचारो ।।५५।।

दूसरा सर्ग

*कहा विभीषण को तभी, राघव ने उस काल ।
नारी जन को दो धृति, करो कर्म तत्काल ।।१।।
पा कर यह आदेश तब, असुर राज चुप-चाप ।
पुर में जा रचने लगा, वस्तु-संग्रह आप ।।२।।
शिविका सुवर्ण तयार हो, आई सज्जित फूल ।
उस में माला बहुत सी, ध्वजा रहीं थी झूल ।।३।।
नवतर रेशमी वस्त्र को, शव पर विधि से डाल ।
उठा पालकी चल पड़े, असुर मुख्य गण-पाल ।।४।।
दहन-स्थान श्मशान में, चन्दन-चिता विशेष ।
रची रक्खी देह उस पर, कर दी सर्व निश्शेष ।।५।।
दाह-कर्म कर भ्रात का, राघव लक्ष्मण पास ।
हुआ विभीषण आ खड़ा, अति चुपचाप उदास ।।६।।
सब सेनापति आ गये, विजय हर्ष के साथ ।
उस समय उठ सुग्रीव को, गले मिले रघुनाथ ।।७।।
सेना-स्थान विशेष में, जा कर श्री रघुराज ।
बोले, लक्ष्मण! तिलक दो, असुर-राज को आज ।।८।।
उपकारी प्रेमी भक्त, पहले कर उपकार ।
कृतज्ञ किया उसने अति, हमें तो सहित प्यार ।।९।।
महा मनोरथ है यही, मेरे मन में एक ।
विभीषण को राज्य का, किया जाय अभिषेक ।।१०।।

* दोहा।

आज्ञा पा रघुनाथ की, लक्ष्मण निपुण महान् ।
राजतिलक अभिषेक का, करने लगा विधान ।।११।।
वानर कलश सुवर्ण ले, लाये सागर-नीर ।
सर्व उपकरण सामग्री, आये उत्तम चीर ।।१२।।
रत्न जड़ितवर मुकुट भी, मण्डित सब प्रकार ।
उसी समय सब हो गये, पुरश्चरण उपचार ।।१३।।
असुरराज को लखन ने, कर सिंहासनासीन ।
अभिषिक्त किया तिलक दे, देखी मेख न मीन ।।१४।।
राजा घोषित हो गया, रावण का लघुभ्रात ।
सचिव सर्व हर्षित हुए, पाकर भूप विख्यात ।।१५।।
रामचन्द्र की जय जय, बोले तब सब लोग ।
आर्य उचित उदारता, पाकर सुजन सुयोग ।।१६।।
कहते थे तब जन सभी, स्वार्थ से हो पार ।
राघव सा मिलता नहीं, धर्म न्याय-अवतार ।।१७।।
जीत पराये देश को, अपर को दिया दान ।
लोभ राग से रहित है, पुरुष उत्तम विद्वान् ।।१८।।
जिस धन धरणी के लिए, जन करते हैं पाप ।
है प्राप्त वह न्याय से, पर तजते ये आप ।।१६।।
अहो! धन्य यह पुरुष है, जिसको लोभ न लेश ।
वैर विरोध-विरहित है, रखता दुई न द्वेष ।।२०।।
*थे जब हर्षित लंकावासी, जेता नेता अवध निवासी ।
पास खड़े हनुमत् से बोले, वचन नय-नीति-रस-घोले ।।२१।।

* चौपाई।

असुर-राज से अनुमति पाओ, फिर लंका पुर में तुम जाओ ।
विजय-संदेश जाय सुनाना, सीता को सब कुशल बताना ।।२२।।
मेरा लक्ष्मण सुग्रीव जी का, कहना मंगल कुशल सभी का ।
जो कहे वह सर्व सुन लेना, आ कर मुझे वही कह देना ।।२३।।
{देश जिन्हों ने पर के जीते, किये उन्हों ने धन से रीते ।
पर पुरी में यात्रा घुमाते, पर जन को फिरे अति लजाते ।।२४।।
जेता दल के सैनिक बांके, फिरे परों को आगे हांके ।
लूट पाट की करुण कहानी, इतिहासों में बहुत बखानी ।।२५।।
शिविर बाहर वीर सेनानी, भेज रहे थे राघव दानी ।
उसको भी आदेश सुनाना, पूछे बिना बाहर नहीं जाना ।।२६।।
राघव की यह बहुत बड़ाई, विजय लाभ पर गई दिखाई ।
है तो यह विशेषता ऐसी, मिले नहीं जग में इस जैसी} ।।२७।।
हनुमान् आदेश को पाके, अशोक वनिका में तब जाके ।
हो विनम्र वह बोला, सीते!, असुर सर्व राघव ने जीते ।।२८।।
राघव लक्ष्मण सुग्रीव ये ही, कुशल क्षेम से हैं वैदेही ।
शत्रु हनन कर रघुपति राजा, पूर्ण चांद समान विराजा ।।२६।।
वानर जन हैं बहुत सुहाते, महा विजय का हर्ष मनाते ।
भवती को संदेश सुनाने, हर्षकर समाचार बताने ।।३०।।
श्रीसेवा में हूँ मैं आया, मैंने शुभ दर्शनसुख पाया ।
हैं प्रभाव देवी तुम्हारे, जीते राघव देव हमारे ।।३१।।
दुःख दीनपन दूर भगाओ, हर्षित हो मन को विकसाओ ।
दुष्ट दुर्जन दुर्दम्य भारे, दलन हुए दल सर्व हत्यारे ।।३२।।
कहा देव ने कारण तेरे, मैंने अरिदल के मुख फेरे ।
हना गया अरि मायाधारी, देव ऋषि-मुनि का अपकारी ।।३३।।

तेरे लिए तजा है सोना, लिटना सुख से डाल बिछौना ।
हुई सब मम पूरी आशा, तुम भी करियो दूर निराशा ।।३४।।
चुप रह कर कुछ काल भवानी, धीरे से बोली मधु बानी ।
चाह रही हूँ दर्शन पाना, पति को मैं जा सीस झुकाना ।।३५।।
कहा तब हनुमान् ने माता, राघव को समित्र सह भ्राता ।
शीघ्र देखोगी तुम ऐसे, शची शक्र को मिलती जैसे ।।३६।।
रक्षिका असुरी संघ निहारा, उसने काला भूंडा भारा ।
चित्त देखने से दहलाता, नक्कू नखी दन्ती दुःखदाता ।।३७।।
पूछा उस ने कहना माई, क्या हुई यहां मार पिटाई? ।
इन से गई हो क्या सताई, कौन हुई तुम पर अधिकाई? ।।३८।।
कहा सीता ने, सौम्य सियाने, दुखड़े तो न जायें बखाने ।
किंकर जो परवश कहलायें, उन के कर्म न गिनती पायें ।।३९।।
जो जन रहें पर के सहारे, उन की करनी कौन विचारे ।
दास जनों का दोष न जाना, उन पर समुचित रोष न माना ।।४०।।
क्षमा उचित है करना प्यारे, दिन के फेर फिरे अब न्यारे ।
पराधीन जो जन हो जाते, उन के कर्म न निज कहलाते ।।४१।।
बोला वह, राघव की राणी, कह सकती है ऐसी वाणी ।
भवती से है शोभा पाती, क्षमा धृति जो है कहलाती ।।४२।।
यह कहा ली उसने विदाई, रघुपति पै आया सुखदायी ।
समाचार आ सर्व सुनाया, सीता का संदेश बताया ।।४३।।

तीसरा सर्ग

*बोले श्री हनुमान् जी, राघव देव दयाल ।
हुआ समर जिसके लिए, उसकी करो सम्भाल ।।१।।
शोकभरे आंसू लिए, रोती है दिन रात ।
प्रभु-चरण के ध्यान बिन, उसे न सूझे बात ।।२।।
गद्गद् हो भर नयन दो, बोली वह सन्देश ।
तीव्र दर्शन-चाह है, तड़पन मेल विशेष ।।३।।
यह कह कर वह रो पड़ी, जैसे बिछड़ा बाल ।
उसे अभी बुलवाइए, राजन् दीनदयाल ।।४।।
धर्म-धुरा धर धृति धर, सुन सर्व समाचार ।
आँसू भर चिन्तित हुए, करने लगे विचार ।।५।।
लम्बा सांस निकाल कर, भूतल रहे निहार ।
पुनः विभीषण निरख कर, बोले धैर्य धार ।।६।।
प्रिय! आप ही जाइए, लाओ सीता आप ।
आवे भूषण-भूषिता, सज सिंगार कलाप ।।७।।
आज्ञा पाकर देव की, असुर राज गुणवान् ।
अन्तःपुर में तब तुरन्त, गया महा मतिमान् ।।८।।
हाथ जोड़ सिर नम्र कर, बोला, सीते! स्नान ।
करके पहरो आभरण, आरोहण कर यान ।।६।।
पति-दर्शन को फिर चलो, वह बोली, लंकेश ।
बिना स्नान सिंगार के, देखूँगी प्राणेश ।।१०।।

* दोहा।

तव पति का यह कथन है, बोला लंका-राज ।
पति-भक्ता अनुरक्ता सतत, स्नान आदि कर काज ।।११।।
अपने भूषण वस्त्र सब, धारण कर विधि साथ ।
शिविका में आरूढ़ हो, चली देखने नाथ ।।१२।।
†रघुपति निकट पालकी आई, जनता तब दर्शन को धाई ।
उमड़ पड़े असुर सभी ऐसे, पूर्णा को सागर हो जैसे ।।१३।।
वानर जन भी सब उमड़ाये, देवी-दर्शन भाव जमाये ।
झुके सर्व उस पथ को त्यों ही, वर्षा के नद सिन्धु को ज्यों ही ।।१४।।
जन जमघट था ऐसा भारी, रुक गई वह सड़क भी सारी ।
हुल्लड़-धक्का अधिक मनमाना, कोलाहल था कान दुखाना ।।१५।।
असुरराज ने बढ़ उस बेला, जमघटे को तुरन्त धकेला ।
उसे देख अन्य कर्मचारी, करते थे कुछ मारा-मारी ।।१६।।
देख सर्व तब रघुपति जी ने, वचन कहे कोमलता-भीने ।
असुरराज! न इनको हटाओ, डांट डपट न कुछ भी दिखाओ ।।१७।।
जन स्वजन हैं ये सब मेरे, बन्धु-प्रेम ने हैं तो घेरे ।
मैंने अपने कर अपनाये, रहे नहीं पर और पराये ।।१८।।
{अपने अपनों पै जब आते, भेद-भाव नहीं रक्खे जाते ।
सिया को ये स्वजन निहारें, ऊँच नीच पन नहीं विचारें} ।।१६।।
सीता के ये दर्शन पावें, भय संकोच न मन में लावें ।
राजमान ये नहीं कहावें, जिसमें अपने ताड़े जावें ।।२०।।
कोट किले सब बड़ी दिवारें, तम्बू कनातें ऐसी मारें ।
नहीं पड़दा न आदर कोई, राजमान नहीं कहा सोई ।।२१।।

---

† चौपाई।

विपत् समर विवाह यज्ञ में जो, पति सह नारी जब भी है सो ।
उचित नहीं उस पर हो घेरा, चरित्र आदर है बहुतेरा ।।२२।।
पतिव्रता शुभशीला नारी, धर्मरता जो गुण गण-क्यारी ।
उन पर बन्धन नहीं सुहाते, उनके घेरे चरित कहाते ।।२३।।
{राघव-वाक्य बहुत रसीले, सुन कर हुए विभीषण ढीले ।
बन्द हुए सब डंडे कोड़े, धक्के मुक्के गये सभी छोड़े ।।२४।।
राघव का सब जन अपनाना, असुरों को स्वजन बतलाना ।
है इतिहासिक बात अनोखी, मिलती ऐसी अन्य न चोखी} ।।२५।।
पग से चल कर सीता आवे, वहीं पालकी छोड़ी जावे ।
ये वचन रघुपति ने उच्चारे, जन जाते थे उन पर वारे ।।२६।।
यान छोड़ वह पद से आती, जनता थी शुभ दर्शन पाती ।
राघव पै आ कर दुखियारी, कर जोड़े जाती बलिहारी ।।२७।।
उसको राघव ने तब देखा, दुबली, दूज-चांद की रेखा ।
मर्यादा को मन में लाते, बोले वे निज चरित दिखाते ।।२८।।
शत्रु-हनन कर तुझे छुड़ाया, मैंने पतित्व ठीक निभाया ।
भद्दा धब्बा सब ही धो डाला, मन का कांटा दूर निकाला ।।२६।।
पुरुषार्थ से होता जो भी, किया गया मुझ से तो सो भी ।
सफल हुआ पुरुषार्थ मेरा, सर्व बन्धन कट गया तेरा ।।३०।।
सुग्रीव आदि जो हैं सहाई, उनकी क्रिया फल है लाई ।
मर्यादा है मैंने पाली, वंश जाति की लाज बचा ली ।।३१।।
परन्तु पर-वश हो जो बाला, उसे दोष लगे नहीं काला ।
इस में जन रहते सन्देही, यह मन में समझो वैदेही ।।३२।।
इसलिए जहां को तुम चाहो, इच्छा-पूर्वक वहां को जाओ ।
जिसने रच ली थी अति माया, क्यों न छुई उसने तव काया? ।।३३।।

जग के जन जानें यह कैसे, दुष्ट के वश पड़ी तू जैसे ।
पातिव्रत धर्म नहीं लोपा, कुल सुवंश पै दोष न थोपा ।।३४।।
यह सुन कर सीता घबराई, दैव ने ज्यों हो बिजली गिराई ।
सब के सम्मुख उसने ऐसी, वाणी सुनी न थी इस जैसी ।।३५।।
निज अंगों में धंसती जाती, अतुल वेदना वह थी पाती ।
अश्रु बूँदें अविरल बहाती, मन में थी अति ही सकुचाती ।।३६।।
बोली वह, पतिदेव! तुम्हारे, वचन-वाण मन-वेधन हारे ।
कहे क्षुद्र नर वे हैं ज्यों ही, तुच्छतर पत्नी को भी त्यों ही ।।३७।।
करो विश्वास न हूँ मैं वैसी, कही गई हूँ तुझ से जैसी ।
लख कर कोई चरित-विहीना, सबको कहना कुलटा हीना ।।३८।।
स्त्रीमात्र को दोष लगाना, कर्म निपट यह है अनजाना ।
मेरे मन के हो कर भेदी, फिर क्यों होते हो यों खेदी ।।३६।।
यदि पीछे कहना था यों ही, तूने समर रचा था क्यों ही ।
यदि तव संशय मैं लख लेती, तो तन वहीं भस्म कर देती ।।४०।।
ओछे नरवत् हो कर कोपी, अनहोनी मुझ पर आरोपी ।
जनक-सुता मैं भी कहलाऊँ, दोष का संशय सह न पाऊँ ।।४१।।
ऐसे रोती बहुत चिल्लाती, गद्गद् हुई वह गिड़-गिड़ाती ।
पास खड़े लक्ष्मण को बोली, मेरी तो अति दुर्गति हो ली ।।४२।।
अपवाद मिथ्या सहा न जाता, जीना जग में मूल न भाता ।
अच्छा यही है मैं जल जाऊँ, तन अपने को भस्म बनाऊँ ।।४३।।
उसने राघव-ओर निहारा, उनका भी संकेत विचारा ।
सीता की भी आज्ञा पाई, चिता चिन कर ज्वलित बनाई ।।४४।।
परिक्रमा पति की करके ही, शान्त-भाव धैर्य धर के ही ।
हाथ जोड़ ये वचन उच्चारे, उसने, साक्षी देव हमारे ।।४५।।

यथा नहीं मन से बिलगाई, मैं पति से कभी रत्ती राई ।
तथा होना मेरे सहाई, रक्खो यह लज्जा बनी बनाई ।।४६।।
चली वह तब मुख किये नीचे, कमल नयन दोनों अधमींचे ।
अग्नि में तो बैठी तथा ही, हवि होम की होवे यथा ही ।।४७।।
मंत्र-मुग्ध समा वह ज्वाला, शान्त हुई सह ज्वाला माला ।
सिया प्रकट हुई तब त्यों ही, सोना कुन्दन होता ज्यों ही ।।४८।।
देव ऋषि महर्षि वर ज्ञानी, सन्त सिद्ध मुनि तापस ध्यानी ।
देते थे सब यही दुहाई, सती परम है जग में आई ।।४६।।
{भूषिता भानु भासा भामिनी, राजहंस गजराज गामिनी ।
चमकी जन-घन बीच दामिनी, जनक जाई जन मन स्वामिनी ।।५०।।
जनता ने सो देखी सीता, पतित पावनी परम पुनीता ।
भाव भरी भगवती भवानी, जगन्मात जगदम्बा जानी ।।५१।।
सर्व सुन्दरी सौम्य सुरूपा, गौरी गरिमा लिये अनूपा ।
ज्योतिर्मयी ज्यों हो उतराई, शक्ति परा समा दी दिखाई ।।५२।।
जन गण थे शुभ दर्शन पाते, भावुक भक्ति भरे हर्षाते ।
निर्मिष नयन निरखते ऐसे, किशोर चकोर चांद को जैसे} ।।५३।।
विभीषण मन्दोदरी बोले, वाक्य सत्य तुला पर तोले ।
सच्ची साक्षी समझो हमारी, निर्दोषा है सीता तुम्हारी ।।५४।।
असुरियां सब रक्षा वाली, साक्षी देतीं देखी भाली ।
ऐसी नारी हमें न दीखी, सती मिली न सीता सरीखी ।।५५।।
छोटे बड़े सर्व जन जेते, एक जीभ यह साक्षी देते ।
सती निर्दोषा है यह सीता, धर्मरता सुचरिता विनीता ।।५६।।

चौथा सर्ग

*देवसंघ के सुन वचन, साक्षी दैवी देख ।
असुर वानर जन सम्मति, चित्त में कर उल्लेख ।।१।।
ध्यानावस्थित हो गये, रघुपति हो तल्लीन ।
खोल नयन विकसित कमल, बोले वचन अदीन ।।२।।
दिव्य देव स्वरूप को, इसमें नहीं विवाद ।
सीता तो निर्दोष है, सती रहित अपवाद ।।३।।
है अनन्य-व्रता सिया, नहीं यहां संशय-स्थान ।
पर राजा न स्वतन्त्र है, यह है भेद महान् ।।४।।
लोक की सम्मति में रह, करना निज पर काम ।
रखना मर्यादा स्थिर, राज-धर्म है नाम ।।५।।
लिये बिना मैं लोक मत, यदि सीता ले संग ।
जाता जनपद अवध को, तो विषवाक्य व्यंग ।।६।।
कहते नर नारी मिले, गया धर्म आचार ।
राघव ने तोड़ी सर्व, गृह धर्म की कार ।।७।।
परवश पर घर में रही, पत्नी से एक बार ।
यह भी तो पूछा नहीं, कैसा था व्यौहार ।।८।।
प्रेम मोह के वश पड़ा, न्याय नीति को त्याग ।
पत्नी सुरूपा ले गया, करके अति अनुराग ।।६।।
इस कारण ऐसा हुआ, मुझे बहुत है शोक ।
पर इससे यह हो गया, हुए एक मत लोक ।।१०।।

* दोहा।

आदर दे सम्मान बहु, बड़े प्रेम के साथ ।
सीता को तब तो मिले, गद्गद् हो रघुनाथ ।।११।।
राहु-मुक्त रवि की किरण, दे शशि को ज्यों जोत ।
ऐसे सीता में बसा, राघव प्रेम उद्योत ।।१२।।
वे पति-पत्नी तथा मिले, यथा क्षीर शुचि नीर ।
गंगा सागर ज्यों मिलें, शारीरी सु-शरीर ।।१३।।
हर्ष परम फैला वहाँ, दश दिश में उस काल ।
हर्षित आसुर जन हुए, सेना-संघ विशाल ।।१४।।
शान्ति थी पुरी देश में, फिरते जन स्वच्छन्द ।
थे अभय सब नारी गण, वैर हुआ था बन्द ।।१५।।
काम काज थे हो रहे, खुली सभी थीं हाट ।
निर्भय फिरते जन सर्व, मन चाही चल बाट ।।१६।।
मानो पराया पैर न, पड़ा भू पर कर क्रोध ।
ऐसे सब जन शान्त थे, हुआ न यथा विरोध ।।१७।।
शिविर में तब विश्राम का, देकर शुभ आदेश ।
राघव सोये रात भर, कर सब वाद अशेष ।।१८।।
*असुर-राज जी बहुत सबेरे, आये रघुपति जी के डेरे ।
बोले हाथ जोड़ सुखकारी, राघव करिए स्नान तयारी ।।१९।।
अंगराग सह मर्दन होवे, चन्दन लेप श्रम को खोवे ।
वस्त्राभरण अब नवतर धारो, राज ठाठ से तन सिंगारो ।।२०।।
तिलक सुगन्धित माला सुहानी, धारण करिये स्व मनमानी ।
भूप-वचन सुन राघवराई, बोले असुर-राज वर भाई! ।।२१।।

* चौपाई।

सुग्रीव आदिक नरवर प्यारे, जायें शोभा से सिंगारे ।
राज-साज सब मुझे न भाते, भरत-मिलन बिन नहीं सुहाते ।।२२।।
महाबाहु वह है सुख-त्यागी, मम अनुव्रती अति अनुरागी ।
है सुकुमार बना महा योगी, सत्य वक्ता वह बन्धु वियोगी ।।२३।।
मेरे हेतु कष्ट है पाता, यह मुझ से अब सहा न जाता ।
सुविधि, राजन्! ऐसी रचाओ, हमें स्व-पुर में पहुँचाओ ।।२४।।
असुर-राज राघव-अनुसारी, मृदु वचन बोला हितधारी ।
मुझ पै पुष्पक नाम सुनामी, है विमान अति शीघ्र-गामी ।।२५।।
वायुयान है सुन्दर ऐसा, मिलता और नहीं उस जैसा ।
आपके लिए सुरक्षित है ही, गमन करो चढ़ कर उस पै ही ।।२६।।
पर विनय यह दास की मानो, लंकापुर अपना ही जानो ।
मेरी सेवा को स्वीकारो, रहिये यहीं अभी नहीं पधारो ।।२७।।
करो विश्राम यहीं पर राजो, लक्ष्मण सीता सहित विराजो ।
अपने जन की लेना सेवा, दिव्य देव देवों के देवा ।।२८।।
बोले रघुपति सुमृदु वाणी, वानर सेना असुर-हर्षाणी ।
अति सहायता मिली तुम्हारी, पूजा वह है बहुत हमारी ।।२६।।
सम्मति सुमति समय पर देते, तुम थे हमको वश कर लेते ।
वह सेवा थी उत्तम ऐसी, अन्य नहीं दीखे उस जैसी ।।३०।।
वचन न करना भाई तेरा, नहीं करे साहस मन मेरा ।
पर अब तो अवश्य है जाना, प्यारे वचन न यह लौटाना ।।३१।।
भरत बिना अब भाय न जीना, चित्त न चाहे खाना पीना ।
आज्ञा दीजिए सखे प्यारे, सहायक स्नेही मित्र हमारे ।।३२।।
मानो तो अब कहनी मेरी, करिए विदाई में न देरी ।
यान तुरन्त वह मंगवाओ, इससे कभी न देर लगाओ ।।३३।।

राघव-निश्चय अविचल ऐसा, टाले था टले नहीं जैसा ।
यान वह उस ने मंगवाया, सुवर्णमय फिर गया सजाया ।।३४।।
चारु-रूप चित्रित चमकीला, चहुँ दिश चांदी से सजीला ।
रत्न जड़ित मणि-मण्डितभाता, जगमग करता बहुत सुहाता ।।३५।।
मणि मोती की उस पर माला, मूंगे हीरे-झालर वाला ।
कोठरियों से शोभाशाली, रखता अद्‌भुत आभ निराली ।।३६।।
ध्वजा घण्टियां उस पर सोहें, सजें झरोखे जन मन मोहें ।
थे सुखासन उस में सुहाने, उन पर बिछे स्वच्छ बिछौने ।।३७।।
देख विमान उठे रघुराई, सहित सीता अनुज वर भाई ।
वल्कलधारी तापस वेशी, जटा लटा से दीर्घ केशी ।।३८।।

पाँचवाँ सर्ग

*महाराज चलते समय, वानर जन संबोध ।
सरल सरस बोले वचन, है मेरा अनुरोध ।।१।।
जाओ अपने देश को, अपनी इच्छानुसार ।
इष्ट मित्र को जा मिलो, पालो स्व परिवार ।।२।।
काम काज अपने करो, और वणिज व्यापार ।
सभ्य मर्यादा पालना, कर्म धर्म आचार ।।३।।
बोले नृप सुग्रीव को, सच्चे सखे सुख रूप! ।
राज धर्म जा पालिए, प्रिय भूप अनुरूप ।।४।।
स्नेही हितकारी सुजन, करे बन्धु के काम ।
ऐसे मेरा हित किया, आपने तज विश्राम ।।५।।

* दोहा।

तेरे तो उपकार का, बनता नहीं प्रतिकार ।
कृतज्ञता से मैं सदा, मानूँगा आभार ।।६।।
बोले विभीषण को फिर, असुर-राज बलवान् ।
लंका-शासन कीजिये, कर सब उचित विधान ।।७।।
सुपथ न्याय नीति पर, करो सर्व आरूढ़ ।
धर्म सभ्य आचार को, करो सब में निगूढ़ ।।८।।
असुर-राज वानर बड़े, बोले हे रघुनाथ! ।
अवधपुरी में ले चलो, हम को अपने साथ ।।६।।
देखेंगे पुर देश हम, और राज्याभिषेक ।
राजे महाराजे सब, ऋषि महर्षि अनेक ।।१०।।
माता कौशल्या को मिल, कर विनीत प्रणाम ।
पीछे लौटेंगे सभी, देखेंगे निज धाम ।।११।।
यह सुन कर आ हर्ष में, 'बहुत अच्छा' रघुराज ।
बोले, चलिए फिर सभी, अवधपुरी को आज ।।१२।।
मुखिया वानर सर्व ले, असुरराज भू-पाल ।
सह ले चढ़े विमान में, रघुपति परम दयाल ।।१३।।
लंका देश वन उपवन, कर अंगुली निर्देश ।
सिया को दिखाते थे वे, समर-स्थान सुविशेष ।।१४।।
किष्किन्धा-पुर पर आ, वह थाम्भ कर यान ।
बोले, वानर-राज जी!, देकर आदर मान ।।१५।।
तारा आदिक नारियां, ले लो अपने संग ।
सीता सह देखें अवध, पाकर यह प्रसंग ।।१६।।
उस ने ले लीं साथ तब, नारी सर्व सु-रूप ।
चढ़ा पुनः वह यान पर, राघव से मिल भूप ।।१७।।

*राघव-यान वेग से जाता, रवि-रथवत् था शोभा पाता ।
नभ में लेता था वह तारी, सिन्धु में ज्यों पोत हो भारी ।।१८।।
भरद्वाज-मुनि-स्थान को जाते, कहा राघव ने अति हर्षाते ।
उतर यहां हनुमत् जी जाना, गुहराज को पहुँच बताना ।।१९।।
प्राण समान मुझे है प्यारा, सच्चा सखा सुख देने हारा ।
आत्मा सम सुहृद वह मेरा, होगा पथ-प्रदर्शक तेरा ।।२०।।
समाचार उसको सब देना, कुशल पूछ उस से भी लेना ।
वेग बढ़ा कर फिर इक बारी, चलियो करके सर्व तैयारी ।।२१।।
पुनः अयोध्या जी को जाओ, भरत को मम आना बताओ ।
कुशल वृत्त उसे बतलाना, समाचार भी सर्व सुनाना ।।२२।।
हनुमान् वहां गये उतारे, भील-राज के पास पधारे ।
बोले, राघव ने हूँ भेजा, कुशल समाचार कहा ले जा ।।२३।।
सुख से हैं वे सानुज सीता, लंका-द्वीप गया है जीता ।
भरद्वाज पै पंचमी सारी, रात बितावेंगे सुखकारी ।।२४।।
कल यहां आवेंगे सवेरे, गले मिलेंगे आकर तेरे ।
ऐसे कह कर सर्व कहानी, उस ने पथ की बातें जानी ।।२५।।
वहां से ले कर के विदाई, गति असमान उसने बनाई ।
अयोध्या-पुरी पर से हो ही, नन्दी ग्राम में गया सो ही ।।२६।।
तन पर धारे मृग-चर्म काला, देखा भरत जटा भी वाला ।
दुबला पतला तापस पूरा, धर्म-न्याय-युत बल में शूरा ।।२७।।
तपरत ब्रह्मचारी कोरा, वल्कलधारी सुन्दर गोरा ।
हो नम्र उसे शीश झुकाया, हनुमान् ने सुनाम बताया ।।२८।।

* चौपाई।

फिर बोला, हो जिसके प्रेमी, अनुगामी अनुव्रती नेमी ।
जिसका चिन्तन सतत लगाये, रहते हो तुम ध्यान टिकाये ।।२६।।
रामचन्द्र अनुज सह नारी, आते हैं पितृ-व्रत धारी ।
देता हूं मैं बहुत बधाई, देखोगे अभी बड़ा भाई ।।३०।।
लंका के वृत्तांत सुनाते, हनुमान् सब कुछ थे बताते ।
भरत ने वह सुना सुखदायी, मुद की मूर्च्छा उस पर छाई ।।३१।।
हो सचेत वह आगे आया, उसने हनुमत् कण्ठ लगाया ।
हर्ष उत्कर्ष में उसे भींचा, हर्ष-आँसू से बहुत ही सींचा ।।३२।।
पुनः कहा, हो देव पधारे, की दया जो आये हमारे ।
लोकोक्ति यह जन हैं गाते, जीवित जन सुख संगम पाते ।।३३।।
सौ वर्ष गये नर नारी, जीते पाते सुख की बारी ।
भ्रात-कथा वर्णन हो ऐसी, देखी सुनी आपने जैसी ।।३४।।
अथ से इति तक जो भी बीते, असुर सर्व जैसे थे जीते ।
वानर वर वह कहते जाते, प्रेम-अश्रु थे भरत बहाते ।।३५।।
भरद्वाज ऋषि थे गुणग्रामी, उन्हें मिले रघुपति शुभ नामी ।
मुनि-आतिथ्य में रात बिता के, प्रात चले वे अनुमति पा के ।।३६।।
सुहृद गुह को गले लगाते, स्नेह-सुधारस से सरसाते ।
निकट अयोध्या विमान आया, वहीं नभ में गया ठहराया ।।३७।।
भरत जी ने आज्ञा निकाली, बने पुरी सज शोभा वाली ।
हाट बाट सज्जित हो जावें, सब जन निज निज गृह सजावें ।।३८।।
राज-कथन से गलियां कूचे, मार्ग हुए स्वच्छ समूचे ।
सुन्दर तोरण बने सुहाने, कुसुम मणि माला से लुभाने ।।३६।।
बिछे पथों पर पुष्प दुशाले, दीखे सब घर शोभावाले ।
गये ताने चारु चन्दोये, रेशम पश्म काम अति सोहे ।।४०।।

सज-धज कर निकले नरनारी, अश्व हस्ति रथ लिये सवारी ।
रत्नजड़ित हौदे धर काठी, हस्ति अश्व पर जाते ठाठी ।।४१।।
चले सजे सुवर्ण से हाथी, चम-चम करते सैनिक साथी ।
चार भान्ति की सेना जाती, अस्त्र शस्त्र से सजी सुहाती ।।४२।।
पौर-जन कर सज्जा सारी, रत्न जड़े मुकुटों के धारी ।
कर्ण में कुण्डल लहलहाते, रवि किरणों से रश्मि मिलाते ।।४३।।
कर में माला मोदक लेते, जाते थे अति शोभा देते ।
शुभा कौशल्या सुमित्रा राणी, यान में बैठ चलीं हर्षाणी ।।४४।।
महा-मोद जन मन में आया, प्रेम हर्ष न जाये समाया ।
रामचन्द्र शुचि चांद सुहाया, पूर्ण चारु चढ़ा चमकाया ।।४५।।
जन-चित्त चक्षु, चकोर यथा ही, रामचन्द्र निरखें तथा ही ।
परस्पर को थे वे दिखाते, अंगुली से वर लक्ष बनाते ।।४६।।
सम भूतल पर पुर के तीरे, उतरा विमान धीरे धीरे ।
दूर से भरत अर्घ्य चढ़ाते, थे स्वागत कर हर्ष मनाते ।।४७।।
उतरे वे विमान से त्यों ही, उदयाचल से सूर्य ज्यों ही ।
उनको देख सर्व जन धाये, आदर प्रेम परम उर लाये ।।४८।।
सहस्त्रों जन ने सीस नवाये, ओर सब से कुसुम बरसाये ।
जय जय शब्द सभी जन बोले, पा कर शुभ दर्शन अनमोले ।।४९।।
नत सिर भरत मिले विकसाये, राघव ने वे कण्ठ मिलाये ।
गले मिले जब दोनों भ्राता, मधुर मिलन था वहां लुभाता ।।५०।।
गंगा यमुना मिलतीं जैसे, दोनों बन्धु मिले तब ऐसे ।
मन मोहिनी माधुरी जोड़ी, मनमिली मिले उन सी थोड़ी ।।५१।।

छठा सर्ग

*लक्ष्मण सीता को मिले, झुक कर भरत विनीत ।
गद्‌गद् हो कर मिले गले, लक्ष्मण से कर प्रीत ।।१।।
अंगद नील सुषेण को, जाम्बवान् के पास ।
जा कर गले लगा मिले, भरत जी गुण-निवास ।।२।।
कुशल क्षेम सब पूछ कर, मन्द स्मित के साथ ।
मिले बाहू पसार कर, डाल हाथ में हाथ ।।३।।
वानर राज समीप जा, दोनों भुजा पसार ।
गले मिले बोले भरत, कर सुप्रेम-संचार ।।४।।
अब भाई हम पाँच हैं, तुझ बिन थे हम चार ।
तुम से प्यारे बन्धुवर!, हुए बहुत उपकार ।।५।।
पुनः विभीषण को मिले, हस्त, हस्त में डाल ।
पीड़न करते गाढ़तर, बोले वचन रसाल ।।६।।
दुष्कर कर्म महान् कर, बने सहायक आप ।
विषम समय में बन सखा, तुमने हरे उत्ताप ।।७।।
दोनों बन्धु सीता को, शत्रुघ्न विनयवान् ।
नमस्कार कर के मिला, दे कर अति सम्मान ।।८।।
शोककर्षिता अतिकृशा, राघव ने निज मात ।
देखी भेंटी चरण गह, सहित सुप्रेम उद्दात ।।९।।
कैकेयी सुमित्रा को, मिले ले भक्ति-भाव ।
नागर जनपद जनों को, मिले प्रेम ले चाव ।।१०।।

---

* दोहा।

स्वागत करते लोग थे, झुक कर सह प्रणाम ।
उन के जय जय घोष शुभ, लगते थे अभिराम ।।११।।
उसी समय श्री भरत ने, पद-पादुक शुभ कार ।
रघुपति-चरण तले धरे, दोनों कर में धार ।।१२।।
हाथ जोड़ कर की विनय, ज्येष्ठ गुरुवर भ्रात! ।
चित्रकूट की कीजिये, प्रण प्रतिज्ञा-बात ।।१३।।
राज्य जो सौंपा था मुझे, बाधित करके नाथ! ।
वही धरोहर लीजिये, आज आप रघुनाथ ।।१४।।
मैं कृतार्थ हो गया, सफल मनोरथ आज ।
देख रहा हूं आज जो, पुर में राघवराज ।।१५।।
देखो सेना कोष को, सम्भालो भण्डार ।
शाला हाथी अश्व की, गृह आयुधागार ।।१६।।
स्नेह सने सुन सरस तर, भरत-वाक्य उद्गार ।
खींच काख में ले उसे, करते आदर प्यार ।।१७।।
बैठ विमान में रघुपति, भरत-आश्रम ओर ।
गये, जा कर उतरे सभी, पा कर समतल ठौर ।।१८।।
जिस का भद्र विमान था, वह उसे उसी काल ।
लौटाया रघुनाथ ने, दिया सर्व सम्भाल ।।१९।।
पुरोहित जनों को वे मिले, वहां मान कर दान ।
उन्हें बिठा बैठे प्रभु, पूर्ण पुरुष निधान ।।२०।।
*बहुत विनय करके लघु भाई, भरत नाम सुन्दर सुखदाई ।
बोला वेश केश संवारो, तापस बाना, देव! उतारो ।।२१।।

* चौपाई।

भूप बनो अब अवध विहारी, तेज ओज बड़े शक्ति धारी ।
राघव ने विनती स्वीकारी, क्षौर-कर्म की हुई तयारी ।।२२।।
सुग्रीव आदि प्रथम नहाये, फिर राघव ने कच बनवाये ।
सुन्दर भूषण कपड़े धारे, राज-साज सब ही सिंगारे ।।२३।।
सज्जित करती थीं सब माता, राजोचित जो भी था भाता ।
पूर्ण चांद समान सुहाये, जब राघव जी गये सजाये ।।२४।।
तारा आदिक ले वर नारी, सिया पुर दिखलाने पधारी ।
मुख्य पुरोहित मिल करआये, संग अभिषेक विधि भी लाये ।।२५।।
शुभ कर्म लगे होने नाना, मंगल कार्य सहित विधाना ।
रामचन्द्र की निकली सवारी, सज-धज शोभा करके भारी ।।२६।।
रथ पर थे रघुराज सुहाते, अश्व भरत जी आप चलाते ।
लखन विभीषण चमर डुलाते, शत्रुघ्न थे छत्र ले जाते ।।२७।।
देव ऋषिगण स्वेच्छाचारी, देव दिव्यवर बल के धारी ।
स्तुति गीत थे जाते गाते, जय-घोष जन सर्व गूँजाते ।।२८।।
वर गजराज गिरि आकारी, हुआ सुग्रीव की वह सवारी ।
अश्व हस्ति रथ पर जन मानी, जाते सर्व थे गुणी ज्ञानी ।।२६।।
साथ बहुत जाते थे राजे, आगे बजे स्वस्तिक बाजे ।
बजते बाजे तालक नामी, मधुरतर स्वर था नभ-गामी ।।३०।।
पितृ-भवन में रघुपति आये, सहित सुजन के शोभा लाये ।
शनैः शनैः तब सायं आई, यात्रा गई वहीं ठहराई ।।३१।।
बोले वे, जो घर है मेरा, उसमें हो सुग्रीव का डेरा ।
उचित यथा सबको ठहराओ, सुख के साधन सर्व बनाओ ।।३२।।
कहा भरत ने वानर राई!, बनिए तो अब आप सहाई ।
आज्ञा देकर जन भिजवाओ, अभिषेक के जल मंगवाओ ।।३३।।

शुभ समय पर कल सबेरे, अभिषिक्त हों बन्धु मेरे ।
राज-वचन से जन उठ धाये, सिन्धु सरित् सलिल लिवा लाये ।।३४।।
सुवर्ण कलश भरे विलसाते, सुगन्धित शुभा शोभा पाते ।
सूर्योदय जब ही हो पाया, वशिष्ठ मुनि ने स्थान सजाया ।।३५।।
पति पत्नी ऋषि ने बुलवाये, सुवर्ण चौकी पर बैठाये ।
रत्न जड़ी थी लह-लहाती, मणि मण्डित वह शोभा पाती ।।३६।।
वशिष्ठ विजय जाबालि सुनामी, गौतम कात्यायन गुणग्रामी ।
वामदेव अभिषेक रचाते, पुष्प पूजन कर वे हर्षाते ।।३७।।
पीछे सचिवों ने विधि सेती, सिंचन क्रिया की, थी जेती ।
फिर आये सेना के नेता, समर ज्ञान विधान के वेत्ता ।।३८।।
फिर मुखिया पुर जनपदवासी, व्यापारी वर अवध निवासी ।
सविधि वे सब अर्घ्य थे देते, अभिसिंचन कर अति मुद लेते ।।३६।।
राजसभा लगी वहाँ भारी, यथा-क्रम बैठे दरबारी ।
सिंहासन पर राम विराजे, बजे मोद के सब तब बाजे ।।४०।।
परम्परा से जो था आता, मुकुट सुवर्णमय जो सुहाता ।
जड़े हुए जिसमें थे हीरे, वशिष्ठ मुनि उसे लिए धीरे ।।४१।।
राघव जी के पास पधारे, उसे दोनों करों में धारे ।
रक्खा राघव सीस पै ऐसे, कलश कैलाश पै शोभे जैसे ।।४२।।
रक्खा गया तब सिर पर छाता, मोती झालर सहित लुभाता ।
एक चँवर सुग्रीव झुलाता, असुर-राज था अपर डुलाता ।।४३।।
रामचन्द्र सुहाये त्यों ही, उदयाचल पर सूर्य ज्यों ही ।
मुकुट रश्मि थीं बाहर जातीं, रवि किरणों से मेल मिलातीं ।।४४।।
गन्धर्वों ने गाये गाने, स्वर-ताल से रस बरसाने ।
सुवर्ण विप्र जनों ने पाया, राघव से जो मन में आया ।।४५।।

मणि-माला जो दिव्य कहाती, वानर-राज को दी लुभाती ।
अंगद ने पारितोषिक ऐसा, पाया उस को शोभे जैसा ।।४६।।
अन्य सर्व ने बहु धन पाये, धन्यवाद शुभवाद सवाये ।
बिदा हुए सब सज्जन साथी, लेकर रत्न अश्व वर हाथी ।।४७।।
हीरक हार सहित वर मोती, जिसकी ज्योति सर्व दिश होती ।
सीता को पति ने पहराया, लहक लहक वह बहुत लहराया ।।४८।।
देवी ने निज हार उतारा, मोतीमय मूल्य का भारा ।
हर्ष-सहित हाथों में धारा, सब को चारों ओर निहारा ।।४६।।
मनोभाव था उसका जो ही, राघव ने जाना सब सो ही ।
कहा, दो प्रिये! उसे माला, जानो जिसे तुम भक्ति वाला ।।५०।।
सीता ने जब अनुमति पाई, हनुमत् को माला पहराई ।
धार हार शुचि चांद समाना, सब को लगा वह बहु सुहाना ।।५१।।
सेवकपन ऊँचा दर्शाते, कवि कथा यह ऐसे बताते ।
माला को हनुमत् ने तोड़ा, मनका ले मलमल कर फोड़ा ।।५२।।
उसे देख कर ही बहु बारी, उसकी धूलि धूल में डारी ।
अनेक मोती मनके ऐसे, किये चूर्ण काच हो जैसे ।।५३।।
निरख सर्व यह सीताराणी, बोली प्रेममयी मधुवाणी ।
सुस्नेह वत्सल-भाव दिखाती, माता समा उसको हर्षाती ।।५४।।
सुन्दर सौम्य सुघड़ सियाने, बहुमूल्य मोती के दाने ।
क्यों आप हो चूर्ण बनाते, उन्हें धूल में फेंक मिलाते! ।।५५।।
वह बोला, इन में तो माता,!, रक्खूँ जो वह दृष्टि न आता ।
बोली वह, ये तो हैं मोती, वस्तु कोई न इनमें होती ।।५६।।
वस्तु आप जो इन में चाहो, है वह क्या यह मुझे बताओ ।
राम नाम, वह बोला, चाहूँ, सो वस्तु मैं इन में न पाऊँ ।।५७।।

कहा सियाने समझो भोले!, नाम मिले न इन में टटोले ।
वह बोला, मैं हूँ अनुगामी, राघव हैं मेरे गुरु स्वामी ।।५८।।
सेवक कहे नाम के भूखे, लगते दाम उन्हें रूखे सूखे ।
{जो जन मन से सेवा साधे, स्वार्थ तज कार्य आराधे ।।५६।।
सुर-सम्पत् भी कभी न चाहे, तन मन धन दे धर्म कमाये ।
महावीर कर्मी महा त्यागी, भक्तराज वह है बड़भागी ।।६०।।
ऐसे सेवक सुजन सहारे, होते कार्य जग में सारे ।
जाति देश की सब बन आती, धर्म कर्म खेती फल लाती ।।६१।।
कठिन कर्म है सेवक होना, सत्य धर्म हित तन तक खोना ।
होना कभी न स्वामि-द्रोही, स्वार्थी लम्पट क्रोधी मोही} ।।६२।।

सातवाँ सर्ग

*लक्ष्मण को बोले प्रभु, बनो आप युवराज ।
मेरे सहायक भी बन, करो राज के काज ।।१।।
उसने तो माना नहीं, लेना कुछ अधिकार ।
अत्याग्रह पर भी बली, करता रहा नकार ।।२।।
युवराज हुए भरत जी, बुद्धिमान् गुणवान् ।
भाई तीनों के प्रिय, धैर्य धर्म-निधान ।।३।।
सज्जन गण को कर विदा, बन्धुसहित रघुराज ।
न्याय नीति शुभ धर्म से, कर सब गठित समाज ।।४।।
शासन करने लग गये, तज प्रमाद विषाद ।
सावधान रह सर्वदा, सम हो रहित विवाद ।।५।।
माताओं को भाव से, देते आदर मान ।
नित्य विनय से भक्ति से, सबको जान समान ।।६।।

* दोहा।

†प्रेम-भाव से चारों भाई, रहते मिलजुल ला मधुराई ।
भाव से वे थे एक स्नेही, तन से चार देह के देही ।।७।।
दिशा चार हैं नभ की जैसे, एक चार थे वे भी वैसे ।
अरे जुड़े ज्यों रथ में होते, तथा एक थे वे शुभ सोते ।।८।।
राम राग के सब अनुरागी, राम रंग रंजित बड़ भागी ।
राम सुयश रसिक रसीले, राम तेज से थे चमकीले ।।६।।
वीर बन्धु बलवन्त विवेकी, ज्योति बने जन जाति हिये की ।
उनके कर्मों के अनुसारी, अवध देश के सब नर नारी ।।१०।।
सत्य धर्म युत सुकृत कारी, व्रत नियमरत संयम धारी ।
थे सब वीर धीर शुचि शूरे, प्रण प्रेम में पक्के पूरे ।।११।।
जाति देश के बड़े हितैषी, द्रोह विद्रोह के बहु विद्वेषी ।
आन बान मर्यादा वाले, शिष्ट सभ्य थे सुजन निराले ।।१२।।
थे सब एक देश के नाते, जाति हित एक तन हो जाते ।
वीर-वीणा जब वे बजाते, बल शक्ति की गंगा बहाते ।।१३।।
गृह-कर्मों के पालने हारे, थे परिवार-प्रेम के प्यारे ।
मात पिता जन के सन्मानी, वयोवृद्ध के आदर दानी ।।१४।।
कर्मयोग रत आशावादी, थे न कोरे कुविकट विवादी ।
मिलकर मीठा वाद चलाते, मिष्ट मेल में मोद मनाते ।।१५।।
संगति संहति उन्हें सुहाती, सुगठन सम्मति उनको भाती ।
क्षात्र कर्म उन्हें बहु भाता, वीर-भाव उन में विलसाता ।।१६।।
सुर सम सुखिया अवधनिवासी, सुर सम्पद् के थे शुभ-रासी ।
राघव थे सब गुण-गण ग्रामी, जनता सब के हित कर स्वामी ।।१७।।

† चौपाई।

शुभा शोभती सीता राणी, शील धर्म में ऊँची मानी ।
अनुपम उपमा पत्नी धर्म की, परम प्रतिमा सती कर्म की ।।१८।।
जनता जग में जाती पूजी, उस सी मिलती कहीं न दूजी ।
नारीगण की निपुणा नेत्री, पाप दोष की परम विजेत्री ।।१६।।
सौभाग्या भगवती भवानी, भानु भासा सी गई जानी ।
उसके वर्णन सुजन सुनाते, दश दिश में जन गुण-गण गाते ।।२०।।
सन्तति आशा में जब आई, शुभ सुकृत में लगी सवाई ।
यथा समय सुत उसने पाये, रविशशिसमशिशुयुगलसुहाये ।।२१।।
लव कुश नामों से हो नामी, हुए वंश में तेजो धामी ।
वाल्मीकि आश्रम के वासी, सुशिक्षित हुए विद्या अभ्यासी ।।२२।।
पारंगत हो घर पर आये, मात पिता प्रतिरूप कहाये ।
जग में चमके शोभाशाली, यथा नभ में हो अंशुमाली ।।२३।।
शासन शंसित राघव जी का, कान्त शान्त कोमल था नीका ।
अनुशासन वर्ती नर नारी, थे विनीत सब आज्ञाकारी ।।२४।।
राम-राज्य देश में ऐसा, चलता पुण्य रूप हो जैसा ।
थी शासन की बड़ी बड़ाई, वैध, न्याय शुचि कोमलताई ।।२५।।
*पक्षपात से पार पा, धड़े बंदियां त्याग ।
सब में समता-भाव से, होता न्याय विभाग ।।२६।।
रघुपति शासन में कहीं, ऊँच नीच के भेद ।
ढूँढे भी मिलते नहीं, विषम न्याय के खेद ।।२७।।
न्याय-तुला रघुराज की, सब में रह समतोल ।
पक्ष के पलड़े तुल्य रख, बनी मान अनमोल ।।२८।।

---

* दोहा।

राजहंस जैसे करे, भिन्न क्षीर से नीर ।
निर्णय सत्य असत्य का, त्यों करते वे धीर ।।२६।।
उनके निर्णय न्याय में, सब को था सन्तोष ।
उनके शासन दण्ड में, होता दोष न रोष ।।३०।।
कोमल शासन काल था, तज बल का उपयोग ।
नाम न था भय दमन का, था सब शुभ संयोग ।।३१।।
शान्ति थी सब राज्य में, मिल जुल रहते लोग ।
वैर विरोध विहीन थे, सभी जन रत उद्योग ।।३२।।
श्रमी श्रम करते सब, कर्मी क्रिया-कलाप ।
कर्म हीन पन मानते, जाति देश का पाप ।।३३।।
चार वर्णाश्रम थे तब, जीवन यात्रा काज ।
खाते कर कमाई सब, जब था राघव राज ।।३४।।
सुख सम्पद् शुभ एकता, रहे लोग थे भोग ।
राम राज्य में सब जन, देते थे सहयोग ।।३५।।
आधि व्याधि सब ईतियां, महा मारियां रोग ।
राम-राज्य में न रहे, अकाल-मरण कुसोग ।।३६।।
फलती पक कर खेतियां, पड़ते नहीं अकाल ।
दीर्घ-जीवी लोग थे, मरते युवक न बाल ।।३७।।
समय पर वर्षा बरसती, सुखदा चलती वात ।
राम-राज्य में न कलह, होते घात उत्पात ।।३८।।
राम राज्य में थे नहीं, डाकू तस्कर चोर ।
लुटेरे दस्यु दुष्ट जन, उद्दण्ड कुकर्मी घोर ।।३६।।
निर्भय नारी नर सर्व, फिरते थे स्वच्छन्द ।
धन सम्पद् युत हाट के, मिलें न ताले बन्द ।।४०।।

रत्न-जड़ित भूषण सजी, पहरे हीरक हार ।
अबला स्त्री भी रात में, फिरती कर सिंगार ।।४१।।
युवती भूषण भूषिता, अकेली भी विश्राम ।
वन में लेती निर्भया, जब था राजा राम ।।४२।।
राम राज्य में स्त्रियां, पार्ती आदर मान ।
स्वत्व सम्पत्ति में वे, रखर्ती पुरुष समान ।।४३।।
थे सुरक्षित लोग सब, रहते सभी निर्बाध ।
रघुपति में था सर्व का, बन्धन प्रेम अगाध ।।४४।।
राम-राज्य में वृद्ध का, होता बहु सम्मान ।
पितृ-भक्त थे सुत सुता, पूरे मातृ-मान ।।४५।।
बन्धे बन्धु-सुबन्धु में, बान्धव बड़े विनीत ।
मीठे मेल मिलाप से, मधु को लेते जीत ।।४६।।
राम-राज्य में घर घर, होते कर्म कलाप ।
ध्वनि स्वधा स्वाहा की, करती मधुर अलाप ।।४७।।
दान पुण्य बलिदान के, वर तर विविध विधान ।
सेवा सुकृत धर्म के, होते कर्म महान् ।।४८।।
स्नेह सुरस में थे सने, सगे सुजन सब मीत ।
सज्जन सभ्य सुशिष्ट शुचि, मृदुल ज्यों नवनीत ।।४६।।
सेवक सहायक थे जन, दानी बहुत उदार ।
बहुश्रुत ज्ञानी सुपठित, जिनमें विमल विचार ।।५०।।
राम-राज्य में जन सब, रखते ऐक्य प्यार ।
सत्य सरलता सादगी, उच्च विचार सुचार ।।५१।।
कर्मयोग की साधना, होती निश्चय साथ ।
राम-राज्य में न रहे, दीन दरिद्र अनाथ ।।५२।।

खान पान पाते सभी, गृह वस्त्र परित्राण ।
भूप को प्यारी थी प्रजा, जैसे अपने प्राण ।।५३।।
साधारण शुभ विद्या का, सब के लिये सुयोग ।
था राम के राज्य में, पुष्कल जीवन योग ।।५४।।
राम-राज्य में आ मुनि, ऋषि-राज वर सन्त ।
संगति सद् उपदेश से, करते जन गुणवन्त ।।५५।।
राम-राज्य में सुधर्म, सब दिश रहा विराज ।
पूजन करते ईश का, सब जन सर्व समाज ।।५६।।
सुख स्वर्ग भूतल बनी, पा राजा रघुनाथ ।
विभूति सब द्युलोक की, अवतरी एक साथ ।।५७।।
रवि-वंश-सौर लोक के, राघव थे रवि एक ।
गण्य मान मानव सभी, थे ग्रह-गण अनेक ।।५८।।
परिक्रमा करते सभी, उसकी श्रद्धा-धार ।
कर्म धर्म अनुकरण कर, चलते उस अनुसार ।।५९।।
यंत्र ध्रुव दर्शक जन, बने भावनावान् ।
आकर्षक निश्चल ध्रुव, थे राघव भगवान् ।।६०।।
*बहुत यजन कर राघव राजा, दान पुण्य कर अधिक विराजा ।
शुभ सुकृत संचित कर भारी, सुखिया की प्रभु जाति सारी ।।६१।।
मर्यादा शुभ नियम चलाये, अनार्य जन आर्य बनाये ।
विद्या धर्म को अधिक विस्तारा, पछड़े जन वंशों को सुधारा ।।६२।।
रघुपति ने जी जीवन सेती, हरित भरित की मानव खेती ।
सुख शुभ सागर सर्व बहाये, रीति नीति के बन्ध बनाये ।।६३।।
युग परिवर्तन कर सुखकारी, हुए देव युग के संचारी ।
पुरुषोत्तम हि माने जाते, थे वे शक्ति केन्द्र कहाते ।।६४।।

---

* चौपाई।

पतित पावन पुरुष प्रतापी, प्रेम पुंज शुचि यश से व्यापी ।
पावन परम धाम के धामी, हुए जगत् में मंगल नामी ।।६५।।
रामचरित का चतुर चितेरा, चरित चित्र चित्रण का डेरा ।
रच कर कविता सुचारु चोखी, रचना रोचक परम अनोखी ।।६६।।
चरित्र-चिन्तामणि का उद्गाता, वाल्मीकि मुनि हुआ निर्माता ।
उस के मुख से यह श्रीगंगा, निसरी विमल अभंग तरंगा ।।६७।।
इसमें जो जन नित्य नहाते, चरित सुधा का भोग लगाते ।
मन तन में सुविमलता पाते, उन में पाप कुकर्म न आते ।।६८।।
वीर धीर शुभ कर्मी उद्योगी, बनते बली वे विजय फल भोगी ।
सन्तति सम्पत् श्लाघा भारी, पाते सुख यश वे नर नारी ।।६९।।
आदि कवि का काव्य रसीला, सुन पढ़ कर श्री राघव लीला ।
सकल मनोरथ होते पूरे, कायर भी बनते जन शूरे ।।७०।।
जाति देश में उन्नति आती, हो सुगठित जनता जग जाती ।
भक्ति शक्ति की मिल शुचि धारा, करती पतन से ही निस्तारा ।।७१।।
भाई सुत सेवक हों ऐसे, लक्ष्मण राघव हनुमत् जैसे ।
नारी जन हों जैसी सीता, धर्मरता अभया सुविनीता ।।७२।।
मंगल कर की मंगल गाथा, सुन हो हर्षित मन मुख माथा ।
विघ्न हरण हों रहे न बाधा, जावे परम देव आराधा ।।७३।।
रामायण पारायण सेती, फलती पुण्य कर्म की खेती ।
चरित-चन्द्र शुचि चम-चमाता, चारु चित्त में ही चढ़ आता ।।७४।।
†बुद्धि सुवृद्धि वीरता, दे रामायण गान ।
विपदा व्याधि विघ्न सभी, हरण कष्ट अज्ञान ।।७५।।

† दोहा।

परिशिष्ट

नाम महिमा

दो.-नाम में नामी यों बसे, पुष्प में ज्यों सुवास ।
शब्दार्थ गुण गुणीवत्, कहे एक निवास ।।१।।
चौ.-नाम देह नामी है देही, व्याप्य व्यापक माने वे ही ।
इस से ऋषि सन्त मुनि ज्ञानी, शब्द में इष्ट ध्याते ध्यानी ।।२।।
राम नाम पावन वे गाते, परम पुरुष है ध्येय बताते ।
सब शक्तिमय ईश्वर जो है, परम पुरुष परमात्मा सो है ।।३।।
आनन्दकन्द चिद् घनअविनाशी, राम नाम नामी सुख-रासी ।
राम नाम से मिलता ऐसे, सुरसरि में शीतलता जैसे ।।४।।
*"आखर मधुर मनोहर दोऊ, बरन बिलोचन जन जिय जोऊ ।
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू, लोक लाहु परलोक निबाहू" ।।५।।
दो- रा, मुख से उच्चारते, पाप बहिः सब जाय ।
फिर भीतर आवे नहीं, म, कपाट हो आय ।।६।।
रा, धुन मूलाधार से, जैवी शक्ति जगाय ।
म, दसवें द्वार तक, तभी उसे पहुँचाय ।।७।।
चौ- इस से साधनशील सियाने, सहज योग भी इसको मानें ।
राम नाम में वे रम जाते, नीरस सुर-सुखों को बनाते ।।८।।
शब्द नाम कहिए अविनाशी, हैं सब रूपाकार विनाशी ।
एक देश में रूप सुहावे, सर्व देश में नाम समावे ।।६।।

---

* रा.च.मा. बालकाण्ड।

नव पुरातन क्षीण हो जाते, रूप भिन्नता सदा दिखाते ।
शब्द एक रस रहे सदा ही, भिन्न भेद न पावे कदा ही ।।१०।।
कर्ता कल्पित रूपाकारा, देश काल से नाम अपारा ।
नामी नाम अनन्त बताये, रूपाकार सान्त हैं गाये ।।११।।
बड़ा रूप से नाम बखाना, सब गत सम दिक्काल में जाना ।
सन्त जनों ने नाम बड़ाई, इस से अधिक रूप से गाई ।।१२।।
*''समुझत सरिस नाम अरु नामी, प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी ।
नाम रूप दुई ईस उपाधि, अकथ अनादि सुसामुझि साधी ।।१३।।
को बड़ छोट कहत अपराधू, सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू ।
देखिअहिं रूप नाम आधीना, रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना ।।१४।।
रूप बिसेष नाम बिनु जानें, करतल गत न परहिं पहिचानें ।
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें, आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ।।१५।।
नाम रूप गति अकथ कहानी, समुझत सुखद न परति बखानी ।
अगुन सगुन विच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ।।१६।।
दो.- राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर।।१७।।
चौ.-नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी, बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ।
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा, अकथ अनामय नाम न रूपा ।।१८।।
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ, नाम जीहँ जति जानहिं तेऊ ।
साधक नाम जपहिं लय लाएँ, होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ।।१९।।
जपहिं नामु जनआरत भारी, मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ।
राम भगत जग चारि प्रकारा, सुकृती चारिउ अनघ उदारा ।।२०।।

---

* रा.च.मा. बालकाण्ड।

चहूं चतुर कहुँ नाम अधारा, ग्यानी प्रभुहिं बिसेषि पिआरा ।
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ, कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ।।२१।।
दो.-सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन ।
नाम सुप्रेम पियूष हृद, तिन्हहुँ किए मन मीन ।।२२।।
चौ.-अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा, अकथ अगाध अनादि अनूपा ।
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें, किए जेंहि जुग निज बस बूतें ।।२३।।
एकु दारुगत देखिअ एकू, पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ।
उभय अगम जुग सुगम नाम तें, कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ।।२४।।
व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी, सत चेतन घन आनन्द रासी ।
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी, सकल जीव जग दीन दुखारी ।।२५।।
नाम निरूपन नाम जतन तें, सोऊ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ।
दो.-निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार ।
कहउँ नामु बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार" ।।२६।।

भक्ति-महत्त्व

दो.-श्रद्धा प्रीति भावना, राम में सुविश्वास ।
जप सिमरन आराधना, कही भक्ति शुभरास ।।१ ।।
संशय रहित विश्वास जो, अनन्य निश्चय संग ।
निर्भर होना राम पर, भक्ति परा अभंग ।। २ ।।
सरल सत्य पथ समझिए, मोक्ष धाम का एक ।
राम भक्ति निश्चय अचल, अविचल नाम की टेक ।। ३ ।।

जन-सेवा सत्कर्म सब, भक्ति धर्म कहलाय ।
परहित परता सतत भी, भक्ति में आ जाय ।।४।।
चौ.-ज्ञान कर्म बिन प्रीति न होते, ज्यों सलिल बिन सरते न सोते ।
त्यों भक्ति बिना ज्ञान कमाई, कहीं कदापि न पड़े दिखाई ।।५।।
सुकर्म ज्ञान में प्रीति जो हो, भक्ति रूप ही जानो सो सो ।
इष्ट में प्रीति भक्ति कहाती, इष्ट ज्ञान से पाई जाती ।।६।।
ज्ञान सुकर्म भक्ति सुखदाई, तीनों एक जानिए भाई ।
ज्ञान कर्म समन्वय सोहे, भक्ति-भाव में अति मन मोहे ।।७।।
दो.—ऐसे भक्ति है बड़ी, ज्ञान कर्म से जान ।
जिस में रहते एक हो, सभी सुकर्म सुज्ञान ।।८।।
चौ.-"जे असि भगति जानि परिहरहीं, केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ।
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी, खोजत आकु फिरहिं पय लागी ।।६।।
सुनु खगेस हरि भक्ति बिहाई, जे सुख चाहहिं आन उपाई ।
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी, पैरि पार चाहहिं जड़ करनी" ।।१०।।
*"ग्यान पंथ कृपान कै धारा, परत खगेस होइ नहिं बारा ।
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई, सो कैवल्य परम पद लहई ।।११।।
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद, संत पुरान निगम आगम बद ।
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं, अनइच्छित आवइ बरिआईं ।।१२।।
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई, कोटि भांति कोउ करै उपाई ।
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई, रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ।।१३।।
अस बिचारि हरि भगत सयाने, मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा, संसृति मूल अबिद्या नासा ।।१४।।

---

* रा.च.मा. उत्तर-काण्ड।

भोजन करिअ तृपिति हितलागी, जिमि सो असन पचवै जठरागी ।
असि हरि भगति सुगम सुखदाई, को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ।।१५।।
दो.-सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धांत बिचारि'' ।।१६।।
चौ.*''राम भगति चिंतामनि सुंदर, बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ।
परम प्रकास रूप दिन राती, नहिं कछुचहिअ दिआ घृतबाती ।।१७।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा, लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ।
प्रबल अविद्या तम मिटि जाइ, हारहिं सकल सलभ समुदाई ।।१८।।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं, बसइ भगति जाके उर माहीं ।
गरल सुधासम अरिहित होई, तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ।।१९।।
ब्यापहिं मानस रोग न भारी, जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ।
राम भगति मनि उर बस जाकें, दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें'' ।।२०।।
* ''सिव अज सुक सनकादिक नारद, जे मुनि ब्रह्म विचार बिसारद ।
सब कर मत खगनायक एहा, करिअ राम पद पंकज नेहा ।।२१।।
श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं, रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ।
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा, बंध्या सुत बरु काहुहि मारा ।।२२।।
फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला, जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ।
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना, बरु जामहिं सस सीस बिषाना ।।२३।।
अंधकारु बरु रबिहि नसावै, राम बिमुख न जीव सुख पावै ।
हिम ते अनल प्रगट बरु होई, बिमुख राम सुख पाव न कोई ।।२४।।
दो.- बारि मथें घृत होई बरु, सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भवतरिअ, यह सिद्धान्त अपेल'' ।।२५।।

---

* रा.च.मा. उत्तरकाण्ड।

चौ.*''तीर्थाटन साधन समुदाई, जोग बिराग ग्यान निपुनाई ।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना, संजम दम जप तप मख नाना ।।२६।।
भूत दया द्विज गुरु सेवकाई, बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ।
जहँ लगि साधन बेद बखानी, सब कर फल हरि भगति भवानी'' ।।२७।।

राम-बचन—

भगति हीन बिरंचि किन होई, सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ।
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी, मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ।।२८।।

राम कृपा

चौ.-रामकृपा कही सुख देनी, ताप पाप पातक हर लेनी ।
राम दया सब दोष नसावे, देवे राम तभी जन पावे ।।१।।
*''निज अनुभव अब कहउँ खगेसा, बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ।
रामकृपा बिनु सुनु खगराई, जानि न जाइ राम प्रभुताई ।।२।।
जानें बिनु न होइ परतीती, बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति ।
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई, जिमि खगपति जलकै चिकनाई ।।३।।
सो- बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान, सुखकि लहिअ हरि भगति बिनु ।।४।।
कोउ बिश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचिपचिमरिअ ।।५।।
चौ.-बिनु संतोष न काम नसाहीं, काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ।
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा, थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ।।६।।
बिनु बिग्यान कि समता आवइ, कोउ अवकास कि नभ बिनु पावई ।
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई, बिनु महि गंध कि पावइ कोई ।।७।।

---

* रा.च.मा. उत्तरकाण्ड।

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा, जल बिनु रस कि होइ संसारा ।
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई, जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं ।।८।।
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा, परस कि होइ बिहीन समीरा ।
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा, बिनु हरि भजन न भव-भयनासा ।।९।।
दो.—बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहि न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिश्रामु" ।।१०।।

श्री रामोपदेश-षट्क

१. शरणागत परित्राण

दो.--निर्वासित निज देश से, पा रावण अपमान ।
भीत विभीषण आ गया, शरण राम को मान ।।१।।
शंकित मन कपिराज आ, बोला, हे रघुराज ।
असुर अनुज आ आप को, मिलना चाहे आज ।।२।।
शरण त्राण है याचता, होकर बहुत विनीत ।
आसुर-माया से कहीं, काम न हो विपरीत ।।३।।
बन्दी बना कर अब उसे, रक्खें हो सावधान ।
देव! यदि आदेश दो, होवे वही निदान ।।४।।
सुन सब वचन सुग्रीव के, बोले दीनदयाल ।
नीति हितयुत वाक्य हैं, तेरे वन जनपाल ।।५।।
चौ.–पर शरणागति जो जन चाहे, तेरा हूँ सुविश्वास दिलाये ।
मम प्रण है उसे अपनाना, शरण में ले निर्भय बनाना ।।६।।

*दो.''सरणागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ।।७।।
चौ.- कोटि बिप्रबध लागहिं जाहू, आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं, जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ।।८।।
पापवंत कर सहज सुभाऊ, भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ।
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई, मोरें सनमुख आव कि सोई ।।६।।
निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।
भेद लेन पठवा दससीसा, तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ।।१०।।
जौं सभीत आवा सरनाईं, रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं ।''

श्री रामोपदेश-२

इष्ट से घनिष्ठ सम्बन्ध

चौ.-घनिष्ठ सम्बन्ध इष्ट से जोड़े, जीवन जाय तो भी न तोड़े ।
प्राण पण से शुभ प्रण पाले, कोटि कष्ट पर टले न टाले ।।१।।
सब नातों से ऊँचा नाता, इष्टदेव का समझा जाता ।
इस पर राम कथन है आया, गुणिजनों ने यथा बताया ।।२।।
दो.-मिला विभीषण राम को, बोला दीन दयाल ।
चरण शरण में लीजिए, करिए मुझे निहाल ।।३।।
चौ.-आश्रित जन मुझे अब जानो, दीन दुःखी को अपना मानो ।
मेरे अब तुम हो पितु माता, बन्धु सखा सुहृद परित्राता ।।४।।
चरण पड़े को प्रभु ने उठाके, सच्चे भाव से कण्ठ लगाके ।
कुशल क्षेम सब पूछे ऐसे, सगे सुबन्धु पूछते जैसे ।।५।।

* रा.च.मा. सुन्दरकाण्ड।

*"अब पद देखि कुशल रघुराया, जौं तुम्ह कीन्हि जानि जनदाया ।।६।।
दो.-तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुं मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम ।।७।।
चौ-तब लगि हृदयँ बसत खल नाना, लोभ मोह मच्छर मद माना ।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा, धरें चाप सायक कटि भाथा ।।८।।
ममता तरुन तभी अंधिआरी, राग द्वेष उलूक सुखकारी ।
तब लगि बसति जीव मन माहीं, जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं ।।९।।
अब मैं कुसल मिटे भयभारे, देखि राम पद कमल तुम्हारे ।
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला, ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला ।।१०।।
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ, सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ ।
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा, तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा ।।११।।
दो.-अहो भाग्य मम अमितअति, राम कृपा सुख पुंज ।
देखेऊँ नयन बिरंचि सिव, सेब्य जुगल पद कंज ।।१२।।
चौ-सुनहु सखा निज कहऊँ सुभाऊ, जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।
जौं नर होई चराचर द्रोही, आवै सभय सरन तकि मोही ।।१३।।
तजि मद मोह कपट छल नाना, करऊँ सद्य तेहि साधु समाना ।
जननी जनक बंधु सुत दारा, तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ।।१४।।
सब कै ममता ताग बटोरी, मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं, हरष सोक भय नहिं मन माहीं ।।१५।।
अस सज्जन मम उर बस कैसें, लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें ।
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें, धरउँ देह नहिं आन निहोरें ।।१६।।
सुनु लंकेस सकल गुन तोरें, ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें ।"

---

* रा.च.मा. सुन्दरकाण्ड।

श्री रामोपदेश-३

उपदेश के अनधिकारी जन

चौ. -जो जन होवें लम्पट द्रोही, बुरे विवादी वैरी विमोही ।
कलह अकारण करते जोही, दुराग्रही दुर्मानी सो ही ।।१।।
मद मठ कुशठ कुपठित घमण्डी, दम्भी छली जन बहु पाखण्डी ।
अनधिकारी कुव्यसनी जाने, बनें व्यर्थ उन्हें समझाने ।।२।।
सागर सम्मुख धनुष उठाके, रघुपति बोले शक्ति दिखाके ।
* ''लछिमन बान सरासन आनू, सौषौं बारिधि बिसिख कृसानू ।।३।।
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति, सहज कृपन सन सुन्दर नीति ।
ममता रत सन ग्यान कहानी, अति लोभी सन बिरति बखानी ।।४।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा, ऊसर बीज बएँ फल जथा ।''

श्री रामोपदेश-४

सन्त लक्षण

दो.-पक्षपात से रहित जो, राग द्वेष से दूर ।
वर्जित वैर विरोध जो, कहे सन्त गुणपूर ।।१।।
समझो सज्जन सन्त शुचि, जिनमें जनहित प्यार ।
सत्य मृदु प्रिय सुवचन, बोले पर हित प्यार ।।२।।
सौम्य रूप शान्ति सदन, शुभ घर सब सुखकार ।
दीन हीन के दुःख हरें, कर सेवा उपकार ।।३।।
चौ.-ऐसे सन्त मिलें न जब ही, कलह कपट छल बढ़ते तब ही ।
दम्भ द्वेष की फैले माया, कुकर्म पाप अधर्म की काया ।।४।।

* रा.च.मा. सुन्दरकाण्ड।

जो कुछ शुभ सुकृत है जन में, सन्तदेन सब समझो मन में ।
धर्म कर्म हित मेल भलाई, सन्त समागम ने फैलाई ।।५।।
लक्षण सन्त के जानो ऐसे, रघुपति कहे भरत को जैसे ।
*"संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता, अगनित श्रुति पुरान विख्याता ।।६।।
संत असंतन्हि कै असि करनी, जिमि कुठार चंदन आचरनी ।
काटइ परसु मलय सुनु भाई, निज गुन देइ सुगंध बसाई ।।७।।
दो.–ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड ।।८।।
चौ.- विषय अलंपट सील गुनाकर, पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी, लोभामरष हरष भय त्यागी ।।६।।
कोमलचित्त दीनन्ह पर दाया, मन बच क्रम मम भगति अमाया ।
सबहि मानप्रद आपु अमानी, भरत प्रान सम मम ते प्रानी ।।१०।।
बिगत काम मम नाम परायन, सांति बिरति बिनती मुदितायन ।
सीतलता सरलता मयत्री, द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ।।११।।
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर, जानेहु तात संत संतत फुर ।
समदम नियम नीति नहिं डोलहिं, परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ।।१२।।
दो.-निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुनमंदिर सुखपुँज" ।।१३।।

श्री रामोपदेश-५

असन्तों के लक्षण

चौ.- धर्म हीन जन तार्किक कोरे, बहु वितण्डी कृतघ्न निठोरे ।
जायें जहां फूट फैलायें, अत्याचार अनाचार बढ़ायें ।।१।।

* रा.च.मा. उत्तरकाण्ड।

अति शठ विष घट मधु मुखवाले, बाहर सुन्दर भीतर काले ।
तथा कथित असन्त पहचाने, जाते, रघुपति यथा बखाने ।।२।।
*"सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ, भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ ।
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी, जरहिं सदा पर संपति देखी ।।३।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई, हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ।
काम क्रोध मद लोभ परायन, निर्दय कपटी कुटिल मलायन ।।४।।
बयरु अकारन सब काहू सों, जो कर हित अनहित ताहू सों ।
झूठइ लेना झूठइ देना, झूठइ भोजन झूठ चबेना ।।५।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा, खाइ महा अहि हृदय कठोरा ।
दो.--पर द्रोही पर दाररत, पर धन पर अपबाद ।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरें मनुजाद ।।६।।
चौ.-काहू की जौं सुनहिं बड़ाई, स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ।
जब काहू कै देखहिं बिपती, सुखी भए मानहुं जग नृपती ।।७।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी, लंपट काम लोभ अति क्रोधी ।
मातु पिता गुर बिप्रन मानहिं, आपु गए अरु घालहिं आनहिं ।।८।।
करहिं मोहबस द्रोह परावा, संत संग हरि कथा न भावा ।
अवगुन सिंधु मंदमति कामी, बेद बिदूषक परधन स्वामी ।।९।।
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा, दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा ।
दो.--ऐसे अधम मनुजखल, कृतजुग त्रेताँ नाहिं ।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं" ।।१०।।

---

* रा.च.मा. उत्तरकाण्ड।

श्री रामोपदेश-६

प्रजा को हितकर कथन

दो.-देश-भक्त निज जाति हित, देह भी दे दें दान ।
जनपद के जन हों तथा, करें ग्रन्थ सब गान ।।१।।
अधिक सुमेल संगठन हो, सेवा पर उपकार ।
न्याय नीति पालन करें, सत्य धर्म आचार ।।२।।
ऐसे प्रजा वर्ग को, राघव देव दयाल ।
कहते हित सत्य सुवचन, करते बहुत निहाल ।।३।।
चौ.*''एक बार रघुनाथ बोलाए, गुर द्विज पुरबासी सब आए ।
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन, बोले बचन भगत भव भंजन ।।४।।
सुनहु सकल पुरजन मम बानी, कहउँ न कछु ममता उर आनी ।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई, सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ।।५।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई, मम अनुसासन मानै जोई ।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई, तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ।।६।।
बड़े भाग मानुष तनु पावा, सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हिं गावा ।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा, पाइ न जेहिं परलोक संवारा ।।७।।
दो.-सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ।।८।।
चौ-एहि तन कर फल बिषय न भाई, स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई ।
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं, पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ।।६।।

---

* रा.च.मा. उत्तरकाण्ड।

ताहि कबहुं भल कहइ न कोई, गुँजा ग्रहइ परस मनि खोइ ।
आकर चारि लच्छ चौरासी, जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ।।१०।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा, काल कर्म सुभाव गुन घेरा ।
कबहुँक करि करुना नरदेही, देत ईस बिनु हेतु सनेही ।।११।।
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो, सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा, दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ।।१२।।
दो.-जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ ।।१३।।
चौ.-जौं परलोक इहां सुख चहहु, सुनि मम बचन ह्रदयँ दृढ़ गहहू ।
सुलभ सुखद मारग यह भाई, भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ।।१४।।
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका, साधन कठिन न मन कहुँ टेका ।
करत कष्ट बहु पावई कोऊ, भक्तिहीन मोहि प्रिय नहीं सोऊ ।।१५।।
भक्ति सुतंत्र सकल सुखखानी, बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।
पुन्य पुँज बिनु मिलहिं न संता, सत्संगति संसृति कर अंता ।।१६।।
कहहु भगति पथ कवनप्रयासा, जोग न मख जप तप उपवासा ।
सरल सुभाव न मन कुटिलाई, जथा लाभ संतोष सदाई ।।१७।।
मोर दास कहाइ नर आसा, करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ।
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई, एहि आचरन बस्य मैं भाई ।।१८।।
बैर न बिग्रह आस न त्रासा, सुखमय ताहि सदा सब आसा ।
अनारंभ अनिकेत अमानी, अनघ अरोप दच्छ बिग्यानी ।।१६।।
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा, तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा ।
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई, दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ।।२०।।

दो.-मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह ।
ता कर सुख सोइ जानइ, परानन्द संदोह ।।२१।।
चौ.-सुनत सुधासम बचन राम के, गहे सबनि पद कृपाधाम के ।।२२।।

दो.-परिशिष्ट सुविशिष्ट है, प्रकरणों का सार ।
सन्त कवि की रचना से, संग्रह सहित विचार ।।२३।।
मनन शील जन के लिए, है उपयोग सुरूप ।
जी जीवन में ज्योति दे, भर कर भाव अनूप ।।२४।।

दो.-रामायण कलि कमल में, है सुगन्ध मकरन्द ।
हो नहीं कभी मन्द यह, याचे सत्यानन्द ।।२५।।